परस पांव मुसकाई घाटी

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन



अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य तुलसी

परस पांव मुसकाई घाटी

PARAS PAON MUSKAYEE GHATEE

by

Sadhvipramukha Kanakprabha

Rs. 50.00

अर्थ-सौजन्य : श्री शुभकरण जी दसाणी
३६, नियतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००७

मूल्य : पचास रुपये / प्रथम संस्करण, १९८६ / प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान) / मुद्रक : पवन प्रिंटर्स द्वारा अनिल प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

आशीर्वचन

पर्यटन एक महाविद्यालय है। जो लोग परिभ्रमण करते हैं, ज्ञान-विज्ञान के नये-नये रहस्यों से अवगत होते हैं। जिस क्षेत्र में पर्यटन किया जाता है, वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और भौगोलिक गतिविधियों का बोध होता है। इसी दृष्टि से देशाटन को बहुश्रुतता का एक निमित्त माना गया है।

जैन मुनि पदयात्री होते हैं। लोकजीवन से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पदयात्रा से जो स्वास्थ्य, जनसम्पर्क, अनुभव, चिन्तन आदि में विकास होता है, उसके साथ-साथ पदयात्रा के द्वारा व्यक्ति अपने मिशन को भी बहुत व्यापकता दे सकता है।

हम पदयात्रा करते हैं। हमारी यात्रा में कुछ साधु-साध्वियां साथ रहते हैं। कुछ श्रावक-श्राविकाएं भी परिवर्तित रूप में साथ रहते हैं। जो साथ रहते हैं, वे स्वयं यात्री हैं और हमारी यात्रा के साक्षी हैं। पर जिनको यात्रा में साथ रहने का अवसर नहीं मिलता है, उन्हें भी यात्रा में सहभागी बनाने का काम कोई कलमशिल्पी ही कर सकता है। हमारी यात्राओं को जन-जन की यात्रा बनाने का काम साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा कर रही है। यात्रा-ग्रन्थों के अनेक पाठकों का कथन है कि ग्रन्थ पढ़ते समय उन्हें ऐसा महसूस होता है मानो वे स्वयं हमारे साथ-साथ यात्रा कर रहे हैं।

यात्रा का अर्थ केवल रास्ता मापना ही नहीं है। प्रत्येक दिन का एक-एक क्षण यात्रा का अंग है। इस रूप में समग्रता से यात्रा का लेखन करना कठिन है। एक साध्वी के लिए और भी कठिन है। क्योंकि वह निरन्तर हमारे साथ नहीं रह सकती। इसलिए बहुत लिखने पर भी काफी कुछ बच जाता है। अनेक आवश्यक बिन्दु छूट जाते हैं। फिर भी जो लिखा जा रहा है, वह सरस है, सुबोध है और पाठकों को आत्मतोष देने वाला है।

मैं अपने लेखक साधु-साध्वियों से बराबर कहा करता हूं कि हमारे लेखन में प्रशस्ति न हो, प्रस्तुति हो। प्रशस्ति प्रधान साहित्य में तथ्यों की सही प्रस्तुति नहीं

हो सकती। जब तक पाठक के मन में वस्तुस्थिति का आलोक नहीं बिखरता, वह अपनी समझ की धार को पैनी नहीं कर सकता। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने मेरे इंगित का अनुसरण कर वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

शिष्य गुरु के बारे में कुछ लिखे और उसमें प्रशस्ति न हो, बहुत मुश्किल है। पर मुश्किल को मुश्किल मानकर छोड़ने से काम नहीं होता। आत्मविश्वास और संकल्पशक्ति के द्वारा कठिन से कठिन काम सरल हो सकता है। मैं चाहता हूं कि साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा इस दिशा में विशेष गति करें। जिससे पाठकों को यह अनुभव होना चाहिए कि वे कोई कीर्तिगाथा नहीं, इतिहास पढ़ रहे हैं। वे बंधी-बंधाई दैनन्दिनी नहीं, एक-एक दिन और उसमें उठाए गए एक-एक कदम की समीक्षा पढ़ रहे हैं।

यात्रा और यात्रा-ग्रन्थों की समालोचना का दायित्व पाठकों पर है। मैं इतना जरूर चाहता हूं कि मेरी जितनी यात्राएं लिखी जाएं, वे सब एक ही लेखनी से लिखी जाएं। लेखिका के लेखन और चिन्तन में उत्तरोत्तर नया निखार आता रहे, यही आशीर्वाद है।

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
६ सितम्बर, १९८६

—आचार्य तुलसी

स्वकथ्य

'आज से सिर्फ तीस साल वाद दस लाख व्यक्ति प्रतिदिन अन्तरिक्ष-यात्रा पर जा सकेंगे और चांद तथा मंगल पर भी मानव बस्तियां होंगी। अमरीकी राष्ट्रपति रीगन द्वारा गठित अन्तरिक्ष आयोग की रिपोर्ट के अनुसार इस महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम पर सात सौ अरब डालर करीव खर्च होंगे।'

१५ मार्च १९८६ की राजस्थान पत्रिका में इस संवाद को पढ़कर इस युग का युवामन कल्पना के पंख लगाकर उड़ने लगा हो अथवा साधनसंपन्न युवा आज ही उस यात्रा के लिए आरक्षण कराने के लिए तत्पर हो गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि अन्तरिक्ष-यात्रा की इन्द्रधनुषी आभा का प्रखरता के साथ जो विज्ञापन हो रहा है, वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति में उस नव्यता को जामने-देखने की लालसा जगा सकता है।

यात्रा भारतवर्ष के छोटे-छोटे गांवों और कस्वों की, वह भी एक संत की पदयात्रा, शायद इसके साथ जुड़ने की अभिरुचि ही नहीं जागे। क्योंकि पदार्थवादी दृष्टिकोण वाले व्यक्ति ऐसी यात्रा का मूल्यांकन नहीं कर सकते। ऐसी यात्रा में यान-वाहन, आवास और खानपान की पर्याप्त सुविधाएं भले ही न हों, दर्शनीय स्थलों का आकर्षण न हो, पर जीवन का जो दर्शन मिलता है, वह अन्य किसी यात्रा में नहीं मिल सकता। इसलिए अध्यात्मवादी एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण वाले व्यक्ति अन्तरिक्ष-यात्रा के आकर्षण में न बंधकर ऐसी ही यात्रा के प्रति अपना उत्साह दिखाएंगे। इस यात्रा में क्या है? कहीं बालू की वारीक मलमली परतें और कहीं पाषाण-खण्डों की मजवूत चट्टानें। कहीं सीधा-सपाट मैदान और कहीं ऊवड़-खावड़ राहें। कहीं प्रस्तर-शिल्प के अनूठे नमूने और कहीं घास-फूस से बनी झोंपड़ियां। कहीं प्राचीन इतिहास, संस्कृति और कला की असंख्य धरोहरें और कहीं मीलों तक फैली हुई वंजर-भूमि। कहीं खूबसूरती का अखूट साम्राज्य और कहीं सीलनभरी गंदी वस्तियों और गंदी नालियों की वेतरतीव सजावट। कहीं बड़े भवन, आधुनिक सज्जा, आयातित संस्कार एवं उद्देश्यहीन जिन्दगी तो कहीं सांस्कृतिक गरिमा से अभिमंडित आश्रमनुमा मकान, सहज सादगी और

पारम्परिक जीवनशैली। इन सब बातों को देखने से मनुष्य के मन में आश्चर्य होता है। आचर्श्य दर्शन का जन्मदाता है। एक ही धरती पर जनमने, जीने वाले लोगों के जीवन में इतना बड़ा अन्तर। यहीं से जीवन का नया दर्शन आरंभ होता है। जीवन की धरती कहीं से भी समतल नहीं है। उसमें उतार-चढ़ाव का होना स्वाभाविक है। इस स्वाभाविकता को समझकर व्यक्ति हर परिस्थिति में संतुलित रहे और समता का आचरण करे तो उसकी जीवनयात्रा अत्यन्त सुखद, रस से सरावोर और अनुभवों का विराट् खजाना वन जाती है।

आचार्यश्री तुलसी महान् यायावर हैं। ग्यारह वर्ष की उम्र में उन्होंने यायावारी का व्रत स्वीकार किया। छह दशकों की इस यायावरी में उन्होंने पांव-पांव चलकर भारत की धरती को नापा है। पंजाव से कन्याकुमारी और कच्छ से कलकत्ता तक की बीहड़ और सुरम्य राहों में उनके पांवों की आहट अव भी सुनी जा सकती है। जिस रास्ते से होकर वे चले हैं, उसके चप्पे-चप्पे पर एक अनूठा प्रभाव है। इस अवधि में जो लोग एक वार भी उनके सम्पर्क में आ गए, वे आज भी अपनी यादों का गुलदस्ता सजाए उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आचार्यश्री की यात्रा के पीछे एक निश्चित उद्देश्य है। वे आत्मरंजन या लोकरंजन जैसी धुंधली जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर परिव्रज्या नहीं करते। उनके सामने उद्देश्य है—समाज के मूल्य मानकों में परिवर्तन कर उसे ऊंचे जीवन मूल्यों के अनुरूप ढालना। मानव जीवन के अंधेरे गलियारों में चरित्र का उजाला फैलाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे अणुव्रत की मशाल अपने हाथ में लेकर चल रहे हैं। अणुव्रत विचार दर्शन युग की अपेक्षा है, शाश्वत अपेक्षा है। इसलिए यह अपने प्रारंभकाल में जितना प्रासंगिक था, आज भी उससे कम प्रासंगिक नहीं है। अणुव्रत दर्शन को जीवन-दर्शन वनाने की प्रक्रिया के रूप में उन्होंने प्रेक्षाध्यान का सूत्रपात किया। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान की सोपान के सहारे बहुत आसानी के साथ चरित्र के क्षेत्र में ऊर्ध्वारोहण किया जा सकता है।

विगत की भांति सन् १९८५ में भी आचार्यश्री की यात्रा का सिलसिला चला। यह यात्रा मेवाड़-यात्रा के नाम से प्रसिद्ध है। इस वर्ष का मर्यादा महोत्सव जसोल में संपन्न कर आचार्यश्री पाली पहुंचे। पाली से २४ फरवरी १९८५ को यह यात्रा शुरू हुई। उस दिन का पड़ाव रावलियावास के प्राथमिक विद्यालय में था। २४ जून को आचार्यश्री आमेट पहुंचे और २८ नवम्बर तक आमेट में प्रवास हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल नौ महीनों की यात्रा आलेखित हुई है। नौ महीनों में पांच महीने वर्षावास के हैं। यात्रा के केवल चार महीने हैं। इन चार महीनों में जिन क्षेत्रों में आचार्यश्री का प्रवास हुआ, कुछ क्षेत्रों को एक से पन्द्रह दिन तक उनके आह्लाददायक सान्निध्य का अवसर मिला तो कभी एक ही दिन में तीन-चार क्षेत्रों का स्पर्श भी हुआ। कुल मिलाकर इकहत्तर दिन में पांच सौ

सत्तानवे किलोमीटर की यात्रा हुई।

किलोमीटर की दृष्टि से मेवाड़ के पूर्वार्द्ध की यह यात्रा वहुत छोटी है, पर कार्य की दृष्टि से इस यात्रा का अतिरिक्त महत्त्व है। यह यात्रा अमृत महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत हुई। अमृत महोत्सव के दो चरण—गंगापुर और आमेट, इसी यात्रा में परिसंपन्न हुए। यात्रा के इस कालखण्ड में अमृत-कलश पदयात्रा हुई। इस यात्रा के सर्वाधिक उल्लेखनीय विन्दु हैं—आचार्यवर के वचनामृत की वर्षा से अनेक गांवों और व्यक्तियों के मन में घुले हुए जहर की समाप्ति, हजारों व्यक्तियों द्वारा अमृत संकल्पपत्रों का समर्पण, हजारों व्यक्तियों द्वारा व्यसनमुक्ति का संकल्प स्वीकार करना और हजारों-हजारों लोगों की चेतना में नैतिक उत्क्रान्ति के बीजों का वपन।

लोकजीवन की सच्ची पहचान गांवों में होती है, इस तथ्य को यात्राकाल में ही अनुभूत किया जा सकता है। ग्रामीण लोगों की आस्था के स्वस्तिक आचार्यश्री के पग-पग पर मंगल की सर्जना करते रहे। आचार्यश्री की हर यात्रा अपने आप में एक सांस्कृतिक परंपरा का इतिहास है। यह इतिहास जितना सजीव रहा, उसकी अभिव्यक्ति उतनी सजीव नहीं हो पायी। वहुत चाहने पर भी इसे पूरी तरह से जीवंत वनाना संभव नहीं हुआ। क्योंकि अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें मेरी प्रत्यक्ष भागीदारी नहीं रही। सुनी हुई और देखी हुई वात को रूपायित करने में वहुत वड़ा अन्तर रह जाता है। वहुत क्षण ऐसे हैं, जिनके साक्षी केवल आचार्यश्री ही रहे। उन क्षणों में जो कुछ घटित हुआ, वह सर्वथा एक तरह से छूट भी गया तथा जो कुछ देखा, सुना और समझा उसे भी तो अंशरूप में ही व्यक्त किया जा सका है।

मेवाड़ की जनता में अपनी संस्कृति और परम्परा के प्रति मोह है। मेवाड़ के युवकों ने व्यवसाय की दृष्टि से शहरों की ओर पलायन किया है, फिर भी उनके संस्कारों एवं व्यवहारों में शहरीपन का निर्वाध प्रवेश नहीं हो पाया है। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के कार्यक्रम को गति देने के लिए मेवाड़ की भूमि उर्वर है। वहां कार्यकर्ताओं की जोड़ है और उनमें काम करने का उत्साह है। आचार्यश्री की यात्रा से वह उत्साह वहुगुणित होकर सामने आया है।

आचार्यश्री के मन में भी मेवाड़ का स्थान वहुत ऊंचा है। आप मेवाड़ के श्रावक समाज की श्रद्धाभक्ति को सराहते-सराहते नहीं थकते। तेरापंथ धर्मसंघ के आठ-आठ आचार्यों के चरण स्पर्श से मेवाड़ की घाटियां कृतार्थ हो गईं। जिन पाषाणी चट्टानों में एक अंकुर भी नहीं फूट सकता, वहां संस्कृति के फूल खिला देना साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। मेवाड़ के हृदय पर फैली अरावली की पहाड़ियां, घाटियां अमृतपुरुष आचार्यश्री के चरणों का स्पर्श पाकर मुसकरा उठीं। इसी वात को ध्यान में रखकर प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम रखा गया है—परस पांव

मुसकाई घाटी। जिन चरणों के स्पर्श से घाटी भी मुसकरा सकती है, उन चरणों का आधार पाकर कोई भी आदमी उदास और हताश कैसे रह पाएगा?

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में मेरे पास मुख्य रूप से पांच स्रोत रहे—

- परम श्रद्धास्पद आचार्यवर का सक्रिय दिशा-दर्शन।
- यात्रा के सम्बन्ध में मेरे अपने नोट्स।
- आदर्श साहित्य संघ द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक विज्ञप्तियां।
- ते० यु० प० उदयपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'मेवाड़ में तेरापंथ: परम्परा और प्रगति।'
- साध्वी जिनप्रभाजी द्वारा क्षेत्रीय दृष्टि से सामाजिक, धार्मिक आदि विन्दुओं के सन्दर्भ में संगृहीत सामग्री।

यात्रा के पुनर्वीक्षण एवं प्रूफ निरीक्षण का काम साध्वी कल्पलताजी और चित्रलेखाजी ने पूरे मनोयोग से किया। इन सवके साथ मेरी सोच के धुंधलाए हुए दीपक को उजालने का सारा श्रेय श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर को है। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, मार्ग-दर्शन और कृपा का अवदान न हो तो किसी छोटे से काम की संपन्नता भी संशय के झूले में झूलने लगती है। पूज्य गुरुदेव की यह कृपा निरन्तर वरसती रहे। उससे भीगा हुआ मेरा मन क्षण-क्षण ताजगी का अनुभव करता रहे और सृजन-चेतना पर आए आवरणों को दूर करता रहे ताकि कला से जुड़े रहने की मेरी भावना पूरी होती रहे।

—साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

ऋषभ-द्वार
लाडनूं (राजस्थान)
९ सितम्वर, १९८६

परस पांव मुसकाई घाटी

परस पांव मुसकाई घाटी

अनेकता में एकता

एक धागे में पिरोए हुए मनकों की भांति अखण्ड भारत राष्ट्र के सारे प्रदेश एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारत की धरती पर वसने वाला हर व्यक्ति, फिर चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिख हो, ईसाई हो पहले भारतीय है। इस देश के लोग सह-अस्तित्व और धर्म-समन्वय में विश्वास करते हैं। इसी विश्वास की फलश्रुति है अनेकता में एकता। इस एकता या एकसूत्रता को एक वृक्ष के प्रतीक में निदर्शित किया है बम्बई निवासी एम० ओ० माइकल ने। २७ जनवरी १९८५ के धर्मयुग में 'अनेकता में एकता का प्रतीक एकता वृक्ष' शीर्षक लेख के अन्तर्गत एक वृक्ष के दो चित्र छपे थे। उन चित्रों में एक ही गमले में उगी हुई एक ही जड़ में इकत्तीस प्रकार के क्रोटन उगाए हुए हैं। वे इकतीस प्रकार के क्रोटन भारत के २२ प्रान्त और ९ केन्द्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दुस्तान के नक्शे के आकार में संवारा गया वह एकता वृक्ष भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मों में वंटे हुए भारतीय लोगों को एक भारतीयता या मनुष्यता के सूत्र में पिरोए हुए है।

आज का यह अखण्ड भारत स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले अनेक रियासतों में वंटा हुआ था राज्य-विस्तार और वैभव-विस्तार की लिप्सा से प्रेरित होकर तत्कालीन शासक किसी भी समय रणभेरी वजा देते थे। उन रियासतों में तो स्थिरता और निश्चिन्तता थी ही नहीं, जहां के शासक विलासी या अक्षम थे। शक्तिसंपन्न शासक भी अपने राज्य की सुरक्षा के लिए चिन्तित रहते थे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत के अनुसार सत्ता का हस्तान्तरण होता रहता था।

वर्तमान भारत के २२ प्रान्तों में राजस्थान एक वड़ा प्रान्त है। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, वीकानेर आदि जिलों में विभक्त राजस्थान प्राचीन समय में मेवाड़, मारवाड़, ढूंढाड़ आदि रियासतों के रूप में प्रसिद्ध था। मेवाड़ भारत के

पश्चिम में और राजस्थान के दक्षिण में स्थित है। वर्तमान के उदयपुर, चित्तौड़गढ़ और भीलवाड़ा जिलों का भू-भाग मेवाड़ प्रदेश के नाम से अपनी पहचान बना चुका है। मेवाड़ की धरती के कण-कण में बापा, हमीर, कुंभा, सांगा, प्रताप और राजसिंह जैसे शासकों का शौर्य और मीरा की भक्ति मुखर-मुखर होकर मेवाड़ का गौरव बढ़ा रही है।

मेवाड़ का अस्तित्व

राजस्थान के इस क्षेत्र का नाम 'मेवाड़' कब हुआ? कैसे हुआ इस विषय में इतिहास मौन है। प्राचीन ग्रन्थों में शिवि और प्राग्वाट नामों का उल्लेख है। सिक्कों और शिलालेखों में भी इन नामों का अंकन है। ये नाम कब बदले, यह भी ऐतिहासिक शोध का विषय है।

भाषा शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया जाए तो मेवाड़ शब्द संस्कृत के मेदपाट शब्द से बनता है, जिसका अर्थ होता है—मेदों की भूमि। ऐसा माना जाता है कि इस क्षेत्र पर मेद, मेव या मेर जाति का आधिपत्य होने के कारण इसका नाम मेदपाट (मेवाड़) हो गया। एक दूसरी मान्यता के अनुसार मेवाड़ शब्द की निष्पत्ति मेदिनीपाट (पृथ्वी का सिंहासन) शब्द से हुई है। इस सम्बन्ध में कुछ और मान्यताएं भी प्रचलित हैं। उन मान्यताओं में मतभेद हो सकता है, पर इतना तो निश्चित है कि मेवाड़ व मेदपाट दोनों शब्द विक्रम संवत् की ग्यारहवीं शताब्दी में प्रचलित हो गए थे। वि० सं० १०४४ के प्राकृत ग्रन्थ 'धम्म परिक्खा' और वि० सं० १०५३ में हठूंडी के शिलालेख में क्रमशः मेवाड़ और मेदपाट नामों का उल्लेख हुआ है। इन दोनों उल्लेखों के आधार पर यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले मेवाड़ का अस्तित्व उजागर हो चुका था।

राजनैतिक उतार-चढ़ाव

मेवाड़ हिन्दुस्तान की प्राचीन सभ्यता का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। पुरातत्त्वविदों के अनुसार मेवाड़ की 'गम्भीरी' और 'बेड़च' नदियों के मुहानों पर मानव सभ्यता के विकास की जानकारी मिलती है। आहाड़ और बागोर की खुदाई में वहां क्रमशः तीन और चार हजार वर्ष पुराने अवशेष प्राप्त हुए हैं। मेवाड़ की धरती पर शिवियों, मालवों, मौर्यों और गुहिलों के आधिपत्य का उल्लेख प्राप्त होता है। गुहिलों के वंशज 'बापा' ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। बापा ने रावल की उपाधि धारण कर शासन-सूत्र संभाला था। यह घटना वि० सं० ७९१ की है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली के शासक मुगलों ने

मेवाड़ पर आक्रमण किया। मुगलों से बचने के लिए चित्तौड़गढ़ को स्थायी रूप से मेवाड़ की नयी राजधानी बनाया गया। किन्तु चौदहवीं शताब्दी में वहां भी अलाउद्दीन खिलजी ने आक्रमण कर दिया। चित्तौड़ के तत्कालीन शासक रतनसिंह और सेनापति गोरा-बादल उस युद्ध में मारे गये। उस समय महारानी पद्मिनी के नेतृत्व में चित्तौड़गढ़ में पहला जौहर हुआ। कालान्तर में सिसोदा गांव के गुहिलवंशी हमीर ने चित्तौड़ को पुनः हस्तगत कर लिया और मेवाड़ पर सिसोदिया राणा शाखा का आधिपत्य शुरू हो गया। सिसोदिया के वंशज कुम्भा और सांगा के युग में मेवाड़ की सीमाओं का विस्तार हुआ। इनके बाद मेवाड़ की राजनैतिक दूरदर्शिता लुप्तप्राय मानी जाती है।

महाराणा सांगा के बाद समय-समय पर मेवाड़ के राजपूतों और मुगलों के बीच संघर्ष होता रहा। रानी कर्मवती का जौहर और पन्ना धाय द्वारा उदयसिंह को बचाने की घटना इसी काल में घटित हुई। विक्रम की सतरहवीं शताब्दी में महाराणा प्रताप मेवाड़ के शासक बने। वि० सं० १६३२ में इतिहास प्रसिद्ध हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। राणा प्रताप की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह ने वि० सं० १६७२ में मुगलों के साथ संधि कर ली। इसके बाद मेवाड़-मुगल संघर्ष का अन्त हो गया।

मुगलों के आतंक से मुक्त मेवाड़ी शासकों को मराठों से अपना बचाव करने के लिए भी काफी संघर्ष झेलना पड़ा। वि० सं० १८८५ में अंग्रेजों से संधि करने के बाद मेवाड़ में मराठों का हस्तक्षेप समाप्त हुआ। उसके बाद हिन्दुस्तान में स्वतंत्रता का आन्दोलन छिड़ गया। आखिर सन् १९४७ में देश आजाद हुआ और मेवाड़, मारवाड़ आदि क्षेत्रों को मिलाकर राजस्थान एक प्रान्त के रूप में उभरा। सामंती राज्यों का विलय होने के बाद भारत एक अखण्ड राष्ट्र बन गया।

प्रकृति की सौन्दर्य-स्थली

मेवाड़ एक पहाड़ी प्रदेश है। यहां की पहाड़ियां और घाटियां प्रसिद्ध हैं। मेवाड़ की उत्तरी सीमा को छोड़कर शेष तीनों ओर पहाड़ियां हैं, जो अरावली पर्वत-माला की शाखाएं हैं। आदिवासी लोग इन्हीं पहाड़ियों पर छोटी-मोटी झोंपड़ियां बनाकर रहते हैं। इन पहाड़ियों से होकर निकलने वाले तंग मार्गों को नाल या दर्रा कहा जाता है। मेवाड़ की नालों में देसूरी की नाल, भाणपुरा की नाल, एकलिंगजी की नाल, काली घाटी की नाल, जावर की नाल आदि प्रसिद्ध हैं। इन नालों में से किसी एक नाल को पार करके ही मेवाड़ में प्रवेश किया जा सकता है।

मेवाड़ की पहाड़ियां और घाटियां सरसब्ज तो नहीं हैं, फिर भी कहीं सूखे

और कहीं हरे छोटे-बड़े पेड़-पौधे दूरी से आंखों को खींचे बिना नहीं रहते। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहां छोटी-बड़ी नदियां भी यत्र-तत्र बहती रहती हैं। इन नदियों में बनास, कोठारी, खारी, मानसी, चन्द्रभागा, वेड़च, गोमती, सई, साबरमती, वाकल, ब्राह्मणी आदि काफी प्रसिद्ध हैं। कई नदियों पर सिंचाई के बांध बन जाने से इनकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है। संक्षेप में यह माना जा सकता है कि मेवाड़ प्रदेश, पहाड़ियों, नदियों, घाटियों, मैदानों और मनोरम झीलों का प्रदेश है। इसीलिए यह प्रकृति की सौन्दर्य-स्थली है।

कहा जाता है किसी समय हिन्दुस्तान के वाइसराय ने उदयपुर के महाराणा से पूछा—राणाजी! आपके मेवाड़ का नक्शा कहां है? महाराणा ने कहा—मेवाड़ का नक्शा आपकी सेवा में नजर करूंगा। कुछ समय बाद उदयपुर महाराणा ने उड़द धान्य का पापड़ सिकवाकर मंगवाया। पापड़ को वाइसराय के सामने प्रस्तुत करते हुए राणा ने कहा—हमारे मेवाड़ का नक्शा हाजिर है। वाइसराय एक क्षण के लिए देखते ही रह गये। उनके कुतूहल भरे मन को समाहित करते हुए राणा बोले—यह उड़द का सिका हुआ पापड़ जितना ऊबड़-खाबड़ है, उतना ही विषमोन्नत है मेवाड़ का भू-भाग। इस पापड़ में फफोलों वाला भाग अधिक है और समभाग कम है। वैसे ही यहां पहाड़ियां और चट्टानें अधिक हैं, समतल भाग कम है। पुरुषार्थी मानव ने स्थान-स्थान पर चट्टानों को काटकर रास्ते बनाए हैं, खेत बनाए हैं। उसका पुरुषार्थ निरन्तर सक्रिय है, फिर भी धरती का ऊबड़-खाबड़पन दूर नहीं हो पाया है।

प्रकृति ने इन पहाड़ियों और चट्टानों के रूप में धरती को सौन्दर्य ही नहीं सौंपा है, जीवन का शाश्वत सत्य उजागर किया है। कोई भी मनुष्य सदा एक सरीखा जीवन नहीं जी सकता। जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। उन उतार-चढ़ावों को साक्षीभाव से देखने वाला व्यक्ति जीने का आनन्द ले सकता है और उनमें उलझ जाता है, वह अपने जीवन को जटिल बना लेता है।

मेवाड़ का पहाड़ी इलाका आधुनिक विकास के सन्दर्भ में एक बहुत बड़ी समस्या था। देश के अन्य भू-भागों में जहां सड़कों के जाल बिछ गये थे, राजस्थान के शासकों का ध्यान ही उधर केन्द्रित नहीं हुआ। इससे यातायात के विस्तार में कठिनाई बढ़ने लगी। कुछ लोगों ने इस कठिनाई को महसूस किया और अनेक बाधाओं के बावजूद काम में गति आ गई। उन कुछ व्यक्तियों के संकल्प और पुरुषार्थ ने राजस्थान का नया निर्माण कर दिया। उस निर्माण क्रम में शहरी विकास के साथ गांवों में बिजली पानी की व्यवस्था तथा गांवों को सड़कों से जोड़ने का कार्य महत्त्वपूर्ण था। राजस्थान के निर्माताओं की सूची में एक नाम है श्री मोहनलालजी सुखाड़िया का। अपने मुख्यमंत्री काल में श्री सुखाड़ियाजी ने अनेक लोकोपयोगी काम किए। उनके कार्य क्षेत्र उदयपुर जिले के विकास का

अधिक श्रेय तो उन्हीं को दिया जाता है।

वर्तमान में मेवाड़ का प्रायः हर गांव सड़क से जुड़ा हुआ है। तारकोल की सड़कें अभी तक सब स्थानों पर नहीं बनी हैं, पर कंक्रीट और मिट्टी की सड़कें चारों ओर बिछ रही हैं। मेवाड़ के पहाड़ी भू-भाग को काट-व्योंत कर सड़कों में बदलना कोई साधारण काम नहीं है। फिर भी यह काम सहजता से हुआ और हो रहा है। स्कूल, हास्पिटल, बैंक, बिजली, पानी आदि की व्यवस्थाओं में भी द्रुतगति से सुधार हो रहा है। इस सुधार-कार्य में यहां की पंचायत समितियां भी अहम भूमि का निभा रही हैं।

जीविका का प्रमुख साधन

मेवाड़ के गांवों में रहने वाले अधिसंख्यक लोग खेती करते हैं। इन वर्षों में गांवों से शहरों की ओर बढ़ रहे आकर्षण अथवा व्यावसायिक सुविधा के कारण युवा-पीढ़ी मेवाड़ से बाहर भी जाने लगी है। फिर भी पुस्तैनी धंधा खेती अधिक लोगों की जीविका का आधार है। यहां खेती दो प्रकार की भूमिओं में होती हैं—समतल मैदान में और पहाड़ी ढालों पर। मैदानों में हलों या ट्रैक्टरों से खेतों को जोता जाता है जबकि पहाड़ी ढालों पर जमीन को हाथों से खोदा जाता है। खरीफ और रबी दोनों फसलें यहां होती हैं। रबी की फसल के लिए कुओं, तालाबों और बांधों से सिंचाई होती है। प्राचीन समय में कुओं द्वारा पानी निकालने में 'रहट' का उपयोग किया जाता था। वर्तमान में अधिक कुएं बिजली से चलते हैं। कुछ स्थानों पर 'रहट' की खटखट भी सुनाई देती है। मेवाड़ की मुख्य फसल मक्का और गेहूं हैं। चना, उड़द, मूंग, तिल, हल्दी, सरसों, ईख, कपास, तम्बाकू, मूंगफली, मिर्ची, जीरा, धनियां आदि यहां की अन्य फसलें हैं। कुछ क्षेत्रों में आम पपीता, खजूर आदि की उपज भी काफी अच्छी है। यहां के खाद्य पदार्थों में उड़द की दाल, बाफलाबाटी, झकोलवापूड़ियां, झाझरिया, ढोकला, भुजिया, जौ और मक्की की रोटियां प्रसिद्ध हैं। कुल मिलाकर मेवाड़ के लोग श्रमशील हैं, स्वावलम्बी हैं और परम्परागत धंधा करने में गौरव का अनुभव करते हैं, इसलिए यहां खेती भी अच्छी होती है।

व्यवसाय और व्यवसाय-क्षेत्र

मेवाड़ विभिन्न प्रकार की खनिज सम्पदा से भी संपन्न है। यहां चांदी, शीशा, लोहा, तांबा, जिप्सम, अभ्रक, संगमरमर, इमारती पत्थर, खड़ियामिट्टी, चूना आदि अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ व्यवसाय के आधार बन रहे हैं।

मेवाड़ के व्यावसायिक क्षेत्रों में उदयपुर, भीलवाड़ा, नाथद्वारा, चित्तौड़, निम्बाहेड़ा, देवारी, राजसमन्द, गुलाबपुरा, ऋषभदेव, घोसुण्डा आदि काफी प्रसिद्ध हैं। आधुनिक उद्योगों के विस्तार की संभावनाएं उदयपुर और भीलवाड़ा में अधिक हैं। कला कौशल के विकास की दृष्टि से भी मेवाड़ के अनेक क्षेत्र काफी समृद्ध हैं।

जन-जीवन

मेवाड़ का जन-जीवन सामान्य है। मोटा खाना और मोटा पहनना यहां का आदर्श है। लक्षाधीश और कोट्यधीश व्यक्तियों की वेशभूषा देखकर उनकी संपन्नता का अनुमान ही नहीं हो सकता। सम्पन्न परिवारों की महिलाएं भी घर का काम हाथ से करती हैं। नौकरों के भरोसे रहने की अमीरी अभी तक यहां नहीं पनपी है। हाथ से आटा पीसने की परम्परा प्रायः छूट गई है, पर बड़े शहरों के अतिरिक्त कुओं से पानी लाने का क्रम चल रहा है। पानी लाने का काम अधिक रूप में महिलाओं व कन्याओं के हिस्से में आता है। मेवाड़ के जो परिवार स्थायी रूप से बम्बई, सूरत, अहमदाबाद जैसे शहरों में बस गये हैं, उनके रहन-सहन में तेजी से परिवर्तन आ रहा है।

मेवाड़ के प्रायः गांवों में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय चल रहे हैं। किन्तु गांववासियों में शिक्षा के प्रति उदासीनता है। शिक्षा को जीवन विकास का आधार मानने का दृष्टिकोण अभी तक निर्मित नहीं हो पाया है। उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़ आदि बड़े शहरों को छोड़कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की रुचि कम लोगों में है। राजकीय सेवा में नियुक्त होने की चाह काफी व्यक्तियों में रहती है। इसी दृष्टि से अमुक-अमुक क्षेत्र की शिक्षा का मूल्यांकन किया जाता है।

गांवों और कस्बों के लड़के हाई स्कूल की शिक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, पर लड़कियों के लिए वैसी सुविधा नहीं है। अधिक स्थानों पर सहशिक्षा की व्यवस्था है। प्राथमिक स्कूलों में तो वह चलती है। उसके बाद लड़कियों को लड़कों के साथ पढ़ने की छूट नहीं है। लड़कियों के स्वतंत्र स्कूल हैं भी तो सामान्यतः आठ कक्षा तक ही है। इसलिए मेवाड़ के गांवों और कस्बों की कन्याएं पांच या आठ कक्षा तक अध्ययन कर पूरी तरह से गृह कार्यों में संलग्न हो जाती हैं।

महिलाओं में शिक्षा की कमी सामाजिक संदर्भ में उनकी कुरूढ़ियों का मूलभूत कारण है। पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, मृत्यु के संदर्भ में महीनों तक रूढ़ि रूप में रोना, काले, नीले और हरे वस्त्र पहनना, विधवा को लम्बे समय तक कोने में बिठाना, महीनों-वर्षों तक घर से बाहर नहीं जाना आदि ऐसी परम्पराएं हैं, जिनकी लाश

को ढोते-ढोते महिला समाज जर्जर हो गया है। फिर भी उस लाश को दूर फेंकने का साहस नहीं हो पाया है। संतों के उपदेश, बड़े शहरों में प्रवास और युगीन चर्चा के प्रभाव से इन परम्पराओं में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन आया है। किंतु एक व्यापक और दृश्य परिवर्तन के लिए कम-से-कम एक दशक का समय फिर लगेगा। क्योंकि बहनों के सामने जब भी परिवर्तन की बात आती है, अपना हित देखकर वे उसके लिए तैयार भी हो जाती हैं, पर सहसा संस्कारों का नाग फन उठाता है और उनका संकल्प शिथिल हो जाता है। इन संस्कारों को बदलने के लिए ठोस एवं निरंतर प्रयत्न की जरूरत है।

धार्मिक आस्था

मेवाड़ की जनता धार्मिक दृष्टि से श्रद्धालु है। कोई भी धर्मगुरु, मंदिर, देवालय आदि उसकी आस्था के केन्द्र बन सकते हैं। यहां अनेक प्रकार की धर्म-परंपराएं जनमी हैं, विकसित हुई हैं और लोक-जीवन में उतरी हैं। भिन्न-भिन्न धार्मिक आस्थाएं होने पर भी धर्म को लेकर विग्रह जैसी कोई स्थिति नहीं है। सामाजिक दृष्टि से ओसवालों में बड़े साजन ओर ल्होड़े साजन (बीसा और दसा) की भेद-रेखा काफी गहरी है। वर्तमान में इस भेद को समाप्त करने के प्रयत्न हो रहे हैं, पर इसे लेकर धर्म के क्षेत्र में कोई विवाद नहीं है।

मेवाड़ में ब्राह्मण परंपरा और श्रमण परंपरा दोनों प्रभावशील हैं। ब्राह्मण परंपरा के अन्तर्गत यहां कई धर्मों को पनपने का अवकाश मिला है। मेवाड़ के प्रसिद्ध पांच धार्मिक धामों में केशरियाजी को छोड़ शेष चार धामों का संबंध ब्राह्मण परंपरा से ही है। एकलिंगजी, नाथद्वारा, कांकरोली और चारभुजा में क्रमशः शिव, श्रीनाथजी, द्वारकाधीश और विष्णु को केन्द्र में रखकर जन-आस्था का स्थिरीकरण हुआ है। वि० सं० १८१७ में यहां रामचरणजी महाराज ने मूर्तिपूजा के विरोध में भीलवाड़ा में रामस्नेही सम्प्रदाय की नींव डाली। शाहपुरा इस सम्प्रदाय की प्रधान पीठ है। तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु और रामचरणजी महाराज का समय एक था। वे समकालीन ही नहीं, परस्पर घनिष्ठ मित्र भी थे। उन दोनों के विचारों में कई बातों को लेकर समानता थी।

श्रमण परंपरा में यहां जैन और बौद्ध, दोनों धर्मों के अस्तित्व को सिद्ध करने वाले प्रमाण मिलते हैं। बौद्ध धर्म का प्रभाव यहां अधिक नहीं रह सका, पर जैन धर्म को फूलने-फलने का अच्छा अवसर मिला। जैनों की श्वेताम्बर और दिगंबर दोनों परंपराएं यहां प्रभावशाली रहीं। राणकपुर, केसरियाजी, नागदा आदि यहां के प्रसिद्ध जैन तीर्थ हैं। जैन धर्म के प्रसिद्ध आचार्य सिद्धसेन दिवाकर लम्बे समय तक मेवाड़ में रहे, यह माना जाता है। हरिभद्र सूरि जैसे विद्वान जैन आचार्य

मेवाड़ के थे। इनका समय विक्रम की आठवीं शताब्दी के आसपास का है।

मेवाड़ में वीर निर्वाण की प्रथम शती में ही जैन धर्म के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले स्रोत उपलब्ध हैं। सम्राट् अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति के बनवाए हुए जैन मंदिर भी यहां उपलब्ध हैं।

महाराणा कुंभा के समय में यहां राणकपुर, आबू, देलवाड़ा, कुंभलगढ़, चित्तौड़गढ़ आदि स्थानों पर जैन मंदिरों का निर्माण हुआ और जैन धर्म का व्यापक प्रसार हुआ। महाराणा कुंभा आचार्य हीरविजयजी को अपना गुरु मानते थे।

महाराणा राजसिंह के समय में राज्यमंत्री दयालदास सल्परिया ने राजसमंद के पास ऊंची पहाड़ी पर दयालशाह का किला अर्थात् बावन जिनालय का भव्य देरासर बनवाया।

श्वेताम्बर परम्परा में तपागच्छ और तेरापंथ जैसी प्रभावशाली शाखाओं का तो जन्म ही मेवाड़ की धरती पर हुआ था। कुल मिलाकर मेवाड़ की जनता धर्म, धर्मतीर्थों और धर्मगुरुओं पर आस्थाशील है।

नया संघ : नया नेतृत्व

तेरापंथ जैन-धर्म का वर्चस्वशील धर्मसंघ है। इस संघ के उदय की कहानी सवा दो सौ वर्ष पुरानी है। इससे पहले विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने धर्मक्रांति की थी। उस क्रांति का अनुगमन करने वाले लोगों ने स्थानकवासी सम्प्रदाय के रूप में अपनी पहचान बनाई। लोंकाशाह की धर्मक्रांति को व्यवस्थित रूप देने वाले पांच साधुओं में धर्मदासजी एवं हरजी के द्वारा मेवाड़ में स्थानकवासी सिद्धांतों का अच्छा प्रचार-प्रसार हुआ। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी तक यह सम्प्रदाय काफी विस्तार पा चुका था। उन दिनों इस परम्परा की एक शाखा में आचार्य रघुनाथजी का विशेष प्रभाव था। तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु (भीखणजी) इन्हीं के शिष्य थे।

वि० सं० १८१५ के आसपास पूज्य रघुनाथजी महाराज के राजनगर निवासी श्रावकों ने तत्कालीन साधुओं के आचार-व्यवहार के बारे में अश्रद्धा व्यक्त की। रघुनाथजी महाराज उन दिनों मारवाड़ में थे। वे अपना चातुर्मास सोजत में घोषित कर चुके थे। इस स्थिति में श्रावकों को प्रतिबोध देने के लिए उन्होंने अपने प्रिय शिष्य भीखणजी को राजनगर भेजा। वहां के श्रावक चतरोजी पोरवाल और बच्छराजजी ओसवाल जैन शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने शास्त्रीय संदर्भों में तत्कालीन साधु-समाज के आचार की समीक्षा की। मुनि भीखणजी को उनकी बात में सचाई का आभास हुआ। उन्होंने चार मास तक शास्त्रों का गंभीर

चिंतन-मनन अरने के वाद श्रावक समाज को संवोधित कर कहा—आप लोगों का कथन ठीक है। मैं गुरु महाराज को सारी वातें वताऊंगा और आचरण की शिथिलता पर अंकुश लगाने का निवेदन करूंगा। तव तक आप धैर्य रखें। श्रावक इस आत्मार्थिता पूर्ण तटस्थ अपील को सुन गद्‌गद हो गये। वे शांति के साथ उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगे, जव लोंकाशाह की धर्मक्रांति में एक और नया अध्याय जुड़े।

चातुर्मास सम्पन्न होने पर मुनि भीखणजी मेवाड़ से मारवाड़ पहुंचकर अपने गुरु से मिले। उन्हें सारी स्थितियों की अवगति दी, पर उसका कोई अनुकूल प्रभाव नहीं हुआ। भीखणजी साध्वाचार के संवंध में नये मानक स्थापित करना चाहते थे। पर अपने गुरु से अलग होना भी नहीं चाहते थे। इसलिए लगभग सतरह मास तक वे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। इस लम्वी अवधि में भी गुरु के विचारों की अनुकूलता न होने पर उन्होंने समय को जाया करना उचित नहीं समझा। आखिर वि० सं० १८१७ की चैत्र शुक्ला नवमी के दिन वगड़ी नगर में वे अपने गुरु रुघनाथजी से अलग हो गये। आचार्य रुघनाथजी और आचार्य भिक्षु के विचारभेद की पृष्ठभूमि को विस्तार से जानने-समझने के लिए पढ़ें—भिक्खु जस रसायण और भिक्षु विचार दर्शन।

अपने गुरु से अलग होकर भीखणजी मारवाड़ के गांव-गांव में कड़े विरोध का मुकावला करते हुए जोधपुर पहुंचे। वहां कुछ लोगों ने उनके विचारों का मूल्यांकन किया। कुछ समय जोधपुर ठहरकर भीखणजी ने वहां से विहार कर दिया। भीखणजी के विचारों का अनुगमन करने वाले कुछ लोग स्थानक, उपाश्रय आदि धर्मस्थानों को छोड़ वाजार की दुकानों में धर्मोपासना करने लगे।

एक दिन जोधपुर राज्य के तत्कालीन दीवान फतहचंदजी सिंघी उधर से निकले। उन्होंने वाजार में श्रावकों को सामायिक में देखकर जिज्ञासा की। श्रावकों ने भीखणजी की धर्मक्रांति की पूरी जानकारी उन्हें दे दी। उन्होंने साधुओं की संख्या पूछी। उन्हें वताया गया कि भीखणजी आदि तेरह साधु हो चुके हैं। संयोग से वहां सामायिक करने वाले श्रावक भी तेरह ही थे। दीवानजी ने कहा—तेरह साधु और तेरह श्रावक, यह भी एक अच्छा संयोग है। दीवानजी के पास ही एक सेवग जाति का कवि खड़ा था। उसने तत्काल एक दोहा जोड़कर सुनाया—

आप आप रो गिलो करै, आप आप रो मंत।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ऐ तेरापंथी तंत ॥

भीखणजी की धर्मक्रांति को अनायास एक नाम मिल गया। विरोधी लोगों ने तेरापंथी शब्द को लेकर व्यंग्यात्मक लहजे में उपहास करना शुरू कर दिया। भीखणजी के पास यह सूचना पहुंची। एक क्षण सहमने के वाद उन्होंने उस नाम

को अपनी स्वीकृति देते हुए उसकी अपने ढंग से व्याख्या कर दी। उन्होंने कहा— हे प्रभो ! यह तेरापंथ ! यह पंथ प्रभु का है। हम इस पथ पर चलने वाले हैं, इसलिए हम तेरापंथी हैं। इसका दूसरा अर्थ करते हुए उन्होंने कहा—पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति—इन तेरह नियमों का पालन करने वाले तेरापंथी हैं।

इस घटना के बाद भीखणजी फिर मेवाड़ पहुंचे। वहां उन्होंने अपना वि० सं० १८१७ का प्रथम चातुर्मास केलवा में करने का निर्णय लिया। इसी केलवा की अंधेरी ओरी में उन्होंने आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन नयी दीक्षा ग्रहण कर विधिवत् तेरापंथ धर्मसंघ का सूत्रपात कर दिया। भीखणजी के सहगामी संतों ने मिलकर चिंतनपूर्वक उनको एक नये धर्मसंघ के प्रथम आचार्य की अर्हता दी और वे उनके निर्देशन में साधना करने लगे। मेवाड़ के धार्मिक इतिहास में एक और नया अध्याय जुड़ गया।

नये धर्मसंघ का नेतृत्व संभालने के बाद आचार्य भीखणजी (भिक्षु) वर्षों तक मेवाड़ में रहे। वहां उन्हें भयंकर विरोध का सामना करना पड़ा। वैचारिक विरोध के साथ भोजन और मकान की समस्या भी कम भयंकर नहीं थी। किंतु आचार्य भीखणजी विरोध या कठिनाई से कभी घबराये नहीं। उनका मनोबल और धृतिबल इतना प्रबल था कि वे निरंतर गतिशील रहे। धीरे-धीरे उनके विचारों को समझा गया, स्वीकारा गया और मेवाड़ तेरापंथ का सशक्त केन्द्र बन गया। वर्तमान में मेवाड़ के लगभग दो सौ गांवों-नगरों में तेरापंथ के अनुयायी रहते हैं। तेरापंथ धर्मसंघ के दो सौ वर्षों की संपूर्ति पर इस संघ के नौवें अधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में केलवा और राजसमंद में आयोजित 'तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह' के भव्य कार्यक्रमों ने तेरापंथ के ऊर्जस्वल व्यक्तित्व को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। तेरापंथ के इतिहास में इतना बड़ा आयोजन पहली बार हुआ था। जिसे समायोजित करने का श्रेय मेवाड़ की धरती को मिला।

तेरापंथ धर्मसंघ के दूसरे और तीसरे आचार्य श्री भारमलजी और रायचंदजी की जन्मभूमि होने का गौरव मेवाड़ को प्राप्त है। वर्तमान आचार्यश्री तुलसी के आचार्य-पद पर आसीन होने का इतिहास भी मेवाड़ के साथ जुड़ा हुआ है। मेवाड़ तेरापंथ की प्राण प्रतिष्ठा का क्षेत्र है। मेवाड़ की उर्वर भूमि में अंकुरित तेरापंथ धर्मसंघ आज विशाल वटवृक्ष बनकर युग के संतापों से संतप्त समग्र मानव जाति को त्राण दे रहा है। इससे मेवाड़ की धरती भी गौरवान्वित हुई है।

आचार्यों का अनुग्रह

तेरापंथ धर्मसंघ के प्रथम आचार्य हुए आचार्य भिक्षु। उनकी नौवीं पीढ़ी में

आचार्य तुलसी का नाम आता है, जिनका बोलता व्यक्तित्व तेरापंथ का व्यक्तित्व है। २५५ वर्षों की इस कालावधि में आठ आचार्यों ने मेवाड़ की धरती को बराबर अध्यात्म का सिंचन दिया। छठे आचार्य माणकलालजी का शासनकाल समूचा पांच वर्ष के भीतर रहा। इस छोटी अवधि में वे मेवाड़ की यात्रा नहीं कर सके।

आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की नींव मेवाड़ में रखी। उनकी नयी दीक्षा और प्रथम चातुर्मास वि० सं० १८१७ में केलवा में हुआ। उन्होंने मेवाड़ में कुल तेरह चातुर्मास किये। उनमें केलवा छह, नाथद्वारा तीन, पुर दो, राजनगर एक तथा आमेट एक इन चातुर्मासों के अतिरिक्त शेषकाल में आपने अनेक क्षेत्रों का स्पर्श कर सैकड़ों-सैकड़ों लोगों को प्रभावित किया।

आचार्य भारमलजी ने मेवाड़ में आठ चातुर्मास किये। केलवा दो, नाथद्वारा तीन, कांकरोली, पुर और आमेट में एक-एक। इस प्रकार आठ चातुर्मासों में चार क्षेत्र आचार्य भिक्षु के चातुर्मासिक क्षेत्र ही थे। कांकरोली नया क्षेत्र बना।

आचार्य रायचंदजी के मेवाड़ में दस चातुर्मास हुए। उनमें उदयपुर चार, नाथद्वारा पांच और गोगुंदा एक। तीन क्षेत्रों में दस चातुर्मास, इस बात की सूचना देते हैं कि आचार्य रायचंदजी ने उन क्षेत्रों में सघन काम किया था। इस युग में उदयपुर और गोगुंदा—ये दो चातुर्मासिक क्षेत्र बढ़ गये।

जयाचार्य ने नाथद्वारा और उदयपुर दो ही चातुर्मास मेवाड़ में किये। प्रश्न हो सकता है कि जब पूर्वाचार्यों ने यहां इतने चातुर्मास किये तब जयाचार्य ने इस क्षेत्र की उपेक्षा क्यों की? जयाचार्य जैसे मेधावी आचार्य मेवाड़ में अधिक समय लगाते तो यहां अधिक ठोस काम हो सकता था। बात सही है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सामने क्षेत्र विस्तार का भी एक लक्ष्य था। उन्होंने मारवाड़ और थली को अपना कार्य-क्षेत्र मानकर विहार किया। उसका परिणाम भी बहुत सुखद रहा।

आचार्य मघराजजी ने मेवाड़ में एक ही चातुर्मास किया। वह चातुर्मास हुआ उदयपुर में। कालूगणी के यहां तीन चातुर्मास हुए। उनमें उदयपुर दो और गंगापुर एक। वर्तमान आचार्य तुलसी ने भी अपने गुरु पूज्य कालूगणी की भांति यहां तीन चातुर्मास किये हैं—राजनगर एक, उदयपुर एक और आमेट एक।

वि० संवत् १८१७ से लेकर २०४२ तक मेवाड़ के नौ गांवों-शहरों में तेरापंथ के आचार्यों के उनतालीस चातुर्मास हो चुके हैं। वर्तमान में अनेक क्षेत्र ऐसे हैं, जो चातुर्मास के योग्य हैं। आज से पांच-सात दशक पूर्व मेवाड़ के अधिकांश गांवों में रहने के लिए बड़ा और पक्का मकान नहीं था। उसका कारण तत्कालीन आर्थिक दुर्बलता भी हो सकती है। इन वर्षों में मेवाड़ के युवक अपनी जन्मभूमि और पुश्तैनी व्यवसाय का व्यामोह छोड़कर गुजरात पहुंच गये और वहां अच्छे ढंग से जम गये।

इससे उनकी आर्थिक स्थिति और जीवन-स्तर दोनों में अंतर आ गया। फलतः अब मेवाड़ के छोटे-से-छोटे गांव में अच्छे मकान उपलब्ध हो जाते हैं।

तेरापंथ के आदिकाल में मर्यादा महोत्सव का आयोजन नहीं होता था। चातुर्मास समाप्ति के बाद साधु-साध्वियां आचार्य के दर्शन करते, कुछ दिन साथ रहते, मर्यादाओं का वाचन होता और वे आचार्य द्वारा निर्दिष्ट क्षेत्रों की ओर विहार कर देते। चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने वि० सं० १९२१, बालोतरा में विधिवत् मर्यादा महोत्सव का आयोजन किया। तब से अब (वि० सं० २०४२) तक मर्यादा महोत्सव उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य के साथ संपन्न हुए हैं। इन १२२ मर्यादा-महोत्सवों में मेवाड़ को केवल आठ महोत्सव ही प्राप्त हुए हैं। आठ में से पांच मर्यादा महोत्सव आचार्यश्री तुलसी ने किये। आचार्यश्री मघराजजी, डालचंदजी और कालूरामजी के एक-एक मर्यादा महोत्सव यहां हुए। मेवाड़ की जनता अपेक्षा करती है कि उसे आचार्यों का अधिक सान्निध्य मिले, ताकि वह अपनी धार्मिक और सामाजिक चेतना का जागरण अबाध रूप में कर सके।

सामाजिक क्रान्ति

मेवाड़ के तेरापंथ समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों और कुरूढ़ियों का कोहरा दिन-दिन सघन होता जा रहा था। समाज चेतना पर कोहरे की परतें इतनी सघन हो गईं कि उसमें किसी प्रकार का स्पन्दन ही प्रतीत नहीं होता था। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी सन् १९६० में मेवाड़ आए। उन्होंने वहां के लोकजीवन में घुली-मिली कुप्रथाओं के सन्दर्भ में नये नजरिए से देखने-सोचने की प्रेरणा दी। कुछ लोगों की मानसिकता बदली, पर अधिक व्यक्ति लकीर पर चलने में ही गौरव की अनुभूति कर रहे थे।

सन् १९६० में केलवा-राजसमन्द में तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह का प्रथम चरण मनाया जा रहा था। दस जुलाई का दिन प्रथम चरण के आयोजन का तीसरा दिन था। आचार्यश्री ने अप्रत्याशित रूप से 'नयामोड़' के लिए आह्वान किया। एक बार तो उपस्थित जनसमूह चौंक उठा। नयामोड़ क्या है, इसकी क्या जरूरत है, गृहस्थों के काम में साधु-सन्त हस्तक्षेप क्यों करते हैं, क्या सन्तों के कहने से हम अपनी परम्परा छोड़ देंगे, आज तक तो ऐसी बात किसी ने नहीं कही। क्या ये बातें शास्त्रों में लिखी हुई हैं? इस प्रकार की फुसफुसाहटों ने सारे वातावरण को आन्दोलित कर दिया।

आचार्यश्री ने साधु-साध्वियों को निर्देश दिया—हमारा काम समाज को सही दिशा देना है। जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर जो आडम्बर और अर्थहीन परम्पराएं चल रही हैं, उनका औचित्य किसी की समझ में नहीं आता।

समाज के चिन्तनशील लोगों को हम सही वात समझाएं और व्यापक रूप से एक वातावारण वनाएं। ऐसा करते समय हमारी आलोचना भी हो तो उसे समभाव से सुनते रहें।

आचार्यवर का निर्देश पाकर साधु-साध्वियां काम में जुट गए। आलोचना, विरोध और उपेक्षा के वाद वह युगीन चिन्तन लोगों की समझ में आया। दायित्वशील व्यक्तियों ने मिल-वैठकर चिन्तन किया और मेवाड़ के समग्र तेरापंथ समाज के लिए एक आचार-संहिता निर्धारित कर दी।

समाज क्रान्ति के इस नये अभियान से समाज के मूल्य-मानकों में परिवर्तन आया। कुछ परम्पराएं छूटीं, कुछ नयी वनीं, इसका सवसे अधिक लाभ मिला महिलाओं को। इससे पर्दा-प्रथा कम हुई। शिक्षा का वातावरण वना। संस्कारों में वदलाव आया। पति की मृत्यु के वाद काला परिधान और महीनों-वर्षों तक कोने में वैठने के अभिशाप से छुटकारा मिला। दो वर्ष की छोटी-सी अवधि में नयामोड़ ने समूचे मेवाड़ की जीवन पद्धति को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ दिया। उस मोड़ के वाद 'नयामोड़' कार्यक्रम की गति कुछ शिथिल-सी रही। यही कारण है कि दो वर्षों में जितना काम हुआ, उतना इन तेईस वर्षों में नहीं हो पाया। यदि कुछ वर्षों तक परिवर्तन का क्रम उतनी ही तीव्रता से चलता तो आज तक पूरे भारत में मेवाड़ की अतिरिक्त पहचान वन जाती। फिर भी जितना काम हुआ, वह मेवाड़ की लोक-चेतना और समाज-चेतना के जागरण का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

माटी से अनुराग

आचार्यश्री तुलसी को मेवाड़ की माटी से कुछ विशेष ही लगाव है। इसका कारण यह नहीं है कि यहां की धरती ने आपको मुनि-जीवन के पड़ावों में अधिक न उलझाकर एक मंजिल तक पहुंचा दिया, धर्मसंघ का आचार्य वना दिया। मेवाड़ के प्रति अपने मन के आकर्षण को खोलते समय आचार्यश्री ने एक वार कहा था—मेवाड़ी लोगों की श्रद्धा से मैं अभिभूत हूं। वीस-वीस, तीस-तीस वर्षों तक संभाल न होने पर भी यहां के लोग अपने धर्म के प्रति अडिग रहे, धर्म-संघ और संघपति के प्रति समर्पित रहे, यह सुखद आश्चर्य की घटना है। यदि अन्य कुछेक क्षेत्रों की इतने लम्वे समय तक संभाल न हो तो पता नहीं वे कहां से कहां तक पहुंच जाएं। सवा दो सौ वर्षों की इस अवधि में यहां के श्रावकों को कड़े से कड़ा उपालम्भ मिला, पर उनकी आस्था में प्रकम्पन तक नहीं हुआ। यहां की आस्था का उजास कभी तर्क या सन्देह के अंधेरे में विलीन नहीं हुआ। यहां की जनता में उमड़ता हुआ भक्ति का सैलाव वरवस मन को खींच लेता है।

आचार्यश्री के मन में मेवाड़ का स्थान इसलिए भी है कि यह क्षेत्र तेरापंथ धर्मसंघ की प्राणप्रतिष्ठा का क्षेत्र है। आप इस समय सातवीं वार मेवाड़ की यात्रा कर रहे हैं। इससे पहले वि० सं० १९९३, २०१०, २०१२, २०१७, २०१९ और २०३९ में आपने मेवाड़ में रह रहे श्रावक-समाज को संभालने की दृष्टि से यहां के सैकड़ों गांवों में प्रवास किया। आपके प्रवास-काल में श्रावक-समाज की धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का जागरण हुआ तथा सोचने और जीने के तरीकों में वदलाव आया।

मेवाड़ : मरुधर यात्रा का एक अंग

वि० सं० २०४१, ४२ (ईसवी सन् १९८५, ८६) में आचार्यश्री तुलसी ने सातवीं वार मेवाड़ की यात्रा शुरू की। इस यात्रा का निर्णय न तो आकस्मिक लिया और न ही मेवाड़वासियों के श्रद्धासिक्त अनुरोध पर लिया गया। सन् १९८२ में महावीर जयंती का कार्यक्रम लाडनूं, जैन विश्व भारती में था। उस दिन चार क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। प्रत्येक क्षेत्र की प्रार्थना इतनी सवल थी कि जनता उलझ गई। साधु-साध्वियां भी कुछ सोचने की स्थिति में नहीं थे। सोचना उनको था ही नहीं, फिर भी अनुमान तो किया ही जा सकता था। कुल मिलाकर असमंजस की स्थिति थी। मध्याह्न तक स्थिति में अनेक उतार-चढ़ाव आए, पर कोई निर्णयात्मक विन्दु स्पष्ट नहीं हुआ।

दिन भर का तनाव और चिन्ता का वोझ उस समय दूर हुआ, जव आचार्यश्री ने एक साथ मारवाड़ के चारों क्षेत्रों में चार चातुर्मास करने की घोषणा कर दी। उस घोषणा के तत्काल वाद आचार्यश्री ने अपना स्पष्टीकरण दिया था कि चारों चातुर्मास एक श्रृंखला में ही हों, यह जरूरी नहीं है। इस मरुधर यात्रा के मध्य मेवाड़ जाना हो सकता है, थली आना हो सकता है। उस समय और किसी ने कुछ समझा या नहीं, आचार्यवर के मस्तिष्क में मेवाड़-यात्रा का पूरा नक्शा था।

मारवाड़ में एक साथ चार चातुर्मासों की घोषणा मेवाड़ के श्रावकों में खलवली मचाने वाली थी। उनको ऐसा अनुभव हुआ कि मारवाड़ ने वाजी जीत ली और मेवाड़ मुंह देखता रह गया। मेवाड़ी लोग आहत मन से आचार्यश्री के सान्निध्य में उपस्थित हुए। आचार्यवर के मनोविज्ञान ने उन सवके मनों को पढ़ा और उन पर आश्वस्ति की मरहम लगाते हुए कहा—आप लोग हमारी दृष्टि से वाहर नहीं हैं। अपने क्षेत्रों को संभालने का दायित्व हमारा है।

राणावास चातुर्मास में मेवाड़ के श्रावकों ने राणावास को खेत का रास्ता जैसा वना दिया। कोई दिन शायद ही खाली गया हो, जव मेवाड़ के लोग राणावास न पहुंचे हों। ३१ अगस्त को मेवाड़ के हजारों व्यक्ति एक साथ राण

पहुंचे। उन्होंने मेवाड़-यात्रा की संभावनाओं की प्रस्तुति के साथ एकजुट होकर मेवाड़ के लिए प्रार्थना की। उस दिन आचार्यवर मौन रहे। पहली सितम्बर का कार्यक्रम सिरियारी में था। आचार्यश्री भिक्षु के निर्वाण महोत्सव का वह कार्यक्रम उन्हीं के समाधिस्थल के पास सिरियारी की नदी में आयोजित था। उस आयोजन में भारत के नव निर्वाचित राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह, राजस्थान के राज्यपाल ओ० पी० मेहरा, तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर, वित्त एवं शिक्षामन्त्री श्री चन्दनमल वैद आदि अनेक व्यक्ति उपस्थित थे। लगभग एक लाख की उपस्थिति में आचार्यश्री ने चातुर्मास संपन्नता के तत्काल वाद मेवाड़ की छोटी-सी यात्रा और नाथद्वारा मर्याया महोत्सव की अकल्पित घोषणा की। अपनी घोषणा क्रियान्वित कर आचार्यश्री गुजरात होते हुए पुनः मारवाड़ पहुंच गए।

अमृत महोत्सव की परिकल्पना

ईसवी सन् १९८१ में आचार्यश्री का चातुर्मास दिल्ली था। उस वर्ष तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य की निर्वाण शताव्दी का भव्य समारोह था। जय निर्वाण शताब्दी के संयोजक श्री धर्मचन्द चोपड़ा ने एक वक्तव्य में कहा—आचार्यश्री के आचार्यकाल के पचास वर्ष पूरे होने में केवल चार-पांच वर्ष का समय रहा है। हमें अभी से कोई सुचिन्तित योजना वना लेनी चाहिए, जिससे समय पर कुछ काम हो सके।

सन् १९८२ में लाडनूं प्रवास में महावीर जयंती के आसपास युवाचार्यश्री ने आचार्यश्री के आचार्यकाल के गौरवपूर्ण पचास वर्षों का अभिनन्दन करने की परिकल्पना की, पर आचार्यश्री की अनिच्छा ने उस वात को वहीं विराम दे दिया।

राणावास चातुर्मास में अगस्त महीने के अन्तिम सप्ताह में मेवाड़ के लोग वड़ी संख्या में राणावास पहुंचे। उस समय मेवाड़ यात्रा और वहां संभावित कार्यक्रमों के वारे में चिन्तन चला। युवाचार्यश्री ने अपनी लाडनूं की परिकल्पना को पुनः आचार्यवर के सामने प्रस्तुत किया। आचार्यवर ने कहा—आयोजन वहुत हो गए, अव मेरा इनमें रस नहीं रहा। मैं श्रावक-समाज में अन्तरंग काम करना चाहता हूं। आचार्यश्री के इन विचारों को अपना समर्थन देते हुए युवाचार्य श्री ने निवेदन किया—आचार्यश्री के व्यक्तित्व को केवल आयोजनों से जोड़ना मुझे भी इष्ट नहीं है। इस महनीय प्रसंग को मनाने का एक विशेष प्रयोजन है। आयोजन तो मात्र निमित्त है। उसे माध्यम वनाकर समाज और देश में रचनात्मक काम करना हमारा उद्देश्य है।

रचनात्मक काम के लोभ ने आचार्यवर के उस संकल्प को थोड़ा-सा श्लथ

कर दिया, जो आपने किसी बड़े आयोजन से न जुड़ने के लिए किया था। युवाचार्यश्री ने उस सन्दर्भ में पूरा दायित्व स्वयं पर ओढ़ा और आचार्यश्री के सफल प्रशासन के पचास वर्षों का अभिनन्दन करने का निर्णय ले लिया।

अपने विचारों और भावनाओं को टांगने के लिए हमें शब्दों की खूंटी की जरूरत रहती है। इसी सन्दर्भ में एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि आचार्यश्री की तेजस्विता, यशस्विता, धर्मक्रान्ति, नैतिक जागरण, साहित्य-सेवा, सुदीर्घ यात्रा, व्यापक जन-संपर्क, धर्मसंघ में नये आयामों को खोलने के इन पचास वर्षों को उजागर करने वाले आयोजन को किस अभिधा से पुकारा जाए? सामान्यतः पचास वर्ष को केन्द्र में रखकर मनाए जाने वाले समारोह को स्वर्ण जयंती (गोल्डेन जुबली) कहा जाता है। यह शब्द रईसी ठाटबाट में जीने वालों के साथ तो उपयुक्त हो सकता है, पर अकिंचन आचार्यों और संतों के प्रसंग में इस शब्द की संगति नहीं बैठती। इस दृष्टि से गंभीर चिन्तन चला। आखिर युवाचार्यश्री ने एक नाम सुझाया---अमृत महोत्सव। यह नाम जितना श्रुतिमधुर है, उतना ही सार्थक है। आचार्यश्री अमृत-पुरुष हैं। आपने विषबुझे मानव-मन को अमृत पिलाकर संसार के विषाक्त वातावरण से फैलते हुए प्रदूषण को धोने का अनवरत प्रयत्न किया है। पचास वर्षों के इस अमृत प्रयत्न को पुंजीभूत कर अमृत-महोत्सव की परिकल्पना सर्दियों की धूप के स्पर्श जैसी मनभावन है।

सन् १९८३, नाथद्वारा मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर युवाचार्यश्री ने आचार्यवर की अनुमति प्राप्त कर 'अमृत-महोत्सव' मेवाड़ में मनाने की घोषणा कर दी। उससे पूर्व राजसमन्द में श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट ने स्थूल रूप में अमृत महोत्सव के कार्यक्रमों की एक समग्र योजना बनाकर प्रस्तुत की थी। अब प्रश्न एक ही था कि वे कार्यक्रम कब, कहां, किस रूप में आयोजित हों? इस विषय में आचार्यश्री का मौन देखकर युवाचार्यश्री ने कोई न-ा संकेत नहीं दिया।

सन् १९८४ के बीदासर महोत्सव, महावीर जयंती (सरदारशहर) और अक्षय तृतीया (श्रीडूंगरगढ़) के अवसर पर अमृत-महोत्सव या मेवाड़-यात्रा का कोई निर्णायक या संभावित संकेत नहीं मिला। इस बीच में मेवाड़ से कई क्षेत्रों के लोग अपने शिष्टमण्डलों के साथ आगामी चातुर्मास की प्रार्थना करने के लिए आते रहे। इनमें गंगापुर, राजसमन्द, आमेट, उदयपुर, भीलवाड़ा आदि क्षेत्रों के नाम उल्लेखनीय हैं। बार-बार श्रद्धालु लोगों के यातायात में होने वाली कठिनाई को ध्यान में रखकर आचार्यवर ने मेवाड़ की जनता को आश्वस्त करते हुए कहा---जोधपुर पहुंचने से पहले इस संबंध में किसी प्रकार के निर्णय की संभावना नहीं है। यह संवाद पूरे मेवाड़ में पहुंच गया। वहां के लोग बेसब्री से आचार्यवर के जोधपुर पहुंचने की प्रतीक्षा करने लगे।

अमृत महोत्सव के चार चरण

सन् १९८४ में आचार्यश्री का चातुर्मास जोधपुर था। ७ जुलाई को आपका चातुर्मासिक प्रवास हेतु जोधपुर में प्रवेश था। उस दिन मेवाड़ के पचास गांवों और नगरों से लगभग दो हजार से भी अधिक लोग वहां उपस्थित थे। उन लोगों को अपना अनुरोध प्रस्तुत करने के लिए दूसरे दिन का समय मिला। ८ जुलाई को प्रातः लोगों के मुंह पर एक ही चर्चा थी—अमृत महोत्सव किसे मिलेगा? अपनी-अपनी कल्पनाएं और अपने-अपने अनुमान। निर्णायक विन्दु किसी के सामने नहीं था। आचार्यश्री प्रवचन पण्डाल में पधारे। इतनी वड़ी उपस्थिति में छाई हुई एक व्यापक खामोशी के वावजूद आपने जनता के मनों में उफनती हुई उत्सुकता को देखा। कार्यक्रम शुरू हुआ। हर क्षेत्र के प्रतिनिधि वक्ता ने अपने क्षेत्र की ऐतिहासिकता और विशिष्टता उजागर की। सवकी मांग एक ही थी कि अमृत महोत्सव का चातुर्मास उन्हें मिले। एक चातुर्मास और प्रमुख रूप से चार उम्मीदवार। दो वर्ष पूर्व मारवाड़ के चातुर्मासों को लेकर जो स्थिति वनी थी, वही अमृत महोत्सव को लेकर मेवाड़ के लिए वन गई।

आचार्यश्री के मन पर उस कशमकश का कोई प्रभाव था, ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। आपकी आकृति पर सदा की भांति सौम्य मुसकान खेल रही थी। कभी-कभी आप आंखें वन्द कर लेते थे, जिससे श्रोताओं और दर्शकों को यह भ्रम हो रहा था कि आप कुछ सोच रहे हैं। पर आपकी पलकों में वन्दी निर्णयों को पकड़ने वाला कैमरा किसी के पास नहीं था।

सव लोगों की प्रार्थना हो चुकी। तव आचार्यश्री ने अपने होंठ खोले। सवसे पहले आपने कहा—मैं मेवाड़ के लोगों से पूछना चाहता हूं कि वे अमृत-महोत्सव चाहते हैं या चातुर्मास? सभा में गहरा सन्नाटा छा गया। लोग कभी आपस में एक-दूसरे का मुंह देखते और कभी आचार्यवर की ओर देखते। विल्कुल नयी वात सुनी थी उन्होंने। चातुर्मास और अमृत-महोत्सव—इन दो अलग-अलग दृष्टि-कोणों से किसी ने कुछ सोचा ही नहीं था।

आचार्यश्री के आवाहन पर सभा में कुछ अस्फुट फुसफुसाहटें सुनाई दीं—चातुर्मास—अमृत-महोत्सव—दोनों इत्यादि। वे फुसफुसाहटें आचार्यवर तक भी जरूर पहुंची होंगी तभी तो आपने कहा—आपको चातुर्मास चाहिए। ठीक है न? फिर अपनी वात से हटना नहीं है। जिनको चातुर्मास ही चाहिए, वे अभी इतना आग्रह क्यों करते हैं? चातुर्मास तो कभी भी हो सकता है। आचार्यवर के इन शब्दों ने पूरा माहौल वदल दिया। चातुर्मास की वात गौण हो गई और अमृत महोत्सव की मुख्य। मेवाड़ी लोगों ने एक स्वर से मांग की—हमें अमृत-महोत्सव चाहिए।

आचार्यश्री ने एक भरपूर निगाह से उपस्थित जनसमूह को देखा। सबके चेहरों पर आचार्यवर द्वारा दिए जाने वाले निर्णय सुनने की घनीभूत इच्छा थिरक रही थी। निर्णय देने में हो रहे विलम्ब ने उनके भीतर एक संशय को जन्म दिया। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, संदेह कुतूहल में बदल रहा था। जिस क्षण लोगों का कुतूहल चरम उत्कंठा तक पहुंचा, उस समय आचार्यश्री ने अपना मौन खोला। प्रवचन पण्डाल में इतनी खामोशी थी कि किसी के श्वास की गति तेज होती, वह भी सुनाई दे जाती। आचार्यवर ने कहा—मैंने आपकी प्रार्थनाएं ध्यान से सुनी हैं। आपका उत्साह देखते हुए मैं किसी को निराश नहीं करना चाहता। मुख्य रूप से अभी चार क्षेत्रों की ओर से प्रार्थना की गई। मैं किसे अधिक महत्त्व दूं और किसे कम? आप सबकी प्रसन्नता के लिए मैं अमृत-महोत्सव के इस कार्यक्रम को चार चरणों में बांट रहा हूं। गंगापुर हमारा मूल-भूत क्षेत्र है। यह समूचा प्रसंग वहीं से जुड़ा हुआ है। इसे प्राथमिकता देने के लिए हम अमृत-महोत्सव का प्रारंभ गंगापुर से करना चाहेंगे। उसके बाद आगे से आगे काम होता रहेगा। इस दृष्टि से अमृत-महोत्सव का प्रथम चरण गंगापुर में, दूसरा आमेट में, तीसरा उदयपुर में और चौथा राजसमन्द में करने का भाव है। आचार्यश्री की इस घोषणा के साथ ही जनता हर्ष और उल्लास से आप्यायित हो गई।

आचार्यवर ने उल्लसित जनता को संयत रहने का निर्देश देते हुए आगे कहा—मेवाड़ के लोगों की शिकायत थी कि मारवाड़ को चार चातुर्मास मिल गए। अब यह शिकायत समाप्त हो जानी चाहिए। क्योंकि मेवाड़ को भी चार चरण उपलब्ध हो गए हैं। दूसरी बात—मारवाड़ को चातुर्मास चार मिले, पर शेषकाल में यहां रहना नहीं हो सका। राणावास चातुर्मास कर हम मेवाड़ और गुजरात चले गए। बालोतरा चातुर्मास के बाद थली की यात्रा पर चले गए और जोधपुर के बाद भी यहां अधिक समय लगे, ऐसा कम संभव है। जबकि मेवाड़ को एक साथ एक वर्ष से अधिक समय मिल सकेगा। बीच-बीच में क्रम टूटने से जितना काम होता है और संलग्नता से जो काम होता है, उसमें बड़ा अन्तर हो सकता है। इस दृष्टि से मेवाड़ आगे हो रहा है। अब उसे सुनियोजित रूप से लोक-चेतना के जागरण में इस समय का उपयोग करना है। उस अवसर पर आचार्यश्री ने अपना सन् १९८५ का चातुर्मास आमेट में करने की घोषणा की।

अमृत महोत्सव मेवाड़ में होगा, उसका प्रारंभ गंगापुर से होगा। सन् १९८५ के चातुर्मास से पहले आचार्यश्री का गंगापुर प्रवास होगा, ये सब बातें निर्णीत हो जाने के बाद भी यह निर्णय नहीं हो पाया था कि इस मेवाड़-यात्रा की शुरुआत कब से होगी? चातुर्मास पूरा होते ही यात्रा का प्रारम्भ हो जाएगा अथवा मर्यादा महोत्सव के बाद? इस प्रश्न का समाधान हुआ आचार्यश्री के

जन्मदिन पर—जसोल मर्यादा महोत्सव की घोषणा से। चातुर्मास की संपन्नता के वाद आचार्यश्री वाड़मेर इलाके का स्पर्श कर जसोल पधारे। जसोल में मर्यादा महोत्सव के दिन समुच्चारित अपने गीत में आचार्यवर ने एक संकेत दिया—अव जल्दी मेवाड़ां प्रस्थान है—इसके आधार पर भविष्य के गर्भ में सिमटी हुई मेवाड़यात्रा विल्कुल सन्निकट आ गई।

जसोल से आचार्यवर ने पाली की ओर प्रस्थान किया। एक दृष्टि से यह मेवाड़ यात्रा का प्रारम्भ था, किन्तु यात्रा-संघ की सारी व्यवस्थाएं उस समय जसोल के श्रावकों के हाथ में थीं, इसलिए वह यात्रा मरुधर यात्रा के रूप में मान्य हुई। पाली पहुंचने के वाद यात्रा-संघ की वागडोर 'मेवाड़-यात्रा-व्यवस्था-समिति' के हाथ में आ गई। पाली से प्रस्थान करने के वाद आचार्यवर ने पांच-छः दिन तक मरुधर की धरती पर परिभ्रमण किया, किन्तु वह परिभ्रमण मेवाड़ की दिशा में ही प्रस्थान था। इस दृष्टि से २४ फरवरी, १६८५ को पाली शहर छोड़ने के साथ ही आचार्यश्री की मेवाड़ यात्रा का प्रारंभ हो गया।

मेवाड़ की ओर

२४ फरवरी को प्रातः पाली से १३ किलोमीटर का विहार कर आचार्यश्री रावलियावास पहुंचे। स्थानीय प्राथमिक विद्यालय में प्रवास की व्यवस्था की। छोटा-सा गांव और छोटा-सा विद्यालय। ढाई-तीन सौ की आवादी वाले उस गांव के वच्चे-वूढ़े आचार्यवर के दर्शन कर हर्षोत्फुल्ल हो उठे। गांव में अनायोजित मेला-सा लग गया। उस दिन जयपुर से डॉ० भटनागर और केन्द्रीय विद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक श्री सोहनलाल गांधी आदि कुछ व्यक्ति जीवन-विज्ञान के सम्वन्ध में चर्चा करने के लिए आए। उन्होंने सोचा था कि वड़े शहरों में आचार्यश्री भीड़ से घिरे रहते हैं, छोटे गांव में निश्चिन्त होकर विचार-चर्चा करेंगे। किन्तु उस छोटे से गांव में भी हजारों लोग पहुंच गए और आचार्यश्री प्रवचन करने में तन्मय हो गए। यह देखकर वे वोले—आचार्यश्री जहां जाते हैं, वहां गांव आवाद हो जाते हैं। प्रवचन संपन्न होने के वाद चिन्तन का क्रम चला। उन लोगों को आचार्यश्री और युवाचार्यश्री का युगपत् सान्निध्य मिला।

चिन्तन का प्रथम विन्दु था—जीवनविज्ञान (मूल्यपरकशिक्षा)। जीवन विज्ञान के मूल्यों का निर्धारण कर उसे शिक्षा के साथ जोड़ने के सम्वन्ध में एक नीति तय की गई। उन मूल्यों की उपलब्धि के लिए दो मार्ग सोचे गए—सैद्धान्तिक और प्रायोगिक। सैद्धान्तिक स्तर पर पांच विषय प्रस्तावित किए गए—

१. प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण (कर्मवाद)

२. एनोटॉमी और फिजियोलॉजी
३. साइकोलॉजी और साइकियाट्री
४. सोसियोलॉजी
५. इकोलॉजी।

इस सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के साथ प्रेक्षाध्यान के प्रैक्टिकल प्रशिक्षण की रूपरेखा भी तैयार की गई।

मध्याह्न में रावलियावास से छह किलोमीटर चलकर आचार्यवर लांबिया पहुंचे। तीन हजार की आवादी वाले उस गांव में राजपूत एवं पुरोहित अच्छी संख्या में रहते हैं। वहां कुछ परिवार जैनों के भी हैं। रात्रि के समय ग्रामीण लोगों की उपस्थिति उनके धर्मानुराग या सत्संग के प्रति सहज आकर्षण को अभिव्यक्ति दे रही थी। आचार्यवर के प्रवचन से प्रेरित होकर अनेक लोगों ने मद्य-मांस के सेवन का परित्याग किया। कुछ लोगों ने धूम्रपान व चाय को भी छोड़ दिया।

मंगलपाठ का प्रभाव

स्थानीय मोतीलाल जैन (गादिया) की लड़की सविता पिछले अठारह दिनों से वोल नहीं रही थी। अप्रत्याशित रूप से उसकी वोली वन्द हो जाने से परिवार के सभी लोग व्यथित थे। वे लड़की को डॉक्टरों के पास ले गए। डॉक्टरी चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हुआ। उन्होंने देव-देवियों की मनौतियां भी कीं, पर सफलता नहीं मिली। वयस्क लड़की का इस प्रकार अवोल हो जाना आश्चर्य और चिन्ता का विपय था।

२४ फरवरी को अपराह्न में आचार्यश्री लाम्बिया पहुंचे। गांव से कुछ दूरी पर स्कूल में प्रवास की व्यवस्था थी। गांव वालों ने आचार्यवर से अनुरोध किया कि संतों को गांव में भिक्षा के लिए भेजा जाए। समय कम था, गांव दूर था, फिर भी आचार्यवर ने मुनि कमलकुमार को गांव में जाने का निर्देश दिया। मुनिजी भिक्षा लेकर लौटने लगे तो मोतीलालजी ने कहा—आपको लौटने की जल्दी तो है, पर आप कृपा कर मेरी लड़की को मंगलपाठ सुना दें। यह अठारह दिनों से वोल नहीं रही है। मुनिजी तत्काल भीतर गए। लड़की अपनी मां के पास खड़ी थी। मन की भावना को अभिव्यक्ति देने की क्षमता खो वैठने की वेचैनी उसकी आकृति पर तैर रही थी। मुनिजी ने एक क्षण के लिए आचार्य भिक्षु के नाम का स्मरण किया और वहन सविता को मंगल पाठ सुना दिया। मंगल पाठ सुनते ही उसके होंठ स्पन्दित होने लगे और देखते-देखते वह अस्खलित रूप से वोलने लगी। परिवार के लोग विस्मय-विमुग्ध हो गए। उनके सामने एक

ऐसा चमत्कार घटित हुआ, जो उनकी धार्मिक आस्था को सुदृढ़ आधार देने वाला था।

अणुव्रत गांव का स्वरूप

२५ फरवरी को आचार्यवर चवाड़िया पधारे। गांव के २५० परिवारों में १५ परिवार तेरापंथी हैं। उनमें कुछ परिवार स्थायी रूप से वहीं रहते हैं और कुछ परिवार व्यवसाय की दृष्टि से बाहर रहते हैं। आचार्यवर के आगमन की सूचना पाकर वे लोग भी गांव में पहुंच गए। गांव के दूसरे लोग भी उस दिन हर्षविभोर हो रहे थे। इन पांच दशकों में वे पहली बार आचार्यश्री को अपने गांव में देख रहे थे। गांव वाले बुजुर्ग लोगों ने बताया कि पचास वर्ष पहले आचार्यश्री कालूगणी जोधपुर चातुर्मास कर मेवाड़ पधारते समय चवाड़िया पधारे थे। उसके बाद इस गांव को कोई अवसर नहीं मिला।

आचार्यवर ने अपने प्रथम प्रवचन में स्थानीय लोगों को जीवन में सादगी और संयम को महत्त्व देने की प्रेरणा दी। मध्याह्न में भी गांव के बहुत लोग एकत्रित हुए थे। उस समय वहां पाली में आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन कार्यक्रम था। शिविरार्थी भाई-बहनों ने ध्यान के प्रयोग से प्राप्त अपने अनुभव सुनाए। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री ने उपस्थित जनसमूह को अन्तर्मुखी बनने की प्रेरणा दी।

रात्रि में स्थानीय तथा आसपास के गांवों से काफी लोग आचार्यवर को सुनने के लिए आए थे। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में अणुव्रत की चर्चा की। प्रसंग चल पड़ा अणुव्रत गांव का। लोगों ने जिज्ञासा की—अणुव्रत गांव का स्वरूप क्या है? मुनि सुखलालजी ने अणुव्रत ग्राम की व्याख्या करते हुए कहा—

- जिस गांव के लोग व्यसन-मुक्त हों।
- जिस गांव में आपसी मतभेदों को लेकर कोर्ट-कचहरी में कोई केस न हो।
- जिस गांव में बालविवाह, मृत्युभोज, दहेज का ठहराव जैसी सामाजिक कुरूढ़ियां न हों।
- जिस गांव में किसी को अछूत न माना जाए।

उक्त योजना गांव के चिन्तनशील लोगों को बहुत पसन्द आई। उन्होंने इसकी क्रियान्विति के लिए नौ व्यक्तियों की एक समिति गठित की। समिति के संयोजक स्थानीय उपसरपंच श्री हीरालालजी को मनोनीत किया गया। उस समिति में सभी कौमों के व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व दिया गया। व्यसन-मुक्ति के क्रम में सबसे पहले मद्यपान का प्रसंग आया। वहां उपस्थित लोगों में एक व्यक्ति—नरपतसिंह पटवारी शराब पीता था। उसने सबकी साक्षी से उस दिन के बाद

शराव पीने का परित्याग कर दिया। उपसरपंच श्री हीरालालजी तथा हस्तीमलजी जैन ने एक महीने के बाद तम्बाकू सेवन का परित्याग किया। स्थानीय सकलेचा और संचेती परिवार के सभी सदस्यों ने मृत्युभोज न करने का संकल्प स्वीकार किया।

वर्षा कहां होती है

२६ फरवरी को प्रातः आचार्यश्री ने चवाड़िया से मारवाड़ जंक्शन के लिए प्रस्थान किया। बीच में खारची गांव है, जहां एक तेरापंथी परिवार रहता है। गांव-वासियों के अनुरोध पर आचार्यवर लगभग एक घण्टा वहां रुके। वहां प्रवचन कर आचार्यश्री ने आगे प्रस्थान कर दिया। लोगों ने वताया कि मारवाड़ जंक्शन वहां से एक किलोमीटर है, पर वह तीन किलोमीटर निकला। लोगों का कहना एक दृष्टि से सही था। क्योंकि खारची से निकलने के बाद थोड़ी दूर पर ही मारवाड़ जंक्शन के मकान शुरू हो जाते हैं। किन्तु आचार्यवर का प्रवास गांव के उस छोर पर था। पदयात्री को अपनी मंजिल की अनुमानित दूरी से थोड़ा भी अधिक चलना पड़ता है तो मानसिकता में अन्तर आ जाता है। फिर आचार्यश्री का समय तो इतना बंधा हुआ होता है। उसमें दो किलोमीटर अधिक चलने से कार्यक्रम में कुछ विलम्ब हो गया।

मारवाड़ जंक्शन ट्रेनों का संगमस्थल है। यहां यातायात की बहुत सुविधा है। व्यापार की भी अच्छी सुविधा है। फिर भी क्षेत्र की आवादी नहीं बढ़ी। सात हजार की आवादी वाले कस्बे में लगभग एक सौ परिवार जैन हैं। उनमें वीस परिवार तेरापंथी हैं। स्थायी रूप से वहां रहने वाले परिवार कम हैं।

स्वागत समारोह में उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—गृहस्थ जीवन में अर्थ का उपयोग है, पर उससे भी अधिक उपयोगी है धर्म। मनुष्य अपने जीवन में करोड़ों की संपत्ति एकत्रित कर ले, किन्तु मरते समय एक कौड़ी भी उसके साथ नहीं जाती है। साथ जाता है धर्माचरण। मनुष्य का दृष्टिकोण कितना मिथ्या हो गया है। वह सोचता है कि वृद्ध होने पर धर्म करूंगा, व्यवसाय से निवृत्त होने पर धर्म करूंगा। वस्तुतः धर्म का अवस्था के साथ कोई गठबन्धन नहीं है। वह तो जीवन के हर पल और हर व्यवहार से जुड़ा हुआ है।

कुछ भाइयों ने आचार्यवर से पूछा—यहां चातुर्मास क्यों नहीं होते? आचार्यवर ने कहा—इसका कारण आप मुझसे पूछते हो? मैं आपको सुझाव देता हूं कि पहले आप स्वयं से पूछें, फिर मुझसे जवाब मांगें। आप जानते हैं कि वर्षा कहां होती है। जिस प्रदेश में वृक्ष काट दिए जाते हैं, जंगल को साफ कर दिया

जाता है, वहां वर्षा कैसे होगी ? इसी प्रकार जहां धर्म की वगिया हरी-भरी न हो, वहां साधु क्यों आएंगे ?

मारवाड़ जंक्शन में आचार्यवर दो दिन रहे। स्थानीय लोग संपन्न हैं, उनमें उत्साह भी है, किन्तु परस्पर में संप नहीं है, सौहार्द नहीं है। परस्परता की कमी से काम में वाधा उपस्थित हो जाती है। कारण की खोज की जाए तो अहं के अतिरिक्त कोई कारण दिखाई नहीं देता। क्षेत्र में काफी सुषुप्ति है। आचार्यश्री का आगमन भी वहां बहुत वर्षों बाद हुआ, धार्मिक सुषुप्ति का एक कारण यह भी हो सकता है। जिन क्षेत्रों में आचार्यवर का जल्दी आगमन होता रहता है, वहां धर्म की नहर आ जाती है और जीवन की धरती हरी-भरी हो उठती है। आचार्यवर के द्विदिवसीय प्रवास से वहां के श्रद्धालु लोगों की चेतना जागी। उनके विशेष अनुरोध पर आचार्यवर ने वहां साधु-साध्वियों के चातुर्मास की भी स्वीकृति दे दी।

चौमासा बदला जा सकता है

दूसरे दिन रात्रि का कार्यक्रम साध्वियों का था। आचार्यवर ने स्थानीय श्रावकों को समय दिया। उस समय एक भाई ने प्रश्न किया—गुरुदेव ! चातुर्मास कहां होगा ? यह प्रश्न सुनकर आचार्यश्री चौंके। उस भाई ने अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा—अमुक स्थान में चातुर्मास होगा तो ये लोग वहां नहीं जाएंगे और अमुक स्थान में होगा तो वे नहीं जाएंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि गांव साफ-साफ दो खेमों में विभाजित था।

एक भाई ने तेरापंथी सभा के गठन का सुझाव रखा पर वह भी उलझन में उलझ गया। फिर लगे अतीत के छिलके उतरने। समस्या सुलझने के स्थान पर अधिक उलझती गयी। उस समय आचार्यवर ने अनुशासनात्मक निर्देश देते हुए कहा—हमने क्षेत्र की स्थिति को समझे विना यहां चातुर्मास कह दिया, यह हमारी भूल थी। अव मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं कि यहां वर्तमान में जो स्थिति है, वही रही तो दिया हुआ चौमासा भी बदला जा सकता है। क्या हमारे साधु-साध्वियां यहां रोटी के लिए आते हैं ? लो, सुनो मंगलपाठ…

आचार्यश्री से मंगलपाठ सुनकर वे वाहर आ गए, पर अपने-अपने घर जाने की मनःस्थिति किसी की नहीं थी। वे परस्पर मिलकर फिर बैठे। रात के दो वजे तक वातचीत होती रही, पर कोई रास्ता नहीं वना। उन लोगों को यह अहसास हो चुका था कि झगड़े की स्थिति में यहां चातुर्मास नहीं होगा। ऐसे ही चातुर्मास नहीं होता तो वात दूसरी थी। घोषित होने के वाद चातुर्मास का न मिलना साधारण वात नहीं थी। कुछ लोगों ने इसे प्रेस्टिज का प्रश्न वनाया और कुछ

लोगों को गहरी पीड़ा हुई। हताश मन से वे घर लौटे पर नींद किसी को नहीं आयी।

२८ फरवरी को सूर्योदय के साथ ही आचार्यवर ने मारवड़-जंक्शन से प्रस्थान कर दिया। स्थानीय लोगों के चेहरे बोल रहे थे कि उनके भीतर पूरी वेचैनी है। उसके वाद वे फिर वैठे। चिन्तन चला। निष्कर्ष यह निकला की सभी लोग अतीत की सव वातों को विस्मृत करें अन्यथा समस्या का समाधान होगा नहीं। आखिर इस विन्दु पर सवकी सहमति हो गयी। पारस्परिक भेद-भाव को भूलकर वे लोग सामूहिक रूप से 'चिरपटिया' में आचार्यवर के सान्निध्य में उपस्थित हुए।

मारवाड़ जंक्शन के प्रमुख-प्रमुख सभी लोग वद्धांजलि आचार्यवर के उपपात में वैठे थे। वे अपनी भूल पर अनुताप कर रहे थे और आचार्यवर से विशेप मार्गदर्शन पाने के लिए उत्सुक हो रहे थे। आचार्यश्री ने उनकी वदली हुई मनःस्थिति का आकलन कर कहा—कल रात आपका जो रूप सामने आया, उसे देखकर लगा कि क्षेत्र चातुर्मास के योग्य नहीं है। रात के साढ़े ग्यारह वजे तक आपको समझाया, फिर भी आपके मनों का राग-द्वेप कम नहीं हुआ। अव आप कहते हैं कि विवाद समाप्त हो गया है। आप लोगों ने यह काम सच्चे मन से किया है तो वास्तव में ही वड़ा काम किया है। यदि चौमासा पाने के लिए ही आप एक हुए हैं तो इस एकत्व में स्थायित्व नहीं रहेगा। मैं अभी चौमासे के लिए किसी साधु-साध्वी का नाम प्रकाशित नहीं करूंगा। कुछ दिन आप लोगों की प्रतिक्रिया देखने के वाद ही मैं चिन्तन करूंगा।

आचार्यप्रवर की प्रेरणा प्राप्त कर वहां उपस्थित सभी श्रावकों ने प्रेममय वातावरण में परस्पर 'खमत-खामणा' किया। उन्होंने अतीत के किसी भी प्रसंग को विवाद का मुद्दा वनाने का त्याग किया और आचार्य की शिक्षा पर अमल न करने की गलती के प्रायश्चित स्वरूप २५ सामायिक या एक उपवास करना स्वीकार किया। श्रद्धालु श्रावकों ने गुरुदृष्टि को ही अपना जीवन समझकर अपने चिन्तन को परिष्कृत किया और अपने क्षेत्र में संगठन तथा सौहार्द को पुष्ट करने का लक्ष्य वना लिया।

शकुन कैसे मिलता

२८ फरवरी को आचार्यवर का प्रातःकालीन प्रवास चिरपटिया में था। दो हजार की आवादी वाले गांव में दस तेरापंथी परिवार हैं, पर अधिक परिवार वाहर रहते हैं। स्थानीय सभी जाति के लोग आचार्यश्री के आगमन पर उल्लसित हुए। कई व्यक्तियों ने व्यसन-मुक्ति का संकल्प स्वीकार किया। आचार्यवर ने वहां से मध्याह्न में 'नीमली' के लिए प्रस्थान किया। मध्याह्न का समय और सात

किलोमीटर का लम्बा विहार। धूप और दूरी की परवाह न कर आचार्यवर ठीक समय पर अगली मंजिल तक पहुंच गए। रात्रि के समय युवाचार्यश्री ने जनसमूह को सम्बोधित किया।

नीमली से आगे की मंजिल थी 'सारण'। बीच में एक गांव है 'वोपारी'। वहां के लोग पिछले दो-तीन वर्षों से आचार्यवर को अपने गांव पधारने का अनुरोध कर रहे थे। इस बार आग्रह काफी प्रबल था। वहां जाना अधिक असुविधाजनक भी नहीं था। क्योंकि एक रास्ता गांव के बीच से होकर ही सारण जाता था। इसलिए आचार्यवर ने वहां कुछ समय ठहरकर संक्षिप्त प्रवचन करने की स्वीकृति दे दी।

१ मार्च को प्रातः आचार्यश्री सारण पधारे। स्थानीय स्थानक के सामने प्रवचन हो गया। आगे प्रस्थान की तैयारी थी। उसी समय एक भाई ने आकर सूचना दी—सीधा रास्ता खराब है, उसमें कांटे बिखरे हुए पड़े हैं, अतः आचार्यश्री गांव की सड़क से निकलने वाले दूसरे रास्ते से विहार करें। दूसरे मार्ग से जाने में एक किलोमीटर का चक्कर था। फिर भी निवेदन पर ध्यान दिया गया और सड़क वाले रास्ते से विहार हो गया।

आचार्यवर से आगे कुछ साध्वियां चल रही थीं। वे थोड़ी दूर जाकर रुकीं, फिर आगे बढ़ गयीं। साध्वियां क्यों रुकीं? इस सम्बन्ध में किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। आचार्यवर उस स्थान पर पहुंचे तब पता चला कि सड़क से बाईं ओर एक श्यामवर्णी दुम्मुही निष्पन्द पड़ी है। उसे दाईं ओर जाते देख आचार्यवर ने एक कहावत सुनाते हुए कहा—

बैल लीजे ब्हाय के, सूण लीजे डाय के।

बुजुर्ग लोगों का मंतव्य है कि बैल को खरीदने से पहले हल में जोतकर उसका परीक्षण किया जाए और किसी पक्षी को उड़ाना भी पड़े तो उसे उड़ाकर शुभ शकुन लेकर ही प्रस्थान किया जाए। ऐसा लगता है कि आज यह दुम्मुही मेवाड़ प्रवेश से पूर्व हमें शकुन देने आयी है।

आचार्यवर कुछ क्षण वहां रुके। दुम्मुही ने शान्ति के साथ सड़क पार की और दाईं तरफ जाकर स्थिर हो गयी। मेवाड़ यात्रा के शुभारंभ में शुभ शकुन पाकर आचार्य प्रवर की मानसिक प्रसक्ति में भी अनायास वृद्धि हो गयी। यदि विहार सीधे रास्ते से हो जाता तो शकुन कैसे मिलता?

श्रावक-संघ का दायित्वबोध

अरावली पर्वतमाला की तलहटी में बसा गांव सारण दूर से बहुत छोटा-सा लगता है, पर गांव के भीतर प्रवेश करने के बाद वहां लगभग सात सौ परिवारों की

आबादी का अहसास होने लगता है। जैनों की भी वहां अच्छी बस्ती है। गांव में दो स्थानक हैं। उनमें जमी हुई रेत की परतों को देखकर लगा कि कई महीनों के बाद उन स्थानकों को खोला गया था।

आचार्यवर का प्रवास स्थानीय माध्यमिक स्कूल में हुआ, जो काफी सुविधा-जनक था। उस दिन आचार्यश्री के घुटने में दर्द था। वैसे पिछले दो वर्षों से थोड़ा-थोड़ा दर्द रहता था। उसके लिए होम्योपैथिक उपचार भी किया गया, पर विशेष लाभ नहीं हुआ। दूसरे दिन दूधालेश्वर महादेव पहुंचने का कार्यक्रम था, जो वहां से सोलह किलोमीटर से कुछ अधिक था। घुटने में बढ़े हुए दर्द के कारण एक साथ लम्बा विहार करने में कठिनाई उपस्थित हो सकती थी। इस दृष्टि से आचार्यवर ने वहां से छः किलोमीटर 'राढझालरा' जाने का चिन्तन किया।

बात निर्णायक बिन्दु पर पहुंची और वहां के कुछ जैन भाई आकर बोले—आचार्यजी! गांव में चर्चा है कि आप यहां से आज ही विहार कर रहे हैं। यहां इतने जैन परिवार हैं। आपको रात्रिकालीन प्रवास यहीं करना चाहिए।

आचार्यश्री ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—आप इतने जैन यहां रहते हैं क्या? गांव में साठ घर और इतनी सुनसान! अभी थोड़ी पहले ही हम यहां पहुंचे। स्थानीय लोगों में से कोई रास्ता बताने वाला भी नहीं था। गांव में तीन साधु आएं तो भी श्रावक उनकी संभाल करते हैं। इतना बड़ा संघ आए और श्रावकों को ज्ञात ही न हो, यह कैसे हो सकता है?

आचार्यवर ने जिस यथार्थ को खोलकर रखा, एक बार तो श्रावक मौन हो गए। थोड़ी देर बाद वे बोले—आचार्यजी! टावर कुटावर हो सकते हैं, माइत कुमाइत नहीं होते। हमारी ओर से निश्चित ही लापरवाही रही है। आप हमारी भूल पर ध्यान न देकर आज की रात यहीं ठहरने की कृपा करें।

श्रावक सामने नहीं आए, इसके पीछे दो कारण थे। पहला कारण यह था कि वहां के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति व्यवस्था में लग गए थे। दूसरा कारण था—वहां उस दिन एक वृद्धा का स्वर्गवास हो गया था। इसलिए गांव के काफी लोग उसकी अन्त्येष्टि में चले गए थे। इन कारणों के बावजूद एक बृहत् धर्मसंघ की अगवानी में कुछ व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक थी। इस बात को गांव वालों ने गंभीरता के साथ अनुभव कर लिया।

आचार्यश्री सारण से प्रस्थान इसलिए नहीं कर रहे थे कि वहां के लोगों ने थोड़ी उदासीनता दिखाई। विहार का कारण था घुटने का दर्द। पहाड़ी रास्तों में एक साथ सोलह किलोमीटर चलने से दर्द और अधिक बढ़ने की संभावना थी। इसलिए तीन बजे सारण से प्रस्थान कर आचार्यवर राढझालरा पहुंच गए।

काश ! आचार्यश्री वहां रहते

राढझालरा गांव का सर्वे करने वाले कार्यकर्ताओं ने बताया कि वहां स्थान बहुत कम है। साध्वियों को एक किलोमीटर दूर रहना होगा। इसी लक्ष्य से साध्वियां चलीं। वहां पहुंचकर स्थान की खोज की। आचार्यवर के आवासस्थल के पास ही एक बड़ा 'ओरा' उपलब्ध हो गया। उसमें सोलह साध्वियों के ठहरने की व्यवस्था हो गई। कुछ साध्वियां सारण में रह गई थीं। सात साध्वियां एक किलोमीटर वाले स्थान पर जाने की तैयारी कर रही थीं, तभी एक कार्यकर्ता ने बताया कि दो फर्लांग पर एक कमरा है, वहां कुछ साध्वियां रह सकती हैं। दूर वाले स्थान का लक्ष्य छोड़ हम नजदीक वाले स्थान के लिए चलीं। सूर्यास्त का समय, रक्ताभ आकाश, खेतों में लहलहाते गेहूं, उनके बीच से निकली हुई पगडण्डी पर चलते समय अत्यन्त सुखद अनुभूति हुई। दो फर्लांग रास्ता तय करते ही एक डबल स्टोरी मकान दिखाई दिया। साध्वियों को वहीं ठहरना था। नीचे का मकान कच्चा था। ऊपर की मंजिल पक्की थी। वहां सफाई भी अच्छी थी। दूसरी मंजिल की छत पर पहुंचकर हमने इधर-उधर दृष्टि घुमाई तो वह वहीं अटक गई। इतना सुन्दर और मनोहारी दृश्य। चारों ओर पंक्तिबद्ध पहाड़ियां, उन पर उगे हुए छोटे बड़े, हरे-सूखे पेड़-पौधे, पहाड़ियों के नीचे खेत, खेतों में बिछी हरीतिमा, सामने के खेत में रहंट की खट्-खट्, न शहरी कोलाहल, न बीहड़ जंगल का वीरानापन। उस प्राकृतिक दृश्य को देखकर प्रकृति के प्रति आचार्यवर का अनुराग याद आ गया। काश ! आचार्यवर का रात्रिकालीन प्रवास वहां होता और उस प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य प्रकृति पुरुष के भीतर का कवि प्रेरित एवं संवेदित होता तो अनायास ही काव्य का जन्म हो जाता।

छोटे से गांव राढझालरा में भी आचार्यश्री को एकान्त नहीं मिला। स्थानीय तथा आसपास की ढाणियों से सैकड़ों लोग वहां पहुंच गए। आचार्यश्री की तेजस्विता का उन लोगों के मन पर जितना प्रभाव हुआ, उससे भी अधिक प्रभाव हुआ आपके आत्मीयतापूर्ण वचनों का। गांवों में बसने वाले लोगों के लिए जीवन को उन्नत बनाने की जो दिशा आपने दी, उसे पाकर गांववासी निहाल हो उठे।

पग-पग पर उपस्थिति का अहसास

२ मार्च को आचार्यवर के मेवाड़ प्रदेश पर दूधालेश्वर महादेव में औपचारिक स्वागत अभिनन्दन का कार्यक्रम था। राढझालरा से दूधालेश्वर तक दस किलोमीटर का रास्ता है। पथरीला रास्ता इतना ऊबड़खाबड़ और टेढ़ा-मेढ़ा था

कि न तो पदयात्रियों के लिए सुविधाजनक था और न ही उस रास्ते से जीप गाड़ी निकल सकती थी। उपजिलाधीश ब्यावर, श्री माणकचन्द जैन को सूचना मिली कि आचार्यश्री तुलसी दूधालेश्वर महादेव होकर टाडगढ़ जाएंगे। इस सूचना से उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई, उतनी ही चिन्ता बढ़ गयी। ऐसा विकट रास्ता और इतने बड़े संघ की यात्रा, क्या किया जाए? मार्ग की दुरूहता दूर करने का संकल्प लेकर उन्होंने दो सौ श्रमिक काम पर लगा दिए। पांच दिन के कठोर परिश्रम से उक्त रास्ते का इतना कायाकल्प हो गया कि पथरीली पगडंडियां गिट्टी रोड में परिवर्तित हो गईं। अब वहां पदयात्री ही नहीं, जीप भी अच्छे ढंग से चलने लगी।

एक ओर उपजिलाधीश द्वारा रास्ते को सम करवाने का संकल्प, दूसरी ओर टाडगढ़ के कार्यकर्ताओं द्वारा उसे संवारने का संकल्प। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दोनों संकल्पों में प्रतिस्पर्धा खड़ी हो गई। पहाड़ी रास्ता वैसे ही सुन्दर था, फिर वहां स्थान-स्थान पर आचार्यवर की उपस्थिति का अहसास करवा कर उसे जीवंत बना दिया गया। मार्ग के दोनों ओर खड़े वृक्षों और चट्टानों पर आचार्यश्री के रेखाचित्र टांगकर, चिपकाकर सहस्रमुख बनाने की कल्पना संभवतः आचार्यवर के सहस्रमुखी व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने के लिए ही की गई थी। उन आकर्षक चित्रों और पहाड़ी सुषमा को निहारते-निहारते दस किलोमीटर का सफर कब पूरा हो गया, पता ही नहीं लगा। आचार्यश्री दूधालेश्वर पहुंचे, उससे पहले ही उपजिलाधीश श्री माणकचन्द जैन और पुलिस उपनिरीक्षक श्री भोपालसिंह ने मेवाड़ की धरती पर आचार्यवर का स्वागत किया। वे थोड़ी दूर आचार्यश्री के साथ-साथ पैदल भी चले।

दूधालेश्वर : इतिहास का मिथक

अरावली पर्वतमाला की गोद में महादेव के कई मंदिर हैं। उनमें तीतरी महादेव, आंजणा महादेव, दूधालेश्वर महादेव आदि काफी प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ से मेवाड़ जाने वाले कई यात्री तीतरी या दूधालेश्वर महादेव होकर ही मेवाड़ में प्रवेश करते हैं। राणावास चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने मेवाड़ की यात्रा की थी। उस समय कालीघाटी (अभयघाटी) पार की, पर तीतरी महादेव में यात्रासंघ का पड़ाव नहीं हुआ था। इस बार जोधपुर चातुर्मास के बाद फिर मेवाड़ यात्रा का प्रसंग उपस्थित हुआ तो दूधालेश्वर महादेव का रास्ता निर्णीत हुआ। दूधालेश्वर की प्राकृतिक सुषमा के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। उस स्थान का सबसे बड़ा आकर्षण था—भूगर्भ से निरन्तर एक रूप प्रवहमान जलस्रोत। वह पानी कहां से आता है? कब से आता है? कभी घटता-बढ़ता है या नहीं?

उस पानी में क्या वैशिष्ट्य है? आदि प्रश्नों की बौछार करने पर भी समाधान की शीतलता प्राप्त नहीं हुई। आखिर टाडगढ़ से समागत भाई भीखमचन्दजी ने दूधालेश्वर के सम्वन्ध में प्रचलित किंवदंतियों और ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी दी।

दूधालेश्वर का इतिहास पांच सौ वर्ष प्राचीन माना जाता है। उस समय वहां सघन जंगल था। उस जंगल में एक चरवाहा अपनी गायें चरा रहा था। नाम था उसका 'खंगारजी रावत' एक दिन मध्याह्न के समय वह अपने पशुओं के साथ निश्चिन्तता से वैठा हुआ था। गायें इधर-उधर चर रही थीं। सहसा वहां एक संन्यासी आ खड़ा हुआ। चरवाहा एक वार तो सहमा, फिर संभलकर संन्यासी के चरणों में प्रणत हो गया। संन्यासी वोला—वच्चा! प्यास लगी है, पानी पिलाओ। इस मांग ने चरवाहे को चिन्तित कर दिया। उस जंगल में कहीं कोई जलाशय तो था नहीं। जो थोड़ा-सा पानी वह घर से लेकर गया था, उसे पी चुका था। पानी न पिलाने से संन्यासी कुपित हो गया तो उसका इस जंगल में कौन होगा? इस सोच में डूबकर वह वोला—महात्मन्! यहां पानी कहां से लाऊं? आप मेरे घर चलें। वहां आपको मीठा और ठंडा जल पिलाऊंगा। चरवाहे के चेहरे पर उतर आयी निराशा को पढ़कर संन्यासी वोला—वत्स! हताश मत वनो। देखो, सामने जो पौधा है, उसे उखाड़कर फेंक दो। उसके नीचे पानी ही पानी है। चरवाहे के मन में विश्वास तो नहीं था, फिर भी संन्यासी का निर्देश टालना संभव नहीं था। इसलिए वह पौधे को उखाड़ने लगा। पौधे के उखड़ते ही वहां एक झरना फूट पड़ा। चरवाहे को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ, पर अविश्वास का भी कोई आधार नहीं था। उसने अपने कटोरे में पानी भरकर संन्यासी को पिला दिया।

कुछ देर वहां सुस्ताने के वाद संन्यासी वोला—वच्चा! प्यास तो वुझ गई। अव भूख वड़े जोरों से लगी है। आज तो खीर खिलाओ। चरवाहे के सामने फिर एक नयी समस्या खड़ी हो गई। वह कुछ सोच ही रहा था कि संन्यासी वोला—सोचते क्या हो? इन गायों में से जो कुमारी गेलड़ी (वछड़ी) खड़ी है, उसके दूध से खीर वनाओ। चरवाहा संन्यासी का मुंह देखता रह गया। कुमारी वछड़ी के थन में दूध कहां से आएगा? यह प्रश्न उसके मन में जरूर था। किन्तु संन्यासी का चमत्कार वह देख चुका था, इसलिए चुपचाप उधर जाने लगा। उसके पास वर्तन भी नहीं था। संन्यासी ने अपने झोले में हाथ डाला और वर्तन निकालकर दे दिया।

चरवाहा कांपते हाथों में वर्तन लेकर वछड़ी के पास पहुंचा। उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जव उसने कुमारी वछड़ी का दोहन कर दूध प्राप्त किया।

दूध का बर्तन प्राप्त होने के बाद चरवाहे के सामने चावल की समस्या खड़ी हो गई। संन्यासी ने एक बार फिर झोले में हाथ डाला और दो चावल निकाल कर दे दिए। चरवाहे को हंसी आ गयी। दो चावल से खीर कैसे बनेगी? यह बात पूछना चाहकर भी वह पूछ न सका। उसने ईंधन बटोरा और खीर बनानी शुरू कर दी। खीर बनकर तैयार हो गई। उससे न केवल संन्यासी तृप्त हुआ, अन्य अनेक लोगों ने भी पेट भर खीर खायी। उसके बाद वह बर्तन चरवाहे और उसके परिवार के पास रहा। अनेक बार उस बर्तन से चामत्कारिक भोजन तैयार कर लोगों को खिलाया गया। कालान्तर में वह बर्तन तो नष्ट हो गया, पर वह जलस्रोत ज्यों का त्यों है। कहा जाता है कि उसमें न तो एक बूंद पानी बढ़ता है और न एक बूंद घटता है। मूसलाधार वर्षा हो जाए अथवा अकाल की छाया पड़ जाए, उस जलस्रोत का पानी सदा एक समान रहता है।

लोककथाओं के अनुसार वह संन्यासी और कोई नहीं, स्वयं महादेव थे। वे उस जलस्रोत को गंगा से लाये थे। भारतवर्ष में गंगा के बारे में जो अवधारणा है, वह भी अलौकिक है। एक बार बादशाह अकबर ने बीरबल से पूछा—हिन्दुस्तान की सबसे अधिक पवित्र और महान नदी कौन सी है? बीरबल बोला—यमुना। बादशाह यह सुनकर चकित रह गए। उन्होंने बीरबल को कुरेदते हुए कहा—तुम हिन्दू होकर भी यमुना को पवित्र बता रहे हो, फिर गंगा क्या है? बीरबल बोला—आप गंगा को नदी मानते हैं? वह नदी नहीं, अमृत धारा है, संजीवनी है।

भारतीय लोकमानस में आज भी गंगा के प्रति वही श्रद्धा है, पर गंगा की वह पवित्रता संदिग्ध बनती जा रही है। बढ़ते हुए प्रदूषण ने गंगा के पानी को भी इतना दूषित कर दिया है कि वह अमृतधारा के स्थान पर प्रदूषण धारा बनकर बह रही है। इस स्थिति से काफी लोग चिंतित हैं, किन्तु गंगाजल के प्रदूषण को समाप्त करने का कोई उपाय अब तक तो कारगर नहीं हो पाया है।

दूधालेश्वर के इस इतिहास की सचाई शोध का विषय हो सकती है, पर यह सचाई तो निर्विवाद है कि वहां जाने वाले अधिकांश लोग उस जलस्रोत के पानी से स्नान करते हैं, इस आस्था के साथ करते हैं कि ऐसा करने से उनकी बीमारियां दूर हो जाएंगी। स्नान के अतिरिक्त पीने और सिंचाई के लिए भी उस जल का उपयोग होता है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि उस स्थान से लोक-जीवन की धार्मिक आस्था भी जुड़ी हुई है।

अमृत-यात्रा का प्रथम पड़ाव

इकतीस वर्षों पहले आचार्यवर टाडगढ़ में प्रवास कर रहे थे। उस समय दूधालेश्वर

के वावा शीतलदासजी ने आपको वहां आने का अनुरोध किया। वावा की प्रार्थना स्वीकार कर आचार्यवर वहां पधारे। रमणीय, दर्शनीय स्थान और आचार्यश्री का सान्निध्य। दूधालेश्वर में विना किसी विशेष आयोजन के ही आयोजन हो गया। आचार्यवर ने उस प्राकृतिक वातावरण में डूवे हुए लोगों को प्राकृतिक जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए अणुव्रती वनने का आवाहन किया। वावा शीतलदास उस आवाहन को अनसुना नहीं कर सके। वे अणुव्रती वने और अणुव्रत का प्रचार करने के लिए संकल्पित हो गए। वावा अपने पास अणुव्रत नियमों के मुद्रित पन्ने रखते और वहां आने वाले लोगों को अणुव्रत के नियम समझाकर अणुव्रती वना लेते। उन्हें इस काम में पूरा रस था। दूधालेश्वर से आचार्यवर पुनः टाडगढ़ लौट गए। यह घटना सन् १९५४ की है।

सन् ५४ से ८५ के वीच में आचार्यप्रवर कई वार मेवाड़ आए, पर टाडगढ़ आना नहीं हुआ। ३१ वर्ष वाद अमृत महोत्सव के लिए मेवाड़ यात्रा का प्रथम पड़ाव टाडगढ़ में करना था। टाडगढ़ जाते समय आचार्यवर ने दूधालेश्वर में पूरे एक दिन और रात का प्रवास किया। इकतीस वर्षों के वाद उस ऐतिहासिक धरती पर इतिहास पुरुष के पदन्यास से एक नये इतिहास के सृजन की संभावनाएं साकार हो उठीं। मध्याह्नकालीन अनौपचारिक सभा में उन संभावनाओं पर प्रकाश डालते हुए युवाचार्यश्री ने कहा—मेवाड़ में आचार्यश्री का प्रवेश अनेक वार हो चुका है। इस वार का आगमन विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ है। वह उद्देश्य है अमृत-महोत्सव। अमृत-महोत्सव यात्रा का प्रथम पड़ाव वहां हुआ है, जहां अमृत का निर्झर प्रवहमान है। ऐसा निर्झर, जो पांच सौ वर्षों से अविरल वह रहा है। कितनी ही वर्षा हो जाए, इस स्रोत का पानी वढ़ता नहीं। कितनी ही वार सूखा पड़े, इसका पानी घटता नहीं। इस स्रोत की भांति आचार्यप्रवर भी सतत गतिशील रहकर जन-जन को अमृत का अवदान दे रहे हैं।

मेवाड़ की धरती के साथ तेरापंथ की सम्बन्ध योजना करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—आचार्य तुलसी मेवाड़ में आचार्य वने, इस कारण मेवाड़ के साथ हमारा अपनापा है। इससे भी आगे चलें तो तेरापंथ की नियति मेवाड़ से जुड़ी हुई है। मेवाड़ की धरती से उठा हुआ यह स्वर राष्ट्रव्यापी वने, यह आवश्यक है। धर्म के इतिहास में इतने उदार विचार और विशाल दृष्टिकोण वाले कोई महान् आचार्य हुए हों, ऐसे प्रसंग दुर्लभ हैं। ऐसे व्यक्तियों की पहचान के लिए वारीकी से इतिहास खोजना पड़ेगा। इतिहास की खोज होगी, तव होगी, अभी तो नये इतिहास लेखकों का ध्यान आचार्यश्री की ओर केन्द्रित है। अमृत महोत्सव का यह अवसर इतिहास की शृंखला में एक नयी कड़ी बनेगा, ऐसा आभास मुझे स्पष्ट रूप से हो रहा है।

भीड़ हमारी नियति है

दूधालेश्वर की सीढ़ियां पार करने के वाद एक छोटा समतल मैदान है। उस मैदान में एक ओर वह जलकुई है, जिसमें निरन्तर जल का स्राव होता है। उसकी दाईं ओर एक छोटा-सा मंदिर है, जहां श्रद्धालु लोग अपने मन की मुराद पूरी करने की अभिलाषा संजोकर आते रहते हैं। उनके सामने एक छतरी पर रखे छोटे से प पर आचार्यश्री विराजमान थे। आपके दाएं-वाएं युवाचार्यश्री और मुनिजन वैठे थे। सामने साध्वियां और श्रावक-श्राविकाओं का समूह। प्रकृति प्रसन्न थी और प्रसन्न थे वहां उपस्थित सव लोगों के मन। मध्याह्न का समय था। सूरज की धूप चारों दिशाओं से उतर रही थी, फिर भी वहां शामियाना वांधने की जरूरत नहीं हुई। क्योंकि धूप सीधी नहीं उतरी थी। वृक्षों से छन-छन कर आने के कारण वह अत्यन्त सुहावनी और भली प्रतीत हो रही थी। कुमारी संध्या ने मंगलगीत गाकर मेवाड़ की ओर से आचार्यवर का स्वागत किया। अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के संयोजक श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट और मेवाड़ के युवा कार्यकर्ता भीकमचन्द कोठारी 'भ्रमर' मेवाड़ के प्रसिद्ध कवि माधवराज आदि ने अमृत-पुरुष आचार्यवर का अभिनन्दन किया। कार्यक्रम का संयोजन श्री लक्ष्मणसिंह कर्णावट ने किया।

आचार्यप्रवर ने उपस्थित जनसमूह को संवोधित करते हुए कहा—मेवाड़ प्रवेश पर आप लोग स्वागत कर रहे हैं। आप क्या स्वागत कर रहे हैं, प्रकृति का कण-कण स्वागत में विछ रहा है। मैं कभी वृक्षों को देखता हूं, कभी चट्टानों को देखता हूं, कभी पहाड़ियों को देखता हूं और कभी देखता हूं इस जन-समुदाय को। जिधर देखता हूं, उधर ही मन आश्वस्त हो जाता है। अपने इकतीस वर्ष पुराने अतीत में लौटूं तो उस समय की सारी स्मृतियां आंखों के सामने आ रही हैं। तव भी मैं इसी स्थान पर वैठा था। वावा शीतलदासजी ने हमारा स्वागत किया। वे जीवनभर भक्त बने रहे थे। आज उनके स्थान पर वावा उदयगिरि सामने वैठे हैं। इनके मन में भी उतनी ही श्रद्धा और भक्ति है।

आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन में कहा—जसोल के वाद इतनी जल्दी यहां आने की कल्पना नहीं थी, पर हमने छलांग भरी और वहुत कम समय में पहुंच गए। यहां पहुंचने के लिए रास्ता भी नया चुना। पिछली वार जव मैं मेवाड़ आया था, तब टाडगढ़ आने के लिए बहुत आग्रह किया गया। किन्तु मैंने कहा—टाडगढ़ का स्वतंत्र इतिहास वनने दो। उस समय हम यहां आ जाते तो यह इतिहास कैसे वनता ?

दूधालेश्वर का यह स्थान एकान्त और शान्त है। पर हमें कोई एकान्त में रहने ही नहीं देता। जहां जाते हैं, भीड़ हो जाती है। लगता है भीड़ हमारी नियति हो गई है। कल राढ़झालरा में समाज के पांच-सात युवक बोले—हम

मारवाड़ जंक्शन से आपके साथ हैं और सोच रहे हैं कि इन छोटे-छोटे गांवों में आपका समय मिलेगा। पर यह भीड़ तो यहां भी आपको नहीं छोड़ती। युवकों की वात सुन मैंने कहा—हमारे यहां भीड़ है किसकी? तुम लोग आते हो, भीड़ हो जाती है। इसकी चिन्ता मत करो समय लो और अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करो लगभग आधा-पौन घण्टा उनके साथ वात की। युवक प्रसन्न हो गए।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन को दूसरा मोड़ देते हुए कहा—लोग कहते हैं कि इस अवस्था में आपको इतना नहीं चलना चाहिए। उनका कहना ठीक है, पर मैं अवस्था को कैसे रोकूं? हां, बुढ़ापे को रोक सकता हूं। बुढ़ापे का नाम मुझे अच्छा नहीं लगता। इस वार घुटनों में दर्द होने पर एक वार थोड़ा-सा अहसास हुआ। किन्तु तत्काल मन में आया—घुटनों के दर्द का बुढ़ापे के साथ अनुबन्ध नहीं होना चाहिए जवानी में भी कुछ लोग दर्द का अनुभव करते हैं—इस चिन्तन के साथ मन पुनः युवा हो गया। मुझे याद है—आज से पचास वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव कालूगणी सिरियारी की घाटी से मेवाड़ पधारे थे। उस समय आपके घुटनों में भयंकर पीड़ा थी। शायद आज इतिहास स्वयं को दोहरा रहा है। घुटनों के दर्द में ही कालूगणी घाटी चढ़े। आज तुलसी चढ़ रहा है। अन्तर इतना ही है कि कालूगणी हाथ में गेड़िया रखते थे और मैंने अव तक गेड़िया हाथ में नहीं लिया है। मूल बात एक ही है कि मैं स्वयं बूढ़ा होना नहीं चाहता और दूसरों को वृद्ध देखना नहीं चाहता।

आचार्यप्रवर बोल रहे थे और पचास वर्ष का अतीत पर्त-दर-पर्त सामने आ रहा था। सभी श्रोताओं को वे बातें बड़ी मधुर लग रही थीं। इच्छा होती थी कि आप इसी तरह घण्टों तक बोलते रहें और हम आपकी अमृतवाणी का पान करते रहें। पर समय काफी हो चुका था। इसलिए आपने प्रवचन का उपसंहार करते हुए कहा—इस युग में तेरापंथ एक नयी उपलब्धि है। तेरापंथ ने अपना कर्तृत्व दिखलाया है, नयी लकीरें खींची हैं। हमें अनवरत प्रयत्न करना है और धर्मसंघ के वर्चस्व को बढ़ाना है।

पर्वतारोहण का आनन्द

३ मार्च को प्रातः सूर्योदय के समय से कुछ क्षण पूर्व ही आचार्यवर ने दूधालेश्वर महादेव से प्रस्थान कर दिया। उस दिन हमारी मंजिल थी टाडगढ़। टाडगढ़ वहां से मात्र छह किलोमीटर की दूरी पर है, किन्तु उस दूरी को पाटना सहज कार्य नहीं था। समुद्र की सतह से ३२८१ फीट ऊंचाई तक आरोहण करके ही टाडगढ़ पहुंचा जा सकता है। सामान्यतः ऐसे मार्ग पार करते समय भय और श्लथता का अनुभव होने लगता है। किन्तु आचार्यश्री के साथ-साथ चलना पड़े तो बुजुर्ग भी युवा बन जाते हैं। उस दिन भी आबालवृद्ध सब लोगों में नया जोश और नया उत्साह

था। सैकड़ों लोग आचार्यश्री के साथ उस घाटी को पार करने के लिए ही दूधा-लेश्वर आए थे। उनके आगमन का क्रम प्रस्थान के समय तक चालू था।

आचार्यवर का प्रस्थान होते ही साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं के समूह के समूह घाटी पर चढ़ने लगे। टेढ़ामेढ़ा चढ़ाई का वीरान रास्ता उस दिन पूरी तरह से आवाद हो गया था। तीन किलोमीटर तक आचार्यश्री सबसे आगे चले। लगभग आधा रास्ता पार हो चुका था। वहां आचार्यवर ने कुछ समय विश्राम किया। तव तक प्रायः साधु-साध्वियां पहुंच गए। साध्वियों को आगे चलने का निर्देश मिला। थोड़ी दूर ऊपर चढ़ने के वाद पीछे झांककर देखा तो पर्वतारोहण का मनोहारी दृश्य आंखों को वांध लिया। साध्वियां एक मोड़ पर खड़ी हुई और एक स्वर से गीत की मधुम स्वर-लहरियों में खो गईं। आचार्यश्री उस मोड़ पर पहुंचे, तव तक साध्वियां आगे वढ़ गईं। फिर अग्रिम मोड़ों पर इसी प्रकार रुकती हुई, गुनगुनाती हुई साध्वियों ने उस घाटी को ही स्वर दे दिया।

आचार्यवर ने घाटी की चढ़ाई शुरू की, उस समय सौ, दो-सौ व्यक्ति साथ थे। कुछ व्यक्ति पीछे से आकर जुड़ गए। उधर टाडगढ़ की ओर से जनसमूह आचार्यश्री की दिशा में वढ़ने लगा। अलग-अलग गांवों की अलग-अलग टुकड़ियां मानो अपनी स्वतंत्र पहचान वनाकर चल रही थीं। आचार्यश्री महानदी की भांति उनकी ओर वढ़ रहे थे और वे छोटी-मोटी नदियां महानदी से विलीन होकर कृतार्थता का अनुभव कर रही थीं। टाडगढ़ तक पहुंचते-पहुंचते सैकड़ों की संख्या हजारों तक पहुंच गई। मन में उमड़ते हुए वन्दन और अभिनन्दन के भावों को समेटे हुए वे लोग आचार्यवर का अनुगमन करते हुए टाडगढ़ के डाक वंगले में पहुंच गए। उस समय कोई लम्वा-चौड़ा कार्यक्रम नहीं था। मेवाड़ की ओर से अभिनन्दन का कार्यक्रम मध्याह्न में था। स्वागत शोभायात्रा का उपक्रम भी साढ़े वारह वजे से रखा गया था। इसलिए अधिकांश लोग अपने-अपने घरों या आवास-स्थलों को लौट गए।

व्यवस्था भी जरूरी होती है

ठीक साढ़े वारह वजे आचार्यवर ने डाक वंगले से प्रस्थान किया। उस समय वंगले के परिसर में मुश्किल से दो सौ व्यक्ति थे। जवकि वहीं से स्वागत शोभा-यात्रा का प्रारम्भ हो रहा था। वंगले से वाहर जुलूस की व्यवस्था होगी, यह सोचकर वाहर आए। वहां कुछ सौ व्यक्ति प्रतीक्षा में खड़े थे। कुछ अजीव-सा लगा। पूरे मेवाड़ की ओर से आयोजित कार्यक्रम का यह रूप। उस दिन तो मेवाड़ क्षेत्रीय स्तर पर सारी व्यवस्थाएं होनी चाहिए थीं। मेवाड़ कान्फ्रेंस, मेवाड़ क्षेत्रीय महिला मण्डल, युवक परिषद, अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति आदि क्षेत्रीय तथा स्थानीय

सभी संस्थाओं का दायित्व था कि सुनियोजित रूप से सारे कार्यक्रम का संचालन होता। किन्तु व्यवस्था करने वाले व्यक्ति शायद किसी अन्य कार्य में उलझ गए थे, इसलिए शोभायात्रा का स्वरूप आकर्षक नहीं बना। सभा-भवन तक पहुंचते-पहुंचते शोभा-यात्रा में हजारों लोग जुड़ गए थे, पर उनसे अधिक लोग तो प्रज्ञा समवसरण में पहुंचकर जम गए थे। मध्याह्न की तेज धूप इस बेतरतीबी का एक कारण थी, पर यह बात तो आयोजकों को पहले सोचनी चाहिए थी। मेवाड़ के पचास-साठ गांवों से समागत हजारों-हजारों श्रद्धालु लोगों को उचित समय पर सही मार्ग-दर्शन मिलता और उनको सही व्यवस्था दी जाती तो वह प्रथम आयोजन अधिक प्रभावी हो सकता था।

स्थानीय उप-तहसील के सामने बना 'प्रज्ञा समवसरण' उस दिन सबके आकर्षण का केन्द्र बन रहा था। उल्लास और उत्साह का मिला-जुला वातावरण। अमृत-पुरुष आचार्यश्री की अमृत-यात्रा की सफलता के लिए मंगल भावनाओं से अनुप्राणित मानसिकता और जन-जीवन के रूपान्तरण की नयी संभावना। आचार्यश्री मंच पर पहुंचे और जनता शान्तभाव से बैठ गई। शोभायात्रा की थोड़ी-सी अव्यवस्था से दर्शकों के मन पर जो प्रतिक्रिया थी, वह पण्डाल की समुचित व्यवस्था देखकर अपने आप धुल गई। स्थानीय कन्याओं ने मंगल-गीत का संगान कर कार्यक्रम का प्रारम्भ किया। देवगढ़ की भूतपूर्व विधायक एवं साहित्यसेवी श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चुंडावत ने मेवाड़ की श्रद्धा से भीगे बोलों से आचार्यश्री का स्वागत किया। गांधी सेवा सदन (राजसमन्द) की नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं ने भावपूर्ण शैली में आचार्यवर का वर्धापन किया। इसी श्रृंखला में मेवाड़ के लोकप्रिय कवि माधवराज, आकाशवाणी उदयपुर की युवा कलाकार कुमारी सन्ध्या शर्मा, श्री शीलव्रतजी शर्मा, मुनि मोहनलालजी 'आमेट', श्री भीकमचन्दजी 'भ्रमर' तथा अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति, मेवाड़ कान्फ्रेंस, तेरापंथ युवक परिषद् (मेवाड़), तेरापंथ महिला मण्डल (मेवाड़), तेरापंथी सभा (टाडगढ़) राजस्थान रावत राजपूत महासभा आदि संस्थाओं के अधिकृत व्यक्तियों ने आचार्यश्री के बहु आयामी व्यक्तित्व और कर्तृत्व का अभिनन्दन किया।

आचार्यश्री की प्रसन्नता

उस कार्यक्रम में हरियाणा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बनारसीदास गुप्त तथा राजस्थान के जाने-माने शिक्षाविद श्री जगन्नाथसिंह मेहता भी उपस्थित थे। दोनों महानुभाव आचार्यप्रवर को भीतर से पहचानते हैं। देश के एक महान संत के रूप में ही नहीं, नैतिकता की ज्योति प्रज्वलित करने के कारण उनके मन में आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा है। उनका विश्वास है कि आचार्यश्री द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत के मार्ग

पर चलकर ही वे अपना, अपने समाज व राष्ट्र का कल्याण कर सकेंगे।

श्री वनारसीदास गुप्त ने अपने अतीत के क्षणों को सजीव करते हुए कहा—आचार्यप्रवर की कृपा और स्नेह मुझे लम्बे समय से प्राप्त है। दो दशक पूर्व आप भिवानी प्रवास कर रहे थे। उस समय मुझे वहां प्रतिदिन आपके प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला। सन् १९७२ में जब मैं हरियाणा सरकार में मंत्री बना, हिसार में आपका स्वागत करने का सौभाग्य मिला। मैं मानता हूं कि आचार्यश्री युगपुरुष हैं। आज समाज में बुराइयां बढ़ रही हैं। राजनीति में वे और अधिक तीव्रता से बढ़ रही हैं। ऐसे समय में कोई आशा की किरण है तो आचार्यजी हैं। आपके अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में जो पांच संकल्प बताए गए, वे इस युग की समस्या के समाधान देने वाले हैं।

श्री जगन्नाथ मेहता ने अपने अन्तस् को खोलते हुए कहा—सांसारिक लोगों की प्रसन्नता का हेतु है—बच्चों का सुख, परिवार की संपन्नता, समाज में प्रतिष्ठा आदि। आचार्यश्री को प्रसन्नता का अनुभव तब होता है, जब जनता का जीवन ऊंचा होता है। वह बुराइयों से मुक्त होती है और उसमें चरित्रनिष्ठा आती है। आचार्यश्री की प्रसन्नता के लिए हमें अपने जीवनस्तर को उन्नत बनाना चाहिए।

अमृत बांटने का महोत्सव

अमृत महोत्सव के आयोजन के प्रमुख कल्पनाकार युवाचार्यश्री ने मेवाड़ की जनता को दायित्व-बोध देते हुए कहा— आज की सबसे बड़ी समस्या है आदमी के बदलने की। आदमी कैसे बदले ? इसके लिए नये जीवन दर्शन की जरूरत है। पुराने लोगों को बदलकर नये जीवन दर्शन के अनुसार ढालना बहुत कठिन काम है। इसलिए इस काम का प्रारम्भ बच्चों से करना चाहिए। बारह, तेरह वर्ष की अवस्था के बाद पिनियल और थायमस ग्लैण्ड्स निष्क्रिय होने लगती है। पिनियल की निष्क्रियता से विकास रुकता है और थायमस की निष्क्रियता से मस्ती समाप्त होती है। इन ग्रन्थियों को सक्रिय बनाए रखने के लिए 'जीवन विज्ञान' का प्रायोगिक प्रशिक्षण बहुत उपयोगी हो सकता है। इस दिशा में अपेक्षित काम होने से ही समस्या का समाधान हो सकता है।

अमृत महोत्सव को परिभाषित करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—पचास वर्षों के मंथन से जो अमृत निकला, उसे बांटने का महोत्सव 'अमृत-महोत्सव' है। अमृत का वितरण वे ही कर सकते हैं, जो स्वयं अमृतमय होते हैं। आचार्यवर अमृत-पुरुष हैं, इसलिए जन-जन को अमृत बांटने का उपक्रम कर रहे हैं। यह उपक्रम सफल हो और संसार का विषाक्त वातावरण अमृत से भावित हो, यही

मंगल भावना है।

एक जागृत और सदाचारी समाज की कल्पना

आचार्यश्री एक बजे 'प्रज्ञा समवसरण' में पहुंचे। दो, तीन और चार बज गए। मध्याह्न की धूप और हजारों की भीड़। इतने लम्बे समय तक शान्त होकर बैठना सहिष्णुता की बड़ी कसौटी है। मेवाड़ के लोग इस कसौटी पर खरे उतरे। वे उस गर्मी में तीन घण्टा बिना पानी पीए बैठे रहे। इतना अधिक समय हो जाने पर भी वे वहां से उठने की मुद्रा में नहीं थे। क्योंकि वे जिस तत्त्व को पाने के लिए वहां आए थे, वह अब तक उन्हें मिला नहीं था। प्राप्य की प्राप्ति में अधिक विलम्ब उनके मन में अधृति उत्पन्न करने लगा था। इस स्थिति का आकलन कर कार्यक्रम के संयोजक श्री लक्ष्मणसिंह कर्णावट ने आचार्यवर को अपना मंगल प्रवचन करने का अनुरोध किया।

आचार्यश्री ने अपने अनुभवों के परिपक्व अन्दाज से जनता की भावना को आंका और उनके भविष्य को संवारने वाला सन्देश देते हुए कहा—वीरभूमि, भक्तभूमि मेवाड़ की स्थिति आज चिन्तनीय हो रही है। मेवाड़ क्या, सारे देश की स्थिति ही ऐसी है। इस स्थिति को नियंत्रित करने के लिए हमें देश की समस्याओं को समझना होगा। मुख्य रूप से आज देश के सामने दो समस्याएं हैं—चरित्रहीनता और शिक्षा का अधूरापन। इन समस्याओं को दूर करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। अपने जीवनकाल में हम इनका नामशेष कर सकेंगे या नहीं, यह चिन्ता मुझे नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं—

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

काल की अन्तहीन परम्परा में इस सुविस्तृत धरती पर कोई ऐसा व्यक्ति भी पैदा होगा, जो मेरा समान धर्मा हो। संस्कृत के प्रसिद्ध काव्यकार भवभूति का यह अहसास प्रमाणित करता है कि किसी भी क्षेत्र में काम करने वाला व्यक्ति अपने क्षेत्र का अंतिम व्यक्ति नहीं होता। उस परम्परा को आगे ले जाने वाले व्यक्ति भी इस धरती पर जन्म लेंगे और अपने युग की परिस्थितियों को समझकर काम करेंगे।

देश की समस्याओं के सन्दर्भ में अभी हम एक न्यूनतम कार्यक्रम चला रहे हैं। उस कार्यक्रम का एक अंग है—पंचसूत्री अणुव्रत अभियान। लोक जीवन से निकटता के साथ जुड़ी हुई कुछ समस्याओं को ध्यान में रखकर ही उन सूत्रों का निर्धारण किया गया है। संक्षेप में उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. मद्यपान निषेध

२. मिलावट निरोध
३. दहेज उन्मूलन
४. अस्पृश्यता निवारण
५. भावात्मक एकता।

इन सूत्रों को आदर्श मानकर चलने वाला समाज व्यसनों से आक्रान्त नहीं होगा, राष्ट्रीय अपराध नहीं करेगा, रूढ़िवादी नहीं रहेगा, अन्धविश्वासी नहीं रहेगा और मानवीय मूल्यों की अवहेलना नहीं करेगा। वह जागृत होगा, जीवित होगा, विवेकी होगा और सदाचारी होगा। मेवाड़ के लोग इन आदर्शों का अंकन कर अपने जीवन में उतारें, यही अपेक्षा है।

आचार्यश्री का एक-एक शब्द कानों की राह लोगों के दिल तक पहुंच रहा था। उनका मन आन्दोलित हो रहा था। जिन्दगी के हर मोर्चे पर खुलने वाले व्यावसायिक स्वार्थ से ऊपर उठकर वे परमार्थ को पहचानने के लिए बेचैन हो उठे थे। काश ! उनकी यह बेचैनी स्थिर होकर उन्हें अपने जीवन का रास्ता बदलने के लिए विवश कर दे।

मेवाड़ के प्रवेश द्वार टाडगढ़ की धरती पर वह प्रथम कार्यक्रम पूरी शालीनता और संजीदगी के साथ पांच वजे तक चलता रहा। समूचे मेवाड़ से समागत श्रद्धालु लोगों ने ओज आहार की भांति विशेप सम्वल प्राप्त किया। उसका प्रभाव पूरी मेवाड़-यात्रा में यत्र-तत्र दृष्टिगत होता रहा।

टाडगढ़ का इतिहास

राजस्थान में अर्वुदपर्वतमाला या अरावली पर्वत श्रेणियां भौगोलिक और प्राकृतिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इन पर्वतश्रेणियों के बीच में अनेक गांव बसे हैं, टाडगढ़ भी उनमें एक है। टाडगढ़ का यह प्रदेश किसी समय एक जंगल था। वहां जंगली पशुओं का निवास था। पर मनुष्य जाति का कोई अस्तित्व नहीं था। उस धरती पर मानव के प्रथम पद-चिह्न तव अंकित हुए, जव निकटवर्ती क्षेत्र मारवाड़ या मेवाड़ से कुछ यायावर पशुपालक अपने पशुओं के लिए आहार की खोज में वहां पहुंचे। वे शायद वनजारे या गूजर जाति के लोग थे। उस जगल में घास, पानी आदि की सुविधा देख वे नियमित रूप से पशुओं को चराने लगे। धीरे-धीरे वहां के वातावरण से परिचित होकर उन्होंने मेड़ लगाकर कुछ बाड़े वना लिये और लगातार कई-कई दिनों तक वहां रहने लगे। उन पशुपालकों के मुखिया का नाम था 'वरसाजी। उसी के नाम पर उन वाड़ों का नाम रखा गया वरसावाड़ा। टाडगढ़ का प्राचीन नाम यही मिलता है।

कालान्तर में वहां रावत जाति की प्रभुसत्ता स्थापित हो गई, जो पृथ्वीराज

चौहान की वंशज कहलाती है। आज से लगभग चार शताब्दी पहले इस जाति का प्रमुख व्यवसाय था डाके डालना, लूट-खसोट करना आदि। रावत जाति अपनी खूंखारता और रणकौशल के लिए प्रसिद्ध थी। उसके द्वारा डाले गए डाके लोक कथाओं के रूप में याद किए जाते हैं। मगरा मेरवाड़ा की इस खूंखार जाति के अत्याचारों के कारण जोधपुर और उदयपुर रियासत वहां प्रशासनात्मक कार्यवाही करने में अक्षम हो गई। शाह शिवजीरामजी पीतलिया के हाथ से लिखी डायरी के अनुसार वि० सं० १८७६ में उदयपुर के महाराणा ने आसीन्द के ठाकुर साहव को दिल्ली में अंग्रेजों के पास भेजा। अंग्रेजों ने अपने सत्ता संचालन केन्द्र कलकत्ता से संपर्क किया। वहां से कर्नल टाड नामक अंग्रेज को भेजा गया। उसके नेतृत्व में अंग्रेज सेना ने वहां के मूल निवासियों पर आक्रमण किया। वरावर गांव के पास दोनों पक्षों में जमकर लड़ाई हुई। आखिर रावत लोगों ने अंग्रेज सरकार के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उसके वाद कर्नल टाड ने अपने नाम के आधार पर उस वस्ती को टाडगढ नाम दे दिया। कर्नल टाड ने उस क्षेत्र में भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि कई दृष्टियों से अच्छा विकास करवाया। उसके वाद रावत जाति भी अपनी खूंखारता को छोड़कर एक सभ्य और शिष्ट जाति वन गई, ऐसा माना जाता है।

टॉडगढ़ में तेरापंथ

टाडगढ़ में तेरापंथ का प्रभाव कव से पड़ा, इस संवंध में कोई लिखित इतिहास नहीं है। स्थानीय वुजुर्ग लोगों के अनुसार तेरापंथ के उदयकाल की अर्धशताब्दी में ही वहां तेरापंथ के प्रति श्रद्धा के अंकुर फूट पड़े थे। वि० सं० १९३३ में वहां मुनि छोटमलजी आदि तीन संत आए और लगभग पचीस दिन रहे। इतने छोटे गांव में उस समय पचीस दिन रहने का अर्थ उस क्षेत्र में तेरापंथ की श्रद्धा की परिपक्वता ही हो सकती है। वि० सं० १९४८ में वहां साध्वी लालाजी के चातुर्मास का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार तेरापंथ के पांचवें आचार्य श्री मघवागणी के समय में वहां चातुर्मास का क्रम प्रारम्भ हो गया था, किन्तु वहुत वर्षों तक आचार्यों का वहां आगमन नहीं हुआ। सवसे पहले वि० सं० १९७२ के वैशाख महीने में वहां अष्टमाचार्य श्री कालूगणी का पदार्पण हुआ। कालूगणी ने वहां की प्राकृतिक छटा का अंकन करते हुए कहा था—यह गांव टाडगढ़ नहीं ठाटगढ़ है। श्रद्धेय कालूगणी के मुंह से निकले हुए वे शब्द आज भी क्षेत्र के ठाटवाट की कहानी कह रहे हैं।

तीन दशक वाद

वि० सं० २०१० (सन् १९५३) में तेरापंथ के नवम अधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास जोधपुर था। चातुर्मास पूरा होने के वाद राणावास मर्यादा महोत्सव कर आप १५ जनवरी १९५४ को टाडगढ़ पधारे। उस समय वहां अणुव्रत विचार परिषद का एक विशेष आयोजन हुआ। उस आयोजन में अजमेर राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय अपने मंत्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्यों के साथ उपस्थित थे। राज्य के गृहमंत्री श्री वालकृष्णण कौल, शिक्षामंत्री श्री वृजमोहन शर्मा, सांसद श्री जगन्नाथ शर्मा आदि अनेक विचारशील व्यक्ति अणुव्रत दर्शन से प्रभावित हुए। टाडगढ़ उस समय अणुव्रत विचार चर्चा का अच्छा केन्द्र वन गया था। स्थानीय लोगों को आज भी उस आयोजन की स्मृति है।

सन् ५४ के वाद वर्ष पर वर्ष निकलते गए। आचार्यश्री का टाडगढ़ आना नहीं हुआ। वर्ष दशक में वदले और एक-एक कर तीन दशक पूरे हो गए। इसके वाद आचार्यप्रवर तीन वार मेवाड़ में आए, पर टाडगढ़ छूटता गया। सन् १९८२ में राणावास चातुर्मास के वाद नाथद्वारा मर्यादा महोत्सव के लिए मेवाड़ आना हुआ। उस समय टाडगढ़ क्षेत्र के स्पर्श का क्रम वनता-वनता छूट गया। कारण आचार्यवर टाडगढ़ का स्वतंत्र इतिहास वनाना चाहते थे। उस यात्रा में मेवाड़ प्रदेश का इतिहास कामलीघाट से जुड़ना निश्चित था। उसके वाद टाडगढ़ का कार्यक्रम वनता तो यात्रा पथ में आए अन्य गांवों, कस्वों की भांति उसका भी नाम अंकित हो जाता, पर वह अपनी व्यापक पहचान नहीं वना पाता। इस वार अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में मेवाड़ यात्रा का प्रवेशद्वार वनने के कारण वहां पूरे मेवाड़ क्षेत्र से आचार्यश्री के स्वागत-अभिनन्दन का वड़ा आयोजन आयोजित हुआ। उस आयोजन की तैयारी में कुछ पोस्टर छपे, जिनमें वड़े अक्षरों में 'टाडगढ़ चलो' प्रिण्ट किया गया। देश भर में वे पोस्टर भेजे गए। वसों, ट्रकों और दीवारों पर उन्हें चिपकाया गया। इस प्रकार दो हजार की आवादी वाला एक छोटा-सा गांव उभर कर सवके सामने आ गया। टाडगढ़ की यह प्रसिद्धि उसकी नियति नहीं थी। उसे गुरु-कृपा का वरदान मिला, इसलिए यह सव संभव हो सका।

साहित्य-संस्थान

टाडगढ़ में आचार्यश्री का प्रवास स्थानीय तेरापंथ सभा-भवन में हुआ। तीन दशक पहले वहां समाज का कोई भवन नहीं था। उस समाज में वैसा वातावरण भी नहीं था। समाज के प्रमुख लोगों ने आधुनिक सन्दर्भों में समाज को गतिशील

बनाने के लिए कुछ नयी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ किया। उन प्रवृत्तियों के संचालन हेतु स्थान की अपेक्षा हुई और गांव-गांव में समाज के अपने भवन खड़े हो गए। नयी प्रवृत्तियों और नयी संस्थाओं ने नये कार्यकर्ताओं का निर्माण किया। टाडगढ़ में भी जिम्मेवार बुजुर्ग श्रावकों के प्रोत्साहन से कुछ नये युवा कार्यकर्ता आगे आए। उनके मन में काम करने की ललक जगी। उनके मन में तेरापंथ धर्मसंघ के साहित्य के प्रति रुझान था। उन्होंने उस साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने के लिए साहित्य-संस्थान की कल्पना की। इस कल्पना के पीछे एक निश्चित उद्देश्य था—प्रकाशन और पाठक के बीच की दूरी को समाप्त करना। सन्, १९६८ में प्रसूत इस कल्पना ने प्रायोगिकी के रूप में आकार लिया। १९ अक्टूबर १९७१ को एक सौ रुपयों की पुस्तकों से कार्य का प्रारम्भ हुआ। इसके बाद प्रकाशकों एवं स्कूल, कालेज व पुस्तकालयों के अधिकृत व्यक्तियों से संपर्क का सिलसिला शुरू हो गया। साहित्य-संस्थान को गांव-गांव में पहुंचकर साहित्य की सेवा करनी थी। इसके लिए एक वाहन की अपेक्षा हुई। वाहन उपलब्ध हो गया। उसका विधिवत प्रयोग करने के लिए 'साहित्य-संस्थान ने आचार्यश्री तुलसी के ५१वें दीक्षा दिवस पर भगवान् महावीर चल साहित्य सेवा का शुभारम्भ किया। इसका उद्घाटन सन् १९७५ में जैन विश्व भारती के प्रांगण में केन्द्रीय शिक्षा राज्य मंत्री श्री डी० पी० यादव ने किया। इस सेवा के अन्तर्गत आज भी गांव-गांव, घर-घर साहित्य पहुंचाया जाता है।

साहित्य के कार्य में रत कार्यकर्ताओं के मन में साहित्यिक पुस्तकों के संग्रह का लोभ जगा और उन्होंने भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर भगवान् महावीर ग्रंथागार' स्थापित कर लिया। प्रारम्भ में उस ग्रंथागार में २५०० पुस्तकें संगृहीत करने का लक्ष्य था, किन्तु उस कार्य में प्राप्त सफलता ने लक्ष्य को विस्तार दिया और वर्तमान में वहां ५००० से भी अधिक ग्रन्थों का संग्रह हो गया है। पुस्तक-संग्रह का क्रम भी आगे बढ़ रहा है।

साहित्य के वितरण और संग्रह के सिलसिले में साहित्य संस्थान के कार्यकर्ताओं का साहित्य निर्माताओं और शोधार्थियों से भी संपर्क हुआ। उनके लिए सामग्री संचय के उद्देश्य से 'पुरा संकलन संकाय' विभाग की व्यवस्था हुई। उसके अन्तर्गत पत्र-पत्रिकाओं, अखबारी कतरनों, पांडुलिपियों, हस्तलिखित ग्रन्थों, चित्रों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया जा रहा है। अब तक २०० फाइलें संग्रहीत हो चुकी हैं।

साहित्य-संस्थान के उत्साही कार्यकर्ताओं ने जन-जीवन में साहित्य के प्रति अभिरुचि जगाने के लिए साहित्य प्रदर्शनी लगाने का क्रम शुरू किया। उन्होंने पहली बार १ जुलाई १९७७ में प्रयोग के रूप में छोटी-सी प्रदर्शनी लगाई, उसमें सफलता मिली तो उनका उत्साह बढ़ा और सन् १९८१ में बाहुबली

महामस्तकाभिषेक के अवसर पर श्रवण बेलगोला में एक वृहत् और सुव्यवस्थित प्रदर्शनी लगाई। प्रदर्शनी का माडल भी उन्होंने बड़ी सूझबूझ के साथ तैयार किया। हजारों-हजारों लोगों ने उस प्रदर्शनी को देखा और अनेक प्रबुद्ध एवं विचारशील व्यक्तियों ने अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं। कुल मिलाकर उस प्रदर्शनी ने 'साहित्य संस्थान, टाडगढ़' को राष्ट्रीय ख्याति के छोर तक पहुंचा दिया।

प्रज्ञाशिखर

साहित्य संस्थान की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों को सुनियोजित रूप से चलाने और साहित्य सामग्री की सुरक्षा के लिए संस्था को एक भवन की अपेक्षा हुई। टाडगढ़ से संलग्न एक छोटी पहाड़ी पर कोई बंगला था, जो फूटा-बंगला नाम से पहचाना जाता था। लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व ईसाई मिशनरियों ने टाडगढ़ को अपना कार्यक्षेत्र बनाना चाहा था। सन् १८६३ में वहां ईसाई पादरी विलियम राब साहब के द्वारा वह बंगला बनवाया गया। वहां उनके साथ उनकी पत्नी डॉ० शील तथा मिस्टर केटेकिस्ट पोल भीषम आदि कई व्यक्ति थे। धर्म प्रचार और मानव सेवा के उद्देश्य से निर्मित उस बंगले में अनाथालय, स्कूल आदि प्रवृत्तियां चलने लगीं। विलियम राब ने इतनी प्रवृत्तियों के संचालन में कुछ कठिनाई महसूस की। उस समय उनकी शीर्ष संस्था ने ब्रिटेन से पादरी जेमसन को सन् १८७३ में टाडगढ़ भेजा। सन् १८७६ में पादरी विलियस राब बीमारी से आक्रान्त होकर इंग्लैण्ड चले गए। वे पांच वर्ष तक नहीं लौटे तब उस संस्था को ब्यावर स्थानान्तरित करना पड़ा और वह बंगला खाली हो गया।

उचित व्यवस्था और संभाल के अभाव में वह बंगला खण्डहर के रूप में बदलता गया। कुछ लोग उसे भूत बंगला कहते और कुछ फूटाबंगला। आखिर मिशन ने उस बंगले को बेचने का निर्णय लिया। बंगला बिका। जिन लोगों ने उसे खरीदा, वे भी उसका उपयोग नहीं कर सके। उन्हें टोह थी ऐसे व्यक्तियों की जो वहां शिक्षा, संस्कृति और सेवा का कार्य कर उस खंडहर बने बंगले को पुनः आबाद कर सकें। आखिर उनका साहित्य संस्थान के कार्यकर्ताओं से संपर्क हुआ और उन्होंने उक्त उम्मीद के साथ उस बंगले को बेच दिया।

साहित्य संस्थान के कार्यकर्ताओं ने उस खंडहर की मरम्मत और उसके परिसर की साफ-सफाई के बाद उस भवन का नाम दिया 'प्रज्ञा-शिखर।' १३ अक्टूबर १९८४ को प्राण संचरण समारोह के रूप में उस भवन का उद्घाटन हुआ और २६ जनवरी १९८५ को वहां 'भगवान् महावीर बाल मंदिर' नाम से एक के० जी० स्कूल प्रारम्भ कर दिया गया। इस संस्थान की कुछ और भी

योजनाएं हैं, जो भविष्य के गर्भ में हैं।

प्रज्ञाशिखर में जैन विद्या ८५

३ मार्च १९८५ को आचार्यवर ३१ वर्ष की लम्बी अवधि के बाद टाडगढ़ पधारे। वहां आचार्यवर के स्वागत में एक ओर श्रद्धा पगे बोल मुखर हो रहे थे तो दूसरी ओर त्याग-प्रत्याख्यान की फेहरिस्त बन रही थी। उसी क्रम में साहित्य-संस्थान ने जैन विद्या १९८५ प्रदर्शनी का आयोजन किया। प्रज्ञा शिखर के छतविहीन कमरों पर शामियानों की छत डालकर प्रदर्शनी के आयोजकों ने उसे एक आकर्षक रूप दे दिया। जैन विद्या ८५ पर प्रथम दृष्टिपात करने के लिए आचार्यवर को निवेदन किया गया। निवेदन स्वीकृत हुआ। दूधालेश्वर से डाक बंगले पहुंचकर आचार्यवर ने थोड़ी देर विश्राम किया। उसके बाद समीपस्थ पहाड़ी पर बने प्रज्ञा-शिखर में जैन विद्या ८५ का निरीक्षण किया। प्रज्ञाशिखर के प्रांगण में उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—साहित्य संस्थान द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी पर पहला दृष्टिपात करने पर ऐसा लगा कि जिस व्यक्ति की प्रज्ञा जागृत हो जाती है, वह निकम्मी से निकम्मी वस्तु को उययोगी बना लेता है। चण्डीगढ़ में हमने भाई नेकचन्दजी द्वारा बनाए गए 'रोक गार्डन' को देखा था। कूड़े के ढेर और गलियों में यत्र-तत्र बिखरी फालतू चीजों को बटोरकर उसने वहां जिस कला का प्रदर्शन किया, विलक्षण है। वर्षों तक खण्डहर के रूप में रहा यह फूटा बंगला भी आज 'देवरमण' स्थान जैसा प्रतीत हो रहा है। यहां की प्राकृतिक सुषमा को देखकर मैं प्रभावित हुआ हूं। प्रज्ञाशिखर के भीतर सलीके से सजाई गई पुस्तकों को देखकर पढ़ने की इच्छा हुई, पर अभी समय नहीं है। भीतर पुस्तकों का प्रदर्शन और बाहर मेवाड़ का प्रदर्शन, दोनों ही आकर्षक हैं। मेवाड़ की पगडंडियों का भी एक अलग ही सीन है। मैं तो अपने साधु-साध्वियों से बहुत बार कहता हूं कि किसी को पहाड़ी सीन देखना हो, नदी-नाले देखने हों, लूओं से बचाव करना हो, वे मेवाड़ में जाएं। मेवाड़ की धरती पर पहुंचकर मैं भी प्रसन्न हूं। मुझे ऐसी प्रतीति हो रही है कि इस बार मेवाड़ में कुछ अनोखा होना है।

तेरापंथ बुक ट्रस्ट की प्रतिष्ठा पाना है

३ मार्च को आचार्यवर ने साहित्य संस्थान और प्रदर्शनी पर केवल दृष्टिपात ही किया था। उसकी विशद जानकारी पाने के लिए ५ मार्च को प्रातः आचार्यश्री, युवाचार्यश्री कुछ साधु-साध्वियों के साथ वहां पहुंचे। सबसे पहले आपने

साहित्य संस्थान की प्रवृत्तियों—भगवान् महावीर, चल साहित्य सेवा, भगवान् महावीर ग्रंथालय, पुरा संकलन संकाय, भगवान् महावीर वाल मंदिर आदि का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। प्रदर्शनी का अवलोकन किया। उसके बाद प्रज्ञा शिखर के मध्यवर्ती कक्ष में एक अनायोजित अनौपचारिक लघु संगोष्ठी को सम्बोधित किया। संगोष्ठी के प्रारम्भ में साहित्य संस्थान के सहनिदेशक श्री भीकमचन्द कोठारी ने साहित्य-संस्थान की कथा-व्यथा को बड़े मार्मिक और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुति दी।

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—साहित्य संस्थान नाम का विकास होना जरूरी है। यहां रिसर्च की दुर्लभ सामग्री उपलब्ध है। इस बात को ध्यान में रखकर इसे 'तेरापंथ शोध संस्थान' का रूप दिया जा सकता है। यहां स्वतंत्र रूप से एक तेरापंथ कक्ष की कल्पना की जाए। जिसमें तेरापंथ से संबंधित समग्र जानकारी प्राप्त हो सके। साहित्य-संस्थान का रूप देखकर इसके बारे में काफी संभावनाएं उजागर हुई हैं। प्रतीत यह होता है कि समाज के सामने इस रूप में इसकी प्रस्तुति नहीं हो पायी। संभव है, अमृत महोत्सव के अवसर पर यह नया रूप सबके सामने आए। उस समय नयी कल्पना के साथ इस प्रदर्शनी का आयोजन हो तो लाखों लोगों को एक दृष्टि मिल सकती है।

युवाचार्यश्री ने आगे कहा—जैसे नेशनल बुक ट्रस्ट भारत सरकार की संस्था है, वैसे ही यह संस्थान तेरापंथ बुक ट्रस्ट की प्रतिष्ठा प्राप्त करे। यह कल्पना भी ध्यान में रहनी चाहिए कि जैन साहित्य की प्रदर्शनी विदेशों में भी आयोजित की जा सकती है। इसके लिए कल्पनाशील व्यक्तियों की जरूरत है, जो नये परिवेश में सोच सकें और काम को आगे बढ़ा सकें।

कल्पनाशील व्यक्ति ही संस्थान

आचार्यवर ने साहित्य संस्थान की प्रवृत्तियों तथा प्रदर्शनी की जानकारी प्राप्त कर अपने मंगल संदेश में कहा—कान और आंख में चार अंगुल का अन्तर है, पर वह सैकड़ों योजनों का अन्तर हो सकता है। यह कहावत आज सही प्रमाणित हो रही है। हमने फूटे बंगले का नाम सुना, प्रज्ञाशिखर का नाम सुना। इसे देखने से जो ज्ञान हुआ है, वह सुनने से नहीं हुआ। देखने पर भी तब तक पूरा ज्ञान नहीं हुआ, जब तक इन्होंने (भीकमचन्द कोठारी) विस्तार से इसके बारे में नहीं बताया। केवल सुनने या केवल देखने से हमने जो तत्त्व नहीं पाया, आज आंख और कान का साथ होने से पाया।

मेरा यह अभिमत है कि कल्पनाशील व्यक्ति ही संस्थान है। विधान, फाइलें स्थान आदि संस्थान नहीं हैं। वे तो उसके उपकरण मात्र हैं। कल्पनाशील

और कर्मशील व्यक्तियों के अभाव में कोई भी संस्थान दीर्घजीवी नहीं हो सकता। यदि कोई संस्थान दीर्घकाल तक टिक भी जाता है, तो समाज या देश को उपकृत नहीं कर सकता।

मैं अब तक अपने समाज में कल्पनाशील व्यक्तियों की कमी अनुभव कर रहा था। पर अब ऐसा लगता है कि समाज में किसी प्रकार की कमी नहीं है। कमी है तो एक ही कि एक समर्थ व्यक्ति अपने समान दूसरे व्यक्ति को पैदा करता है या नहीं? इस कमी की पूर्ति हो जाए तो फिर किसी कमी का प्रश्न ही नहीं उठता। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जिस व्यक्ति की इच्छाशक्ति या संकल्पशक्ति पुष्ट होती है, उसकी कल्पना से प्रसूत काम को रोकने की क्षमता किसी में नहीं है।

साहित्य संस्थान की उस संगोष्ठी में संस्थान के निदेशक श्री लालचन्द कोठारी, सहनिदेशक श्री भीकमचन्द कोठारी, उपनिदेशक श्री हिम्मतलाल कोठारी, परामर्शक श्री सोहनराज बोहरा, संरक्षक, कार्यकर्ता तथा स्थानीय लोग उपस्थित थे। आचार्यवर के उद्‌बोधन और मार्ग-दर्शन से सबको नयी प्रेरणा मिली। संस्थान के अधिकृत व्यक्तियों ने संस्थान के विशेष विकास हेतु समाज के सहयोग की अपेक्षा की। उन्होंने अपनी अपेक्षाओं को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुति देते हुए कहा—

साहित्य संस्थान को तेरापंथ के अखिल भारतीय संस्थान के रूप में मान्यता दी जाए।

● तेरापंथ के सभी साहित्य-प्रकाशकों द्वारा साहित्य संस्थान के विक्रय वापसी शर्त पर विक्रय हेतु साहित्य उपलब्ध कराने की नीति तय की जाए।

● साहित्य संस्थान की गतिविधियों के संचालन हेतु केन्द्रीय स्तर पर अनुदान दिलाया जाए।

● विज्ञप्ति, जैनभारती, अणुव्रत, युवादृष्टि, प्रेक्षा, तुलसीप्रज्ञा, नारीलोक आदि संघीय पत्र-पत्रिकाएं संग्रह हेतु साहित्य-संस्थान को निःशुल्क उपलब्ध कराने की नीति तय की जाए।

● आचार्यश्री को जो साहित्य भेंट में प्राप्त होता है, उसे प्रसाद-रूप में साहित्य संस्थान के भगवान् महावीर ग्रन्थालय को उपलब्ध कराने की नीति तय की जाए।

● साहित्य संस्थान को तेरापंथ के केन्द्रीय संग्रहालय के रूप में विकसित किया जाए। यहां हमारे धर्मसंघ की प्राचीन पाण्डुलिपियों की माइक्रोफिल्म उपलब्ध कराई जाए ताकि साहित्य संस्थान शोधार्थियों को उपलब्ध करा सके।

● धर्मसंघ से संबंधित विशेष सामग्री संग्रह के लिए यहां भेजने की व्यवस्था हो।

● धर्मसंघ के साधु-साध्वियों, समणियों और मुमुक्षु बहनों को यहां सलक्ष्य भेजा जाए।

- जैन विद्या प्रदर्शनी के लिए विशेष संसाधन उपलब्ध कराए जाएं।

तेरापंथ समाज से साहित्य संस्थान की ये अपेक्षाएं बहुत बड़ी अपेक्षाएं नहीं हैं। समाज भी इतना समर्थ है कि वह अपनी किसी भी संस्था को विकसित कर सकता है। पर यह तभी संभव है, जब समाज और संस्था में पूरा तालमेल स्थापित हो। एक-दूसरे को विकास और गौरव प्रदान करके ही समाज और संस्थान एक-दूसरे के लिए काम कर सकते हैं।

रचनात्मक दिशा

आचार्यवर अपनी मेवाड़ यात्रा में कुछ ऐसा काम करना चाहते हैं, जो समकालीन और भावी दोनों पीढ़ियों को लाभ पहुंचाएं। इस दृष्टि से अनेक कार्यक्रमों में एक उपक्रम था—परिवार, समाज और सभा-संस्थाओं के विवादों को निपटाना। क्योंकि इन पारस्परिक विवादों से वर्तमान के साथ भविष्य भी धुंधला बन जाता है। मेवाड़यात्रा का पहला क्षेत्र टाडगढ़ था। वहां पिछले कुछ वर्षों से तेरापंथ ट्रस्ट को लेकर समाज के लोगों में थोड़ा-सा विवाद था। प्रज्ञाशिखर का मामला भी विवादास्पद बन रहा था। आचार्यप्रवर की प्रेरणा से दोनों पक्षों के लोगों ने संतों के सान्निध्य में बैठकर अपनी बात सुनाई। भविष्य के लिए चिन्तन किया और गुरुदेव के चरणों में बैठकर आपसी विवाद का अन्त कर लिया। प्रज्ञाशिखर की समस्या पूरी तरह से नहीं सुलझी, पर बातचीत करने से दोनों पक्षों की काफी भ्रान्तियों का निरसन हो गया। आचार्यश्री के मेवाड़ प्रवास में ही प्रज्ञाशिखर का झमेला भी समाप्त हो जाए, इस दिशा में प्रयत्न करने की जरूरत है।

आस्था का चमत्कार

टाडगढ़ के लालचन्द कोठारी के पिता गुलाबचन्द कोठारी देव, गुरु और धर्म के प्रति सहज श्रद्धावान श्रावक हैं। आचार्यवर के टाडगढ़ पहुंचने से पहले वे पदयात्रा की उपासना करने नीमली आए। उनके पांवों में एक्जीमा था। रास्ते में पैदल चलने से एक्जीमा और पांवों में दर्द बढ़ गया। फिर भी वे उपासना छोड़कर नहीं गए। टाडगढ़ पहुंचने के बाद उन्होंने आचार्यवर की चरणधूलि प्राप्त की। गहरी श्रद्धा के साथ उन्होंने चरणधूलि का प्रयोग करना शुरू किया। तीन दिन में दर्द ठीक हो गया। एक्जीमा ठीक हो गया और उनकी आस्था घनीभूत हो गई। ऐसे एक नहीं, अनेक प्रसंग घटित होते हैं, जो सुनने में आश्चर्य जैसे लगते हैं, किन्तु उनकी पृष्ठभूमि में आस्था का बल रहता है। आस्था के सहारे व्यक्ति बड़े से बड़े

संकट-सागर को सहजता से तर लेता है।

पांच सौ परिवारों की बस्ती वाले टाडगढ़ में इकहत्तर परिवार तेरापंथी हैं। गांव में तेरापंथ का वर्चस्व है। वर्तमान में वहां के सरपंच भी तेरापंथी (भीकमचंद कोठारी) हैं। टाडगढ़ पंचायत में आसपास की ढाणियां भी सम्मिलित हैं। इन सबको मिलाने से वहां की आबादी सात-आठ हजार तक पहुंच जाती है। आचार्य प्रवर के प्रवास काल में सभी वर्गों के लोगों ने बिना किसी भेदभाव के संत समागम का लाभ उठाया।

मेवाड़ में होली मनाने की परम्परा

आचार्यवर के प्रवास काल में वहां होली का त्योहार आ गया। जैन संस्कृति में 'होलिका पर्व' जैसा कोई पर्व नहीं है। चातुर्मास के बाद चार मास के समय पूरा होने पर फाल्गुनी पक्खी का दिन आता है, इस दृष्टि से यह फाल्गुनी चातुर्मासी कहलाती है। इससे अतिरिक्त इस दिन का कोई सांस्कृतिक मूल्य नहीं है। किन्तु भारतीय लोकजीवन में दीपावली की भांति होली भी एक व्यापक पर्व के रूप में प्रचलित हो गया है। इसलिए अधिकांश जैन भी इस अवसर पर होने वाले आमोद-प्रमोद में सम्मिलित हो जाते हैं।

होलिका दहन की भी अपनी एक परम्परा है। टाडगढ़, बरार आदि क्षेत्रों में सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार से होलिका-दहन होता है। सामूहिक दहन का स्थान सार्वजनिक होता है। वहां होली का 'डांडा' एक महीने पूर्व ही गाड़ दिया जाता है। टाडगढ़ में भी ऐसा ही होता था। किसी समय पड़ोसी गांव के लोगों ने उसको चुरा लिया। उसके बाद एक महीने पहले 'डांडा' गाड़ने की परम्परा वहां नहीं रही। स्थानीय तेरापंथी श्रावक इस सन्दर्भ को धार्मिक दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए कहते हैं—एक महीने पहले 'डांडा' गाड़ देने से वहां पक्षी आकर अपने घोंसले बना लेते हैं। घोंसलों में वे अंडे भी देते हैं। होलिका दहन के साथ उनका भी दहन होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से वे पहले 'डांडा' गाड़ने की परम्परा को छोड़ चुके हैं।

भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में होली मनाई जाती है। मेवाड़ में उसे मनाने का ढंग कुछ दूसरा है। मेवाड़ में रावत जाति के लोग होली के दिन एक सप्ताह पूर्व ही टोलियां बनाकर गांवों में जाते हैं और चंग बजाते हुए फागुन के गीत गाते हैं। सप्ताह के अंतिम दिन पुरुष लोग आखेट (शिकार) खेलने जंगल में जाते हैं। शिकार खेलने को वे 'एड़ा' कहकर पुकारते हैं। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से मूल शब्द है आखेटक। आखेटक का अपभ्रंश आहेडक, आहेड़ा, हेडा और एड़ा हो जाता है। शिकार खेलने का यह क्रम होली के सात दिन तक चलता है। शिकार खेलते हैं

खरगोश और तीतर-बटेर का। पुरुष लोग शिकार खेलने जाते हैं। पीछे से गांव की महिलाएं एकत्रित होकर नाचती-गाती हुई किसी सार्वजनिक स्थान पर चली जाती हैं। वहां वे आमोद-प्रमोद करती हैं, अश्लील गीत गाती हैं और अलग-अलग टोलियों में मनोरंजन करती हैं। जिस समय महिलाओं का नाच-गान होता है, गांव में कोई पुरुष नहीं रह सकता। पन्द्रह वर्ष से अधिक उम्र के सब पुरुषों को उस दिन गांव छोड़कर बाहर जाना पड़ता है।

टाडगढ़ में न शिकार की परम्परा है और न बहनों के नाच-गान की। वहां कुछ समझदार लोगों ने रावतों को समझाया—आप लोग अपनी बहादुरी दिखाने के लिए शिकार करते हैं। यदि आप शेर का शिकार करें, तब तो बहादुरी की बात है। खरगोश और तीतर-बटेर को मारने में कौन-सी बहादुरी है? दूसरी बात—आप लोग दिन भर जंगलों में घूमते हैं, तब कहीं एक-दो खरगोश मिल पाते हैं। इससे अच्छा तरीका यह है कि हम उस दिन आपको गुड़ की भेली देंगे। आप गुड़ बांटो, खाओ और खुशी मनाओ। रावत लोगों ने महाजनों की इस बात को आदर दिया। तब से वहां पारस्परिक रूप से होली के अवसर पर शिकार बन्द है और गांव का चौक, जो अब महावीर चौक के नाम से प्रसिद्ध है, सामूहिक मांसाहार की प्रवृत्ति से मुक्त हो गया है।

आपको मेरे घर चलना होगा

आचार्यवर टाडगढ़ से प्रस्थान कर बरार पधार रहे थे। रास्ते में एक छोटा-सा गांव है तेनीवाड़ा। आचार्यवर उधर से आगे बढ़ रहे थे कि एक अध्यापक दौड़ता हुआ आया और बोला—आचार्यजी! आपको मेरे घर चलना होगा। आचार्यवर की प्रश्नायित निगाहें अध्यापक पर केन्द्रित हो गईं। आचार्यश्री के साथ पदयात्रा कर रहे भाइयों ने पूछा—क्यों? क्या बात है? आप आचार्यश्री को अपने घर किसलिए ले जाना चाहते हैं? अध्यापक ने पचीस वर्ष पहले की स्मृतियों को सहलाते हुए कहा—उस समय मैं विद्यार्थी था। एक बार मैंने आचार्यजी का प्रवचन सुना। आपके अणुव्रत के नियम की बात मुझे बहुत अच्छी लगी। मैंने उसी दिन अणुव्रत स्वीकार कर लिये और आज तक पूरी जागरूकता के साथ मैं उनका पालन कर रहा हूं। पचीस वर्षों से मैं आपको गुरु मानकर आपके उपदेशानुसार चल रहा हूं। इस स्थिति में आपको भी मेरा घर पावन करना होगा।

आचार्यवर ने अध्यापक के हृदय में घनीभूत आस्था की मनुहार स्वीकार कर उसे कृतार्थ कर दिया। यह एक छोटा-सा प्रसंग उन सैंकड़ों-हजारों प्रसंगों का साक्षी है, जिनमें आचार्यवर के साक्षात्कार या प्रेरणा से प्रेरित होकर कुछ लोग अणुव्रती बनते हैं, कुछ लोग व्यसन-मुक्त होते हैं और कुछ लोग नैतिक मूल्यों के

प्रति लड़खड़ाती हुई अपनी आस्था को सहारा देते हैं। ये लोग जन्मना जैन, तेरापंथी या धार्मिक भले ही न हों, किन्तु कर्म से धार्मिक बनकर आचार्यश्री के सहज अनुयायी बन जाते हैं।

बरार के दो दिन

टाडगढ़ से आठ किलोमीटर की दूरी पर एक गांव है—बरार। टाडगढ़ अजमेर जिले में है और बरार है उदयपुर जिले में। होली के दूसरे दिन 'छारडी' के दिन आठ मार्च को आचार्यवर ने बरार के लिए प्रस्थान किया। नेशनल हाई-वे से जुड़ा हुआ गांव बरार आठ हजार की आबादी वाला क्षेत्र है। वहां बावन परिवार तेरापंथी हैं पर सब लोग गांव में नहीं रहते। प्रायः सभी परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, किन्तु क्षेत्र में उनका प्रभाव बहुत अधिक नहीं है।

गांव के मध्यवर्ती चौक में आचार्यश्री का प्रवचन हुआ और उसी चौक के एक मकान में प्रवास की व्यवस्था की गयी। प्रवचन संपन्न होने के बाद आचार्यवर मकान में पधार गये। स्थानीय लोगों में से कुछ भाइयों ने आकर आचार्यश्री से निवेदन किया—मध्याह्न के समय आपको गांव से बाहर ठहरना होगा। क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में बोले—हमारे यहां आज के दिन रावत लोग शिकार पर जाते हैं और महिलाएं इस चौक में इकट्ठी होकर अश्लील नृत्य करेंगी। पास खड़े संतों ने पूछा—एक दिन के लिए वह नृत्य बन्द नहीं हो सकता क्या? गांव वाले बोले—हम कल से उनको समझा रहे हैं, पर वे किसी मूल्य पर हमारी बात मानने के लिए तैयार नहीं हो रही हैं। आखिर मध्याह्न में आचार्यवर वहां से प्रस्थान कर गांव के एक छोर पर बने श्री पुखराजजी गन्ना के मकान में पधार गये। फिर दोनों दिन प्रवास वहीं हुआ। मध्याह्न-कालीन व्याख्यान भी गांव के बाहर स्कूल में हुआ।

उस समय लगभग पांच सौ महिलाएं चौक में एकत्रित हुईं। महिलाएं वहां क्या करती हैं? इस सम्बन्ध में जांच करने के लिए कुछ साध्वियों ने बहनों से संपर्क किया तो पता लगा कि गांव वालों ने जितना हौआ बना रखा है, वैसी कोई बात नहीं है। हमउम्र महिलाएं प्रतिबंध-मुक्त होकर हंसती-खेलती और गाती हैं। अपने गीतों में वे पुरुषों को गालियां भी गाती हैं। गालियां सुनकर गुस्सा होना और औरतों पर हाथ उठाना उन जातियों में अस्वाभाविक नहीं है, इसी दृष्टि से उस समय वहां पुरुषों का गमनागमन वर्जित रखा गया है। यदि उन महिलाओं को संस्कारित करने के लिए उन्हीं के बीच रहकर काम किया जाए तो इस प्रकार की अर्थहीन रूढ़ परंपराओं को भी बदला जा सकता है।

नौ मार्च को प्रातःकालीन प्रवचन चौक में था। स्थानीय लोग प्रवचन से

लाभान्वित हुए, पर आसपास के खेड़ों से आने वाले लोग होली के कारण वंचित रह गये। बरार के लोग आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथी हैं। पूर्ववर्ती सात आचार्यों में से किसी भी आचार्य के चरणस्पर्श का सौभाग्य उस क्षेत्र को नहीं मिला। वि० सं० १९९२ में पूज्य गुरुदेव कालूगणी का पादार्पण हुआ और आचार्यवर ने वि० सं० २०१० तथा २०४१ में दो बार इस क्षेत्र की संभाल की।

एक घटना : एक प्रेरणा

१० मार्च को आचार्यप्रवर का प्रवास-स्थल ठीकरवास था। बरार से ठीकरवास जाते समय कुछ समय के लिए आप आसन रुके। वहां सात तेरापंथी परिवार हैं। उन लोगों का आग्रह था कि गुरुदेव वहां एक दिन रुकें, पर यात्रा की मंजिल और मध्यवर्ती पड़ावों को देखते हुए ऐसा संभव नहीं हो सका। फिर भी वहां साधु-साध्वियों ने गोचरी की और आचार्यवर ने प्रवचन किया। कई गांववासियों ने व्यसन-मुक्त रहने का संकल्प स्वीकार किया।

आसन का भाई बाबूलाल एम० ए० है। अध्ययनशीलता और आधुनिकता में भी उसके धार्मिक संस्कार पुष्ट हैं। घटना कुछ समय पहले की है। तब तक उसने आर्थिक स्वावलम्बन की दृष्टि से न तो कहीं सर्विस की थी और न ही किसी व्यवसाय से जुड़ा था। उसकी शादी हो चुकी थी। त्योहार का दिन था। बाबूलाल की पत्नी पचास तोले सोने के आभूषण पहनकर अपने सबंधियों के यहां मिलने गयी। वहां से लौटकर उसने गहने उतारे और डिब्बे में बन्दकर अलमारी के भी ताला लगा दिया। सात दिन बाद आलमारी खोली तो वहां एक भी आभूषण नहीं था। एक बार तो गहरा आघात लगा। थोड़ी ही देर में वह संभल गयी। बाबूलाल घर आया तो उसे पता लगा। उसने दृढ़ मनोबल का परिचय देते हुए कहा— जो कुछ चला गया, वह मेरा नहीं था। यदि मेरा होता तो उसे कौन ले जा सकता था ? उस स्थिति में पति-पत्नी दोनों मजबूत रहे। दस मार्च को जब आचार्यवर आसन पधारे और आपने बाबूलाल के घर को पावन किया तब उसकी पत्नी बोली—गुरुदेव ! मैं अब सोना नहीं पहनूंगी। मुझे आप त्याग करवा दें। घर वालों ने कहा—थोड़ा सोना पहनना तो जरूरी है, दस तोला पहनने की छूट रख लो। उसकी इच्छा नहीं थी, फिर भी पारिवारिक जनों के आग्रह से उसने पांच तोला सोना पहनने की छूट रखी।

एक छोटी-सी घटना ने बहन के मन को सोने से इतना विरक्त कर दिया। पता नहीं कितने लोगों के जीवन में ऐसे प्रसंग घटित होते हैं। वे या तो दुःखी हो जाते हैं या पदार्थ के प्रति अपनी आसक्ति बढ़ा लेते हैं। किन्तु वस्तु की नश्वरता का बोध प्राप्त कर उससे आध्यात्मिक प्रेरणा लेने वाले कम ही लोग होते हैं।

गांव की आबादी दुगुनी हो गयी

दो हजार की आबादी वाला ठीकरवास दस मार्च को अपनी आबादी से दुगुना हो गया। आचार्यप्रवर के आगमन से आसपास के अनेक गांवों से सैंकड़ों-सैंकड़ों लोग वहां पहुंचे और विशाल प्रवचन पण्डाल भर गया। आचार्यवर के स्वागत में पांच युग्मों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। अभिनन्दन और स्वागत-भाषण के बाद आचार्यश्री ने उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित किया।

ठीकरवास में तीस परिवार तेरापंथी हैं और तीस ही स्थानकवासी। गांव छोटा है, पर मकान बड़े-बड़े हैं। व्यवसाय की दृष्टि से बड़े शहरों में रहने के कारण जीवन स्तर ऊंचा उठा है पर संस्कारों से विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। संपन्नता बढ़ी है, पर शिक्षा के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ है। वहां के तेरापंथी लोग आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथी हैं। पूर्ववर्ती आठ आचार्यों में से किसी भी आचार्य ने ठीकरवास का स्पर्श नहीं किया। आचार्यश्री तुलसी ने वि० सं० २०१० में पहली बार ठीकरवास को एक अवसर दिया। उस समय गांव बहुत अविकसित था। वि० सं० २०४१ में आचार्यवर ने दूसरी बार ठीकरवास का स्पर्श किया। इस बार गांव की स्थितियों में और वहां के निवासियों में भी बड़ा परिवर्तन परिलक्षित हुआ। लोगों में साम्प्रदायिक सद्भावना है और गांव का संगठन अच्छा है। वहां साधु-साध्वियों का चातुर्मास नहीं होता है। चातुर्मास पाने के लिए उनमें तड़प भी बहुत है। उन्होंने आचार्यवर से निवेदन भी किया, पर अभी तक सफलता नहीं मिली।

एक अनुश्रुति

ठीकरवास गांव का नामकरण कैसे हुआ? यह तो पता नहीं। पर इसके संबंध में एक लोककथा प्रचलित है। उसके अनुसार प्राचीन समय में ठीकरवास गांव ठाकुर फकीरसिंह के अधीन था। वहां एक बारठ आये। ठाकुर साहब शराब के नशे में धुत्त थे। उन्होंने बारठ जी की आवभगत नहीं की। ठकुरानियों की ओर से भी उनकी उपेक्षा हो गयी। बारठजी वहां से जाने लगे। ठाकुर साहब ने पूछा—बारठजी! ऐसे कैसे जा रहे हैं? बारठजी बोले—यहां ठहर कर करें भी क्या? ठाकुर साहब ने कहा—कुछ तो सुनाते जाओ। बारठजी जाते-जाते बोले—

भला ही ठाकर भली ठकुराण्यां, भली भली सब बात के स्यो।
आप रो नाम कद धारस्यो ठाकरां, गांव रो नाम कद हाथ में ले स्यो॥

ठाकुर साहब का नाम फकीरसिंह और गांव का नाम ठीकरवास था। बारठ जी के कथन का सार था कि आप भिखारी कब बनेंगे? ठाकुर साहब इस बात से

चौंके। उन्होंने बारठजी को आदर सहित बिठाया और स्वागत-सत्कार भी बहुत किया, पर अवसर तो उनके हाथ से निकल चुका था। ठाकुर साहब तो बाद में बदल गये, पर वह कविता नहीं बदली।

पहली बार आगमन

११ मार्च को आचार्यवर ने सांगावास और बग्गड़ दो क्षेत्रों का स्पर्श किया। बग्गड़ उस दिन की मंजिल थी। सांगावास में मध्यवर्ती पड़ाव था। वहां सात तेरापंथी परिवार रहते हैं। उनको तथा पूरे गांववासियों को जीवन-निर्माण की दिशा देने के लिए आचार्यवर लगभग एक घंटा गांव में रुके। सांगावास में समाज का भवन भी है। वहां नियमित रूप से धर्मोपासना होती रहे तो मकान का पूरा उपयोग हो सकता है। तृतीय आचार्य रायचंदजी के समय से वहां तेरापंथ के अनुयायी रहते हैं। आचार्यप्रवर ने पहली बार पधारकर वहां के श्रावक-समाज को प्रतिबोध दिया।

उदयपुर जिले का बग्गड़ गांव आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथ का छोटा-सा केन्द्र बना हुआ है। वहां वर्तमान में बीस परिवार तेरापंथी हैं। आचार्यश्री कालूगणी वि० सं० १९९२ में वहां पधारे थे। उसके बाद वि० सं० २०१० में आचार्यवर का पादार्पण हुआ। ३१ वर्ष के बाद सं० २०४१ में आचार्यवर ने एक बार फिर इस क्षेत्र को संभाला। गांव के लोग श्रद्धालु हैं। पर प्राचीन संस्कारों का व्यामोह भी काफी गहरा है। आचार्यवर के उद्बोधन से रूढ़ संस्कारों की परतें कुछ शिथिल तो हुई हैं, पर उन्हें पूरी तरह से उखाड़ने में अभी समय और श्रम लगेगा, ऐसा प्रतीत होता है।

घर-घर का स्पर्श

१२ मार्च को आचार्यवर का प्रवास-स्थल था काछबली। बग्गड़ और काछबली के बीच मात्र तीन किलोमीटर की दूरी है। किन्तु संत और सरिता कभी सीधी गति से नहीं चलते। आचार्यश्री उस दिन १० किलोमीटर चले, तब काछबली पहुंचे। बग्गड़ से छह किलोमीटर पर एक गांव है लाखागुड़ा। वहां आठ-दस तेरापंथी परिवार रहते हैं। उन्होंने अनुरोध किया—गुरुदेव ! आज हमारा गांव पवित्र नहीं होगा तो कभी नहीं होगा। भगवान् महावीर उदाई राजा का उद्धार करने सात सौ गव्यूत चले थे। हमारे यहां पधारने में तो आपको केवल सात किलोमीटर अधिक चलना होगा। भक्तों की विनम्र प्रार्थना सुन आचार्यवर का दिल द्रवित हुआ। आप उस गांव में ही नहीं पधारे, गांव के ऊबड़-खाबड़ और

चढ़ाई वाले रास्तों से घर-घर में पधारे। उसके बाद आपने प्रवचन किया। ग्रामीण लोगों में इतना प्रेम और भक्ति थी कि सूचना मिलते ही, वे काम छोड़कर दौड़-दौड़ कर आये और तन्मय होकर प्रवचन सुनने में लीन हो गये।

प्रवचन का टेक्स

आचार्यश्री ने वहां से प्रस्थान किया और स्थानीय स्कूल के अध्यापक श्रीरामसिंह चरणस्पर्श करने नजदीक आये। आचार्यप्रवर ने पूछा—लेट आये हो? वे बोले—नहीं, मैंने तो आपका पूरा प्रवचन सुना है। आचार्यवर ने मुसकराते हुए कहा—प्रवचन सुना है तो टेक्स भी चुकाना होगा। यह बात सुनते ही प्राध्यापक महोदय ने अपनी पॉकेट से सिगरेट का बण्डल निकालकर सड़क पर फेंकते हुए कहा—गुरुजी! यह लीजिए आपका टेक्स।

आचार्यवर वहां से कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि श्री डूंगरसिंह नाम के अध्यापक आये। आचार्यवर ने पूछा—मास्टर साहब! जीवन तो सही है। उन्होंने संकुचित भाव से उत्तर दिया—आपके सामने झूठ क्या बोलूं! थोड़ी पीने की आदत है। आचार्यश्री बोले—आप तो अध्यापक हैं। आप पीएंगे तो विद्यार्थियों पर क्या असर होगा? श्री डूंगरसिंह ने तत्काल हाथ जोड़े और शराब व मांस के सेवन का परित्याग कर दिया।

काछबली पहुंचने के बाद श्री चूनासिंह नामक अध्यापक ने दर्शन किये। आचार्यवर ने प्रश्न किया—भाई! कोई व्यसन तो नहीं है? वे बोले—महाराज! और कुछ तो नहीं, पर तम्बाकू अवश्य पीता हूं। आचार्यवर ने कहा—आप तो समझदार आदमी हैं। बच्चों का भविष्य आपके हाथ में है। आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते? आचार्यश्री के जादुई शब्द उनके दिल की तह को छू गये। वे तत्काल खड़े हुए और बोले—आप शक्ति देते रहें। आपकी साक्षी से मैं आज के बाद कभी तम्बाकू नहीं पीऊंगा।

जल्दबाजी मत करो

आचार्यवर लाखागुड़ा से चले। रास्ते में एक झोंपड़े में कुछ व्यक्ति बैठे थे। गांव का भूतपूर्व सरपंच भी वहां था। उसने बाहर आकर दर्शन किये। उसे देखते ही लगा कि वह पियक्कड़ है। खुमारी से भरी उसकी आंखें उसकी दुर्बलता की साक्षी दे रही थीं। उसे देखते ही लोगों ने कहा—आचार्यजी! आप इनकी शराब छुड़वा दीजिए। आचार्यश्री बोले—शराब या कोई भी बुराई कंठ पकड़कर नहीं छुड़वाई जा सकती। हमारा काम समझाने का है। आचार्यप्रवर ने सरपंच को

संबोधित कर कहा—आप सोचें तो सही, क्या कर रहे हैं ? क्या जिंदगी की धूल उड़ानी है ? सरपंच एक क्षण के लिए सोच में पड़ गया। दूसरे क्षण वह बोला—मुझे एक वर्ष के लिए शराब का त्याग करवा दीजिए। आचार्यवर ने उसे समझाते हुए कहा—जल्दबाजी मत करो। कहीं ऐसा न हो कि संकल्प लेकर तोड़ना पड़े। आप मन को स्थिर कर सोच लें। हम यहां से 'मेड़िया काछवली' जा रहे हैं। आप वहां पहुंचेंगे तो फिर बात करेंगे। सरपंच बोला—मैं जरूर मेड़िया आऊंगा। मद्यपान से होने वाले दुष्परिणामों को समझाते हुए कहा—

प्रमदा मदिरा लक्ष्मीः, विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
दृष्ट्वैवोन्मादयत्येका पीता चान्यातिसंग्रहात् ॥

—स्त्री, शराब और लक्ष्मी—ये तीन प्रकार की सुरा हैं। स्त्री को देखते ही उन्माद आता है। शराब पीने से उन्माद बढ़ता है और लक्ष्मी का संग्रह करने से उन्माद छा जाता है।

सरपंच का मन आंदोलित हुआ। वह जीवन भर के लिए शराब छोड़ने का साहस तो नहीं कर सका। किन्तु कुछ समय के लिए उसने शराब छोड़ दी। संभव है शराब से दूर रहने का आनन्द उससे जीवन भर उसे दूर ही रखे।

जीवन-निर्माण के दो सूत्र

उस क्षेत्र में काछवली नाम से बारह गांव हैं। उनको अलग-अलग पहचानने के लिए नाम के पीछे कोई-न-कोई विशेषण जोड़ दिया गया है। वह काछवली मेड़िया काछवली के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वि० सं० १७२७ में वहां एक मेड़ी (दुमंजिला मकान) बनी थी। ऊपर की मंजिल में बने छोटे कमरे को मेड़ी कहा जाता है। उस मेड़ी के आधार पर गांव का नाम मेड़िया काछवली हो गया। काछवली शब्द का संबंध कच्छ (गुजरात) से आए हुए काछेला जाति के लोगों के साथ जोड़ा जाता है। वहां वर्तमान में रावत, राजपूत और सरदारों की अच्छी बस्ती है। पांच हजार की आबादी वाले गांव में पन्द्रह परिवार तेरापंथी हैं। इस समय वहां जितने व्यापारी हैं, उनके लिए यह कहा जाता है कि वे सौ वर्ष पूर्व सिरियारी से आये हैं। वहां से दो किलोमीटर की दूरी पर एक रमणीय स्थल है, जहां निरन्तर पचास फीट ऊपर से पानी का झरना बहता रहता है। किसी समय वहां नाथ सम्प्रदाय के साधु हरनाथजी ने तपस्या की थी। अभी भी उनकी कुटिया वहां है। झरने के ठीक सामने की पहाड़ी पर नाथ सम्प्रदाय के गुरु गोरमजी का मंदिर है। पहाड़ की ऊंचाई तीन हजार पचहत्तर फीट की मानी जाती है। गोरमजी के नाम पर उस पहाड़ का नाम भी गोरम पहाड़ हो गया है।

आचार्यश्री काछवली पहुंचे, इससे पहले खेरावड़ी, हाईस्कूल के प्रधान

अध्यापक ने आचार्यवर से बच्चों को उद्बोधन देने का अनुरोध किया। स्कूल रास्ते में था, पर लाखागुड़ा जाने से विलम्ब होने के कारण बच्चों को आवास स्थल पर प्रवचन पण्डाल में ही प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला। प्रवचन पण्डाल में सतरंगी सभा उपस्थित थी। स्त्री, पुरुष, बच्चे, महाजन, किसान, राजपूत और अनुसूचित जाति के लोग। उनमें सबसे आगे ८४ वर्षीय पांचूलालजी बैठे थे। वे बहुत वर्षों से परिचित हैं और आचार्यश्री के प्रति अपने मन में अगाध श्रद्धा रखते हैं।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन के आरंभ में मेवाड़ की प्राकृतिक संपदा का चित्रण करते हुए कहा—इस समय हम मेवाड़ की घाटियों में घूम रहे हैं। दूर से चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ दिखाई देते हैं, तब सोचते हैं कि कहां जाएंगे। चलते-चलते ऐसे सुरम्य स्थल भी आते जहां चारों ओर आम के वृक्ष हैं। मंजरियों से भरे-भरे आम्रवृक्ष। वहां अक्सर कोयल की कूज सुनाई देती है। किन्तु इस बार नहीं सुनी। क्या यहां से कोयलें विदा हो गयी हैं? यहां की धरती जितनी सुहावनी है, उससे भी अधिक मनभावन है जन-भावना और श्रद्धाभक्ति। पता ही नहीं चलता कि यहां कौन जैन है और कौन अजैन? पिछली बार जब हम यहां आये थे, तब ऊंची काछबली में रहे थे। अब वहां के प्रायः मकान ढह चुके हैं। एक वृक्ष अवश्य उस समय की यादगार बनकर खड़ा है।

उपस्थित जनसमूह को जीवन-निर्माण के सूत्र देते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में आगे कहा—मनुष्य की जो अनमोल जिन्दगी आपको मयस्सर हुई है, उसकी पवित्रता के लिए मैत्री भावना और कथनी-करनी की एकरूपता इन दो तत्त्वों को आत्मसात् करने का लक्ष्य रखना जरूरी है।

दिन एक : काम अनेक

१३ मार्च को प्रातः छह किलोमीटर चलकर आचार्यवर पीपली पहुंचे। पीपली का घाटा मारवाड़ से मेवाड़ आने का सीधा रास्ता है। प्राचीन समय में साधु-साध्वियां इस घाटे को पार करके ही मेवाड़ पहुंचते थे। यह घाटा भी कम बीहड़ नहीं था, किन्तु अन्य घाटों की अपेक्षा कुछ सुविधाजनक होने के कारण इस रास्ते से यात्रा होती थी। वर्तमान में कालीघाटी (अभय घाटी) और ब्यावर से आसीन्द तक सीधा राजपथ होने के बाद रास्ता बदल गया है। किन्तु जब तक पीपली का घाटा प्रमुख मार्ग के रूप में रहा, तब तक पीपली के श्रावक श्री हस्तीमलजी दक और मांगीलालजी छाजेड़ बराबर साधु-साध्वियों की उपासना में रहते थे। घाटे में साथ रहने के कारण वे घाटे के कासीद कहलाते थे। इस समय पीपली में उन्नीस तेरापंथी परिवार हैं। अधिकांश परिवार व्यवसाय की दृष्टि से मद्रास, बैंगलोर

रहते हैं। वहां स्थायी रूप से रहने वाले पांच-चार परिवार होंगे। आचार्यवर के आगमन का संवाद पाकर लगभग पन्द्रह परिवार बाहर से पहुंचे। उन्होंने पन्द्रह-बीस दिन पहले पीपली रहने वाले श्रावकों को संवाद दिया था कि इतनी दूर से वे साठ की संख्या में पीपली पहुंच रहे हैं, इसलिए गुरुदेव से निवेदन करें कि वहां पांच-चार दिन का समय दें। आचार्यवर से अनुरोध किया गया पर मिला केवल एक दिन।

आचार्यश्री तीस वर्षों के बाद इस इलाके में यात्रा कर रहे हैं। लोगों की मांग रहती है अधिक समय पाने के लिए, पर किसी भी क्षेत्र की यह मांग पूरी नहीं होती। जितना समय मिलता है, वह भी इतनी व्यस्तता का कि मांग वाले पूरी तरह से तृप्त नहीं हो सकते। गांव में पहुंचते ही प्रवचन होता है। उस समय एक गांव की उपस्थिति नहीं होती। सामान्यतः प्रतिदिन हर गांव में आसपास के दसों गांवों के लोग वहां पहुंच जाते हैं। प्रवचन के बाद आगन्तुकों की लाइन लगती है, जो कभी-कभी भोजन का समय हो जाने पर भी समाप्त नहीं होती। भोजन के बाद आचार्यवर के विश्राम का समय है। विश्राम कभी हो पाता है और कभी नहीं भी। कोई भी अतिरिक्त काम सामने आने पर भोजन और विश्राम के समय में ही कटौती की जाती है। मध्याह्न में पारिवारिक उपासना का क्रम चलता है। यह क्रम बहुत ही आह्लादक और उपयोगी होता है। परिवार के एक-एक व्यक्ति की संभाल होती है। किसी में कोई बुराई होती है, उसका परिष्कार होता है। धार्मिक संस्कारों का जागरण होता है और भविष्य में बुराई से मुक्त रहने के लिए संकल्प स्वीकार किए जाते हैं। गांव में कहीं कोई संघर्ष या विवाद की स्थिति होती है, उसे सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है। किसी-किसी क्षेत्र के विवाद को निपटाने में कई घंटों और दिनों का भी समय लग जाता है। क्योंकि समाधान के हर पहलू को वादी और प्रतिवादी लोगों के गले उतारा जाता है। गांव में बसने वाले लोगों में महाजन, राजपूत, जाट, मेघवाल, रावत आदि कोई भी हो, आवासस्थल पर पहुंचने के बाद सबकी संभाल होती है। रात्रि में गीतों, भजनों और प्रवचन का रंग जमता है तो साढ़े दस से ग्यारह तक बज जाते हैं। श्रोता लोग रसिक होकर सुनते हैं और व्यसन-मुक्ति के आह्वान पर सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्ति बीड़ी, सिगरेट, चिलम, अफीम, शराब या मांसाहार, जुआ जैसे दुर्व्यसनों से छुटकारा पा लेते हैं। उस समय का दृश्य जैसा मनभावन और आकर्षक होता है, वैसा चित्रण कर पाना कठिन है। बहुत लोग ऐसे भी होते हैं, पूरा प्रवचन ध्यान से सुनते हैं, पर छोड़ते कुछ भी नहीं। उनमें कुछ लोग मूलतः ही व्यसन-मुक्त होते हैं। और कुछ लोगों की इच्छाशक्ति मजबूत नहीं होती। एक बार उनका मन होता है, किन्तु दूसरे ही क्षण वे इस चिन्तन से रुक जाते हैं कि सन्तों के सामने सच्चे त्याग करने चाहिए। इससे यह बात सिद्ध होती है कि बुराई

छोड़ने का वह क्रम अनुकरण नहीं है। सोच-समझकर ही हर व्यक्ति संकल्प स्वीकार करता है।

पीपली आचार्य भिक्षु के समय से तेरापंथ का क्षेत्र है। आचार्यश्री कालूगणी वहां वि० सं० १९७२ में पधारे थे। आचार्यप्रवर सं० २०१० में पहली बार पधारे। दूसरी बार का आगमन २०४१ में हुआ। आचार्यवर के आगमन के समय आयोजित स्वागत-समारोह में स्थानीय श्रावक समाज के अतिरिक्त रावत समाज की ओर से भी भावभीना अभिनन्दन किया गया। आचार्यप्रवर ने अमृत-महोत्सव के सन्दर्भ में चलाए जा रहे पंचसूत्री कार्यक्रम की विस्तार से चर्चा की। इस कार्यक्रम के पांच सूत्र हैं—मद्य-निषेध, मिलावट निरोध, दहेज-उन्मूलन, अस्पृश्यता निवारण और भावात्मक एकता।

चामत्कारिक अनशन

मनुष्य का जीवन शक्ति का अक्षय भण्डार है। कुछ व्यक्ति ही ऐसे होते हैं, जिनके हाथ में उस भण्डार की चाबी आती है। अधिकांश लोग उस शक्ति से अपरिचित रहते हैं। जीवन के अन्त तक उन्हें अपनी शक्ति का अनुभव नहीं हो पाता। बिना अनुभव उसके उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ व्यक्ति जीवन के आखिरी समय में अपनी चेतना के केन्द्र में अप्रत्याशित विस्फोट का अनुभव करते हैं। उससे उनकी जीवन यात्रा का क्रम ही बदल जाता है।

लाडनूं निवासी श्री जीवनमलजी बैंगानी के पुत्र श्री जौहरीमलजी बैंगानी की धर्मपत्नी श्रीमती भंवरीदेवी बैंगानी १४ वर्ष की उम्र में ससुराल गईं। ३२ वर्ष की अवस्था में ही उन्हें पति का वियोग हो गया। उसके बाद उनका पूरा जीवन त्याग, तप, साधना और सत्संग में बीता। उन्होंने उसी समय से जीवन भर के लिए रात्रि में 'चौविहार' करने का संकल्प ले लिया। खाद्य संयम की दृष्टि से भी उन्होंने कई प्रयोग किए। शारीरिक स्वस्थता की स्थिति में उन्होंने प्रतिवर्ष कम से कम एक महीने का समय आचार्यवर की उपासना में लगाने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय के अनुसार वे आचार्यप्रवर की लम्बी-लम्बी यात्राओं में समय-समय पर उपासना का लाभ लिया करती थीं।

विगत दो-तीन वर्षों से वे दिल्ली में अस्वस्थ थीं। एक ओर पांव में 'चूलिए' की हड्डी टूट गई, दूसरी ओर कैंसर का प्रकोप। डॉक्टरी परीक्षण से पता चला कि उनकी स्थिति गंभीर होती जा रही है। किसी समय कुछ भी घटित हो सकता है। जनवरी के अन्तिम सप्ताह में उनकी चिकित्सा कर रहे डॉक्टर निराश हो गए। फिर भी उन्होंने खून चढ़ाने का परामर्श दिया। ८५ वर्षीया वृद्धा माताजी ने खून चढ़वाने से इनकार करते हुए कहा—मुझे अनशन करवा दो।

इससे पहले भी वे अनेक बार कह चुकी थीं कि उन्हें अनशन के बिना मत जाने देना। २४ जनवरी को वे बार-बार बेहोश भी हो रही थीं। उनकी पौत्रवधू श्रीमती सायरदेवी ने उनके मन को पढ़ा और सोचा कि 'कोमा' में जाने के पहले इनकी इच्छा पूरी कर देनी चाहिए। उसने साहस कर उन्हें जीवन भर के लिए पानी के अतिरिक्त अनशन करवा दिया। डॉक्टरों ने कहा—शरीर की स्थिति देखते हुए दो-चार दिन से अधिक समय नहीं निकलेगा। अनशन के दूसरे दिन उन्होंने आगन्तुक लोगों से खमत-खामणा किया।

अनशन के तीसरे दिन शरीर की स्थिति बदल गई। बीमारी का प्रभाव कम होने लगा। चेहरे पर चमक आ गई और स्मरणशक्ति जाग उठी। बीमारी के कारण वे जो भूल चुकी थीं, वे धार्मिक पद्य उन्हें पुनः याद हो गए। पूरी जागरूकता से वह उनका स्मरण करतीं। तीन दिन बीते, चार दिन बीते, पूरा सप्ताह बीत गया। उनके स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार होता रहा। डॉक्टर यह देखकर स्तब्ध रह गए। उन्होंने कहा—'हमारा मेडिकल साइन्स फेल हो गया है। हमें ऐसा कोई सूत्र हाथ नहीं लग रहा है, जिसके आधार पर माताजी अब तक अच्छी हालत में जीवित हैं।' दिल्ली के बुद्धिजीवी, शिक्षा-शास्त्री, राजनेता आदि जितने लोग उनके सम्पर्क में आते, वे किसी दिव्य शक्ति का चमत्कार अनुभव करने लगे।

अनशन के बारहवें दिन रात्रि के समय उनको ऐसा आभास हुआ कि कोई व्यक्ति भोजन की थाली लिये सामने खड़ा है और उन्हें खाने का आग्रह कर रहा है। उन्होंने स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया। दूसरे दिन फिर वैसा ही आभास हुआ। खाने का आग्रह करने वाले व्यक्ति ने कहा—आप कितने दिनों से भूखी हैं, भोजन कर लें। उन्होंने अनशन की बात बताकर निरुत्तर कर दिया। समय निकलता गया और ४३ दिन पूरे हो गए। इन दिनों में वे केवल दिन में दो बार पानी लेतीं। बाकी समय में पानी पीने का भी त्याग कर देतीं। उन्हें कोई पूछता—आपको प्यास नहीं सताती है क्या? वे उत्तर देतीं—प्यास तो लगती है। पर अपने कर्मों का कर्जा तो चुकाना ही पड़ेगा।

जैसे-जैसे भंवरीदेवी के अनशन का संवाद प्रसारित हुआ, वैसे-वैसे लोगों का आवागमन बढ़ने लगा। लोग आते और कहते—मांजी! आपने बहुत बड़ा काम किया है। यह सुनकर वे बोल उठतीं—मैंने क्या किया, स्वामीजी ने करवाया है। गुरुदेव का आधार है। वे ही पार पहुंचाएंगे। उनके मन में अपने गुरु के प्रति प्रगाढ़ आस्था थी। जीवन के अन्तिम दो दिनों में उन्होंने पानी पीना भी छोड़ दिया। पूरे ४५ दिन के यशस्वी अनशन ने दिल्ली के इतिहास में कुछ अविस्मरणीय पृष्ठ जोड़ दिए। अनशन की इस लम्बी अवधि में उन्हें कई बार आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री से आध्यात्मिक संबल प्राप्त हुआ। कुछ भाइयों ने टेपरिकार्डर में

आचार्यश्री के शब्दों को पकड़कर दिल्ली में उन्हें सुनाया। आचार्यश्री की आवाज पहचानते ही वे अभिभूत-सी हो गईं। उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो श्रद्धेय गुरुदेव उनके सामने खड़े होकर उनको संबोधित कर रहे हैं।

६ मार्च १९८५, रविवार को प्रातः दस बजकर पचपन मिनट पर श्रीमती भंवरदेवी बैंगानी का अनशन पूरा हुआ। बैंगानी परिवार में हर्ष और विषाद की धाराएं एक साथ प्रवाहित हो उठीं। वीरतापूर्वक स्वीकार किए गए संकल्प का उतनी ही वीरता के साथ निर्वाह, उनके लिए हर्ष का प्रसंग था। दूसरी ओर पूरे परिवार को धार्मिक संस्कार देने वाली माताजी का साया उठ जाने से कुछ-कुछ विषाद की रेखाएं भी उभर आयीं। उन दोनों स्थितियों में सन्तुलन स्थापित करता हुआ जीवनमलजी बैंगानी का वह परिवार दिल्ली से चलकर मेवाड़ पहुंचा और १३ मार्च को पीपली में आचार्यश्री के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया। बैंगानी परिवार को सम्बोधित करते हुए परमाराध्य आचार्यप्रवर ने कहा—

'सागरमलजी की माता, अमर व सायर की दादी श्रीमती भंवरीदेवी एक संस्कारी महिला थी। धार्मिक भावना से उसका जीवन ओतप्रोत था। गण और गणपति के प्रति उसके मन में अटूट श्रद्धा थी। ८५ वर्ष की अवस्था में उसने सचेतन स्थिति में अनशन स्वीकार किया। कहते हैं कि अनशन स्वीकार करते समय उसकी शारीरिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पर तीन दिन के बाद ही उसकी स्थिति में सुधार होता चला गया और आगे से आगे दिन निकलते गए। इस अवसर पर पूरे परिवार के लोग जहां कहीं भी थे, उपस्थित हो गए। लाडनूं से दो समणियां भी वहां पहुंच गईं। सबने अंतिम समय में उन्हें अच्छा आध्यात्मिक संबल प्रदान किया।

बैंगानी परिवार सदा से ही शासन-भक्त परिवार रहा है। इस परिवार की संघ को बड़ी सेवाएं रही हैं और आज भी हैं, जिसके साक्षी बैठे हैं हनुमानमलजी। इस परिवार की माजियां भी बड़ी विलक्षण और धर्म की धोरिणी रही हैं। गुरु के नाम से तो वे सोती जाग जातीं। हनुमानमलजी की मां बड़ी विलक्षण थीं। कुछ वर्ष पूर्व ही उसका स्वर्गवास हुआ। हाथीमलजी की मां कलकत्ता में हैं। एक माता चन्दनमलजी की बहू यहां बैठी हैं। इन्हीं माताओं में एक थीं भंवरीदेवी। उसके अनशन से दिल्ली में धर्म की बहुत बड़ी प्रभावना हुई है। अनेक व्यक्तियों ने त्याग-प्रत्याख्यान से अपने आपको भावित किया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि बैंगानी परिवार ने किसी प्रकार की रूढ़ि को प्रश्रय नहीं दिया और शीघ्र ही शोक समाप्त कर गुरु-चरणों में पहुंच गए। इसमें परिवार के बुजुर्ग लोगों के साथ भाई अमरसिंह ने भी सूझ-बूझ और विवेक का परिचय दिया है। संथारे के समय उसने अपनी दादी मां की उल्लेखनीय सेवा की है। अपने बुजुर्गों की भांति यह भी शासन की सेवा में तत्पर रहेगा, ऐसा विश्वास है। पौत्रवधू सायर ने भी

उनको पूरा आध्यात्मिक सहयोग देकर उन्हें आत्मसमाधि पहुंचाई।

आचार्यप्रवर के प्रेरक उद्‌वोधन से वैंगानी परिवार को विशिष्ट सम्वल और शक्ति-प्राप्ति का अनुभव हुआ। ऐसी अनुभूति ही हर व्यक्ति और परिवार को आपके सान्निध्य में आने और रहने की प्रेरणा देती है।

शहर को नहीं, आत्मा को सजाओ

देवगढ़ मेवाड़ का प्राचीन कस्वा है। वि सं० १७२६ में रावत द्वारकादासजी ने उस कस्वे को वसाया था। वहां की वीरता और चित्रकला काफी प्रसिद्ध है। वहां के चित्रकार श्री वगता और चोरवा का नाम आज भी ख्यातनाम चित्रकारों के साथ लिया जाता है। अठारह हजार की आवादी वाले देवगढ़मदारिया में जैनों के लगभग तीन सौ पचास परिवार हैं, जिनमें नव्वे परिवार तेरापंथी हैं। वि० सं० १८३८ आचार्य भिक्षु के समय से ही वहां तेरापंथ की जड़ें जमी हुई हैं। नौ आचार्यों में से सात आचार्यों ने देवगढ़ की धरती को अपने चरण-स्पर्श से पावन किया है। वहां समाज का अपना भवन है, जिसमें धार्मिक गति-विधियां चलती हैं। वि० सं० १८५८ में वहां पहली वार साध्वीश्री हस्तूजी (पीपाड़) का चातुर्मास हुआ। कुछ वर्षों तक चातुर्मासों का क्रम अनियमित रहा। सं० १९६६ के वाद अव तक वीच में दो चातुर्मासों को छोड़कर चातुर्मास काल में निरंतर साधु-साध्वियों का प्रवास रहा है।

आचार्यप्रवर वहां वि० सं० २०१७ में पहली वार पधारे। उसके वाद सं० २०३९ में नाथद्वारा मर्यादा-महोत्सव के लिए जाते समय मेवाड़ का प्रवेशद्वार देवगढ़मदारिया वना था। सं० २०४१ (१४ मार्च १९८५) को केवल एक दिन के लिए आचार्यश्री देवगढ़ पधारे। इतने कम अन्तराल में दूसरी वार अपने धर्मगुरु का सान्निध्य प्राप्त कर वहां के लोग पुलक उठे। स्वागत का कार्यक्रम स्थानीय गढ़ के प्रांगण में आयोजित था। राव साहव श्री नारसिंहजी ने नगर की ओर से आचार्यप्रवर का स्वागत करते हुए कहा—आचार्यश्री ने अत्यन्त कृपा कर वहुत अल्प समय में दूसरी वार देवगढ़ को यह दुर्लभ अवसर दिलाया है। पिछली वार जव आप यहां आए थे, उस समय हमारे जामाता श्री विश्वनाथ प्रतापसिंहजी प्रमुख अतिथि एवं प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे। जो अव केन्द्रीय वित्त मंत्री वन गए हैं। इस वार भी हमने उन्हें आमंत्रित किया था। उन्होंने सूचना दी कि आचार्यश्री के दर्शनों की तीव्र अभिलाषा है, किन्तु इस समय वजट के काम में व्यस्त रहने के कारण देवगढ़ पहुंचने में असमर्थ हैं। स्वागत और अभिनन्दन के क्रम में शब्दात्मक अभिव्यक्तियों के साथ स्थानीय महिला-मण्डल की ओर से महिलाओं के त्याग-प्रत्याख्यान की एक लम्वी सूची आचार्यवर को समर्पित की

गई।

आचार्यवर ने उपस्थित जनसमूह को सम्वोधित करते हुए कहा—आज हम जिस रावले के प्रांगण में बैठकर प्रवचन कर रहे हैं, वहां तीन दशक पहले हमने प्रवास भी किया था। इतने कम समय में यहां दूसरी वार आने में गांव वाले तो निमित्त हैं ही, राव साहव भी कम निमित्त नहीं हैं। इन्होंने पाली पहुंचकर इतना आग्रह किया कि मुझे यहां से आने की स्वीकृति देनी पड़ी। देवगढ़ में प्रवेश करते ही मैंने देखा—सारा शहर दरवाजों और फरियों से सजा हुआ है। क्यों? शायद आप यह दिखाना चाहते हैं कि आपके मन में अपने धर्मगुरु के प्रति कितनी श्रद्धा है। पर क्या श्रद्धा की अभिव्यक्ति का यही एकमात्र रास्ता है? काश! आप अपने मन और आत्मा को सजाते तो मैं भी प्रसन्न होता। अभी वहनों ने 'त्याग' की जो सूची भेंट की है, उसे देखकर मैं प्रभावित हुआ हूं। आगमन को निमित्त मानकर एक भी व्यक्ति वदलता है, तो मेरा आना सार्थक है।

आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन में मेवाड़ के प्राकृतिक सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहा—टाडगढ़ में प्रवेश करने के वाद मैं अरावली की चोटियों के आसपास घूम रहा हूं। यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर मन मुग्ध हो जाता है। इच्छा होती है कि प्रकृति को निहारता रहूं और प्रकृतिमय वन जाऊं। मैं प्रकृति का उपासक हूं। प्रकृति से मुझे वहुत प्रेरणा मिलती है। मेरा अभिमत है कि मनुष्य को प्रकृति में जीना चाहिए। वनावटीपन में मेरा विश्वास नहीं है। यदि मनुष्य प्रकृति में जीना सीख ले तो उसके जीवन की अनेक समस्याएं स्वयं समाहित हो सकती हैं।

नोहरा ओरा वन गया

आचार्यवर प्रवचन कर रहे थे और श्रोताओं की भीड़ वढ़ती जा रही थी। प्रवचन के आखिरी क्षणों तक लोग गढ़ में प्रविष्ट हो रहे थे। लगभग ५५ क्षेत्रों के लोगों ने उस दिन देवगढ़ में आचार्यवर का प्रवचन सुना था। आगन्तुकों का माहौल देखकर ऐसी प्रतीति होने लगी, मानो वह दिन मेवाड़ प्रवेश का दिन हो।

प्रवचन के वाद आचार्यवर स्थानीय श्रावक श्री घीसूलालजी डागा के मकान में पधार गए। उस दिन रात का प्रवास वहीं हुआ। मध्याह्न में डागाजी के नोहरे में कार्यक्रम था। नोहरा छोटा था लोग अधिक। आचार्यवर प्रवचन कर रहे थे। गांव में साधु-साध्वियों की वड़ी उपस्थिति को लक्षित करते हुए आचार्यवर ने संत तुलसीदासजी का एक दोहा कहा—

चित्रदुर्ग के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसे, तिलक देत रघुवीर॥

उस समय के दृश्य की उक्त पद्य के साथ तुलना करते हुए आचार्यवर ने कहा—

देव-दुर्ग बाजार में, भड़ भक्तन की भीड़।
नो-रो तो ओरो बण्यो, तिलभर रही न छोड़ ।।

वास्तव में ही उस दिन भीड़ इतनी अधिक थी कि देवगढ़ का रूप ही बदल गया।

आचार्यश्री प्रातः चार बजे से रात्रि के दस, ग्यारह बजे तक प्रतिदिन अठारह-उन्नीस घण्टे काम करते हैं। इस अवधि में भोजन और विश्राम का जो समय है, उसमें कई बार कटौती हो जाती है। नियमित चर्या के अतिरिक्त कोई भी विशेष काम सामने आता है, तब भी आप किसी प्रकार का भार अनुभव नहीं करते। रात के समय शयन के लिए तीन-चार घण्टे का समय मिले तो भी दूसरे दिन कभी उसकी पूर्ति नहीं करनी पड़ती। दैनिक कार्यक्रमों और स्थानीय लोगों की संभाल के अतिरिक्त समय-समय पर साधु-साध्वियों की गोष्ठियां भी आयोजित होती रहती हैं। १३ मार्च को पीपली और १४ मार्च को देवगढ़ में मध्याह्न के समय साधु-साध्वियों की दो विशेष संगोष्ठियां हुई। गोष्ठियों के आलोच्य विषय थे—अमृत महोत्सव वर्ष में धार्मिक चेतना का जागरण और साहित्य निर्माण के बिन्दु। प्रथम संगोष्ठी में यह निर्णय लिया कि सन् १९८५ की अक्षय तृतीया के अवसर पर गंगापुर में समायोजित होने वाले अमृत महोत्सव के प्रथम चरण से सन् १९८६ के चातुर्मास की भाद्रपद शुक्ला नवमी तक तेरापंथ समाज में निरंतर जप और तप के विशेष प्रयोग किए जाएं। व्यक्तिगत रूप में अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार लम्बी तपस्या और विशेष खाद्यसंयम के प्रयोग किए जा सकते हैं। सामूहिक रूप में हर परिवार और हर व्यक्ति एक ही कार्यक्रम से जुड़े इस दृष्टि से आयम्बिल तप की बारी चले। बारी का क्रम जिनके अनुकूल न बैठे, वे प्रति मास एक, दो, चार आदि आयम्बिल स्वीकार कर इस अनुष्ठान के साथ जुड़ सकते हैं। एक-एक गांव में कितनी ही बारियां चलाई जा सकती हैं।

जप योग के सामूहिक अनुष्ठान के लिए एक मंत्र निर्धारित किया गया—'ॐ अ भी रा शि को नमः'। सतरह महीनों तक निरन्तर उक्त मंत्र की कम से कम तीन माला फेरने से डेढ़ लाख से ऊपर जप हो जाता है। मंत्र वह शब्द शक्ति है, जो मन की वृत्तियों को ऊर्ध्वमुखी बना देती है। मंत्र जप का उद्देश्य कोई भौतिक अभिसिद्धि न होकर अपने भीतर छिपी हुई अनन्त शक्तियों के विकास का होना चाहिए। मंत्र का प्रयोग प्राणधारा के साथ किया जाए तो वह जल्दी फलवान होता है। मंत्र का जप करते समय मानसिक एकाग्रता का होना बहुत जरूरी है। शब्द के प्रकम्पन और भावना के प्रकम्पन परस्पर घुल-मिल जाते हैं, तभी मंत्र सचेतन हो सकता है। 'अचिन्त्यो हि मणिमंत्रौषधीनां प्रभावः'। यह

धारणा कोरी धारणा मात्र नहीं है। किन्तु इनका प्रभाव तभी प्रकट होता है, जब प्रयोक्ता निष्ठा और धैर्य के साथ कोई प्रयोग करे। केवल मेवाड़ में कम से कम सवा लाख आयंबिल और पांच हजार व्यक्तियों द्वारा जप करने की योजना है। श्रावक समाज में इस अभियान को तीव्र गति से चलाने के लिए कई साधु-साध्वियों ने स्वयं को दायित्व से प्रतिबद्ध किया और उसी दिन से काम शुरू कर दिया गया।

साहित्य के क्षेत्र में काम करने के लिए दो निर्णय लिये गए। प्रथम निर्णय का सम्बन्ध अभिनन्दन ग्रन्थ से है। अभिनन्दन ग्रन्थों की एक लम्बी परंपरा रही है। उनमें संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व, कर्तृत्व और कृतित्व को उजागर करने के साथ-साथ धर्म, दर्शन और इतिहास की विशिष्ट सामग्री भी संग्रहीत की जाती है। किसी भी महान व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रस्तुति देना, अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण काम है। किन्तु आचार्यवर खींची हुई लकीरों से हटकर नयी लीक खींचने का प्रयोग भी करते रहते हैं। आचार्यवर की इसी अभिरुचि को ध्यान में रखकर युवाचार्यश्री ने अभिनन्दन ग्रन्थ के स्वरूप को एकदम नई कल्पना देते हुए कहा—यह अभिनन्दन ग्रन्थ अनुशासन संहिता के रूप में तैयार करना है। इसमें तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशासन वैशिष्ट्य को विश्लेपित करते हुए आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक सभी आचार्यों द्वारा किए गए अनुशासन के प्रयोगों का समाकलन करना है। इसके साथ-साथ सभी प्रमुख भारतीय धर्म संस्थाओं के अनुशासनात्मक स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके तो विद्वानों को नयी बात उपलब्ध हो सकती है। चिन्तन निर्णय में बदला और उसकी क्रियान्विति का दायित्व कुछ साध्वियों को सौंपा गया।

दूसरे निर्णय के अनुसार आचार्यश्री के राजस्थानी साहित्य पर समीक्षात्मक दृष्टि से काम करना था। यह काम देखने में सीधा-सा है, पर किसी भी साहित्यिक कृति का यथार्थ और आलोचनात्मक मूल्यांकन बहुत कठिन है। इस कार्य के सम्पादन में भी साध्वियों ने अपना उत्साह प्रदर्शित किया।

अमृत महोत्सव वर्ष में शिक्षा, साहित्य, साधना आदि अनेक क्षेत्रों में कई साधु-साध्वियां जुड़े हुए हैं। उन सबका उल्लेख अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में ही उपयुक्त रहेगा। इस दृष्टि से यहां तो मात्र उन संगोष्ठियों की चर्चा की गई है, जिनमें चिन्तन के बाद दो क्षेत्रों में करणीय कार्यों की एक न्यूनतम योजना निर्धारित की गई है।

बात छोटी, रूप बड़ा

१५ मार्च को प्रातः आचार्यप्रवर देवगढ़ से लसानी के लिए प्रस्थान करने

वाले थे। प्रस्थान से पूर्व स्थानीय श्रावक श्री उग्रसेनजी मेहता के पुत्र भाई किशन ने आचार्यवर से अनुरोध किया कि उसकी दादीजी वृद्ध है, वह यहां तक आ नहीं सकती। आपके विहार का रास्ता भी उधर से है। आप उन्हें दर्शन देने की कृपा करें। विहार के समय आचार्यवर ने पूछा—सीधा रास्ता कौन-सा है? लसानी के वहां से दो रास्ते थे। एक पक्की सड़क और दूसरा कच्चा रास्ता। सड़क वाला रास्ता दो किलोमीटर लम्बा था। इसलिए कुछ भाइयों ने कच्चे रास्ते की ओर इंगित करते हुए कहा—सीधा रास्ता इधर है। आचार्यवर ने उस रास्ते से विहार कर दिया। विहार करने के बाद भाई किशन ने आचार्यवर को दर्शन देने की बात याद दिलाई। लेकिन उतनी भीड़ के साथ रास्ता बदलकर आना कठिन था। इसके अतिरिक्त युवाचार्यश्री साहित्य का काम करने लिए देवगढ़ में ही रुक रहे थे। युवाचार्य जी यहां हैं, तब वे दर्शन दे देंगे, यह सोचकर आचार्यवर ने वहां से प्रस्थान कर दिया।

भाई किशन इस बात से उत्तेजित हो गया। अपनी दादीजी की भावना पूरी करने का ही लक्ष्य था, इस उत्तेजना के पीछे। पर उत्तेजना तो उत्तेजना थी। वह घर गया और दादीजी को गाड़ी में बिठाकर तालाब पर ले आया। आचार्यवर कच्चे रास्ते से उधर पधारे तब उनके दर्शन हो गए। पर बात यहीं समाप्त नहीं हुई। भाई किशन बोलने लगा—हमारे मन में धर्मसंघ और गुरु के प्रति इतनी भक्ति है, पर हमारा मूल्यांकन नहीं होता है। हमारी भक्ति को कोई समझने वाला भी नहीं है।'

आचार्यवर ने उसको शान्त करते हुए कहा—भैया! उग्रसेन नाम तो तुम्हारे पिता का है, फिर तुम उग्र क्यों हो रहे हो? आचार्यश्री के समझाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ। आचार्यवर ने वृद्धा श्राविका को दर्शन दिए, मंगलपाठ सुनाया और वहां से प्रस्थान कर आगे पधार गए।

उग्रसेनजी की माताजी गुरुदेव के दर्शन पाकर कृतार्थ हुई, पर उसका मन खिन्न हो गया। अपने पौत्र द्वारा कहे गए शब्द रह-रह कर उसको भीतर से कचोटने लगे। उसने अपने पौत्र को बुलाकर कहा—तुमने गुरुदेव की आशातना की है। तुम अभी लसानी जाओ और गुरुदेव से क्षमा मांग कर आओ। जिसके लिए उसने उत्तेजना की, वह दादी भी उसके इस व्यवहार से खुश नहीं थी। इस बात ने उसको सोचने के लिए विवश किया। दो क्षण मुड़कर देखते ही उसे अपनी भूल का बोध हो गया। वह विनम्र शब्दों में बोला—दादी! अकेले जाने की हिम्मत नहीं है। तुम साथ चलो। अस्सी वर्ष से अधिक उम्र, उसमें भी पांव की हड्डी क्रेक, दूसरे गांव जाना कितना कठिन होता है। फिर भी अपने पौत्र के लिए गुरुदेव से क्षमा मांगने के लिए वह लसानी जाने के लिए तैयार हो गई। उस दिन उसके उपवास था। पौत्र ने सोचा—दूसरे दिन पारणा करने के बाद चलेंगे।

एक घण्टा सूरज चढ़ने के बाद उसने दादीजी से पारणा के लिए पूछा तो वह बोली—गुरुदेव के दर्शन करके ही पारणा करूंगी। पौत्र ने दादी के इस कथन पर कोई आपत्ति नहीं की। उसने तत्काल सारी तैयारी कर ली। अपने पिता और भाई के साथ दादीजी को लेकर वह लसानी पहुंचा। तब तक व्याख्यान संपन्न हो चुका था। आचार्यवर के व्याख्यान के बाद सभाभवन के ऊपर वाले हाल में पधार गए। किशन ने भाई के सहयोग से दादीजी को गोदी में बिठाकर सीढ़ियां चढ़ाई और गुरुदेव के दर्शन करवाए। गुरुदेव ने उनको देखते ही कहा—देवगढ़ से यहां कैसे आ गए? यहां आकर भी ऊपर क्यों आए? मैं नीचे आकर दर्शन दे सकता था। गुरुदेव के ये शब्द सुन उग्रसेनजी की मां गद्गद हो गईं। वह पौत्र की ओर इशारा कर बोलीं—'गुरुदेव! इसने मूर्खता की। इसकी ओर से माफी मांगने आई हूं।' यह बात सुनते ही किशन गुरुदेव के चरणों में झुककर विनम्र और शान्तभाव से बोला—दादी ने कल से अन्न-पानी मुंह में नहीं लिया। इसने कहा—खमत-खामणा करके ही पानी पीऊंगी। मेरी गलती का इसे इतना रंज है, अब आप हमें क्षमा कर दें।

आचार्यवर ने घनीभूत वात्सल्य उंडेलते हुए कहा—मांजी! इसमें गल्ती की क्या बात है, यह तो श्रद्धा की परिणति है। इसके मन में आपको दर्शन करवाने की भावना प्रबल थी। हमें रास्ते का मालूम नहीं था। पहले से बात ध्यान में होती तो उधर से विहार कर देते। दादी की भावना अधूरी रहने से इसके मन में रंज हुआ और इसलिए यह स्वयं पर नियंत्रण नहीं कर सका। इसके बाद तो दर्शन भी हो गए, फिर इस स्थिति में इतनी दूर क्यों आए?

गुरुदेव के इन कृपापूर्ण शब्दों से उग्रसेनजी का पूरा परिवार अभिभूत हो गया। उन्होंने मां के हाथ से गोचरी करवाकर उन्हें उपवास का पारणा कराया। कभी-कभी छोटी-सी बात भी बड़ा रूप ले लेती है।

जीवन जीने की कला

सात हजार की आबादी वाला क्षेत्र लसानी आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथ धर्मसंघ का क्षेत्र रहा है। इस समय वहां ४६ परिवार तेरापंथी हैं। इस क्षेत्र में आचार्य भिक्षु का आगमन हुआ वि० सं० १८३८ में। उसके बाद सं० १९७१ में अष्टमाचार्य पूज्य कालूगणी ने लसानी का स्पर्श किया। आचार्यवर ने इस क्षेत्र को दो बार अपना सान्निध्य दिया। पहली बार सं० २०१० में और और दूसरी बार सं० २०४२ में। इन वर्षों में कई परिवार व्यवसाय की दृष्टि से बाहर रहने लगे हैं। आचार्यवर के आगमन का संवाद पाकर वे लोग कई दिन पहले ही लसानी पहुंच गए। आचार्यश्री वहां पन्द्रह मार्च को पधारे। स्थानीय

सभा भवन में प्रवास हुआ। १६ मार्च को भी वहीं रहना हुआ। गांव के हर परिवार का हर सदस्य निकटता से परिचित हुआ। सवको विशेप आध्यात्मिक संवल मिला।

१६ मार्च को प्रातः आचार्यवर लसानी से तीन किलोमीटर दूर ईशरमंड गांव में प्रवचन करने पधारे। वहां श्रद्धा के चार परिवार है। लोगों में उत्साह है, पर धार्मिक संस्कार निर्माण पुष्ट नहीं हैं। साधु-साध्वियों का सान्निध्य उनको कम मिलता है, इसलिए संस्कार निर्माण की वात कठिन भी है। आचार्यश्री के आगमन से पूरे गांव में खुशी की लहर दौड़ गई। गांव के चौधरी, सुथार रेगर आदि सभी जाति के लोग प्रवचन सुनने के लिए आए। आचार्यवर ने उनको सम्वोधित करते हुए कहा—किसान खेती करना जानते हैं। महाजन व्यापार करना जानते हैं। मोची जूते गांठना जानते हैं, पर जिन्दगी कैसे जीना? यह नहीं जानते। जिन्दगी जीने के कुछ सूत्र हैं—

- मांस नहीं खाना।
- दारू नहीं पीना
- तम्वाकू नहीं खाना
- चोरी-जारी नहीं करना।
- जुआ नहीं खेलना।
- कुसंगति में नहीं वैठना।
- झगड़ा नहीं करना।

आचार्यवर की प्रेरणा से तीस व्यक्तियों ने खड़े होकर दारू-मांस आदि वुराइयों का परित्याग किया। कुछ लोगों ने पंचसूत्री कार्यक्रम के पांच संकल्प स्वीकार किए। स्कूल के वच्चों ने वड़े उत्साह के साथ शराव, मांस और तम्वाकू सेवन का त्याग किया। वहां से प्रस्थान कर आचार्यवर पुनः लसानी पधार गए। लसानी में उस दिन का प्रवचन गढ़ में हुआ।

गांव की तड़ टूटी

लसानी में कुछ वर्प पूर्व तेरापंथ समाज के लोगों ने मृत्युभोज करने और खाने के त्याग कर दिए। समाज की वही में इस वात को लिखकर सव लोगों ने हस्ताक्षर कर दिए। स्थानकवासी समाज के लोग इस त्याग में साथ नहीं थे। उन्होंने कहा—हम मृत्युभोज करेंगे और उसमें आप सवको आना होगा। यदि आप मृत्युभोज में नहीं आएंगे तो हम विवाह-शादी के अवसर पर भी नहीं आएंगे। इस वात को लेकर जैन समाज में 'तड़' पड़ गई। तेरापंथ समाज के कुछ लोगों ने सोचा—स्थानकवासी लोग भी साथ हो जाएं तो गांव में झमेला न रहे। इस

भावना से उन्होंने त्याग में शिथिलता बरती। शेष लोग मजबूत रहे। इस घटना के वाद तेरापंथ समाज में भी दो वर्ग हो गए।

आचार्यश्री लसानी पधारे तो गांव की अन्य स्थितियों के साथ यह बात भी ध्यान में आई। आचार्यवर ने सब लोगों से स्पष्टीकरण मांगा। सवने अपनी-अपनी वात रख दी। स्थानकवासी समाज के प्रमुख लोग भी आए। आचार्यश्री ने स्वीकृत त्याग को दृढ़ता से निभाने का उपदेश दिया और जिन लोगों ने उस समय त्याग नहीं किए, उन्हें त्याग करने की प्रेरणा दी। कुछ लोग किसी भी मूल्य पर अपनी बात छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। तव आचार्यश्री ने कहा—मृत्युभोज नहीं करना और नहीं खाना अच्छी बात है। जिन लोगों ने त्याग किए हुए हैं, उन्हें दृढ़ रहना चाहिए।

उस समय वहां स्थानकवासी मुनि भी आ गए। आचार्यवर ने श्रावकों के विवाद की बात उन तक पहुंचा दी। उन मुनियों ने अपने श्रावकों की सभा में कहा—जिन लोगों ने त्याग किए हैं, वे उन्हें कैसे तोड़ेंगे? आप लोग भी त्याग करें और इस विवाद को समाप्त कर दें। अन्यथा हम यहां से विहार कर देंगे।

मुनियों की प्रेरणा से वे लोग भी समझ गए। सर्व सम्मति से यह निर्णय ले लिया गया कि जिन लोगों को मृत्युभोज खाने का त्याग है, उन्हें नहीं बुलाया जाएगा। उस कारण से उनके पारिवारिक संवंधों पर भी कोई असर नहीं होगा। मृत्युभोज का आग्रह छूटते ही गांव की 'तड़' समाप्त हो गई।

हमारा भव-भव का कष्ट कटेगा

लसानी से आचार्यवर को 'ताल' जाना था। ताल से चार किलोमीटर दूर पर गांव है काकरोद। पर वह रास्ते में नहीं आता है। लसानी से ताल जाते समय काकरोद आने-जाने में छह किलोमीटर का चक्कर होता था। ताल पहुंचने की तारीख निश्चित थी। अतः आचार्यश्री के ताल पधारने की संभावना क्षीण होने लगी। वहां श्रद्धा के तीन परिवार रहते हैं। लसानी आने पर उन्हें यह जानकारी मिली तो वे अधीर हो उठे। उन्होंने वार-वार काकरोद के लिए विनयभरा अनुरोध प्रस्तुत किया। सोलह मार्च को प्रवचन के वाद वे गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुए। आचार्यवर ने उनको समझाते हुए कहा—हम काकरोद जाएंगे तो प्रवचन करते ही वापस लौटना पड़ेगा। आप लोगों को पूरा लाभ नहीं मिलेगा। इससे बेहतर यह रहेगा कि महाप्रज्ञजी देवगढ़ से भीम जाते समय काकरोद आ जाएं और एक समय यहीं ठहर जाएं। युवाचार्यश्री के आने का आश्वासन उन्हें तोष देने वाला था। पर गुरुदेव वहां न पधारें, यह उन्हें मान्य नहीं हुआ। वे भावविभोर होकर वोले—गुरुदेव! हम जानते हैं कि हमारे गांव पधारने से आपको

अतिरिक्त कष्ट होगा। पर हम यह भी जानते हैं कि आपका कष्ट हमारा भव-भव का कष्ट दूर कर देगा। आपको इतना अनुग्रह करना ही होगा। आचार्यवर का द्रवणशील मानस पिघला और आपने काकरोद होकर ताल पहुंचने की स्वीकृति दे दी।

आडे रस्ते आय

१७ मार्च को प्रातः आठ किलोमीटर का राजपथ से और फिर तीन किलोमीटर कच्चे रास्ते से काकरोद के लिए चले! गांव के सभी लोग प्रसन्नता से खिल रहे थे। स्थानीय सरपंच श्री नन्दलाल शर्मा गांववासियों के साथ बहुत दूर तक अगवानी के लिए आए। वहां प्रवासित श्रद्धालु परिवारों के सदस्यों ने गांव में ही नहीं, आस-पास भी आचार्यवर के आगमन की सूचना कर दी। सैकड़ों लोग समय पर पहुंच गए। कुछ गांवों की बसें और ट्रकें भी वहां पहुंच गईं। कुल मिलाकर गांव में उत्साह मूर्तिमान हो रहा था। आचार्यवर ने गांव में प्रवेश किया। उस समय एक ग्रामीण महिला थाल में दही, गुड़, नेतरा आदि मांगलिक द्रव्य लेकर आई। वह अपने मन की संपूर्ण श्रद्धा के साथ आचार्यवर की आरती उतारने लगी। उसका खिला हुआ चेहरा देखकर यह अनुमान हो रहा था, मानो उसे भगवान से साक्षात्कर हो गया हो। महिला की श्रद्धा भावना को स्वीकार करते हुए आचार्यवर गांव के बीच में पहुंचे। वहां उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए आपने कहा—

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थः, सद्यः साधुसमागमः॥

—साधु लोग जंगमतीर्थ के होते हैं। उनके दर्शन करने मात्र से मन पवित्र होने लगता है। तीर्थयात्रा का फल मानने वालों को उसका फल समय आने पर मिलता होगा, पर साधु समागम का लाभ तत्काल प्राप्त हो जाता है। आज आपको एक अवसर मिला है। प्राप्त अवसर को खोना नहीं चाहिए। जो किसान वर्षा होने के वाद भी खेती न करे, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है। मानव जीवन पाकर भी उसका लाभ न उठाया जाए तो अनुताप ही वाकी वचेगा।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में छोटी-छोटी घटनाओं के द्वारा ज्ञान की वातें समझाते हुए आगे कहा—'हरीदास को हर मिला। आडे रस्ते आय।' पता नहीं हरीदास नामक भक्त को कभी भगवान् का साक्षात्कार हुआ होगा, पर काकरोद वासियों के भगवान ने तो सचमुच टेढ़े रास्ते से चलकर अपने भक्तों की संभाल ली।

प्रवचनोपरान्त अनेक लोगों ने मद्य, मांस, तम्वाकू, अफीम, जर्दा, चाय, मिलावट, छुआछूत, दहेज आदि बुराइयों से मुक्त होने के लिए संकल्प किया।

आचार्यवर ग्यारह साधुओं और छह साध्वियों के साथ काकरोद पधारे। शेष साधु-साध्वियां सीधे ताल पहुंच गए। काकरोद के लिए जो रास्ता जाता था, पुनः ताल जाने के लिए उसी रास्ते से आना था। कुछ भाइयों के अनुरोध पर संतों ने अपना सामान रास्ते में ही एक ओर रख दिया। साध्वियां कम थीं, अतः उनका सामान सीधी ताल जाने वाली साध्वियों ने ले लिया। काकरोद से लौटते समय साध्वियों ने प्रवचन संपन्न होने से कुछ पहले ही वहां से प्रस्थान कर दिया। ताल में एक-डेढ़ किलोमीटर इधर संतों का सामान रखा हुआ था। साध्वियों ने उसे देखा और उठाकर ले जाने की ललक पैदा हो गई। साध्वियां संख्या में छह थीं और संतों के झोलके बारह। कुछ साध्वियां शारीरिक दृष्टि से भी दुर्बल थीं। किन्तु उनका उत्साह भी किसी से कम नहीं था। सामान्यतः प्रत्येक साधु-साध्वी अपने हिस्से का सामान उठाकर चलते हैं। रुग्णावस्था में बीमार साधु का सामान अन्य संत ले लेते हैं और बीमार साध्वी का दूसरी साध्वियां। परस्पर एक-दूसरे को सेवा देने या लेने का अवसर कम ही आता है। उस दिन उस दृष्टि से कोई प्रसंग नहीं था पर एक सहज मौका मिल गया। साध्वियों ने झोलकों को हाथों में उठाकर देखा। एक झोलका लेकर चलना तो मुश्किल नहीं था, पर दो-दो झोलके लिए बिना काम बनता नहीं था। शारीरिक दुर्बलता, मानसिक उत्साह के नीचे दब गई और प्रत्येक साध्वी दो-दो झोलके लेकर चल पड़ी। संत पीछे आ रहे थे। उन्होंने निश्चित बिन्दु पर अपना सामान देखा। वहां कुछ भी नहीं था। जिन भाइयों ने सामान की देखभाल रखने का दायित्व लिया था, उन्हें पूछा गया तो वे बोले—कुछ देर पहले साध्वियां आई थीं। वे सारा सामान लेकर चली गईं। दो संत काफी तीव्र गति से चले। पर वे साध्वियों के निकट पहुंचें तब तक साध्वियां ताल तक पहुंच गईं। साधुओं ने साध्वियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। आचार्यवर ताल पहुंचे तब सारी घटना आपको निवेदित की गई। आचार्यवर ने साध्वियों के उत्साह की प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया।

इन्सान बनना कठिन है

काकरोद से ताल पहुंचते-पहुंचते सवा ग्यारह बज गए। ताल में आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथ के अनुयायी रहते हैं। सवा दो सौ वर्षों के इतिहास में केवल अष्टमाचार्य श्री कालूगणी ने वि० सं० १९९२ में ताल का स्पर्श किया था। आचार्यवर सं० २०१० में लसानी पधारे थे, उस समय ताल छूट गया। संभव है उस समय श्रद्धा के परिवार वहां कम हों और उन्होंने ताल आने के लिए विशेष आग्रह न किया हो। यह भी संभव हो सकता है कि समय कम होने से ताल पधारना न हुआ हो। कारण कुछ भी रहा हो, ताल क्षेत्र को आचार्यों का

सान्निध्य बहुत कम मिला। इस समय ताल में सोलह तेरापंथी परिवार हैं। वहां समाज का अपना भवन भी है। स्थानकवासी समाज भी वहां बड़ी संख्या में है। तीन हजार की आबादी वाले ताल में उस दिन कम से कम पांच हजार व्यक्ति आचार्यवर का प्रवचन सुनने के लिए उतावले हो रहे थे। इसलिए ताल पहुंचने में विलम्ब हो जाने पर भी उसी समय कार्यक्रम आयोजित किया गया। स्थानीय सरपंच ने आचार्यवर का स्वागत करते हुए कहा—अपने छोटे से गांव ताल में देश की महान विभूति का स्वागत करते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं। आचार्यश्री के उदारतावादी विचारों से सारा देश परिचित है। इसी कारण आपके प्रति सबके मन में श्रद्धा है। हमारा कर्तव्य है कि आपका मार्ग-दर्शन पाकर हम अपने जीवन को नयी दिशा की ओर अग्रसर करें।

जैन समाज की ओर से बोलते हुए श्री रतनलालजी जैन ने कहा—भगवान् महावीर की वाणी को घर-घर में पहुंचाने का श्रेय आचार्यश्री तुलसीजी को है। जैन धर्म की प्रभावना के लिए आप जो काम कर रहे हैं, वह बेजोड़ है। हम सब जैनों को संगठित होकर आप द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना चाहिए।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में ताल की उपस्थिति पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—छोटे से गांव में इतने लोग कहां से आ गए? आगे आपने कहा—डॉक्टर, अध्यापक, वकील आदि बनना आसान है, परन्तु अच्छा इन्सान बनना कठिन है। अच्छे इन्सान बनने के दो तरीके हैं—उपदेश और प्रयोग। केवल उपदेश सुनने से कल्याण नहीं हो सकता, जब तक उसका जीवन में प्रयोग न हो। मैं चाहता हूं कि आप सब प्रयोग की भूमिका से गुजरते हुए अच्छे इंसान बनने का प्रयत्न करेंगे।

मध्याह्न और रात्रि में भी आचार्यवर के सान्निध्य में कार्यक्रम चले। हर कार्यक्रम में उपस्थिति वर्धमान रही। आसपास के अनेक गांवों से किसान, राजपूत आदि सभी वर्गों के लोग प्रवचन सुनने आए। मध्याह्न में आचार्यश्री का प्रवचन सुनकर स्थानीय ठाकुर श्री रणजीतसिंहजी ने जीवन भर तम्बाकू का परित्याग किया। मांस और शराब को छोड़ने के लिए भी उनकी मानसिकता निर्मित हो चुकी थी। अभ्यास की दृष्टि से उन्होंने एक वर्ष तक शराब और मांस सेवन का परित्याग कर दिया। बिरादरी की कठिनाई न होने पर उन्होंने जीवन भर उक्त पदार्थों का सेवन न करने की इच्छा व्यक्त की।

हमारी आत्मा हिल उठी

१८ मार्च को आचार्यवर कूकरखेड़ा पधारे। दो हजार की आबादी वाले गांव में पचीस परिवार जैन हैं। अधिकांश जैन तेरापंथी हैं, तीन-चार परिवार स्थानक

वासी समाज के हैं। वहां लगभग सौ वर्ष पहले खोखर जाति के लोग निवास करते थे। खोखर जाति के नाम पर गांव का नाम पड़ा खोखरखेड़ी। खोखर शब्द बदलते-बदलते कूकर तक पहुंच गया और गांव भी कूकरखेड़ा नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कूकरखेड़ा में तीस वर्ष पूर्व आचार्यवर का आगमन हुआ था। उस समय की स्मृतियों में खोए हुए गांववासी आचार्यवर के चेहरे पर उसी प्रकार की ताजगी और स्फुरणा को देखकर अचंभित रह गए। गांव के चौक में बने चबूतरे पर वृक्ष की छांव में बैठे आचार्यश्री ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो महावीर या बुद्ध अशोक वृक्ष या बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर उपदेश दे रहे हैं। स्थानीय सरपंच श्री बहादुरसिंह ने आचार्यवर का स्वागत करते हुए कहा—आज हमारे गांव में गंगा का आगमन हुआ है। गंगा में स्नान करने से शरीर पवित्र होता है। इस गंगा में अवगाहन करने से मन भी पवित्र हो जाएगा। हम लोग अखबारों में गांव-गांव में आचार्यश्री के प्रवास के संवाद पढ़ते तब मन में एक ललक जगती कि काश! आचार्यश्री हमारे गांव में भी आएं और हम भी आपकी अमृतवाणी को सुनें। आज हमारी वह चिर पोषित भावना साकार हो गई है।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में मानवीय मूल्यों और मानव जाति में पनप रही दुर्बलताओं की चर्चा करते हुए सच्चा और अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा दी। श्रोता लोग एक बारगी हिल से उठे। उन्हें यह अहसास होने लगा कि आचार्यश्री का एक-एक शब्द उनके मन पर जमीं बुराइयों की पर्तों को उखाड़ रहा है। इस घटना को अभिव्यक्ति देते हुए स्थानीय सेवा निवृत्त सेना के अफसर ने कहा—आचार्यजी! आपका प्रवचन क्या सुना, हमारी तो आत्मा हिल उठी। मन करता कि घर-परिवार छोड़कर आपकी सेवा में ही लग जाएं। आपकी पवित्र वाणी सुनने मात्र से बुराई को छोड़ने की क्षमता प्रकट हो जाती है। आज जितने लोगों ने बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि के सेवन का त्याग किया, वह आप द्वारा जगाई गई क्षमता का ही परिणाम है। अन्यथा हमने भी उन लोगों को बहुत कहा है, इस संबंध में। किन्तु हमारे कहने से एक भी व्यक्ति बदलने के लिए तैयार नहीं हुआ। मिलावट न करने और दहेज का ठहराव न करने का संकल्प तो और भी कड़ा है। पर आज यहां जो काम हुआ है, वह आपकी ही साधना का प्रभाव है।

बिखराव में हित नहीं होता

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व रावत भीमसिंह द्वारा बसाया गया 'भमी' आज अपने इलाके का विकासशील कस्बा है। नौ हजार की आबादी वाले भीम में १४० जैन परिवार रहते हैं। उनमें बीस परिवार तेरापंथी है। जिनकी धार्मिक परम्परा

आचार्य भिक्षु के समय से जुड़ी हुई है। भीम में आचार्य तुलसी के अतिरिक्त तेरापंथ धर्म के किसी भी आचार्य का जाना नहीं हुआ। आचार्यवर पहली बार वहां वि० सं० २०१० में पधारे थे।

१९ मार्च को कूकरखेड़ा से भीम जाना था। भीम वहां से केवल चार किलोमीटर है। सूर्योदय के बाद लगभग एक घण्टे के समय में आचार्यश्री भीम पहुंच गए। उस समय तक गांव वासी लोग आवश्यक काम से निवृत्त ही नहीं हुए थे। लोगों को पता था कि विहार छोटा है, इसलिए मार्ग में समय अधिक नहीं लगेगा। किन्तु प्रतिदिन देरी से उठने का अभ्यास होने के कारण उस दिन भी उठने में देरी हो गई। गांव के कार्यकर्त्ता जरूर जागरूक थे। वे अपनी-अपनी ड्यूटी पर तैनात थे। पहले उन लोगों ने गांव में ही प्रवचन का स्थान निश्चित किया था। पर ताल आदि क्षेत्रों की उपस्थिति ने उनको चौंका दिया। भीम में और अधिक लोगों के उपस्थित होने की संभावना थी। उदयपुर जिला का परगना क्षेत्र होने से, आसपास कई गांव होने से तथा यातायात के साधनों की सुलभता होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था। इस दृष्टि से स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने प्रवचन के लिए हाई स्कूल के प्रांगण को चुना।

आचार्यवर के स्कूल में पहुंचने की सूचना मिलते ही गांव से भाई-बहनों के झुण्ड के झुंड स्कूल की ओर बढ़ने लगे। थोड़ी देर में स्कूल का प्रांगण भर गया। कार्यक्रम शुरू हुआ। स्वागत की औपचारिकताओं के बाद स्थानीय स्थानकवासी समाज के प्रमुख श्री मांगीलालजी जैन ने गांववासियों के विलम्ब से पहुंचने की बात को लेकर क्षमा मांगी। आचार्यवर ने मुस्कराते हुए कहा—आप लोग तो समय पर ही पहुंचे हैं। हम जल्दी आ गए। इसमें आपका प्रमाद कैसा?

आचार्यश्री ने अपने उद्बोधक प्रवचन में कहा—आप लोग जैन हैं, यह अभिव्यक्ति आपकी भाषा से नहीं, व्यवहार से होनी चाहिए। जैन होकर मिलावट करना, धोखा देना, कूट मापतोल करना, दहेज का ठहराव करना, जैनत्व तो क्या आदमियत भी नहीं है। इस दृष्टि से मैं आपको कहना चाहता हूं कि आप भगवान् महावीर के अनुयायी हैं तो जैनत्व के आदर्शों को आत्मसात् करें।

जैन समाज में जातिगत भेदरेखा पर टिप्पणी करते हुए आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में आगे कहा—जैन समाज में ओसवाल, अग्रवाल, पोरवाल, खण्डेलवाल, छोटेसाजन, बड़ेसाजन आदि की जो दीवारें हैं, वे धार्मिक कहलाने वालों के लिए शर्म की बात है। जैन समाज इस प्रकार के बिखराव में रहकर अपना हित नहीं कर सकेगा। युग का तकाजा है कि जैन समाज अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए इन भेदभावों से ऊपर उठकर जैनत्व का सम्मान करे और जैन शासन की प्रभावना में अपना योगदान करे।'

पारिवारिक रिश्तों की बाधा

आचार्यवर का प्रवचन सदा प्रभावी होता है। पर कभी-कभी उसमें इतना नयापन लगता है कि श्रोता मुग्ध हो जाते हैं। भीम का प्रवचन भी कुछ ऐसा ही ओजस्वी था कि वहां बैठे लोग पलक झपकना भी भूल गए। उस समय की उनकी मनःस्थिति बता रही कि वे प्रवचन के एक-एक शब्द को अपने भीतर उतारने में लीन हैं।

प्रवचन के मध्य आसीन्द के युवती मण्डल ने आचर्यवर के दर्शन किए। एक गणवेश में पूरी तरह से व्यवस्थित पचास युवतियों का वह समूह भी भीम गांव के लिए एक आश्चर्य बन गया। आचार्यश्री की प्रेरणा से मेवाड़ की महिलाओं में जागृति आई है। अपने संस्कारों और व्यवहारों में परिवर्तन का लक्ष्य बना है। फिर भी कुछ रूढ़ परंपराओं को छोड़ने में झिझक है। उसका एक कारण यह है कि तेरापंथ समाज के अतिरिक्त अन्य समाजों में रूढ़ि-उन्मूलन की दिशा में कोई तीव्र प्रयत्न नहीं है। पारिवारिक रिश्ते उन समाजों में भी हैं। रिश्तों को निभाने के साथ कुछ परम्पराओं को निभाना भी वे जरूरी समझते हैं। इसलिए तत्त्व को समझने के बाद भी कुछ रूढियां छोड़ने में कठिनाई हो रही है। वैसे सभी समाजों के चिन्तनशील लोग समझ रहे हैं कि युग के साथ चलना हैं तो समाज और परिवार को रूढमुक्त होना ही होगा। पर पीढ़ियों से प्राप्त सुरक्षित और संवर्धित संस्कार को तोड़ने के लिए जिस मानसिकता की जरूरत होती है, उसके निर्माण में समय तो लगता ही है। दिन में आचार्यवर का प्रवास स्थानीय स्थानक में हुआ। रात्रिकालीन कार्यक्रम हाईस्कूल में हुआ।

वर्षों का वैमनस्य धुला

भीम में पन्द्रह वर्ष से तेरापंथी श्रावक भंवरलालजी चावत समाज से बाहर थे। बात कोई बड़ी नहीं थी। शब्दों के अविवेक और मखौल के कारण बात बढ़ गई थी। वर्षों तक दूरी बनी रही। १९ अप्रैल को आचार्यश्री भीम पधार रहे थे। १८ अप्रैल को समाज के लोगों ने मिलकर एक प्रयत्न किया। गांव के सब लोग एकत्रित हुए। भंवरलालजी आए, पर एक बात में उलझकर चले गए। उन्हें फिर बुलाने भेजा गया, पर वे नहीं आए। बात टल गई। आचार्यवर भीम पहुंचे। वहां की सारी स्थिति आपकी जानकारी में थी। आपने भंवरलालजी को याद किया। वे तत्काल आए। आचार्यश्री ने कहा—इस प्रकार समाज से अड़ना उचित है क्या? भंवरलालजी की आंखें नम हो गईं। वे अपनी आग्रही वृत्ति का परिणाम भोग चुके थे। गुरुदेव की प्रेरणा से उनका आग्रह मोम बनकर पिघल

गया। उन्होंने कहा—आप जैसा कहेंगे, वैसा करने के लिए तैयार हूं। आचार्यवर ने गांव के प्रमुख लोगों को उनके विचारों की अवगति दे दी। २० अप्रैल को वे सब पुनः एकत्रित हुए। अतीत के संपूर्ण वैमनस्य को धोकर उन्होंने भीम का विवाद समाप्त कर दिया।

भंवरलालजी के भाई गेरीलालजी चावत भी तेज स्वभाव के व्यक्ति हैं। उन्होंने आचार्यश्री की प्रेरणा से संकल्प स्वीकार किया कि यदि उन्हें कभी गुस्सा आएगा तो वे उस दिन नमक नहीं खाएंगे। व्यवसाय की दृष्टि से उन्होंने एक रुपया सैकड़ा से अधिक ब्याज न लेने का संकल्प भी स्वीकार किया।

बड़ा खेड़ा बड़ा बन गया

२० मार्च को आचार्यवर भीम से दस किलोमीटर पर स्थित बड़ाखेड़ा के लिए प्रस्थान किया। बड़ाखेड़ा से वापस भीम ही लौटना था, इसलिए कुछ साध्वियां वहीं रुक गईं। बड़ाखेड़ा जाने का रास्ता चारों ओर से अरावली पहाड़ियों से घिरा हुआ है। वहां मानव कृत कृत्रिमता की प्रभुसत्ता स्थापित नहीं है, इसलिए वातावरण से सहजता है। वृक्ष अलवत्ता कम हैं, पर सिंचाई से खेती अच्छी हो जाती है। रास्ते में स्थान-स्थान पर गेहूं के खेत दिखाई पड़े। कुछ खेत पक गए थे। कुछ हरे थे और कुछ कट रहे थे। यत्र-तत्र चने और जौ के खेत भी थे। वृक्षों में आम, पपीते और जामुन के वृक्ष खड़े थे। आम के वृक्ष मंजरियों से लदे थे। रास्ता उतार-चढ़ाव का है, पर आचार्यश्री का उत्साह अमंद होने के कारण कोई भी चढ़ाई बाधा बनकर खड़ी नहीं हुई।

पांच सौ की आबादी वाला बड़ाखेड़ा अपने आसपास बसे हुए अनेक छोटे खेड़ों के बीच में बड़ा है। इसी कारण उसने बड़ाखेड़ा नाम का गौरव अर्जित कर लिया। आचार्यवर के आगमन से आसपास के गांवों से इतने लोग वहां पहुंचे कि बड़ाखेड़ा वास्तव में ही बड़ा बन गया।

स्थानीय और आगन्तुक लोगों की सभा को सम्बोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—हम अरावली की चोटियों पर पहुंच रहे हैं और आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। हम इतने दिनों से यहां घूम रहे हैं, पर चोटियों का कहीं अन्त नहीं आ रहा है। इन छोटी-छोटी बस्तियों में बसे लोग कितनी श्रद्धा और भक्ति से हमें बुलाते हैं और हमारी बातें सुनते हैं। बड़ाखेड़ा तो ऐसा क्षेत्र था, जहां किसी समय साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी होते थे। अब लोग यहां रहते नहीं हैं, तब चातुर्मास कैसे हो? आज ये जो चेहरे दिखाई दे रहे हैं। वे तो इस एक दिन के लिए आए हैं। न जाने कहां-कहां से चलकर आए हैं। पर इनमें स्थायित्व कहां है?

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में भारतीय सन्त परम्परा और त्याग प्रधान संस्कृति का विश्लेषण करते हुए जीवन में त्याग, वैराग्य की वृद्धि करने की प्रेरणा दी। आचार्यश्री की प्रेरणा लगी और काफी लोगों ने त्याग-प्रत्याख्यान की भेंट चढ़ाई।

शरीर को धूप में सुखा दूंगा, पर...

वड़ा खेड़ा में स्थानीय लोगों में समाज के मकान को लेकर एक विवाद था। कुछ भाइयों ने आचार्यवर से निवेदन किया कि आपका आगमन यहां हुआ है। आज यह विवाद सुलझ जाएगा तो ठीक, अन्यथा इसकी जड़ें गहरी हो जाएंगी। आचार्यवर ने स्थिति की जानकारी ली और संवंधित लोगों को प्रतिवोध दिया। अधिकांश व्यक्तियों ने अपना आग्रह छोड़कर समर्पण कर दिया किन्तु कुछ व्यक्ति अपनी वात पर अड़े रहे। धीरे-धीरे सव व्यक्ति सुलझ गए। पर वहां के वुजुर्ग व्यक्ति श्री मोहनलालजी आछा अड़ गए। वात वनते-वनते रुक गई। कुछ लोगों ने उन पर दवाव डालना चाहा, पर आचार्यश्री दवाव से कोई बात मनवाना नहीं चाहते थे। एक वार फिर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया गया तो वे वोले—गुरुदेव! आप पर मुझे पूरी श्रद्धा है। मेरे रोम-रोम में आप वसे हुए हैं। आप आदेश दें तो मैं धूप में खड़ा होकर इस शरीर को सुखा दूंगा, पर यह वात नहीं मानूंगा। मैं इस मामले में अकेला रह जाऊंगा तो भी मुझे परवाह नहीं है।

आचार्यश्री ने एक गहरी नजर उन पर डाली और दूसरे काम में लग गए। मोहनलालजी घर गए। पूरा परिवार उनके इस व्यवहार से दुःखी था। उन्होंने घर के माहौल में अपने-आपको परखा। कुछ श्रावकों ने भी उनको समझाया। अव उन्हें अपनी भूल का वोध हो गया। दो घण्टे वाद वे पुनः आचार्यश्री के सान्निध्य में उपस्थित होकर वोले—गुरुदेव! मैं आपके चरणों में समर्पित हूं। मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं अपने शव्दों को वापस लेता हूं। अव आपका जो निर्देश होगा, वह मुझे हृदय से मान्य है।

मोहनलालजी के इस निवेदन पर सभी लोगों को प्रसन्नता हुई। सवने प्रेम पूर्ण वातावरण में पारस्परिक खमत-खामणा कर छोटे से गांव में उलझे हुए वड़े विवाद को समाप्त कर लिया। विवाद का कारण समाज का एक मकान था। जिसे तेरापंथ सभा भवन के रूप में विकसित करने का निर्णय ले लिया गया।

रचनात्मक काम

वड़ाखेड़ा के पास एक दूसरा खेड़ा है जसा खेड़ा। वहां से दो स्काउट मास्टर तेजसिंह और मानसिंह पन्द्रह वच्चों के साथ दस किलोमीटर पैदल चलकर आए। वे लोग पहुंचे, तव तक व्याख्यान संपन्न हो चुका था। उनकी उत्सुकता और

जिज्ञासा को पढ़कर आचार्यवर ने फिर उपदेश दिया। आचार्यश्री का उपदेश बच्चों के कच्चे मन को छू गया। एक-एक कर सभी लड़के निकट आए और आचार्यश्री के चरण-स्पर्श कर शराब, मांस और तम्बाकू छोड़ते गए। दोनों अध्यापकों को इन चीजों से पहले ही परहेज था। सम्भावित मानसिक दुर्बलता से वचने के लिए उन्होंने भी शराब, मांस आदि के सेवन का त्याग कर दिया। मध्याह्न में किसान सम्मेलन का आयोजन था। आसपास के खेड़ों से सैकड़ों-सैकड़ों किसान बन्धुओं ने आचार्यश्री से साक्षात्कार किया। प्रवचन सुनने के बाद अनेक किसानों ने मद्यपान और धूम्रपान न करने का संकल्प स्वीकार किया।

२१ मार्च को पुनः भीम पहुंचकर आचार्यवर ने कन्याशाला में प्रवास किया। वहां प्रवचन सभा को सम्बोधित करते हुए आपने जैन-एकता और रूढ़िवाद पर विस्तार से चर्चा की। भीम के जैन समाज में पारस्परिक सौहार्द की सराहना करते हुए आचार्यश्री ने भीम और बड़ा खेड़ा के विवादों की समाप्ति की। उस प्रसंग में आपने एक सोरठा कहा—

लसानी अरु भीम, बड़खेड़ो बड़भागियो।
'तुलसी' श्रम निस्सीम, तीनां रो टूट्यो तड़ो॥

—लसानी, भीम और बड़ाखेड़ा में हुई एकता का ऐतिहासिक दस्तावेज यह सोरठा न जाने कितने लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। इन क्षेत्रों के विवाद सुलझाने में आचार्यश्री का समय और श्रम तो लगा पर गांव-गांव का वैमनस्य धुलने से उन व्यक्तियों और गांवों से प्रभावित अनेक गांवों के लोग प्रसन्न हुए।

मध्याह्न में भीम से छह किलोमीटर चलकर आचार्यवर 'थाणा' पहुंचे। राणावास में तेरापंथ होस्टल के इन्चार्ज श्री मूलसिंहजी वहीं के रहने वाले हैं। उनकी प्रबल इच्छा थी कि आचार्यश्री उनके गांव में पधारें। इसके लिए वे पिछले कई दिनों से प्रयत्नशील थे। आचार्यवर ने उनकी भावना का मूल्यांकन किया और मध्याह्न की धूप झेलकर भी वहां आने की स्वीकृति दी। थाणा पहुंचने पर स्थानीय जनता ने आचार्यश्री का भावभीना स्वागत किया। स्थानीय ठाकुर साहब ने आचार्यवर के दर्शन पाकर कृतार्थता का अनुभव किया। प्रवचन का कार्यक्रम रात्रि में चला। अनेक व्यक्ति व्यसन-मुक्त बने। दो हजार की आबादी वाले थाणा गांव में छह परिवार तेरापंथी हैं।

सड़क पगडंडी से भी बदतर

२२ मार्च को आचार्यप्रवर का प्रवास ज्ञानगढ़ में था। थाणा से ज्ञानगढ़ की दूरी मात्र छह किलोमीटर है। किन्तु आचार्यवर को नौ किलोमीटर चलना पड़ा। इसका कारण बना शिवपुर गांव। वहां जैनों के चालीस परिवार रहते हैं।

तेरापंथी परिवार एक ही है, पर अन्य सभी जैन परिवार समन्वय और सौहार्द भाव से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने आचार्यश्री से शिवपुर आने का अनुरोध किया। कुछ भाइयों ने कहा—शिवपुर जाने में तीन किलोमीटर का चक्कर होगा। पहाड़ी रास्तों में चक्कर लेना सुविधाजनक तो नहीं होता, पर जन-भावना के सामने सुविधा-असुविधा सब गौण हो जाती है। आचार्यश्री वहां पधारे। लगभग एक घण्टा रुके और प्रवचन किया। स्थानीय भाइयों ने शिकायत के लहजे में कहा—हमारे मन में सन्तों के प्रति भक्ति है। हम सन्त-सतियों को प्रार्थना करते हैं, फिर भी वे हमें संभालते नहीं। हम स्थानकवासी हैं तो क्या हुआ, हमारी भक्ति का अंकन तो होना ही चाहिए।

आचार्यवर ने उनको आश्वस्त करते हुए समझाया—हमारी विधि के अनुसार हम साधु-साध्वियों के प्रत्येक वर्ग (सिंघाड़े) को एक-एक चोखला देते हैं। उस चोखले में जिन गांव के नाम होते हैं, उन्हीं गांवों में साधु-सतियां रह सकते हैं। आचार्य की आज्ञा के बिना कोई साधु-साध्वी कहीं भी नहीं रह सकते। अब तक हमको आपके क्षेत्र और भावना के सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं थी। अब इस विषय में ध्यान दिया जाएगा। शिवपुरवासी इस आश्वस्ति को पाकर कृतार्थ हो गए।

शिवपुर से ज्ञानगढ़ के लिए दो रास्ते हैं—एक पगडंडी और दूसरा कच्ची सड़क। पगडण्डी वाला रास्ता कुछ सीधा है। कुछ साधु और साध्वियों ने पगडण्डी वाला रास्ता लिया। आचार्यवर भी वही रास्ता लेना चाहते थे। किन्तु ज्ञानगढ़ के श्रावकों ने कहा—पगडण्डी का रास्ता खराब है। इतने लोग अगवानी में आएंगे। हमारा निवेदन है कि आचार्यश्री सड़क के रास्ते से पधारें। श्रावकों का अनुरोध स्वीकार कर आचार्यवर ने सड़क का रास्ता लिया। पगडण्डी का रास्ता कुछ छोटा होने के साथ साफ भी था। सड़क पत्थरों से अटी पड़ी थी। इस कारण चलने में काफी असुविधा हुई। स्थान पर पहुंचने के बाद आचार्यवर ने इतना ही कहा—आज तो पगडण्डी से आने वाले सुख पाए। अपना जीवन परार्थ समर्पित करने वाले महापुरुष व्यक्तिगत सुख-सुविधा का ध्यान कब रखते हैं?

दो हजार की आबादी वाले ज्ञानगढ़ में तेरह परिवार तेरापंथी हैं। लगभग एक सौ पचास वर्ष पूर्व सिसोदिया वंश के रावत ज्ञानसिंहजी ने ज्ञानगढ़ को आबाद किया था। यह क्षेत्र आचार्य भिक्षु के समय का है। फिर भी तेरापंथ के सवा दो सौ वर्षों के इतिहास से २२ मार्च १९८५ को प्रथम बार आचार्यश्री का आगमन हुआ।

कैंसर भी समाप्त

आचार्यवर का प्रवास रंगलालजी कोठारी के मकान में और साध्वियों का वादरमलजी मांडोत के मकान में हुआ। छोटे से गांव में साधु-साध्वियों की श्वेत सेना की ओर इंगित करते हुए आचार्यवर ने कहा—आज तो यहां सव कुछ सफेद ही सफेद हो गया। इस सफेदी को गांववासी अपने भीतर उतारें, यह अपेक्षित है।

वहां प्रवासी सभी लोगों में धर्मानुराग अच्छा है। रंगलालजी कोठारी के पांव में कुछ वर्ष पूर्व कैंसर की वीमारी हो गई। उपचार किए। लाभ नहीं हुआ। डॉक्टरों का परामर्श था कि पांव कटा लेना चाहिए। अन्यथा वीमारी पूरे शरीर में फैल जाएगी। उनके पुत्र ने वम्वई में इलाज करवाना चाहा। किन्तु वे इन्कार हो गए। देव, गुरु और धर्म की शरण स्वीकार कर वे आचार्यश्री की उपासना करने आ गए। नियति का योग था या वातावरण का प्रभाव, उनका पांव ठीक हो गया। उसके वाद कई वर्षों तक लम्वे समय की उपासना किया करते थे।

कोठारीजी तपस्या भी अच्छी करते हैं। इन सव अच्छाइयों के वावजूद कुछ आग्रही मनोवृत्ति वाले हो गए। इसी कारण पिता-पुत्र के चिन्तन और कार्यपद्धति में सामंजस्य नहीं वैठ सका। आचार्यवर को इस वात की जानकारी मिली तो आपने पिता-पुत्र दोनों को प्रतिवोध देकर उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया। गांव में एक और विवाद चल रहा था, वह भी आचार्यश्री की मंगल प्रेरणा से समाप्त हो गया। कुल मिलाकर एक दिन का प्रवास भी ज्ञानगढ़वासियों को आन्तरिक ज्ञान देने वाला सिद्ध हुआ।

हम कुछ भी छोड़ सकते हैं

२३ मार्च को आचार्यवर ने ज्ञानगढ़ से चिताम्वा के लिए प्रस्थान किया। सीधा रास्ता कुछ लम्वा था, इसलिए पगडण्डियों से चले। कहीं सीधी और कहीं टेढ़ी पगडण्डियों पर यात्रा संघ का काफिला चल रहा था। उधर झीणा गांव के ठाकुर श्री विजयसिंहजी आदि तीन भाई सड़क पर प्रतीक्षा कर रहे थे। वे एक थाल में गुड़, शक्कर और दूध लेकर खड़े थे। उन्हें जव रास्ता वदलने की सूचना मिली तो वे भी दूसरी पगडण्डियों से खेतों को पार कर उस पगडण्डी पर पहुंच गए, जिधर से आचार्यश्री पधार रहे थे। कुछ ही क्षणों में आचार्यश्री वहां पहुंचे। उन्होंने दूध-शक्कर आदि भेंट करना चाहा। आचार्यश्री वोले—इन्हें क्या लें? आप अपनी कोई प्यारी वस्तु दें। ठाकुर साहव वोले—अन्नदाता! क्या दूं? मांस खाता नहीं, शराव पीता नहीं?

आचार्यश्री ने पूछा—तम्बाकू तो पीते होंगे? ठाकुर साहब संकोच महसूस करते हुए बोले—बीड़ी पीता हूं। आचार्यश्री ने बीड़ी छोड़ने की प्रेरणा दी तो साथ चलने वाले कुछ भाई बोले—वर्षों की आदत है। बीड़ी छूटनी मुश्किल है। ठाकुर साहब यह बात सुनते ही बोले—मुश्किल क्या है? गुरु महाराज का आदेश हो जाए तो हम कुछ भी छोड़ सकते हैं? उन्होंने उसी समय शराब, मांस और तम्बाकू का त्याग कर दिया। पास ही एक महाजन खड़ा था। आचार्यवर ने उसे लक्षित कर कहा—ये शराब, तम्बाकू छोड़ सकते हैं, आप मृत्युभोज नहीं छोड़ सकते। जिन्दे बाप को शायद पूरा पानी भी नहीं पिलाते और मरने के बाद उसे लड्डू और हलुआ खिलाना चाहते हैं। तुम बनिए हो। सोचो तो सही, कैसे पहुंचेगा उसके पास? आचार्यश्री की इतनी कड़ी बात सुनकर भी वह मृत्युभोज का त्याग नहीं कर सका।

आचार्यश्री वहां से आगे बढ़ने लगे तो ठाकुर साहब बोले—गुरुजी! घरवाली भी आ रही है। उसे भी दर्शन दीजिए। सामने की पगडण्डी से ठकुरानी लाठी के सहारे तेज चलती हुई आ रही थी। आचार्यवर न केवल रुके, उस पगडण्डी के सामने चलकर गए। ठाकुर कृतार्थ हो गए। ठकुरानी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। आचार्यवर को पगडण्डी की ओर बढ़ते देख एक भाई बोला—गुरुदेव! इस रास्ते में कांटे बहुत हैं। आपने मुस्कराते हुए कहा—भाई! कांटे हैं तो क्या हुआ, भक्ति के गुलाब भी तो यहां हैं। यह बात सुनकर सभी लोग पुलक उठे।

चिताम्बा पहाड़ के ऊपर बसा हुआ गांव है। वहां के अनेक मकानों के आगे प्राकृतिक पहाड़ी चट्टानें और सीढ़ियां हैं। मेवाड़ के अनेक गांव नीचे समतल भूमि होने पर भी पहाड़ों पर बसे हुए हैं। इसका कारण पूछने पर स्थानीय लोगों ने बताया कि प्राचीन समय में यहां भील आदि जातियों का आतंक रहता था। वे भोजन करते लोगों की रोटियां छीन कर ले जाते और उन्हें तंग करते। वे लोग पहाड़ों पर कम चलते थे। इस स्थिति में सुरक्षा की दृष्टि से लोग पहाड़ों पर बसने लग गए।

आदमी को कैसे हांका जाए?

कहा जाता है कि वहां लगभग चार सौ वर्ष पूर्व चितावरड़ा नाम की रावत जाति निवास करती थी। उसी के नाम पर गांव का नाम चिताम्बा हुआ। गांव की आबादी डेढ़-दो हजार के बीच में है। वहां सभी जातियों के लोग रहते हैं। तेरापंथ में श्रद्धा रखने वाले ६१ परिवार वहां हैं। आचार्य भिक्षु के समय से वहां तेरापंथ का प्रभाव है। वि० सं० १९७१ में आचार्यश्री कालूगणी ने चिताम्बा का स्पर्श किया। उसके बाद सं० २०१९ में आचार्यवर का पहली बार आगमन हुआ। उस

समय यह क्षेत्र वहुत साधारण स्थिति में था। व्यवसाय का वड़ा साधन मात्र कृषि था। मकान भी गोवर से लिपे-पुते और खपरैल की छतों वाले थे। शिक्षा की दृष्टि से भी गांव पिछड़ा हुआ था। आचार्यवर के आगमन के वाद हर दृष्टि से क्षेत्र का विकास हुआ है। व्यवसाय के लिए वाहर जाने के वाद आर्थिक संपन्नता वढ़ी है। रहन-सहन का स्तर उन्नत हुआ है। गांव में वड़ी-वड़ी पक्की इमारतें वन गई हैं और सोच-विचार का क्रम भी वदला है। वहां कभी-कभी साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी होते हैं। फिर भी वहनों के धार्मिक संस्कार वहुत कमजोर हैं। ६१ परिवारों में पांच-दस परिवारों में भी ऐसी वहनें नहीं थीं, जिनको प्रतिदिन नियमित रूप से सामायिक करने का नियम हो, रात्रिभोजन, सचित्त अथवा कच्चे पानी का त्याग हो। तत्त्वज्ञान की कमी और साधु-साध्वियों की वलवती प्रेरणा की कमी—ये दो ऐसे कारण हैं, जिनका निवारण किए विना संस्कार निर्माण का काम होना वहुत कठिन है। आचार्यवर ने पारिवारिक उपासना के क्रम में एक-एक भाई-वहन को प्रेरित किया तो त्याग-प्रत्याख्यान का अच्छा सिलसिला चला।

आचार्यवर ने अपने प्रथम प्रवचन में चिताम्वा की जनता को संवोधित करते हुए कहा—पहले जव हम चिताम्वा आए थे, उस समय गांव की स्थिति वहुत साधारण थी। पर अव तो यहां वड़ी-वड़ी हवेलियां वन गई हैं। हवेलियां तो वन गईं, पर मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आपका जीवन वना या नहीं? हम लोग इन हवेलियों को देखकर नहीं, आपका सुधरा हुआ जीवन देखकर खुश होंगे।

जीवन सुधार की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा—पशु का हांकना सरल है, पर आदमी को कैसे हांका जाए। आप देखते हैं कि पशु भी अपने भक्ष्य, अभक्ष्य के वारे में जागरूक हैं, गधा, वैल, भैंस कोई भी पशु तम्वाकू नहीं खाते, पर आदमी खाता है। आदमी एक ऐसा जानवर है, जो सूखे पदार्थों में पत्थर और गीले पदार्थों में गोवर को छोड़कर सव कुछ खाने के लिए तैयार रहता है।

मध्याह्न में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त आसपास के गांवों से सैकड़ों-सैकड़ों जाट, चौधरी और राजपूत प्रवचन सभा में उपस्थित थे। स्थान इतना संकीर्ण हो गया था कि पांव टिकाने के लिए भी अवकाश नहीं था। सन्तों का प्रवचन हुआ। श्रोताओं की जिज्ञासा वढ़ी। उन्होंने आचार्यवर को सुनना चाहा। आचार्यश्री ने प्रवचन शुरू किया तो उस भीड़ में गहरी खामोशी छा गई। मनुष्य जीवन की दुर्लभता के सन्दर्भ में उसे सफल वनाने के जो नुस्खे आचार्यवर ने वताए, श्रोताओं के मन आन्दोलित हो उठे। आचार्यश्री के आह्वान पर जव अनेक लोगों ने खड़े होकर वीड़ियों के वंडल तोड़े, चिलमें फोड़ीं और एक-एक कर वर्षों से पनपाए हुए व्यसन छोड़े, उस समय का दृश्य कितना मनोहारी था, उसे अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती।

जितना विरोध, उतना काम

चिताम्वा में समाज का अपना भवन है। भवन में निर्माण कार्य अभी भी चल रहा है। इस भवन-निर्माण का श्रेय है स्थानीय श्रावक श्री कजोड़ीमलजी सांभरा को। सांभराजी अपनी उम्र के साठ वर्ष पूरे कर चुके हैं। उनकी माता और पत्नी का स्वर्गवास हो गया। सन्तान कोई थी नहीं। उन्होंने समाज को ही अपनी सन्तान मान उसके लिए काम करने का लक्ष्य बना लिया। वे पढ़े-लिखे नहीं हैं, फिर भी सामाजिक काम करने की कला जानते हैं। उन्होंने गांव से संलग्न पहाड़ी पर वड़ा स्थान लिया और काफी वड़ा सभा-भवन बनवाया। भवन में एक वड़ा हॉल है, जिसमें पांच सौ व्यक्ति बैठ सकते हैं। ऊपर-नीचे मिलाकर पांच-सात कमरे भी हैं। पहाड़ी पर होने के कारण सभा-भवन दूर से ही दिखाई देता है। जिस समय उन्होंने भवन वनवाना शुरू किया, पूरा गांव उनके विरोध में खड़ा हो गया। विरोध का कारण था स्थान की दूरी। गांव के प्रायः सभी लोगों ने कहा—इतनी दूर धर्मोपासना करने के लिए कौन जाएगा? उन लोगों का तर्क उचित था। पर गांव के भीतर इतना बड़ा स्थान प्राप्त नहीं हो रहा था। भवन बनवाकर दो-चार कमरों का वनवाना सांभरजी को उचित ही लगा। उन्होंने गांव का विरोध बर्दाश्त किया। अकेले घूमे, पैसा इकट्ठा किया, आवश्यकता होने पर स्वयं मजदूरी भी की और अपनी लगन के आधार पर समाज का भवन खड़ा करवा दिया।

सभा-भवन वनवाने के बाद उसके मन में आया—गांव में वड़ा विद्यालय नहीं है। वच्चे कहां पढ़ेंगे? कैसे पढ़ेंगे? एक वड़ा विद्यालय होना चाहिए। वात मन में आई और उसे पूरी करने की धुन सवार हो गई। उसमे भी गांव के महाजनों ने विरोध किया, सरकार ने भी विरोध किया। पर वे रुके नहीं। सरकार से लड़कर तीन वीघा जमीन प्राप्त कर भवन खड़ा कर दिया। विरोधी वातावरण अव भी वैसा ही है, पर सांभरजी निर्द्वन्द्व भाव से अपना काम कर रहे हैं।

आचार्यश्री के चिताम्वा पधारने पर गांव की दूसरी-दूसरी कौमों के लोग मिलकर आए और वोले—कजोड़ीमलजी स्कूल वनवा रहे हैं और गांववासी इनका विरोध कर रहे हैं। आपका यहां आगमन हुआ है। आप कृपा कर इस विरोध को समाप्त करवा दें। आचार्यवर ने रात्रिकालीन कार्यक्रम के लिए साध्वियों को निर्देश दिया और गांव के प्रमुख लोगों को याद किया। वे लोग गुरुदेव के सामने उपस्थित हुए तो आपने पूछा—गांव की छत्तीस कौमों से लोग लिखित आवेदन लेकर आए हैं। गांव में स्कूल का विरोध है क्या? गांववासी सहमते हुए वोले—गुरुदेव! गांव से इतनी दूर स्कूल का क्या उपयोग होगा? स्कूल के कमरे भी इतने बड़े-बड़े वनवा रहे हैं। इतनी व्यवस्था कहां से होगी? फिर ये अनुदान

के लिए हमें तंग करेंगे। हम लोगों को ये डराते भी बहुत हैं, इसलिए इनका विरोध होता है।

कजोड़ीमलजी पास ही बैठे थे। उन्होंने कहा—इनको इसी बात का डर है तो आप मुझे त्याग करवा दें। मैं इनसे पैसा नहीं मांगूंगा। इन्होंने पैसा दिया नहीं तो भी विरोध करते हैं। पैसा मैं घूम-फिरकर लाता हूं। गांव वाले व्यर्थ ही गुस्सा करते हैं। मैं इनकी आजिजी करता हूं, हाथ जोड़ता हूं, फिर भी ये नहीं मानते, तब मैं भी अधीर हो जाता हूं और गालियां बक देता हूं।

इस समग्र वार्ताप्रसंग में गांववासियों को अपनी भूल का अहसास होने लगा। वे विनम्र होकर बोले—गुरुदेव ! हमको आज से विरोध करने का त्याग करवा दीजिए। आचार्यवर ने कहा—प्रश्न त्याग का नहीं, विरोध का आधार खोजने का है। आप विरोध करते क्यों हैं ? इस पर वे बोले—स्कूल में बच्चे पढ़ेंगे। स्कूल दूर होने से बच्चों को असुविधा होगी, बस इसीलिए हम कह रहे हैं कि इतनी दूर स्कूल मत बनवाओ।

पहले गांव की सेवा

आचार्यवर ने कजोड़ीमलजी की कर्तव्यनिष्ठा और लगन का अंकन करते हुए कहा—चिताम्बा के लोगों जैसी नासमझी मैंने कहीं नहीं देखी। गांव में ऐसे कर्मठ व्यक्ति का गौरव करना तो दूर रहा, उलटा विरोध किया जा रहा है। आप लोग स्कूल बनाने का विरोध करते हैं और आपके बच्चे, जो गुजरात में रहते हैं, इनको पैसा देते हैं। स्कूल बने या नहीं, इस बात से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। पर गांव के किए विकासमूलक कामों का विरोध क्यों हो ?

आचार्यश्री की प्रेरणा से गांववासियों का मानस बदला, चिन्तन बदला और उन्होंने एक स्वर से कहा—अब हम किसी प्रकार का विरोध नहीं करेंगे। आचार्यवर ने कजोड़ीमलजी को लक्ष्य कर कहा—आपमें काम करने की इतनी तड़प है, तो आप यहां क्यों बैठे हैं ? जैन विश्व भारती भी तो आपके समाज का संस्थान है। वहां अपनी सेवा क्यों नहीं देते? कजोड़ीमलजी समाज और शासन की सेवा का महत्त्व समझते थे, फिर भी अपने गांव से उनको कुछ विशेष ही लगाव था। उसे प्रकट करते हुए वे बोले—पहले अपने गांव की सेवा करूंगा, उसके बाद और कहीं जाऊंगा। सभा-भवन और स्कूल—दोनों का विरोध समाप्त होने से गांव का वातावरण अच्छा बन गया और कजोड़ीमलजी भी खुश हो गए।

उपर्युक्त दो बातों से निपटने के बाद आचार्यवर ने चिताम्बा के श्रावक-समाज की सामाजिक चेतना को झकझोरते हुए सब लोगों को रूढ़िमुक्त होने की प्रेरणा दी। कुछ बातों को उन्होंने सहजभाव से स्वीकार कर लिया ! मृत्युभोज के

सन्दर्भ में बात अटक गई। काफी देर तक समझाने के बाद उन्होंने थोड़ी-सी छूट के साथ एकमत होकर निर्णय ले लिया कि वे भोज के रूप में मृत्युभोज की कोई परम्परा नहीं चलाएंगे। आचार्यवर से प्रतिबोध प्राप्त कर बहुत लोग अर्थहीन परम्पराओं के वजनी शव को छोड़ने के लिए तत्पर हो जाते हैं, पर हर गांव में दो-चार व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं, जिनका अपने ही संस्कारों के साथ गहरा संघर्ष चलता रहता है।

यह माटी नहीं, चन्दन है

२५ मार्च को प्रातः आचार्यवर १४ किलोमीटर चलकर झालरा पहुंचे। एक हजार की आबादी वाले झालरा में केवल दो परिवार तेरापंथी हैं। छोटे-से गांव में राजपूतों की बस्ती अच्छी है। आचार्यवर का प्रवास रावले में हुआ। रावले की ठकुरानियों और कंवरानियों ने मिलकर अपने मकान के बाहरी परिसर में प्रवासित आचार्यवर के दर्शन किए। दर्शन करने के बाद कुछ क्षणों तक वे इस प्रकार देखती रहीं मानो उन्होंने कोई अजूबा देखा है। उन्होंने बताया कि वे अपने मकान के इस कमरे में आज पहली बार आई हैं। सामान्यतः वे घर की दहलीज को भी नहीं लांघ सकतीं।

एक ठकुरानी जसोल की लड़की है। उसे अपने पिता के घर साधु-साध्वियों के संपर्क का अवसर मिल चुका था। जसोल में उन्होंने आचार्यवर के दर्शन भी किए थे। उन्होंने अपने परिवार की अन्य महिलाओं के साथ आचार्यवर से निवेदन किया कि वे रावले के भीतर पधारकर उन्हें कृतार्थ करें। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर आचार्यश्री भीतर पधारे। वहां चौक में थोड़ी मिट्टी रखी हुई थी। ठकुरानी ने कहा—आप अपने चरण यहां टिकाएं। वैसा करने के बाद उन्होंने मिट्टी का एक-एक कण उठाकर एक डिबिया में रख लिया। इसका आप क्या करेंगी? इस प्रश्न के उत्तर में वे बोलीं—अब यह माटी कहां है, गुरुजी के चरण-स्पर्श ने इसको चन्दन बना दिया है। मैं इसे पूरी हिफाजत से अपने पास रखूंगी। ठकुरानी के श्रद्धासिक्त शब्दों से वहां उपस्थित सब लोगों को श्रद्धा के सागर में अवगाहन करने की प्रेरणा मिली।

झालरा से आसीन्द पंचायत समिति की सीमा शुरू होती है। पंचायत समिति के अधिकारी व अन्य सैंकड़ों व्यक्ति उस दिन आसीन्द से झालरा आए। आसीन्द ग्राम पंचायत विकास अधिकारी श्री भंवरलालजी गन्ना एवं आसीन्द ग्राम पंचायत समिति के प्रधान श्री किशनसिंह चुण्डावत ने आचार्यवर के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापन करते हुए अपने पंचायत क्षेत्र की जनता को अधिक से अधिक सान्निध्य प्रदान करने का अनुरोध किया। आचार्यवर ने अपने प्रवचन में जीवन-निर्माण के

तीन सूत्रों की चर्चा की—

- खान-पान की शुद्धता
- रहन-सहन की पवित्रता
- विचारों की निर्मलता।

मध्याह्न में गांववासियों की बड़ी उपस्थिति को आचार्यवर ने फिर संबोधित किया। अनेक व्यक्तियों ने शराब, मांस, बीड़ी, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं के सेवन का परित्याग किया। झालरा में आचार्यवर का यह आगमन पहली बार हुआ था।

ट्रैक्टर में कैसे बैठें ?

मध्याह्न का समय था। आचार्यवर प्रवचन संपन्न कर भीतर पधारे ही थे कि पन्द्रह-बीस बहनों का एक समूह तिलोली से वहां पहुंचा। झलरा से तिलोली दस किलोमीटर दूर है। बहनों ने दर्शन करने की इच्छा की और भोजन आदि से निवृत्त होकर लगभग ११ बजे पैदल ही चल पड़ीं। धूप तेज थी। शरीर उनके पसीने से तरबतर थे। फिर भी आंखों में सन्तोष की झलक थी। आचार्यवर ने उनसे पूछा—बहनो ! आप इतनी दूर पैदल कैसे आईं ? कोई वाहन नहीं मिला क्या ? यह प्रश्न सुन वे तपाक से बोलीं—तिलोली से एक ट्रैक्टर यहां आया था। हमें भी कहा गया था कि हम ट्रैक्टर में बैठकर यहां आपके दर्शन करें। किन्तु हमने सोचा—आप हमारे लिए इतने कष्ट उठा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम इतनी-सी दूर ट्रैक्टर में बैठकर कैसे आएं ? यह बात हमारे मन में उतर गई और हमने पैदल चलकर दर्शन करने का संकल्प कर लिया।

आचार्यवर ने उनके संकल्प की सराहना करते हुए सहज भाव से पूछ लिया—धूप तो काफी तेज थी। रास्ते में पानी मिला या नहीं ? गुरु-कृपा के इन दो बोलों से बहनों का उत्साह इतना बढ़ा कि वे उसी समय आचार्यश्री के विहार में साथ हो गईं और तीन किलोमीटर चलकर रघुनाथपुरा पहुंच गईं। श्रद्धा और गुरु कृपा का योग हो जाने पर कोई भी काम कठिन प्रतीत नहीं होता।

इतने लोग कहां से आए

रघुनाथपुरा गांव धाऊजी का खेड़ा नाम से अधिक प्रसिद्ध है। हजार-आठ सौ की आबादी वाले गांव में ग्यारह परिवार तेरापंथी हैं। २५ मार्च को अपराह्न में झालरा से प्रस्थान कर आचार्यवर रघुनाथपुरा पहुंचे। छोटा-सा गांव, श्रद्धा के थोड़े से घर, फिर भी न जाने कहां-कहां से लोग आ गए। आचार्यवर के पधारते-

पधारते उनकी संख्या हजारों तक पहुंच गई। सामने इतनी बड़ी उपस्थिति देखकर समय कम होने पर भी आचार्यवर ने कुछ देर उपदेश दिया। रात्रिकालीन कार्यक्रम में परिषद का जो रंग खिला, देखने योग्य था। स्थानीय विद्यालय का विशाल प्रांगण खचाखच भरा था। आचार्यवर स्वयं अचंभित हो रहे थे कि इतने लोग आ कहां से गए? जैन आगमों में जीवों की संमूर्च्छिम उत्पत्ति का उल्लेख है! अमुक प्रकार के वातावरण में एक साथ गणनातीत जीव उत्पन्न हो जाते हैं, वे संमूर्च्छिम कहलाते हैं। उन जीवों के मन नहीं होता। आचार्यवर के रघुनाथपुरा आगमन पर हजारों की संख्या में जिन समनस्क मनुष्यों का उद्भव हुआ, उनकी आंखों में उल्लास था और मन में उमंग थी। वे सब एक मनुष्यता की दरी पर मिल-जुलकर बैठे और मानवता के संदेशवाहक को सुनकर कृतार्थ हो गए।

चिताम्बा से झालरा और झालरा से रघुनाथपुरा पहुंचने के लिए पहाड़ियों में बिखरी हुई पगडंडियों का रास्ता लिया गया। वह रास्ता छोटा तो था, पर इतना विषम था कि युवक भी श्रान्त हो जाएं। साधु-साध्वियां कंधों पर बोझ और पानी का पात्र लेकर चलते हैं। चलने में कठिनाई तो होती ही है, पर मानसिक उत्साह के द्वारा उसे पार कर दिया जाता है। इस बात को लक्ष्य कर आचार्यवर ने अपने प्रवचन में कहा—मार्ग की कठिनाइयों को देखता हूं तो इन गांवों में आने की इच्छा ही नहीं होती। पर जब लोगों की श्रद्धा, भक्ति और उत्साह को देखता हूं तो इन क्षेत्रों में जमकर काम करने की इच्छा होती है। छोटी-मोटी कठिनाइयों से घबराकर इन क्षेत्रों की उपेक्षा करना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं है। साधु-साध्वियां भी इन गांवों पर विशेष ध्यान दें तो यहां अध्यात्म की अच्छी पौध उगाई जा सकती है।

पता नहीं, क्या हो गया

कटार गांव की नयी पहचान कीर्तिनगर नाम से होती है। प्राचीन समय में यह गांव 'कोट' नाम से प्रसिद्ध था। वहां शिवजी का एक प्राचीन मंदिर है। किसी समय राणा सांगा उस मंदिर के निकट से होकर जा रहे थे। वहां आकस्मिक रूप से उनकी कटार गिर गई। उसके बाद गांव का नाम कटार हो गया। कोट नाम का उल्लेख किंवदंतियों में भी प्राप्त होता है। जैसा कि कहा जाता है—

काकर कोट कुहाड़ियो थाणो।
नित को दौड़े, सांगो राणो॥

बड़लावाला गांव के नाम से भी कटार की प्रसिद्धि है। गांव के लोगों ने बताया कि वहां एक बड़ वृक्ष है। प्राचीन समय में बड़ का विस्तार बारह बीघा जमीन में था। आज वह अठारह बीघा में फैल गया है। मेवाड़ में वह सबसे बड़ा

वृक्ष है, ऐसा माना जाता है। खारी नदी के तट पर वसे इस गांव को आवाद करने वाले थे ठाकुर वीरमदेवसिंहजी।

तेरह सौ की आवादी वाले कटार ग्राम में सत्ताईस परिवार तेरापंथी हैं। वहां तेरापंथ की श्रद्धा आचार्य भिक्षु के समय से है। वि० सं० १९६५ में वहां तेरापंथ के सातवें आचार्यश्री डालगणी का पदार्पण हुआ था। उसके वाद सं० २०१९ में आचार्यश्री ने उसका स्पर्श किया। सं० २०४२ में आचार्यवर के आगमन के समय कटार की छवि काफी साफ-सुथरी लगी। अव तक वहां साधु-साध्वियों के चातुर्मास नहीं हुए। पिछले दो-तीन वर्षों से वे चातुर्मास के लिए सघन प्रार्थना कर रहे हैं, पर उनकी भावना अभी तक पूरी नहीं हो पायी है।

२६ मार्च को प्रातः आचार्यवर कटार पधारे। स्थानीय राजकीय विद्यालय में प्रवास की व्यवस्था थी। समीपवर्ती क्षेत्रों से भी काफी लोग समय पर कटार पहुंच चुके थे। विद्यालय परिवार की ओर से प्रधानाध्यापक श्री मदनचन्दजी कोठारी ने आचार्यवर का स्वागत किया। स्थानीय सरपंच श्री ईश्वरप्रसादजी ने आचार्यवर के आगमन को अपने गांव का सौभाग्य वताया। आसीन्द पंचायत समिति के प्रधान चुण्डावत ने भी आसीन्द तहसील की ओर से आचार्यवर का अभिनन्दन किया। आचार्यश्री मंच पर विराजमान थे। सामने हजारों श्रोता थे। कार्यक्रम शुरू हो चुका था। श्रोता लोग आचार्यवर को सुनने की प्रतीक्षा में थे। सहसा एक व्यक्ति भावविह्वल मुद्रा में आगे आया। वह उसी स्कूल का अध्यापक श्री वंशीलाल वर्मा था। उसने माइक पर खड़े होकर कहा—मुझे वीस वर्षों से शराव पीने की आदत है। वहुत कोशिश करने पर भी यह मेरा पीछा नहीं छोड़ रही है। इससे मैं स्वयं परेशान हूं और मेरा पूरा परिवार एवं गांव भी परेशान है। आज आचार्यश्री के दर्शन करते ही, पता नहीं मेरे भीतर क्या घटित हो गया? मेरी चेतना जाग उठी। अपनी आत्मा मुझे धिक्कारने लगी। अव मैं इस नागिन के पाश से मुक्त होने के लिए छटपटा रहा हूं। आप मुझे आशीर्वाद दें, ताकि मेरी संकल्प-शक्ति मजवूत हो और मैं अपने जीवन को नयी दिशा दे सकूं।

इतना कहकर वह आचार्यप्रवर के चरणों में प्रणत हो गया। उसने हजारों लोगों की साक्षी से आजीवन शराव न पीने का संकल्प स्वीकार कर लिया।

दो किसको वजे

श्री वंशीलालजी के इस अप्रत्याशित वदलाव पर वह स्वयं तो पुलकित था ही, कटार गांव के निवासियों की प्रसन्नता का भी पार नहीं रहा। कई लोगों के मुंह से एक साथ वोल फूट पड़े—वहुत अच्छा हुआ। इसी वीच मंच संचालक ने उपस्थित जनसमूह को मध्याह्न में समायोजित किसान सम्मेलन की सूचना देते हुए कहा—

अभी स्वागत-समारोह का कार्यक्रम चल रहा है। अब कुछ ही क्षणों में आचार्यश्री अपना मंगल प्रवचन करेंगे। आचार्यश्री के प्रवचन से प्रतिबुद्ध होकर जो लोग अपने जीवन की बुराइयां छोड़ना चाहें, वे अपने मन को टटोल लें, अपने संकल्प को मजबूत कर लें। मध्याह्न में उन सबको अपनी बुराइयों की भेंट चढ़ानी है।

संयोजक अपने स्थान पर पहुंचा ही नहीं था, उससे पहले ही राउजी नामक नाई खड़ा हुआ और आगे आकर बोला—संतों के दर्शन एक ही क्षण में आदमी के भीतर को झकझोर देते हैं। उस क्षण अन्तःकरण में ऐसा तूफान उठता है, जिसे रोकना मुश्किल है। दो किसको बजे ? मुझे तो अभी-अभी शराब, मांस और तम्बाकू के सेवन का त्याग करवा दें।

भाई राउजी त्याग स्वीकार कर बैठे ही थे कि एक अन्य युवक आगे आया। अपनी जेब से बीड़ी का बण्डल निकालकर फेंकते हुए कहा—गुरुजी ! दारू पीता नहीं, मांस खाता नहीं। यह तम्बाकू पीछे पड़ी है। आज इससे पिण्ड छुड़ा दीजिए। आचार्यवर ने उसका मन तोलने की दृष्टि से पूछा—तुम देखा-देखी तो बीड़ी नहीं छोड़ रहे हो ? फिर सिर-दर्द हो जाएगा तो क्या करोगे ? आचार्यवर की इस करुणा ने उसको द्रवित कर दिया। वह बोला—देखा-देखी क्यों करूं ? उससे मुझे क्या मिलेगा ? आज मेरे मन में तो इतनी खुशी हो रही है कि मैं कुछ कह नहीं सकता (आज म्हारो मांयलो जीव बोत राजी होय रह्यो है)। अब आप मुझे जल्दी से नियम दे दीजिए।

नियम ग्रहण के प्रति युवक के उतावलेपन को देखकर अन्य अनेक लोगों के मन भी आन्दोलित हुए, पर उन सबको सोचने का समय देकर आचार्यश्री ने प्रवचन शुरू कर दिया।

वाणी में जादू

मध्याह्न में विराट किसान सम्मेलन का आयोजन था। उसमें न केवल कटार के, अपितु आसपास के अनेक गांवों से किसान बन्धु बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। बिना किसी खास सूचना के हजारों किसानों की उपस्थिति आश्चर्यजनक थी। सांगानेर के सर्वोदयी समाज सुधारक बुजुर्ग नेता श्री मनोहरसिंहजी मेहता भी सम्मेलन में पहुंच गए। श्री मेहता परंपरा से स्थानकवासी हैं, पर आचार्यश्री के प्रति वे स्वाभाविक शिष्य भाव से समर्पित हैं। आचार्यश्री के मिशन और कार्यक्रमों के वे प्रशंसक और समर्थक ही नहीं, क्रियान्वयन करने वाले हैं। जब-जब उन्हें आचार्यश्री की सन्निधि में आने का अवसर मिलता है, वे भाव-विभोर हो जाते हैं। आचार्यवर के चरण स्पर्श करते हुए वे अपने भीतर शक्ति के संप्रेषण का अनुभव करते हैं। वे वक्ता तो हैं ही, पर इतने मधुर वक्ता हैं कि एक बार

तो श्रोताओं को अपने साथ वहा लेते हैं। जीवन भर अविश्रान्त भाव में काम करना और उसके वदले में कोई आकांक्षा न रखना उनके जीवन का सहज क्रम है। गांधीजी के आदर्शों पर चलने का लक्ष्य होने के कारण वे लोकप्रिय और निर्विवाद कार्यकर्ता के रूप में निष्ठा और लगन के साथ काम कर रहे हैं।

मेहताजी ने किसान सम्मेलन को सम्वोधित करते हुए आचार्यवर के पंचसूत्री कार्यक्रम पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा—आचार्यश्री की वाणी में जादू है। आप जिस काम में लग जाते हैं, सफलता स्वयं आपके द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है।

आचार्यवर ने अपने उद्बोधक प्रवचन में कहा—आज कटार में एक मेला हो गया है। यह मेला पशु-पक्षियों का नहीं है, क्रय-विक्रय का नहीं है, धर्म का मेला है। इस मेले में सव देख रहे हैं, सुन रहे हैं और सोच रहे हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए? यह मेला किसी वाहरी दृश्य को देखने का नहीं, अपने आपको देखने का है। यह एक ऐसा मेला है, जिसमें न नोटों की मांग है, न वोटों की मांग है। यहां तो केवल खोटों की मांग होती है।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में ग्रामीण लोगों के जीवन में पनपने वाली बुराइयों का विश्लेषण करते हुए उन्हें अपनी प्रिय से प्रिय बुराई छोड़ने का आह्वान किया। आचार्यवर का आह्वान इतना प्रभावी था कि दो-चार वर्ष नहीं, तीस-चालीस वर्षों से शराव और तम्वाकू के आदी लोगों ने सवके सामने खड़े होकर नशीले पदार्थों के सेवन का परित्याग किया। किसान सम्मेलन में सैकड़ों व्यापारी भी उपस्थित थे। आचार्यवर ने उनकी ओर इंगित किया तो अनेक व्यापारियों ने एक साथ खड़े होकर अणुव्रत के संकल्प स्वीकार किए।

समाज का मुकाबला

कटार निवासी श्री विरधीचन्दजी भटेवरा का परिवार पिछले कुछ वर्षों से समाज से अलग था। कारण कोई वड़ा नहीं था। छोटी-सी जमीन को लेकर झगड़े का प्रारम्भ हुआ। आचार्यवर को इस विवाद की जानकारी मिली तो आपने सारी स्थिति की जांच की। जांच का निष्कर्ष यह था कि सारा समाज उस एक व्यक्ति के खिलाफ था। आचार्यवर ने विरधीचन्दजी से वात की। वे वोले—मैं सच्चा हूं, जमीन के पट्टे मेरे पास हैं। आचार्यश्री ने कहा—सत्य और झूठ की वास्तविकता को समझना वहुत कठिन है। यदि तुम्हारा पक्ष सही है तो वह गलत कैसे होगा? पर पहले यह वताओ कि तुम समाज के साथ रहना चाहते हो या नहीं? समाज से कटकर रहने में स्वयं विरधीचन्दजी का नुकसान था। उन्होंने कहा—रहना तो समाज के साथ ही चाहता हूं। इस पर आचार्यवर ने कहा—

सामाजिक जीवन से जुड़े हुए किसी भी एक व्यक्ति को समाज का मुकाबला नहीं करना चाहिए। अपनी बात को पारस्परिक सौहार्द और विश्वास की स्थिति में ही दूसरों के गले उतारा जा सकता है। समाज जो कहता है, उसे सुनो और स्वीकार करो तो यह झमेला मिट सकता है।

आचार्यवर की प्रेरणा मिली। गांव के कुछ लोगों ने शान्ति के साथ उनको समझाया। थोड़े से लाभ के लिए अधिक लाभ को गंवाना, उनके हित में नहीं है। यह बात समझ में आते ही वे गुरुदेव के चरणों में समर्पित हो गए। परस्पर एक-दूसरे के साथ क्षमा-याचना के मनभावन दृश्य ने उस विवाद को समाप्त कर पूरे गांव को एकसूत्रता से जोड़ दिया।

यात्राक्रम में एक मोड़

पूर्व निर्धारित यात्राक्रम के अनुसार २७ मार्च को आचार्यवर का प्रवास कीड़ीमाल में होने वाला था। कीड़ीमाल के बाद चैनपुरा, सुराज, बदनौर, शंभूगढ़ और पड़ासोली का क्रम था। किन्तु आकस्मिक रूप से यात्रा का क्रम बदलना पड़ा। इस परिवर्तन का निमित्त था आचार्यवर के घुटने का दर्द। यों तो बालोतरा चातुर्मास से ही आपके एक घुटने में दर्द होने लगा था। उसके लिए होम्योपैथिक दवा ली। ठण्डे पानी और गर्म पानी का सेक किया। दर्द पूरी तरह से ठीक नहीं हुआ, पर काम चलता रहा। मेवाड़ यात्रा के प्रारंभ में 'सारण' में दर्द काफी बढ़ गया। विश्राम करने की अपेक्षा थी, पर वहां रुककर समय जाया करने की मानसिकता नहीं थी। तैल मालिश करवाने से कुछ राहत मिली। एक समय में होने वाली सोलह किलोमीटर की यात्रा को दो भागों में बांटकर निश्चित समय पर आचार्यवर दूधालेश्वर पहुंच गए। दूधालेश्वर से टाडगढ़ की चढ़ाई में कुछ अतिरिक्त श्रम हुआ। दर्द की वृद्धि स्वाभाविक थी। टाडगढ़ में पांच दिन का विश्राम मिलने से बढ़ा हुआ दर्द तो कम हो गया, पर वह पूरी तरह से नहीं मिटा। उसके बाद यात्रा फिर शुरू हो गयी। मेवाड़ की पहाड़ी धरती, ऊबड़-खाबड़ रास्ते और अविश्रान्त गमन। दर्द के कम होने का कोई कारण ही नहीं था। २५ मार्च का विहार लम्बा हुआ और दर्द बढ़ गया। २६ मार्च को आचार्यवर कटार पधारे। आगे के चार क्षेत्रों का स्पर्श करने में विहार काफी लम्बे थे। फिर भी आचार्यश्री उन्हें टालना नहीं चाहते थे। कुछ लोगों ने विनम्र सुझाव दिया कि दर्द बढ़ने का कारण लम्बे विहार हैं। लगातार लम्बे विहार करने से चलने में कठिनाई हो सकती है, अतः यात्रा का रास्ता परिवर्तित किया जाए।

दर्द साधारण ही होता तो इस सुझाव पर विचार का प्रसंग उपस्थित नहीं होता। किन्तु सुझाव को विचाराधीन मानने का सीधा अर्थ यह था कि आचार्यवर

ने भी दर्द की गंभीरता का अनुभव कर लिया था। रात्रि के समय उक्त सन्दर्भ में चिन्तन हुआ। चिन्तन का एक बिन्दु यह था कि आचार्यवर को आसीन्द से पहले जिन क्षेत्रों का स्पर्श करना है, वहां के श्रावक पूरी तैयारी के साथ आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन क्षेत्रों का स्पर्श होना चाहिए। पर वहां आचार्यवर न पधारकर युवाचार्यश्री पधार जाएं तो भी काम हो सकता है। आचार्यश्री का स्वास्थ्य चतुर्विध धर्मसंघ का स्वास्थ्य है, समूची मानवता का स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की उपेक्षा किसी भी स्थिति में वांछनीय नहीं है। वहां उपस्थित साधुओं ने भी इस चिन्तन को उचित समझकर आचार्यश्री से अगली यात्रा के बारे में पुनर्विचार का अनुरोध किया। आचार्यश्री की मानसिकता उक्त विचार के सम्बन्ध में इतनी अनुकूल नहीं थी। फिर भी घुटने में दर्द बढ़ने की संभावना और साधुओं एवं श्रावकों के आग्रह भरे अनुरोध को स्वीकार कर यह निर्णय लिया गया कि आचार्यश्री एक दिन और कटार में विश्राम कर सीधे रास्ते से आसीन्द पहुंचेंगे और उन चार-पांच क्षेत्रों की संभाल युवाचार्यश्री करेंगे।

युवाचार्यश्री उस दिन भीम में प्रवास कर रहे थे। साहित्य का काम करने के लिए वे कुछ दिन देवगढ़ रहे। वहां से सीधे रास्ते आसीन्द पहुंचने का कार्यक्रम था। भीमवासियों के अनुरोध पर वहां उन्होंने दो दिन रहने की स्वीकृति दी थी। किन्तु इधर यात्रा का क्रम बदल जाने से युवाचार्यश्री को भी अपना रूट बदलना पड़ा। युवाचार्यश्री दूसरे ही दिन भीम से प्रस्थान कर सुराज होते हुए चैनपुरा पहुंच गए। उसके बाद बदनौर, शंभूगढ़ और पड़ासोली में भी एक-एक दिन का प्रवास कर आप ३१ मार्च को आसीन्द पहुंच गए। उक्त सभी गांवों के लोग आचार्यश्री के न पधारने की सूचना से हताश से हुए। पर युवाचार्यश्री ने अपने अन्य चालू कामों को गौणकर हर क्षेत्र को पूरा समय देकर संभाला। दिन भर ध्यान, स्वाध्याय, लेखन और चिन्तन-मनन में व्यस्त युवाचार्यश्री के वे क्षण लोकचेतना के जागरण में लगे। इससे आपको भी कुछ नये अनुभव हुए और जनता की धारणाओं में भी बदलाव आया। कुल मिलाकर यात्राक्रम का वह परिवर्तन सब दृष्टियों से उपयोगी रहा।

एक्सरसाइज से स्थायी लाभ

यात्राक्रम में परिवर्तन होने के बाद आचार्यश्री २७ मार्च को भी कटार रहे। कटारवासी चाहते थे कि २८ मार्च का दिन भी उन्हें मिले। किन्तु उनकी यह चाह पूरी नहीं हुई। २७ मार्च को आचार्यवर का कटार से विहार न होने की बात भीलवाड़ा तक पहुंच गयी। वहां के श्रावकों को चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। उन्होंने हड्डियों के स्पेशलिस्ट डॉ० जे० के० शर्मा और डॉ० नरपतमल

सिंघवी के साथ कटार दर्शन किए। डॉ० शर्मा ने घुटने की जांच करने के वाद वताया कि हड्डी में कोई खरावी नहीं है। मसल्स दुर्वल हैं, एक्सरसाइज करने से लाभ होगा। डॉक्टर ने तात्कालिक लाभ के लिए कुछ औषधियां भी सुझाईं, पर आचार्यप्रवर दवा लेना नहीं चाहते थे। तव डॉ० शर्मा वोले—दवा तो टेम्परेरी लाभ के लिए है। स्थायित्व के लिए तो एक्सरसाइज ही जरूरी है। यह वात आचार्यवर को भी पसन्द आई। एलोपैथिक दवा से तात्कालिक राहत तो मिल सकती है, किन्तु उसके साइड इफेक्ट से वचना मुश्किल है। खाद्यसंयम, एक्सरसाइज, संकल्प अनुप्रेक्षा आदि ऐसे प्रयोग हैं, जो शारीरिक के साथ आध्यात्मिक लाभ भी दे सकते हैं।

घटना तैंतीस वर्ष पहले की

२८ मार्च को आचार्यश्री कटार से कीड़ीमाल पधारे। सात सौ की आवादी वाले कीड़ीमाल में श्रद्धा के वारह परिवार हैं। आचार्यवर का प्रवास श्री चांदमलजी शंकरलालजी भटेवरा के मकान में हुआ। कुछ संत श्री भंवरलालजी चावत के मकान में रहे। भंवरलालजी के वावा श्री हरखचन्दजी चावत वड़े श्रद्धालु श्रावक थे। वि० सं० २००९ में वहां साध्वीश्री सजनांजी का आगमन हुआ। उसी दिन मध्याह्न में पड़ोसी गांव चैनपुरा के वीड़ से सुरता नाम का रावत आया। उसके पास चांदी की कुछ अंगूठियां थीं। उसने कहा—मैं इन्हें वेचकर अनाज खरीदूंगा। वास्तव में उसे कुछ खरीदना नहीं था, महाजनों का भेद लेना था। वह डाकुओं का मुखविर वनकर वहां आया था। उसके जाने के कुछ समय वाद ही सशस्त्र ग्यारह डाकुओं का एक दल गांव में पहुंचा। हरखचन्दजी दौड़ते हुए घर में आए और वोले—गांव में डाकू आ गए हैं। उनके भाई की पन्द्रह वर्षीया लड़की पानीवाई इस सूचना से घवरा गयी। वह अपने मकान के पिछवाड़े से कुम्हारों के घर में कूद गयी। उसके कूदने से एक टपरी टूट गयी और वड़े-वड़े लक्कड़ उस पर आकर गिरे। हरखचन्दजी उसको वचाने के लिए दौड़े। उधर एक डाकू चांदमलजी भटेवरा की मेड़ी पर चढ़ गया था। उसने हरखचन्दजी को देखकर हल्ला मचाया—वनिया भाग रहा है। दो डाकू उधर दौड़े और कुम्हारों के घर में ही उनको पकड़ लिया। उन दिनों वहां डाकुओं का वड़ा आतंक था, इसलिए हरखचन्दजी ने अपने घर के गहने, रुपये कहीं दूसरे गांव भेज दिए थे। डाकुओं ने उनसे धन के वारे में पूछा। वहां कुछ था नहीं। वे वताएं तो क्या? कुछ न वताने पर डाकुओं ने उनको खाखरा की गीली लकड़ी से पीटना शुरू किया। एक के वाद एक तेरह प्रहार करने पर भी वे कुछ नहीं वोले। उन्हें फिर धमकाया गया तो वे वोले—मैं अणुव्रती हूं। झूठ वोलने का मुझे त्याग है। यहां मेरे पास विशेष

रूप से कोई संपत्ति नहीं है। डाकुओं को उनकी वात पर भरोसा नहीं हुआ। वे उन्हें घसीटते हुए उनके घर ले आए। सामने के वरामदे में साध्वियां वैठी थीं। उन्होंने उस संकटकाल के न टलने तक चारों आहार का त्याग कर आचार्य भिक्षु का नाम जपना शुरू कर दिया। डाकुओं को देखकर साध्वियां खड़ी हुईं तो वे वोले—आप अपना भगवद् भजन करें। हम आपको कुछ नहीं कहेंगे।

घर पहुंचने के वाद डाकुओं ने हरखचन्दजी को पीटना वन्द कर दिया। वे उन्हें कहने लगे—धन वताओ, नहीं तो हम तुम्हें जला देंगे। हरखचन्दजी कुछ नहीं वोले तो उन्होंने घासलेट तेल का पीपा उठाकर उन पर डाल दिया। एक डाकू माचिस जला रहा था कि उसके साथी वोले—भाई! सामने संत वैठे हैं। यहां तो ऐसा काम नहीं करेंगे। उन्होंने हरखचन्दजी को कोठरी के वाहर विठाया और स्वयं घर की तलाशी लेने ऊपर वाली मेड़ी पर चढ़े। डाकुओं के ऊपर जाते ही हरखचन्दजी अवसर देखकर वहां से खिसक गए। दौड़ते-दौड़ते वे गांव के वाहर कुएं तक पहुंच गए। वहां एक राजपूत पानी निकाल रहा था। उसे देखकर वे वोले—भाई! गांव मर रहा है, वचाओ। तीन-चार राजपूत मिलकर वहां आए, तव तक डाकू वहां से चले गए थे।

हरखचन्दजी को घर में न देखने से उनकी मां को आघात लगा। वे वेहोश हो गयीं। दूसरे दिन हरखचन्दजी घर आए, पर उनकी मां की वेहोशी नहीं टूटी। उनके मन में अपने पुत्र को जलाने या मारने के प्रयत्न से सदमा पहुंच चुका था। उन्होंने ऐसी आंखें वन्द कीं कि वापस खोलीं ही नहीं। हरखचन्दजी ने साध्वियों के दर्शन कर कहा—साध्वीजी! आज मैं जीवित वचा हूं, वह आपका ही प्रताप है। आप यहां नहीं होते तो वे लोग मुझे जरूर जला देते।

हम कृतार्थ हो जाते

कीड़ीमाल प्रारम्भ से ही तेरापंथ का क्षेत्र रहा है। इससे पहले सं० २०१९ में आचार्यवर का वहां आगमन हुआ था। स्थानीय लोग आज भी उस समय की स्मृतियों को संजोए हुए हैं।

आचार्यवर के घुटने में दर्द होने से यात्रा का रूट वदलने का संवाद जहां-जहां पहुंचा, वहां चिन्ता हो गयी। स्थिति की जानकारी पाने के लिए गांव-गांव से लोग आने लगे। श्रद्धा और समर्पण ही एक ऐसा कारण है, जो एक व्यक्तित्व की खुशहाली से लाखों में खुशी भर देता है और उसकी पीड़ा से हजारों-लाखों लोग चिन्तित और व्यथित हो उठते हैं।

इधर जिन क्षेत्रों में आचार्यवर का जाना नहीं हुआ, वहां के लोग युवाचार्यश्री का सान्निध्य पाकर भी पूरी तरह से तृप्त नहीं हुए। कीड़ीमाल का पड़ोसी गांव

चैनपुरा जहां स्थानकवासी जैन ही रहते हैं, वहां से मध्याह्न में काफी लोग कीड़ीमाल आए। आचार्यवर के दर्शन और उपासना करने के वाद भी वे यही अनुरोध करते रहे कि आप दो घंटे के लिए भी पधार जाते तो हम कृतार्थ हो जाते।

कस्तूरी की मात्रा

पेटलावद निवासी धनराजजी वरवेटा अपनी पत्नी के साथ रतलाम से कीड़ीमाल आए। वे उदयपुर से आगे जा रहे थे। केवल दर्शन करने की दृष्टि से वे कुछ समय के लिए वहां ठहरे। लेकिन कुछ समय से उनका मन नहीं भरा। वे दिन भर वहां रहे और बोले—ऐसे छोटे गांवों में उपासना का जो आनन्द है, वह शहरों में नहीं मिलता।

आचार्यवर के साथ थोड़ी-सी देर हुई बातचीत से प्राप्त आत्मतोष को अभिव्यक्ति देते हुए वे वोले—गुरुदेव से पांच मिनट वात हो जाती है तो हमें पूरी खुराक मिल जाती है। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता है, मानो केसर-कस्तूरी की मात्रा मिल गयी है। कस्तूरी की मात्रा एक बार तो मरणासन्न व्यक्ति की चेतना लौटा देती है। इस दृष्टि से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में इसका विशेष महत्त्व है।

श्री वरवेटा मूलतः स्थानकवासी परिवार में जन्मे। नौ मास की छोटी-सी अवस्था में उनके माता-पिता का वियोग हो गया। इसके वाद वे अपनी बुआ केसरवाई वरवेटा के पास रहे। उन्होंने ही इनका पालन-पोषण किया। केसरवाई धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से तेरापंथी थीं। उनके पास रहने के कारण बालक में उनके संस्कार संक्रान्त हुए। संस्कारों की परिपक्वता के साथ गुरुमंत्र स्वीकार कर वे भी तेरापंथी हो गए। उनकी बुआ वहुत ही श्रद्धालु श्राविका थी। उसने सोचा—मेरे वाद इस लड़के की धार्मिक आस्था डांवाडोल न हो जाए, इसलिए मैं इसके हाथ पर गुरुदेव का नाम गुदवा दूं। यह और कुछ समझेगा या नहीं, हाथ पर गुरु का नाम देखकर इतना तो याद रखेगा कि वह तेरापंथी है। वहन ने अपने चिन्तन को क्रियान्वित कर दिया। धनराजजी ने भी वरावर अपने संस्कारों को सुरक्षित रखा। आज उनका पूरा परिवार संस्कारी है। उन्हें इस बात का गौरव है कि वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके हाथ पर गुरु का नाम अंकित है। इस समय वे अपने परिवार के साथ रतलाम में रहते हैं।

बारह वर्ष बाद आम फला

२९ मार्च को आचार्यवर ने बड़ाखेड़ा के लिए विहार किया। तीन किलोमीटर पर गूजरों का गांव सांगरीखेड़ा है। वहां गूजरों के पचीस घरों की बस्ती है। वहां के कई परिवार साध्वियों के संपर्क में आकर अच्छे संस्कारी बन गए। वहां के कुछ भाई मुखवस्त्रिका बांधकर सामायिक का भी अभ्यास करते हैं। आचार्यवर के कटार-प्रवास में वे सब मिलकर दर्शन करने आए थे। वे चाहते थे कि आचार्यवर भी उनके गांव में पधारें। किन्तु गांव छोटा होने के कारण वहां यात्रा-संघ का पड़ाव संभव नहीं हो सका। आचार्यवर के निर्देश से साध्वियां कुछ समय के लिए वहां गयीं। उन्होंने वहां भिक्षा लेकर गूजर बन्धुओं के मन की भावना पूरी की। आचार्यश्री उधर से पधारे तो गांव के प्राय: सभी भाई-बहनें सड़क पर पहुंच गए। आचार्यवर के दर्शन पाकर उन्हें विशेष सुख का अनुभव हुआ। एक बहन बोली—महाराज! बारह वर्ष पहले यहां कुछ साध्वियां आयी थीं। उन्होंने मुझे तुलसीरामजी का नाम दिया था। तब से मैं बराबर गुरु का नाम लेती हूं। आज बारह वर्ष बाद मेरा आम्बा फला है। गुरु को आंखों से देखकर मैं निहाल हो गयी।

पहली बरसात-सी खुशी

बड़ाखेड़ा आसीन्द से पांच किलोमीटर दूर है। वहां महाजनों की बस्ती नहीं है, किसान और राजपूत रहते हैं। उनकी स्थिति काफी अच्छी है। पहले वह गांव रास्ते में नहीं था। पर कीड़ीमाल से सीधा आसीन्द का रास्ता लेने से एक पड़ाव वहां करने का चिन्तन हुआ। गांववासियों को सूचना दी गयी कि उनके गांव में आचार्य तुलसी आ रहे हैं। इस सूचना से उनको उतनी खुशी हुई, जितनी वर्षा ऋतु की पहली बरसात से होती है। आचार्यवर का प्रवास स्थानीय विद्यालय में हुआ। विद्यालय से बाहर एक बहुत बड़ा वृक्ष था। उसकी छाया में कुछ यात्री ठहरे। शेष यात्रियों के लिए टेंटों की व्यवस्था थी। बहुत दिनों के बाद उस दिन वह छोटा-सा अस्थायी नगर बसा, जो गांव के बच्चों के मन में कुतूहल उत्पन्न कर रहा था। आसपास के गांवों से दिन भर लोगों का आवागमन होता रहा। मध्याह्न में संतों की अन्त्याक्षरी हुई।

ऐसी सफाई नहीं होती

३० मार्च को आचार्यवर आसीन्द गांव के बाहर पंचायत समिति के भवन में

विराजे। पंचायत समिति की ओर से आपका भावपूर्ण स्वागत किया गया। आचार्यवर ने स्वागत के उत्तर में कहा—आसीन्द पंचायत समिति के प्रांगण में हम अकल्पित रूप से आए हैं। इसे मैं नियति का योग मानता हूं। पुरुषार्थ वहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, पर कभी-कभी नियति के आगे उसका भी वश नहीं चलता। हम कहीं जाएं और कहीं रहें। हमें अपना काम करना है। हमारा काम किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष के लिए नहीं, समग्र मानव जाति के लिए है। हम यहां आए हैं, गांववासी विना किसी भेदभाव के हमारे प्रवास से लाभान्वित हों।

पंचायत समिति भवन में प्रवास के लिए दो व्यवस्थाएं थीं—कार्यालय कक्ष और सभा हाल। कार्यालय का कमरा साफ-सुथरा था, पर था छोटा। हाल वहुत वड़ा था, पर था गन्दा। दोनों स्थानों में से एक निर्णय करना था। सुविधा की दृष्टि से छोटा कमरा उपयोगी था। पर हमने सोचा कि गांव नजदीक होने से दिन भर लोग आते रहेंगे। अधिक लोग छोटे कमरे में वैठ नहीं सकेंगे, इस दृष्टि से वड़ा हाल ठीक रहेगा। हाल गन्दा था, यह वात स्पष्ट थी। पर आचार्यवर वहां रहेंगे या नहीं, इस सन्देह से उसकी पूरी सफाई नहीं की गयी। आचार्यवर प्रवचन सम्पन्न कर भीतर पधारे। छोटे कमरे के वारे में आपको जानकारी थी नहीं, इसलिए आप वहीं विराज गए। किन्तु इतनी अस्वच्छता में वैठना कैसा-कैसा ही लगा। आचार्यश्री प्रकृति और कला की भांति स्वच्छता के भी उपासक हैं। स्वच्छता शरीर के लिए ही नहीं, मन के लिए भी आवश्यक है। आचार्यश्री की निगाहें इधर-उधर घूम रही थीं। वहां उपस्थित साधु-साध्वियों ने उस संकेत को पकड़ा और वे कटिवद्ध हो गए हाल की सफाई करने के लिए।

हाल में जमी हुई धूलि को हटाकर वहां गीले कपड़े से पोंचा लगाया गया। आंगन पर मैल की इतनी परतें जमी हुई थीं कि पानी लगते ही वहां कीचड़-सा हो गया। तीन-तीन वार रगड़-रगड़कर पोंछने से वे परतें उतरीं। बहुत थोड़े पानी से हाल की सफाई करनी थी। क्योंकि सारा काम आचार्यवर की उपस्थिति में हो रहा था। साधु-जीवन में पानी का उपयोग वहुत सावधानी और सीमा से होना चाहिए, यह आपका अपना सिद्धान्त है। एक प्याला पानी भी अधिक डाल दिया तो उपालम्भ मिल सकता है, इस सोच ने पानी को दूध या घी की तरह काम में लेना सिखा दिया। समय तो आधा घंटा लगा, पर हाल इतना स्वच्छ हो गया कि उसका फर्श चमकने लगा।

इधर साधु-साध्वियां हाल की सफाई कर रहे थे, उधर कुछ श्रावक वाहर खड़े थे। उनके मन में इस घटना से वहुत रंज हुआ। वे कहने लगे—यह हमारी जागरूकता की कमी है। हमें पहले ही ध्यान देना चाहिए था। यह तो हमारा ही काम है। आचार्यप्रवर ने कहा—यह काम आपका नहीं, हमारा है। हमारा काम हम ही कर सकते हैं। गृहस्थ लोग मनों और टनों पानी वहाकर भी ऐसी सफाई

नहीं कर सकते। हमारे साधु-साध्वियों ने थोड़े से पानी का उपयोग कर कितना अच्छा काम किया है। साधु-साध्वियों की यह कला गृहस्थों में आ जाए तो असंयम से बहुत बचाव हो सकता है। आचार्यवर दिन भर हाल में रहे। रात्रिकालीन प्रवास कार्यालय के कक्ष में हुआ।

अन्त्याक्षरी

मध्याह्न में आचार्यवर के सान्निध्य में साधु-साध्वियों के बीच अन्त्याक्षरी का आकर्षक कार्यक्रम संपन्न हुआ। सामान्यतः अन्त्याक्षरी को मनोरंजन का साधन माना जाता है, किन्तु मूलतः यह विद्या एकाग्रता और बुद्धि की व्युत्पन्नता के लिए उपयोगी है। बहुत लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें सैकड़ों-हजारों पद्य कंठस्थ होने पर भी समय पर उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। ऐसे लोग यदि वक्ता होते हैं तो प्रासंगिक सन्दर्भों की सही प्रस्तुति नहीं दे सकते। कुछ लोग हिन्दी की भांति इंग्लिश में भी अन्त्याक्षरी का प्रयोग करते हैं। एक पक्ष द्वारा जो कुछ बोला जाए, उसके अंतिम अक्षर को आधार मानकर दूसरा पक्ष बोलता है, इसी दृष्टि से इसका नाम अन्त्याक्षरी है। आचार्यवर के पावन सान्निध्य में साधु-साध्वियों के विकास हेतु कई प्रतियोगिताओं का समायोजन होता है। उससे सात्विक प्रतिस्पर्द्धा और नयी स्फुरणा का वातावरण बना रहता है। उस दिन भी साधु-साध्वियों ने पूरे उत्साह और तैयारी के साथ अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सैकड़ों बहन-भाई विशेष रूप से उस कार्यक्रम को सुनने के लिए ही आए थे। इस दृष्टि से उसकी प्रस्तुति सबके बीच में हुई। आचार्यवर ने आद्योपान्त अपना सान्निध्य प्रदान कर साधु-साध्वियों के उत्साह को बहुगुणित किया।

दो ऊर्जाओं का मिलन

मार्च का आखिरी दिन। सदा की तरह पूर्व दिशा में सूर्योदय हुआ। पर उस दिन आसीन्द में उगते हुए सूरज की अरुणिमा में आसीन्दवासियों के मन की अरुणिमा भी घुल गयी थी, इसलिए वह कुछ अधिक ही आकर्षक लग रहा था। समुद्र के तटवर्ती अनेक शहरों में सनराइज और सनसेट के दृश्य देखने के लिए लोग दूर-दूर से चलकर आते हैं। उस समय प्रकृति का सौन्दर्य कुछ दूसरा ही होता है। सागर में से ऊपर उठते हुए सूरज को देखकर उसे पकड़ने की इच्छा होती है, पर वह अब तक भी किसी की पकड़ में नहीं आया। पकड़ में आना तो दूर, पूरी तरह से उसका दिखाई देना भी मुश्किल है। आचार्यवर के साथ जब हम लोग कन्याकुमारी गए थे। उस समय त्रिदिवसीय प्रवास में प्रातः और सायं जब-जब

सूर्योदय और सूर्यास्त का सीन देखना चाहा, अचानक वादल आ गए और सागर में प्रतिमुकुरित सूर्य का देखना संभव नहीं हुआ। आसीन्द में कोई सागर नहीं था, इसलिए उस रमणीयता की कल्पना भी नहीं थी। फिर भी स्वाभाविक रूप से उस दिन का सूर्योदय सवको कुछ अधिक ही भला प्रतीत हो रहा था।

सूर्योदय के साथ ही आसीन्द से पंचायत समिति की दिशा में जनसमूह उमड़ने लगा। कुछ देर में समिति भवन के आसपास अच्छी उपस्थिति हो गयी। आचार्यवर के स्वागत जुलूस की तैयारियां हो रही थीं, इसी वीच कार्यकर्त्ताओं की एक टीम आयी और सव लोगों की व्यवस्थित पंक्ति वनाकर उसे पड़ासोली के रास्ते पर अग्रसर कर दिया। आचार्यश्री समिति-भवन में प्रवास कर रहे थे और जनसमूह आगे जा रहा था। अनजान लोगों के मन में कुछ कुतूहल-सा हुआ। वह कुतूहल तव तक वढ़ता रहा, जव तक वे लोग पुनः लौटकर नहीं आये। समय की सीमा पूरी हुई और पड़ासोली से युवाचार्यश्री अपनी सोलह दिन की साहित्य-यात्रा और कुछ दिनों की पद-यात्रा के वाद आसीन्द की धरती पर पहुंच गये। युवाचार्यश्री समिति भवन के एक छोर तक पहुंचे, तव तक आचार्यश्री भी भवन से वाहर राजपथ पर पधार गये। दो विपरीत दिशाओं से वहती हुई आध्यात्मिक ऊर्जा एक विन्दु पर पहुंचकर एकीभूत हो गयी। आचार्य और युवाचार्य का वह मिलन किसी लम्वी अवधि के वाद नहीं हुआ था। पर पन्द्रह दिन अपनी-अपनी ऊर्जा का स्वतंत्र उपयोग करने के वाद आसीन्द क्षेत्र को समन्वित रूप से लाभ देने की दृष्टि से आसीन्दवासियों के लिए वह मिलन नये इतिहास का प्रतीक वन गया।

मानवता की व्यथा मानव की व्यथा

'श्रद्धा जीवन का सूरज है', गांधीजी का यह वाक्य जिस समय पढ़ा था, इसका अर्थवोध आत्मसात् नहीं हुआ। किन्तु ३१ मार्च को खारी नदी के वीच वने हुए प्रवचन-पण्डाल में पहुंचने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रद्धा जीवन का सूरज ही नहीं, प्राण भी है। श्रद्धा में वह अद्‌भुत क्षमता है, जिससे हर असंभव संभव में परिणत हो सकता है। उस दिन नदी की धरती को घेरकर खड़े किये पण्डाल में एक ओर वचपन का भोला नटखटपन प्रकट हो रहा था तो दूसरी ओर यौवन का ऊर्जस्वल प्रवाह वह रहा था। वुढ़ापे का गरिमा मंडित विवेक तो वहां पग-पग पर देखा जा सकता था। सहसा एक प्रश्न ने जन्म लिया कि ये इतने लोग यहां क्यों आये हैं? क्या मिलता है इनको? कम्प्यूटर के इस युग में मनुष्य को दो क्षण सोचने का भी अवकाश नहीं है, उस स्थिति में घण्टों और दिनों तक व्यवसाय की वात भूलकर कैसे जीते हैं ये लोग? प्रश्न ने मन की धरती को कुरेदा तो

समाधान का अंकुर फूट निकला। उस अंकुर ने गाया आस्था का मधुर गीत। मन ऐसा सम्मोहित हुआ कि आगे कुछ पूछना ही भूल गया।

कन्या-मण्डल की कुमारी कन्याओं ने अपने मंगल गीत के व्याज से अपनी आस्था की सौगात भेंट की। स्थानीय नगरपालिका के अध्यक्ष श्री शंकरदेव भारतीय ने आसीन्द की जनता की ओर से आचार्यवर का स्वागत किया। तेरापंथी सभा, महिला मण्डल और ज्ञानशाला की बालिकाओं ने भी अपनी भावना व्यक्त की। स्थानीय सांसद श्रीगिरधारी लाल जी व्यास ने अपने भाषण में कहा—'आचार्य तुलसी हमारे देश की महान् विभूति हैं। आपने अणुव्रत के माध्यम से जनता में नयी चेतना जागृत की है। आपके चरण जहां-जहां टिके हैं, वहां की स्थितियों में सुधार हुआ है। आपकी सत्प्रेरणा से हमारे क्षेत्र में भी नैतिकता की एक नयी लहर पैदा होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं अपनी ओर से तथा स्थानीय जनता की ओर से आपका स्वागत करता हूं।'

युवाचार्यश्री ने अपने प्रेरक वक्तव्य में आदमी के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया। स्थानीय लोगों द्वारा आचार्यवर के अनौपचारिक आन्तरिक स्वागत में स्वीकृत किये गये त्याग-प्रत्याख्यान की एक लम्बी सूची आचार्यवर को भेंट की गयी। कार्यक्रम का संचालन युवा कार्यकर्त्ता श्री सोहनलाल कांठेड़ ने किया।

आचार्यवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा—मैं मेवाड़ की पथरीली धरती पर मानवता की आधारशिला रखने के लिए आया हूं। ऐसा लगता है कि आज मानवता का कोई आधार नहीं है। वह पीड़ा से कराह रही है। मानवीय मूल्यों की दुर्दशा ने उसको व्यथित बना दिया है। मानवता की व्यथा मानव जाति की व्यथा है। यह व्यथा तभी दूर हो सकती है, जब मनुष्य सही अर्थ में मनुष्य बने। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए उसके दृष्टिकोण में बदलाव लाने की जरूरत है। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

केश-लुंचन भी साधना है

१ अप्रैल को प्रातः आचार्यश्री और युवाचार्यश्री ने केश-लुंचन करवाया। केश-लुंचन जैन मुनि की साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। कई बार प्रश्न उठता है कि कैंची, उस्तरे या पाउडर आदि के द्वारा भी केश हटाए जा सकते हैं, ऐसी स्थिति में शरीर को इतना कष्ट क्यों दिया जाए? प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है। पर इसके पीछे जो दार्शनिक पृष्ठभूमि है, उसे समझना जरूरी है। जैन मुनि की हर प्रवृत्ति की विधि या निषेध के साथ अहिंसा का दृष्टिकोण तो है ही। इसके साथ आयारो का एक सूक्त है—'अणणहा णं पाराए परिहरेज्जा' द्रष्टा गृहस्थ से भिन्न

रहे और भिन्न ही दिखाई दे, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसकी हर क्रिया गृहस्थों से भिन्न प्रकार से हो। जैन मुनियों की वेशभूषा के पीछे भी शायद यही दृष्टिकोण रहा होगा, अन्यथा साधुत्व का सम्वन्ध तो वेश से है नहीं। तीसरी वात—केश-लुंचन कष्ट-सहिष्णुता की कसौटी भी है। मुनि जीवन में अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्टों की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। उन कष्टों से मुकावला करने के लिए शरीर और मन को साधना जरूरी है। केश-लुंचन से शारीरिक और मानसिक वल पुष्ट होता है।

कष्ट की अनुभूति का सम्वन्ध मानसिकता से है। मन दुर्वल हो तो एक कांटे की पीड़ा को सहना भी कठिन है। मन सवल हो और साधना की दृष्टि से शरीर और आत्मा की भिन्नता का अनुभव हो जाए तो वड़े-से-वड़ा कष्ट समभाव से सहन हो सकता है। मन की दुर्वलता कष्ट की संभावना मात्र से व्यक्ति को दुःखी वना देती है और मनोवली व्यक्ति हंसते-हंसते कष्टों की आग में कूद जाता है।

केश-लुंचन का कष्ट वर्ष भर में दो-पांच वार होता है, वह भी घंटा दो घंटा के लिए। जवकि अन्य प्रकार के कष्ट वहुत वार और लम्वे समय तक सहन करने पड़ते हैं। मूलतः केश-लुंचन में अधिक कष्टानुभूति मानसिकता के वदलने पर ही होती है।

केश-लुंचन करना भी एक वड़ी कला है। जो साधु-साध्वियां इस कला में दक्ष होते हैं, वे अपने सधे हुए हाथों से इस प्रकार केश उखाड़ते हैं कि दर्शक मुग्ध हो जाते हैं। केश-लुंचन करवाने वाले साधु-साध्वियां उस काल में ध्यान, स्वाध्याय में लीन होकर हंसते-खिलते उस कष्ट को सहन कर लेते हैं।

आचार्यवर केश-लुंचन करवा कर प्रवचन-पण्डाल में पधारे। आपके चेहरे की दीप्ति वता रही थी कि आप विशेप प्रकार के आनन्द में सरावोर होकर आ रहे हैं। केश-लुंचन के उपलक्ष्य में हजारों लोगों ने अपनी क्षमता के अनुसार एक-एक संकल्प स्वीकार किया।

परामनोविज्ञान

१ अप्रैल, रात्रिकालीन कार्यक्रम 'परामनोविज्ञान' के विषय में विशेष संगोष्ठी का आयोजन था। उस अवसर पर व्यावर के परामनोवैज्ञानिक डॉ० कीर्तिस्वरूप रावत ने अपना एक विशेष ग्रंथ आचार्यवर को भेंट किया तथा परामनोविज्ञान के सन्दर्भ में अपने अनुभव प्रस्तुत किये। डॉ० रावत जाने-माने परामनोवैज्ञानिक हैं। इस विषय में वे रिसर्च भी कर रहे हैं। युवाचार्यश्री ने प्रकृत विषय पर विस्तार से अपने मौलिक विचार दिये। आचार्यवर के उपसंहारात्मक प्रवचन से सव लोगों को नयी दृष्टि मिली।

२ अप्रैल को रात्रि में 'भगवान् महावीर और राम' विषय पर युवाचार्यश्री का विशेष वक्तव्य हुआ। आपने दोनों महापुरुषों के जीवन और कार्यों पर तुलनात्मक प्रकाश डाला।

पुरुषार्थ की विजय

२ अप्रैल को मध्याह्न में तूफान आया। नदी में खड़ा प्रवचन-पण्डाल तूफान के झोकों को सहन नहीं कर सका, फलतः वह पूरी तरह से ढह गया। आचार्यवर का प्रवास स्थानीय सभा-भवन में था। वहां भी एक छोटा पण्डाल था, वह भी आंधी-पानी से प्रभावित हो गया। ३ अप्रैल को प्रातः महावीर जयंती का आयोजन था। इधर पण्डाल को उठाने की कोशिश की जाने लगी, उधर तेज हवाएं बहने लगीं। समय पर लोगों के बैठने की व्यवस्था न होने पर हजारों-हजारों लोग भगवान् महावीर को जानने-समझने से वंचित हो जाएंगे, इस बात को ध्यान में रखकर पण्डाल को खड़ा करने का संकल्प किया गया। टेंट वाले लोग अपना काम कर रहे थे, पर उतने थोड़े से समय में वे कर भी क्या सकते थे? आखिर स्थानीय युवकों में जोश जागा। बल्लियां खड़ी करना, दरियां बिछाना, टेंटों की धूल झाड़ना आदि प्रत्येक काम में युवक जी-जान से जुट गये। देखते-देखते पंडाल खड़ा हो गया। प्रकृति पर पुरुषार्थ की विजय हो गयी।

इतिहास में प्रतिबिम्बित सदी

३ अप्रैल को भगवान् महावीर का जन्म-दिवस था। आज से २५८३ वर्ष पूर्व क्षत्रिय-कुंडपुर नगर में महाराज सिद्धार्थ के राजप्रासाद में संसार की खुशियां घनीभूत होकर उतर आयी थीं। महारानी त्रिशला ने उस दिन उस बालक को जन्म दिया था, जो आध्यात्मिक मूल्यों की मशाल लेकर समूचे लोक-जीवन को आलोकित करने वाला था। पालने से धरती पर पहुंचते ही उसके शौर्य की गाथाएं दिगन्तों में गूंजने लगीं। वे जहां अपने चरण रखते, रोशनी उनका पथ बुहारती थी। उनके रोम-रोम प्राणीमात्र की संवेदना से संवेदित हो उठे। बचपन से ही वे दूरदर्शी और गंभीर थे। वे अपनी चेतना को सांसारिक रिश्तों से जोड़ना नहीं चाहते थे, फिर भी मां की ममता को आदर देते हुए उन्होंने राजप्रासाद में अपने अस्तित्व की ही स्वीकृति नहीं दी, कुछ नये रिश्ते भी बना लिये। उनकी पत्नी यशोदा और पुत्री प्रियदर्शना भी इतिहास के प्रसिद्ध पात्र हैं। यशोदा की जीवन-यात्रा का अंतिम पड़ाव क्या था, यह खोज का विषय है। माता-पिता के जीवन-काल में वे घर में रहे। उनके बाद चाचा और ज्येष्ठभ्राता के आग्रह ने उनको दो

वर्ष और रोका। तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया। बारह वर्ष की कठोर साधना के बाद सफलता ने उनके द्वार पर दस्तक दी। सफलता के चरम बिन्दु पर वे अर्हत्, जिन, केवली बन गये। धर्मतीर्थ की स्थापना कर वे तीर्थंकर कहलाये। उनकी पुत्री प्रियदर्शना और जामाता जमालि भी उनके धर्म-परिवार के सदस्य बने। तीस वर्ष तक तीर्थंकर के रूप में परिव्रजन कर उन्होंने लोक-चेतना में अध्यात्म का संप्रेषण किया। ७२ वर्ष की वय में पार्थिव शरीर का त्याग कर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये। आज ढाई हजार वर्ष बाद भी लगभग बीस लाख जैन भगवान् महावीर की परंपरा से जुड़े हुए हैं। भगवान् महावीर के सार्वभौम और सार्वकालिक सिद्धांतों से अपनी आस्था को जोड़ने वाले लोगों का संख्यांकन करना तो बहुत ही कठिन है। भारतीय जनता के मन में देश के महापुरुषों की लम्बी सूची में भगवान् महावीर का नाम भी पूरी गरिमा के साथ मंडित है।

सदियां आती हैं और इतिहास में अपने प्रतिबिम्ब छोड़कर चली जाती हैं। वे प्रतिबिम्ब ही एक प्रेरणा देते हैं अतीत को वर्तमान में उतारने की। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर आसीन्द के नागरिकों ने एक आयोजन किया। उस आयोजन ने आसीन्द के इतिहास में भी एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ दिया।

खारी नदी के मध्य बने विशाल प्रवचन-पण्डाल में हजारों लोगों की उपस्थिति थी। आचार्यश्री का सान्निध्य सबके लिए आह्लाददायक बन रहा था। उस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री रामपाल उपाध्याय, संघ प्रवक्ता श्री चन्दनमल वैद, राजकीय महाविद्यालय भीलवाड़ा के प्राचार्य डॉ० महावीर राज गेलड़ा, ब्यावर क्षेत्र के विधायक श्री माणकजी ढाणी, मुनि किशनलालजी, साध्वीश्री कनकश्रीजी आदि अनेक वक्ताओं ने भगवान् महावीर के जीवन और दर्शन की परिक्रमा करने वाले वक्तव्य दिये। मुमुक्षु बहनों, समणियों और साध्वियों के समवेत स्वरों में भगवान् महावीर की यशस्वी जीवन-यात्रा अनुगुंजित हो उठी।

भगवान् महावीर की प्रासंगिकता

युवाचार्यश्री ने वर्तमान युग में भगवान् महावीर की प्रासंगिकता पर बल देते हुए कहा—व्यक्ति उसी की स्मृति करता है, जिसकी वर्तमान में प्रासंगिकता होती है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ज्यों-ज्यों समय बीत रहा है, भगवान् महावीर अधिक प्रासंगिक बनते जा रहे हैं। भगवान् महावीर ने सापेक्षवाद के आधार पर मनुष्य की व्याख्या की। यदि हमें मनुष्य को समझना है तो भगवान् महावीर को समझना होगा, उनके मुख्य सिद्धान्त सापेक्षवाद को समझना होगा।

मार्क्स ने आर्थिक अपेक्षाओं की पूर्ति को मनुष्य का चरम लक्ष्य माना। फ्रायड का चिन्तन 'काम' पर केन्द्रित हुआ। कौटिल्य भी अर्थ पर पहुंचकर रुक गया। अर्थ और काम को आधार मानकर आज तक जितनी व्याख्याएं हुई हैं, वे सब अपर्याप्त हैं। इससे समस्याएं उलझी हैं। क्योंकि उन्हें एक ही कोण से समझने का प्रयत्न किया गया। भगवान् महावीर ने सापेक्षता के आधार पर मनुष्य को समझने और उसकी चेतना को समझने पर बल दिया। भगवान् महावीर के अनुयायियों का कर्तव्य है कि वे उनके मौलिक सिद्धान्तों को समझें और अपने जीवन को उस दिशा में ढालें।

युग को नयी चेतना देने वाले आचार्य

राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री रामपाल उपाध्याय ने भगवान् महावीर के परम्परा के समर्थ संवाहक युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहा—आचार्य तुलसी क्रान्तिद्रष्टा आचार्य हैं। आपने सामाजिक परम्पराओं को तोड़कर युग को नयी चेतना और गति दी है। कठोर परिश्रम, दूरदृष्टि, पक्का इरादा और अनुशासन—ये चार बातें आचार्यश्री ने बताई हैं। इन्हें अपनाकर ही हम भगवान् महावीर को सही तरीके से मना सकते हैं।

पुरखों और आदर्शों की स्मृति

आचार्यप्रवर ने महावीर जयन्ती के भव्य समारोह में अपना मंगल प्रवचन करते हुए कहा—खारी नदी के मध्य बने इस वर्तमान समवरण में हम वर्धमान का जन्म-दिन मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। राजकुमार वर्धमान एक दिन भगवान् बन गए और कृतार्थ हो गए। उनकी स्मृति में यह कार्यक्रम पूरे देश में मनाया जा रहा है। प्रश्न हो सकता है कि महावीर जयंती मनाने का उद्देश्य क्या? मेरे अभिमत से इसका उद्देश्य यही है कि हम उनके उपदेशों, शिक्षाओं एवं पराक्रमी जीवन को स्मृति में लाएं और भावी पीढ़ी को संस्कारित करें। समस्या तभी पैदा होती है, जब हम अपने पुरखों को और उनके आदर्शों को भूल जाते हैं। समस्या हर युग में होती है। उसका समाधान भी होता है। हम समस्या में उलझें नहीं, समाधान करना सीखें।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में भगवान् महावीर के जीवन से संबंधित कुछ रोचक संस्करण सुनाते हुए कहा—

महावीर कुछ भी करते थे, उसके पीछे एक दृष्टि थी। उन्होंने उपवास किया या भोजन किया, प्रवचन किया अथवा मौन स्वीकार किया, वे चले या ठहरे, हर

प्रवृत्ति के पीछे एक दर्शन था। हमारी प्रवृत्ति के साथ भी दर्शन जुड़ जाए तो वह अधिक उपयोगी हो सकती है।

महावीर सत्यद्रष्टा थे। वे सब कुछ जानते, समझते थे, किन्तु उन्होंने कभी व्यक्ति पर अपने अभिप्राय को थोपा नहीं। उन्हें कोई कुछ भी पूछता, अच्छा काम होता तो वे कहते—अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह—देवानुप्रिय ! तुम्हें सुख हो वैसे करो, विलम्ब मत करो। यदि कोई गलत काम होता तो वे मौन हो जाते। कितने मृदु और कोमल थे वे अपने व्यवहार में। काश ! हम भी उनका समग्रता से अनुकरण कर पाते।

महावीर ने किसी सामयिक या एकान्तिक सत्य का प्रतिपादन नहीं किया। उन्होंने मानवीय एकता, सहअस्तित्व साधनशुद्धि आदि शाश्वत सत्यों का निरूपण किया। उनके द्वारा निरूपित सिद्धान्त आज भी उतने ही जरूरी हैं, जितने उस समय थे। आज का आदमी उन सिद्धान्तों को अपना ले तो उसकी सारी समस्याएं दूर हो सकती हैं।

महावीर के अनुयायी कौन

इस प्रकार भगवान् महावीर के जीवन का एक-एक प्रसंग खुलता गया और वहां उपस्थित जनसमूह उसमें गहराई से उतरता गया। एक बार तो सबके मन में भगवान् महावीर और उनके दर्शन को समझने एवं जीने की ऐसी ललक पैदा हुई, जिससे वे सारी समस्याओं और चिन्ताओं से मुक्त हो गए। जीवन के ऊर्ध्वीकरण के लिए भगवान् महावीर के सिद्धान्तों को ही एक मात्र आलम्बन माना जा सकता है।

आचार्यवर भगवान् महावीर के वंशज हैं। भगवान् महावीर की परम्पराओं और सिद्धान्तों को जीवित रखने का दायित्व आप बखूबी निभा रहे हैं। इस देश के लोगों को महावीर और जैन धर्म की सही पहचान कराने में आपका बड़ा योगदान रहा है। महावीर को धर्म सम्प्रदाय की सीमा से मुक्त करने में भी आपका पूरा हाथ है। आपने कहा—महावीर का अनुयायी कौन? जो महावीर के पथ पर चले, वही उनका सच्चा अनुयायी हो सकता है। महावीर का अनुयायित्व बातों और कल्पनाओं में नहीं, उनके पथ का अनुगमन करने में है। महावीर बने बिना महावीर को बोला नहीं जा सकता। महावीर का नाम तभी रोशन हो सकता है, जब उनके सिद्धान्तों को विश्वव्यापी बनाया जाए।

महावीर जयंती के सन्दर्भ में आचार्यश्री के उक्त विचार जैन कहलाने वाले लोगों को एक नयी दृष्टि देते हैं। जैन कोई संप्रदाय नहीं, जीवित विचारधारा है। उस विचारधारा को आचरण में लाये बिना अपने आपको जैन मानना एक

प्रकार की विडम्बना है। इस विचार विन्दु के परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक जैन अपना आत्मालोचन करे, यह अपेक्षा है।

धर्मसंघ मेरी वपौती है

मध्याह्न में संघप्रवक्ता श्री चन्दनमलजी वैद के सम्मान में आयोजित सभा को संवोधित करते हुए वैदजी ने कहा—मैं तेरापंथ धर्मसंघ का एक श्रावक हूं। संघ के लिए जो कुछ भी करता हूं, अपना दायित्व समझकर करता हूं। संघ मेरी बपौती है। राजनीति मेरी बपौती नहीं है। राजनीति मेरे जीवन से छूट सकती है, पर संघ नहीं छूट सकता। धर्मसंघ के संस्कार मुझे जन्मघूंटी में मिले हैं। मुझे विश्वास है कि मैं राजनीति में सक्रिय रहता हुआ भी धर्मसंघ की सेवा करता रहूंगा।

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल आशीर्वचन में कहा—मेरे मन में एक धर्मनिष्ठ श्रावक की कल्पना ने जन्म लिया और मैंने कहा—सच्चा धार्मिक वही है, जो चरित्र को प्रधानता दे। जो राजनैतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक और सामाजिक—किसी भी क्षेत्र में रहे, अपनी धार्मिकता की छाप छोड़े। किसी भी परिस्थिति में चारित्रिक उज्ज्वलता को धूमिल न होने दे। मुझे लगता है कि इस अर्थ में चन्दनमलजी वैद पूरे धार्मिक हैं। ये जहां भी गए, जिस पद पर भी रहे, इन्होंने अपनी ईमानदारी की स्पष्ट छाप छोड़ी। ऐसे वेदाग, स्वच्छ व्यक्तित्व से राजनीति को भी लाभ मिलता है। ऐसे व्यक्तियों का मूल्यांकन किसी व्यक्ति का नहीं, संघ का मूल्यांकन है।

कार्यक्रम के प्रारंभ में आसीन्द के श्रावकों ने चन्दनमलजी वैद की सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए उन्हें साहित्य का उपहार दिया। उसी दिन रात्रि में अमृत-महोत्सव के अवसर पर प्रसारित चरित्र निर्माण के पांच संकल्पों पर भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर द्वारा कठपुतली प्रदर्शन का एक रोचक एवं प्रेरक कार्यक्रम रखा गया। कलाकारों की सधी हुई अंगुलियों ने जड़ कठपुतलियों में प्राण संचरण कर दर्शकों को प्रभावित कर लिया।

महिलाओं के लिए

४ अप्रैल को मध्याह्न में मेवाड़ क्षेत्रीय महिला प्रतिनिधि सम्मेलन का आयोजन था। सम्मेलन पूरे मेवाड़ क्षेत्र की दृष्टि से था, पर उसमें केवल पैंतीस ग्रामों की प्रतिनिधि वहनों ने भाग लिया। स्थानीय महिलाएं अच्छी संख्या में उपस्थित रहीं। अमृत महोत्सव के अवसर पर महिला समाज में जागृति लाने की दृष्टि से

खुलकर चिन्तन चला। कई बहनों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। मेवाड़ में व्याप्त कुरूढ़ियों को ध्यान में रखकर एक पंचसूत्री कार्यक्रम निर्धारित किया गया जिसे पूरे मेवाड़ में लागू करने का सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। रूढ़ि-उन्मूलन की दृष्टि से निर्धारित संकल्प—

१. पर्दा-प्रथा का उन्मूलन
२. मृत्यु के प्रसंग में रोने की प्रथा का निवारण।
३. मृत्यु के प्रसंग में रूढ़िगत लेन-देन की बंदी।
४. दहेज के ठहराव और प्रदर्शन पर रोक
५. तपस्या के उपलक्ष्य में लेन-देन पर प्रतिबन्ध।

आचार्यवर विश्वकुलपति बनेंगे

५ अप्रैल को मध्याह्न में आचार्यवर के सान्निध्य में अभिनव सामायिक का सामूहिक प्रयोग था। स्थानीय सभा भवन के प्रांगण में एक साथ हजारों लोग उस प्रयोग में सम्मिलित थे। बुजुर्ग लोग तो सामान्यतः सामायिक करते ही हैं, उस दिन तो युवापीढ़ी का सामायिक-प्रेम दर्शनीय था। सैकड़ों युवक पंक्तिबद्ध व्यवस्थित मुद्रा में, सामायिक की वेशभूषा में शान्तभाव से बैठे बहुत ही आकर्षक लग रहे थे। आचार्यवर की साक्षात् उपस्थिति से उस प्रयोग में प्राण आ गए। सामायिक स्वीकार करने का संकल्प, आलोचना, जप, ध्यान, अनुप्रेक्षा, परमेष्ठी वंदना आदि अभिक्रमों में पचास मिनट का समय कैसे पूरा हो गया, पता ही नहीं चला। मानसिक अनुकूलता की स्थिति में कालबोध नहीं होता, आइंस्टीन का यह सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही प्रमाणित हो रहा था।

सामायिक के उस कार्यक्रम में सर्वोदयी बुजुर्ग कार्यकर्ता श्री मनोहरसिंहजी मेहता भी उपस्थित थे। कार्यक्रम पूरा होने पर आचार्यवर ऊपर पहुंचे तो मेहता जी ऊपर गए। वे भावविभोर होकर बोले—आज मैं यहां नहीं आता तो एक अपूर्व अवसर देखने से वंचित रह जाता। अभी-अभी मैंने देखा—विश्वविद्यालय के कुलपति (आचार्यवर) कालेज के विद्यार्थियों की क्लास ले रहे थे। वे मधुर-मधुर मुस्कान के साथ उन्हें बोधपाठ दे रहे थे। कैसे बैठना, कैसे वन्दना करना, कैसे झुकना, कैसे बोलना आदि छोटी-छोटी बातें वे तन्मयता से सिखा रहे थे और जहां कहीं किसी की गलती होती, उसे दुरुस्त भी कर रहे थे, पर इतनी आत्मीयता से कि किसी को भी बैड-फीलिंग नहीं हुई। मैंने तो ऐसा दृश्य अपने जीवन में पहली बार देखा है। मैं उस दृश्य को देखकर इतना मुग्ध हो गया कि अब भी मेरी आंखों में उसी के प्रतिबिम्ब तैर रहे हैं। आपने सामायिक को कितना अच्छा और नया रूप प्रदान किया है। उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। अब वह दिन

नहीं, जब आचार्यवर विश्व कुलपति बन जाएंगे।

मेहताजी ने अपने पास खड़े स्थानीय श्रावक चांदमलजी चोरड़िया की ओर अभिमुख होकर कहा—चांदजी ! तुम मान बैठे हो कि ये हमारे ही गुरु हैं, पर अब इस अहंकार को समाप्त करो। ये तुम्हारे नहीं, सबके हैं। हिन्दू, मुसलमान, महाजन, किसान, रेगर, चमार छोटी-बड़ी हर कौम का उपकार आचार्यश्री के द्वारा होने वाला है।

विद्यापीठ कुल का निर्णय

५ अप्रैल को मध्याह्न में उदयपुर से उदयपुर विद्यापीठ कुल के उपाध्यक्ष श्री भाई भगवान ने आचार्यश्री के दर्शन किए। उनके आने का उद्देश्य था—अपने विद्यापीठ कुल के सद्यस्क निर्णय के सम्बन्ध में आचार्यश्री को जानकारी देकर उनकी अनुमति प्राप्त करना। विद्यापीठ कुल ने एक निर्णय लिया कि उदयपुर में आयोजित अमृत महोत्सव के तीसरे चरण के अवसर पर विद्यापीठ आचार्यश्री को विद्यापीठ की सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम सम्मानोपाधि 'भारत ज्योति' सम्बोधन से सम्बोधित करेगी। विद्यापीठ के संस्थापक और उपकुलपति श्री जनार्दनराय नागर की ओर से विधिवत लिखित विज्ञप्ति लेकर श्री भाई भगवान् आए और बोले—आप अनुग्रह करके हमें इस आयोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करावें। आचार्यश्री ने सहज भाव के कहा—इसके लिए हमारी स्वीकृति कैसे हो सकती है? हम जो काम करते हैं, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करते हैं। इस सम्मान या सम्बोधन से हमारा सीधा संबंध नहीं है।

यह बात सुन श्री भाई भगवान बोले—आचार्यश्री ! हम जानते हैं कि आपका व्यक्तित्व बहुत ऊंचा है और यह सम्बोधन छोटा है। पर हमारी विद्यापीठ का यह सर्वोच्च विशेषण है। आप इसके लिए अपनी स्वीकृति नहीं देते हैं तो, इसे रहने दें। उस समय हम एक विद्वद् गोष्ठी आयोजित करना चाहते हैं, उसमें आपके सान्निध्य की स्वीकृति तो हमें मिल ही सकती है। श्री भाई भगवान के विशेष अनुरोध पर आचार्यवर ने विद्वद् गोष्ठी में उपस्थित रहने की स्वीकृति दी। विद्यापीठ कुल के इस निर्णय से संबंधित संवाद २ अप्रैल १९८५ के 'दैनिक हिन्दुस्तान' में भी प्रकाशित हो गया था।

तीसरी बार आगमन

आसीन्द में आचार्यवर ने एक सप्ताह प्रवास किया। बारह हजार की आबादी वाला आसीन्द लगभग ६५० वर्ष पहले 'आकड़ा का खेड़ा' नाम से प्रसिद्ध था।

उस समय वहां गूजरों का प्रभुत्व था। गूजरों ने गांव को बसाते समय खारी नदी के किनारे आसाराव की मूर्ति स्थापित की, जिसके नाम पर आगे जाकर गांव का नाम भी आसीन्द हो गया। वह मूर्ति आज भी वहां सुरक्षित है। आसीन्द में गूजरों का एक सवाई भोज नाम का मंदिर है। जिसके बारे में यह कहा जाता है कि वह पूरे भारत में गूजरों का सबसे बड़ा मंदिर है। आसीन्द के दक्षिण पूर्व में श्री प्रेमदासजी का बनवाया हुआ 'प्रेमसागर' नाम का बड़ा तालाब भी है। वहां रहने वाले लोग कृषि और व्यापार, दोनों पद्धतियों से अपनी जीविका का अर्जन करते हैं। वहां विशेष रूप से कपास की खेती होती है। कपास व्यवसाय को विस्तार देने के लिए तीन फैक्ट्रियां भी हैं।

आसीन्द के निवासी लोगों की धार्मिक भावना अच्छी है। सभी धर्मों के लोग परस्पर प्रेम से रहते हैं। मुसलमानों की वहां अच्छी बस्ती है। उनका भी हिन्दुओं के साथ अच्छा संबंध है। जैनों में वहां स्थानकवासी और तेरापंथी—दोनों सम्प्रदायों का प्रभाव है। तेरापंथी परिवारों की संख्या एक सौ बारह है। आचार्य भिक्षु के समय से ही आसीन्द तेरापंथ की श्रद्धा का क्षेत्र है। वहां तेरापंथ के आचार्यों में सबसे पहले आचार्यश्री मघवागणी का पदार्पण हुआ। यह बात वि० सं० १९४३ की है। उसके बाद सं० १९५४ में डालगणी वहां पधारे। आचार्यश्री ने अब तक तीन बार आसीन्द की धरती को अपने चरणरज से पावन कर दिया है। सं० १९९२ में पहली बार, सं० २०१६ में दूसरी बार और सं० २०४२ में तीसरी बार। इस बार के प्रवास में आसीन्दवासियों को महावीर-जयंती का विशेष मौका मिला। क्षेत्र की संभाल की दृष्टि से भी यह प्रवास अधिक सफल रहा। वहां प्रवासित अन्य धर्मावलंबियों ने भी आचार्यश्री के प्रवास का लाभ लिया।

टेढ़े-मेढ़े चलना ही नियति है

७ अप्रैल को आसीन्द से आठ किलोमीटर का विहार कर आचार्यवर बराणा पधारे। ढाई हजार की आबादी वाले गांव में छः परिवार तेरापंथी हैं। उन लोगों को यह चिन्ता थी कि आचार्यश्री आसीन्द से दौलतगढ़ न पधार जाएं। क्योंकि वह रास्ता सीधा था। दूसरी बात—आचार्यश्री के घुटनों में दर्द होने के कारण कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि आसीन्द से सीधा गंगापुर की ओर विहार हो जाए। सीधे रास्ते की यात्रा से आड़े-टेढ़े सभी गांव छूट जाते थे। प्राप्त अवसर हाथ से निकल जाने के बाद फिर ऐसा मौका कब मिले? यह चिन्ता अनेक गांवों के श्रावकों को थी। उनमें बराणा भी एक था। बराणा के श्रावक कई दिनों से लगातार अपना अनुरोध कर रहे थे। आचार्यवर ने वहां पहुंचकर अपने प्रवचन में

सबसे पहले इसी बात पर टिप्पणी करते हुए कहा—आप लोग घबरा रहे थे कि कहीं बराणा छूट न जाए। पर जरा सोचें तो सही, बराणा कैसे छूटेगा? यह बराणा बारणा है, द्वार है। द्वार में प्रवेश किए बिना आगे कैसे बढ़ सकेंगे?

यह बात सही है कि कुछ लोगों ने हमको सीधा जाने का परामर्श दिया था, पर हम सीधे चलना नहीं चाहते। टेढ़े-मेढ़े चलना हमारी नियति है और यही हमें पसन्द है। कहा भी जाता है—

सन्त सुरसरी परसराम, चले भुजंगी चाल।
जिण-जिण सेरी संचरै, तिण-तिण करत निहाल॥

हम टेढ़ा रास्ता लेकर आपके गांव में आ गए हैं। अब आपको क्या करना है, यह आप सोचें। लोग जहां जाते हैं, वहां बच्चे, बूढ़े सब इकट्ठे हो जाते हैं। आसपास के लोग भी पहुंच जाते हैं और अनायास ग्राम सभा का आयोजन हो जाता है। आज यहां भी आसीन्द और बराणा का संगम हो रहा है। इस संगम का दृश्य देखने के लिए वहां के सांसद, एम० एल० ए०, सरपंच आदि भी पहुंच गए। यह अच्छा हुआ। जनता और जननेता का सम्पर्क होना भी चाहिए।

भीलवाड़ा क्षेत्र के सांसद श्री गिरधारीलालजी व्यास ने आचार्यवर का स्वागत करते हुए कहा—जिस क्षेत्र में आचार्यश्री का शुभागमन होता है, वहां सदाचार और नैतिकता का वातावरण सहज ही बन जाता है। आपके द्वारा चलाए जा रहे छोटे कार्यक्रमों से व्यक्ति का जीवन बदल सकता है और एक नयी क्रान्ति का प्रादुर्भाव हो सकता है। समाज को सहिष्णु और व्यसनमुक्त बनाने के लिए आप जो प्रयास कर रहे हैं, वह अभिनन्दनीय है। स्थानीय सरपंच श्री उगमराजजी जाट ने पंचायत समिति की ओर से स्वागत किया। मंच संचालन का कार्य स्थानीय प्रोफेसर श्री लालचन्दजी ने किया।

इतिहास स्वयं को दोहराता है

कालूगणी के समय का प्रसंग है। वि० सं० १९७५ में थली से साध्वियों का एक वर्ग मेवाड़ आया। उस समय थली में प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। यह बात पूरे देश में प्रसिद्ध थी। साध्वियां आसीन्द पहुंचीं। वहां उन्हें ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला। बिना आज्ञा साध्वियां कहां ठहरें? वहां से प्रस्थान कर वे बराणा पहुंचीं। आसीन्द जैसे बड़े क्षेत्र में भी स्थान न मिले तो उस छोटे देहात में कहां से मिले? साध्वियों ने एक-एक कर सब घरों को टटोला। बीमारी फैलने के भय ने सहज श्रद्धाशील लोगों की श्रद्धा को कुंठित कर दिया। आखिर गांव से बाहर बसे एक कुम्भकार ने साहस किया। उसने सोचा जो होना है होगा, संतों को इस प्रकार कष्ट में रखना ठीक नहीं है। कुम्भकार ने प्रसन्नता से साध्वियों

को अपनी झोंपड़ी में ठहरा दिया।

कुछ समय बाद गांव में आग लगी। आग इतनी भयंकर थी कि किसी प्रकार उस पर नियंत्रण नहीं हो सका। गांव के लोग तो इधर-उधर चले गए। किन्तु उस कुम्भकार के घर को छोड़कर पूरा गांव जल गया। आग क्यों लगी और कैसे फैली? इस विस्तार में न उलझ गांववासियों ने यह अनुभव किया कि गांव में साध्वियों को स्थान न देने से यह उपद्रव हुआ है। अन्यथा कुम्भकार का घर कैसे बच सकता था? कई हजार वर्ष पहले भगवान् महावीर के युग में राजर्षि उदाई के साथ ऐसा ही कुछ घटित हुआ था। राजर्षि उदाई अपने गृहस्थ जीवन में वीतभय नगर के राजा थे। वे भगवान् महावीर के भक्त थे। उन्होंने एक बार अपने मन में संकल्प किया—यदि भगवान् का यहां आगमन हो जाए तो मैं अपना जीवन साधना के लिए समर्पित कर दूं। राजा का संकल्प फला। भगवान् पधारे और वे मुनि बन गए। मुनि बनने से पहले उन्होंने राज्य-व्यवस्था का भार अपने पुत्र अभीचि कुमार को न सौंपकर भानेज केशी को सौंप दिया। इस बात की प्रतिक्रिया तो हुई, पर राजा को कौन कहे। राजर्षि उदाई भगवान् महावीर के संघ में साधना करने लगे। कुछ वर्षों तक साधना कर वे साधना से प्राप्त आलोक को बांटने के लिए सिन्धु सौवीर देश में अपनी जन्मभूमि वीतभय नगर आए। नगरवासी प्रसन्न हुए। पर राजा केशी का मन संदिग्ध हो उठा। उसने सोचा—अब ये मेरा राज्य छीनकर अपने पुत्र को देने आए हैं। सन्देह से उनका मन कलुषित हो गया। उसने पूरे शहर में घोषणा करवा दी कि उदाई को कोई स्थान नहीं दिया जाए। लोगों को बहुत बुरा लगा, पर सत्ता से टक्कर कौन ले। राजर्षि पूरे नगर में घूमे, किन्तु उनका अपना ही नगर उनसे अपरिचित हो गया। ठहरने के लिए कहीं स्थान नहीं मिला। आखिर शहर से बाहर एक कुम्हारी ने हिम्मत कर अपने पति को राजी कर राजर्षि को ठहरा लिया। वहां लोगों का आवागमन बढ़ा। केशी के लिए वह स्थिति असह्य हो गई। उसने राजर्षि को समाप्त करने के लिए विष मिश्रित दही खिला दिया। राजर्षि को इस बात का आभास हो गया था, फिर भी उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। राजर्षि उस स्थिति में अनशन स्वीकार कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो गए।

इधर दैवी प्रकोप से वीतभय नगर पर अंगारों की वर्षा हुई। देखते-देखते सारा शहर भस्मीभूत हो गया। केवल उस कुम्हारी का घर सुरक्षित रहा, जिसने राजर्षि को अपनी कुटिया में ठहराया था। वराणा के लोगों ने राजा केशी की तरह साध्वियों के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया और न ही उनके मन में किसी प्रकार की दुर्भावना थी। गांव में लगी आग भी किसी दैवी प्रकोप की परिणति थी, ऐसा नहीं माना जा सकता। किन्तु घटना जिस रूप में घटी, उसने आंशिक रूप में ढाई हजार वर्ष पहले के इतिहास को दोहरा दिया।

बराणा गांव तेरह सौ वर्ष पुराना है। इसको बसाने में नाथ सम्प्रदाय का हाथ रहा है। गांव के तालाब के पास ऊंची टेकरी पर नाथों के एक योगी की समाधि है, जिसे हजूर की समाधि कहा जाता है।

मर्यादा महोत्सव का क्षेत्र

आसीन्द तहसील का दौलतगढ़ गांव सं० १७६३ में बसा था। स्थानीय ठाकुर दौलतसिंह को जागीर में प्राप्त होने के बाद गांव का नाम दौलतगढ़ हो गया। वहां राणा सांगा द्वारा निर्मित करवाया हुआ देवीजी का मंदिर है। उस मंदिर में प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला ६ को एक मेला होता है, जिसमें देहाती लोग बड़ी संख्या में आते हैं।

प्राचीनकाल में दौलतगढ़ अनाज और घी की अच्छी मण्डी के रूप में प्रसिद्ध था। वहां का माल आसीन्द और करेड़ा तो जाता ही था, मारवाड़ तक भी जाता था। सं० २००० के आसपास निकटवर्ती क्षेत्र आसीन्द और करेड़ा बड़ी मंडियों के रूप में विकसित हो गए। इसका प्रभाव दौलतगढ़ पर पड़ा और वहां का व्यापार ढीला हो गया।

पांच हजार की आबादी वाले दौलतगढ़ में सत्तर परिवार तेरापंथी हैं। वि० सं० १९१० से वहां कुछ-कुछ अन्तराल से साधु-साध्वियों के चातुर्मास होते हैं। कुछ चातुर्मास निरन्तर भी हुए हैं। उल्लेखनीय बात है वहां सं० १९४३ में पंचम आचार्यश्री मघवागणी द्वारा किया गया मर्यादा-महोत्सव। इस इतिहास का स्थानीय श्रावकों को सात्विक गर्व है। वे अब भी चाहते हैं कि आचार्यवर उन्हें कोई ऐसा ऐतिहासिक अवसर दिलाने की कृपा करें। सं० १९५९ में वहां सप्तम आचार्यश्री डालगणी का पदार्पण हुआ। वर्तमान में आचार्यश्री वहां तीसरी बार पधारे। इससे पहले सं० १९९३ और सं० २०१० में दौलतगढ़ को आचार्यवर का सान्निध्य उपलब्ध हुआ।

दौलत पाएं, पर कौन-सी

८ अप्रैल को बराणा से प्रस्थान कर आचार्यश्री दौलतगढ़ पहुंचे। गांववासियों को इकतीस वर्ष के बाद अपने गांव में गुरु-दर्शन का सौभाग्य मिल रहा था। उनका मानसिक उल्लास गांव की गलियों को भी उल्लसित कर रहा था। सभा-भवन से प्रवचन-पण्डाल तक लगे शामियाने, द्वार, मोटोज और फन्नियां। आचार्यवर ने एक नजर में ही सब कुछ देख लिया। प्रवचन में उस बात पर टिप्पणी करते हुए आपने कहा—मुझे ऐसा लग रहा है कि आज दौलतगढ़ कुछ दूसरा ही हो रहा है।

मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि गांव को इस प्रकार क्यों सजाया गया ? इतने शामियाने क्यों बांधे गए ? दो दिन के लिए इतना बड़ा मंच क्यों ? क्या आप मेरे आगमन को अपनी प्रेस्टीज का प्रश्न बना रहे हैं ? अन्यथा इतना अपव्यय क्यों ? आवश्यक काम करने पड़ते हैं, पर यह 'शो' किसलिए ? मैं सब लोगों को सावधान कर देता हूं कि आगे सभी क्षेत्रों में सादगी का ध्यान रखा जाए, अन्यथा कुछ हमें सोचना पड़ेगा।

दौलतगढ़ शब्द का विश्लेषण करते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में कहा—दौलत दो प्रकार की होती है। एक दौलत है हीरे, पन्ने, माणक, मोती, सोना, चांदी आदि। यह दौलत किसी के पास हो सकती है और किसी के पास नहीं भी हो सकती। दूसरी बात यह दौलत दो लत—दो लात है। जब दौलत आती है, तब पीठ में लात मारती है, इससे आदमी का सिर ऊंचा हो जाता है। जब यह जाती है तो आगे छाती में लात मारती है, इससे मुंह नीचा हो जाता है। ऐसी दौलत विवादास्पद है और इसका कोई स्थायित्व भी नहीं है।

दूसरी प्रकार की दौलत ऐसी है, जिससे हर व्यक्ति धनी हो सकता है। वह दौलत है धर्म की, त्याग-तपस्या की, सत्य-अहिंसा और सादगी की। यह ऐसी दौलत है, जिसे न कोई छीन सकता है और न कोई चुरा सकता है। दौलतगढ़ गांव के निवासी ऐसी दौलत से बनें, यह जरूरी है।

बने-बनाए लड्डू छोड़ दिए

१० अप्रैल को आचार्यवर दौलतगढ़ से लाछुड़ा पधारे। साढ़े तीन हजार की आबादी वाले गांव में चालीस परिवार तेरापंथी हैं। इस क्षेत्र को तेरापंथ के चार आचार्यों को अपने गांव की धरती पर देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वि० सं० १९०९ में वहां जयाचार्य पधारे, सं० १९४३ में मघवागणी पधारे, सं० १९५९ में डालगणी पधारे और आचार्यवर वहां पहली बार १९९३ में फिर २०१९ एवं २०४२ में पधारे। २२ वर्ष पहले जब आचार्यवर का आगमन हुआ था, उस समय कुछ दिन पूर्व गांव में किसी की मृत्यु हो गई थी। मेवाड़ में मृत्यु-भोज का प्रचलन बहुत अधिक है। इन वर्षों में आचार्यश्री की प्रेरणा से कुछ अन्तर जरूर आया है, पर उस समय तो वह प्रतिष्ठा का अंग बना हुआ था। मृत्युभोज को यहां 'किरियावण' भी कहा जाता है। जिस दिन आचार्यवर का लाछुड़ा में आगमन होने वाला था, उसी दिन मृत्युभोज था। भोज की रसोई बन चुकी थी। आचार्यवर को जानकारी मिली कि गांव में मृत्युभोज है। आपने प्रवचन में ही मृत्युभोज पर तीखा प्रहार किया। श्रोताओं के मन आन्दोलित हुए। दो-चार प्रमुख श्रावकों ने बात की और सभी लोगों ने सामूहिक रूप से

मृत्युभोज करने और खाने का परित्याग कर दिया।

सामूहिक रूप से त्याग होने के बाद प्रश्न उठा कि भोज के लिए जो मिठाइयां बन गई, उनका क्या किया जाए? सभी लोगों में अपने संकल्प के प्रति इतनी दृढ़ता थी कि वे एक स्वर से बोले—जिन्होंने त्यागकर दिए, उन्हें भोज में सम्मिलित नहीं होना चाहिए। सबकी सहमति से निर्णय हो गया। बना-बनाया भोजन पड़ा रहा। लाछुड़ा के श्रावकों ने गुरु-दृष्टि की आराधना कर अपने क्षेत्र का इतिहास बना लिया।

आचार्यश्री ने आगमन के अवसर पर उक्त घटना की याद दिलाते हुए कहा—पिछली बार तो आपने बने-बनाए लड्डू छोड़ दिए थे। देखते हैं, इस बार क्या नया काम करते हो। स्वागत-समारोह में गीतों और वक्तव्यों के बीच त्याग प्रत्याख्यान की एक लम्बी सूची आचार्यवर को भेंट की गई।

दुःख-मुक्ति के उपाय

लाछुड़ा में आचार्यवर दो दिन रहे। दोनों ही दिन आसपास के गांवों से सैकड़ों-सैकड़ों लोग प्रवचन सुनने आए। आचार्यश्री की बहुरंगी धर्म-परिषद को देखकर भगवान् महावीर के समवसरण में उपस्थित होने वाली बारह प्रकार की परिषद की स्मृति हो आई। एक प्रवचन सभा को सम्बोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—सबसे पहले आप इस बात पर विचार करें कि आपको पाना क्या है? मैं जहां तक समझता हूं, हर आदमी में दुःख से छुटकारा पाने की चाह सबसे बड़ी चाह होती है। दुःख से छुटकारा कैसे हो? इस प्रश्न के उत्तर में आगम कहते हैं—

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥

—दुःख का मूल कारण है अज्ञान। अज्ञान हटा कि दुःख मिटा। इसलिए पूरे ज्ञान का प्रकाशन, अज्ञानजनित मोह का वर्जन और राग-द्वेष की क्षीणता—यह त्रयी दुःख-मुक्ति का आधार है। इसमें दुःखों से इतना मोक्ष हो जाता है कि वहां केवल सुख का साम्राज्य रहता है। इस पथ का अनुगमन जो भी करेगा, वह दुःख से छुटकारा पाने में सक्षम हो सकेगा।

यह तिलोली है या त्रिलोकी

आसीन्द तहसील का छोटा-सा गांव तिलोली, १२ अप्रैल को एक बड़ा कस्बा बन गया। उस दिन समूचे गांव में खुशियों का झरना झर रहा था। बच्चे-बूढ़े, युवक सब आह्लादित थे। पिछली बार आचार्यश्री वहां छब्बीस वर्ष बाद पधारे थे, इस बार का अन्तराल बाईस वर्षों में सिमटा हुआ था। बाईस वर्ष पहले जो श्रावक वहां थे, उनमें से कई नहीं रहे थे। पर उनकी नयी पीढ़ी में युवक और बच्चों ने उनकी आस्था को विरासत में प्राप्त कर लिया था। वहां श्रद्धा के तीस परिवार हैं।

गांव के बीच में गढ़ के आगे विशाल प्रांगण में प्रवचन का कार्यक्रम था। खचाखच भरे प्रांगण को देखकर गांववासी अचंभित रह गए। उन्होंने तो सोचा था कि पंडाल पूरा भरेगा या नहीं? स्थिति यह थी कि पंडाल में बाहर तक लोग खड़े थे। चौक के चबूतरे भी जन-संकुल हो गए थे। सबके चेहरों पर उत्सुकता थी। उन्होंने पूरी शान्ति के साथ आचार्यवर का प्रवचन सुना।

प्रवचन पूरा हुआ ही था कि आसपास के खेड़ों और देहातों से आने वाले लोगों का तांता-सा लग गया। खटीक, ब्राह्मण, किसान, महाजन और भी न जाने कौन-कौन लोग थे। जातीयता की भावना से ऊपर उठकर वे मानवता के मसीहा को देखने और सुनने की तमन्ना लेकर वहां पहुंच रहे थे।

डेढ़ बजे तक जनता की उपस्थिति प्रातःकाल से अधिक हो गई। आचार्यवर प्रवचन सभा में पधारे। किसान सम्मेलन का कार्यक्रम भी रखा हुआ था। आचार्यश्री ने जनसमूह को देखते ही कहा—यह तिलोली है या त्रिलोकी? सभासदों के चेहरों पर हल्का-सा स्मित बिखर गया। संतों के भजन और वक्तव्य के अनन्तर आचार्यश्री और जनता के बीच संवाद शुरू हुआ। जनता मौन थी और आचार्यवर बोल रहे थे, पर प्रतीति ऐसी हो रही थी, मानो संवादशैली से ग्रामीणों को प्रशिक्षित किया जा रहा था। ब्राजील के क्रान्तिकारी शिक्षा-शास्त्री पालो फ्रेरे का अभिमत है कि लोकजीवन को शिक्षित करने के लिए संवाद और संप्रेषण जरूरी है। अन्यथा व्यक्ति की रचनात्मक ऊर्जा का जागरण नहीं हो सकता। हमारे देश के स्कूलों और कालेजों में इस पद्धति का प्रयोग कब होगा? पता नहीं, किन्तु आचार्यश्री अपने प्रवचन में इस शैली का उपयोग करते हैं। उन ग्रामीण लोगों के बीच में विशेष रूप से, जिन्हें अपने अस्तित्व का बोध नहीं है। जो अनेक प्रकार की बुराइयों के चंगुल में फंसे हुए हैं और जानते नहीं हैं कि इसके दुष्परिणाम उन्हीं को भोगने होंगे।

तिलोली में उपस्थित हजारों-हजारों ग्रामीण लोगों को आचार्यवर ने ग्राम्य-जीवन में व्याप्त बुराइयों की व्याख्या की। सीधी-भाषा और सीधी बात। हर बोल श्रोताओं के गले उतर रहा था। वक्ता और श्रोता के बीच अद्भुत तादात्म्य

जुड़ गया। उस क्षण का दृश्य अत्यन्त मनोहारी था, जब तिलोली के सत्तर खटीक परिवारों ने एक साथ खड़े होकर शराब और मांस के सेवन करने का परित्याग किया। भविष्य में कोई व्यक्ति स्वीकृत संकल्प से विचलित हो जाए तो उसके लिए खटीक समाज की ओर से यह निर्णय लिया गया कि पहली बार संकल्प तोड़ने पर पचास रुपये और दूसरी बार पांच सौ रुपये का जुर्माना देना होगा। कोई तीसरी बार संकल्प तोड़ दे तो उस व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाए। इस निर्णय से खटीक परिवारों में अपने संकल्प के प्रति विशेष जागरूकता रहेगी, ऐसी संभावना है। रात्रिकालीन कार्यक्रम में युवाचार्यश्री का प्रवचन हुआ।

जनता धार्मिक तो है, ईमानदार नहीं है

१३ अप्रैल को तेरह किलोमीटर चलकर आचार्यवर वेमाली पहुंचे। प्रवास की व्यवस्था गांव से बाहर स्थानीय विद्यालय में थी। गांव के बाहर से स्कूल का रास्ता सीधा था, किन्तु गांववासियों की भावना थी कि गांव की गली-गली गुरुदेव की पावन पदरज से भावित हो। इसलिए एक किलोमीटर घुमाकर जुलूस को विद्यालय में ले गए। आचार्यवर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा—तेरह किलोमीटर चले, ऊपर से फिर एक किलोमीटर का चक्कर। क्यों आज हमारे मार्ग-दर्शक वे गृहस्थ बन गए, जिनको हम रास्ता दिखाते हैं। रास्ता खोजने वाले रास्ता दिखाने लगेंगे तब चक्कर नहीं पड़ेगा तो क्या होगा?

वेमाली के विद्यालय का प्रांगण उस दिन जनसंकुल था। आचार्यवर ने उपस्थित जनता को संबोधित करते हुए कहा—हमारे देश की आबादी सत्तर करोड़ है। सत्तर करोड़ लोगों में धार्मिक कितने हैं? इस प्रश्न के उत्तर में पैंसठ करोड़ का नामांकन तो हो ही जाएगा। पांच करोड़ भी ऐसे नहीं मिलेंगे जो नास्तिक या अधार्मिक हों। इसका पूरक प्रश्न यह होगा कि पैंसठ करोड़ धार्मिकों में ईमानदार कितने हैं? शायद चार-पांच लाख भी मुश्किल से हों। सनातनी, आर्यसमाजी, इस्लामी, ईसाई, जैन सब धार्मिक हैं। क्योंकि सबने धर्म का झण्डा उठा रखा है। धार्मिक होने पर भी ये सब ईमानदार नहीं हैं। इसका मतलब यह हुआ कि देश में बेईमान धार्मिक अधिक हैं। देश की दुर्दशा का बड़ा कारण यही है। वास्तव में कोई बेईमान व्यक्ति धार्मिक हो ही नहीं सकता। किन्तु शताब्दियों से नहीं, सहस्राब्दियों से यह सब चल रहा है, पर कोई ऐसा कारगर उपाय नहीं हुआ है, जो धार्मिक व्यक्ति को ईमानदार भी बना सके।

आचार्यश्री के उक्त विचारों ने लोगों के मन में हलचल मचा दी। आचार्यश्री का कथन इतना यथार्थ था कि उस यथार्थ के आईने में सबको अपने-अपने चेहरे

नजर आने लगे। अमीर-गरीव, महाजन, किसान कोई भी नहीं वचा है। अधिकांश लोग दोहरा जीवन जी रहे हैं। और तो क्या, साधु भी पूरे ईमानदार कहां मिलते हैं? भारतीय संस्कृति में एक सन्त परंपरा ही तो ऐसी है, जिनमें जनता को नीति, धर्म या प्रामाणिकता का प्रशिक्षण मिलता है। प्रामाणिकता के उत्स में ही अप्रामाणिकता का मिश्रण हो जाए तो फिर निखालिस ईमानदारी कहां मिलेगी? वाड़ ही फल को खाने लगे तो सुरक्षा का दायित्व किस पर होगा? साधु-संस्थाओं को इस सम्वन्ध में गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। साधु-संस्थाएं स्वयं ईमानदार रहकर ही जनता को ईमानदारी का वोध पाठ दे सकती हैं।

सौ वर्ष पहले की जिन्दगी

ढाई-तीन हजार की आवादी वाले वेमाली गांव में पचपन परिवार तेरापंथी हैं और वीस परिवार स्थानकवासी हैं। स्थानीय लोगों में श्रद्धा भावना अच्छी है, पर रूढ़ता वहुत है। न तो परम्पराओं को वदलना चाहते हैं और न उस सन्दर्भ में कुछ सोचना ही चाहते हैं। जिन परिवारों के युवक भीलवाड़ा, उदयपुर आदि शहरों में चले गए हैं, उन परिवारों की वुर्जुआ और युवापीढ़ी के वीच वैचारिक संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई है। गुजरात में रहने वालों के विचारों में तो रात-दिन का अन्तर आ गया है। वहां रहने वाले सदस्य सव प्रकार की आधुनिक सुविधाओं का उपयोग करते हैं, गांव में रहने वाले वच्चे कभी वैसी सुविधा की आवश्यकता भी अनुभव करें तो उस ओर ध्यान कम दिया जाता है। रहन-सहन के स्तर में भी अन्तर है। लड़कियों को ऊंची शिक्षा देने के पक्ष में वे नहीं हैं, फिर भी कुछ परिवारों की कन्याएं अपनी दृढ़ता से ग्रेज्यूएशन तक पहुंच गई हैं। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अधिक रूढ़ हैं। एक वृद्धा वहन, जिसके पति का स्वर्गवास हुए चार-पांच महीने हो चुके थे, आचार्यवर के दर्शन करने नहीं आई। साध्वियों ने उसको प्रेरणा दी तो वहन वोली—अभी तक तो मैंने घर की दहलीज भी नहीं लांघी है, दर्शन करने कैसे जाऊंगी? वहुत वार समझाने पर भी 'टस से मस' नहीं हुई। उसने स्पष्ट कह दिया—अपने पीहर जाने के पहले मैं कहीं नहीं जाऊंगी। महाराज को कह दो, वे मुझे यहीं दर्शन दे देंगे। इस युग में भी जैन समाज में ऐसी वहनें हैं, जो आज भी सौ-पचास वर्ष पहले की जिन्दगी वसर कर रही हैं।

वेमाली के श्रावकों में कोई पारस्परिक विवाद था, जिसने 'तड़' का रूप ले लिया था। आचार्यवर को इस वात की जानकारी थी। इधर वेमाली के लोग आचार्यश्री को अपने पधारने का अनुरोध कर रहे थे। इसी अनुरोध को लेकर वे

'चिताम्बा' पहुंचे। आचार्यवर ने उनको कहा— आप वेमाली के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, पर क्या आप प्रार्थना करने के सच्चे अधिकारी हैं? लोग चौंके। वे विनम्र शब्दों में बोले —गुरुदेव! क्या हम आपके भक्त नहीं हैं? हमें अधिकार क्यों नहीं है? आचार्यवर ने दुखती रग पर हाथ टिकाते हुए कहा—मैंने सुना है कि आपके वहां 'तड़' है। ऐसी स्थिति में वहां आकर करूंगा भी क्या? मैं जनता से मिलकर उसे प्रतिबोध दूंगा या आपकी 'तड़ें' मिटाऊंगा। आचार्यश्री की यह बात वेमालीवासियों को लग गई। उन्होंने, लरानी, भीम, बड़ाखेड़ा की तड़ें टूटने का संवाद भी सुन लिया था। उनके मन में भी तड़प जगी। वे अपने गांव आए। सब लोग मिलकर बैठे और पुराने आग्रह-विग्रह को छोड़कर एक हो गए। गांव में एकता कर उन्होंने आचार्यवर के दर्शन किए। सारी स्थिति आचार्यवर को निवेदित की तब आपने कहा—अब आप पूरी तरह से प्रार्थना करने के अधिकारी हो गए हैं। वेमाली वालों की इस सूझबूझ से ही उन्हें दौलतगढ़ और लाछूड़ा की तरह दो दिन का समय मिल गया।

भोजन व्यवस्था : नयी नीति

मारवाड़ और मेवाड़ में आचार्य या साधु-साध्वियों के दर्शन करने के लिए आने वालों को भोजन कराने की परम्परा है। इसकी पृष्ठभूमि में साधार्मिक वात्सल्य की भावना ही प्रमुख रहती तो बात कुछ समझ में आती। किन्तु इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर भोज का रूप दे दिया गया। आचार्यश्री की मारवाड़ यात्रा में उक्त परंपरा को बदलने का चिन्तन दिया गया। एक बार में तो यह बात लोगों की समझ में ही नहीं आई। बार-बार प्रेरणा देने से बात समझ में तो आ गई, पर परम्परा को तोड़ने में वे हीनता का अनुभव करने लगे। आचार्यवर ने उनको कहीं बहुत आत्मीयता से समझाया और कहीं कठोर रुख भी अपनाया। धीरे-धीरे बात गले उतर गई। फिर भी वे उस परम्परा को पूरी तरह से छोड़ने की मानसिकता नहीं बना सके। आखिर सबने मिलकर निर्णय लिया कि आचार्यश्री का आगमन हो, उस एक दिन के लिए भोजन समाज की ओर से होगा। उसके बाद समाज व्यवस्था करेगा, आगन्तुक कूपन खरीदकर भोजन करेंगे। मारवाड़ की पूरी यात्रा में यह क्रम चला।

मारवाड़ के बाद आचार्यवर को मेवाड़ की यात्रा करनी थी। मेवाड़ के श्रावकों में भी खाने-खिलाने का अपना आग्रह है। यदि यहां भी मारवाड़ जैसी परम्परा चलती रही तो बहुत छोटे-छोटे गांवों के सामने कठिनाई आ सकती है। जहां समाज के दो-चार परिवार ही हों और उनकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो, इस स्थिति में वे क्या करेंगे? यदि आगन्तुकों को भोजन कराने की परम्परा का निर्वाह

करेंगे तो व्यवस्था कहां से जुटाई जाएगी। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनको डिप्रेशन पैदा हो जाएगा। इन सब बिन्दुओं पर विचार करना वहुत जरूरी था। आमेट के वरिष्ठ श्रावक श्री कजोड़ीमलजी बोहरा ने आचार्यवर से निवेदन किया—गुरुदेव! इस सम्बन्ध में आपकी जो नीति होगी, हम उसी का अनुसरण करना चाहेंगे। पर सब लोग इस बात को स्वीकार नहीं करें तो हमें क्या करना चाहिए? आचार्यवर ने कहा—मेवाड़ पहुंचने से पहले ही कुछ सोचना होगा। इसके लिए दूधालेश्वर महादेव में मेवाड़ प्रान्तीय मीटिंग बुलाई गई। अनेक क्षेत्रों के व्यक्ति उपस्थित हुए। उन्हें कहा गया कि वे अपने-अपने गांव का जिम्मेवारी के साथ प्रतिनिधित्व करें। थोड़ी-बहुत कसमकस के बाद अधिकांश प्रतिनिधियों ने सिद्धान्त के रूप में इस बात को अपनी स्वीकृति दी कि कूपन-व्यवस्था रहनी चाहिए।

मेवाड़ यात्रा में सबसे पहला क्षेत्र था टाडगढ़। टाडगढ़ के कार्यकर्ताओं से पूछा गया तो वे बोले—हमने सारी तैयारी कर ली है। हमारा गांव इस बात को स्वीकार नहीं करेगा।

मेवाड़-व्यवस्था समिति के कार्यकर्ताओं ने कहा—जो नीति समूचे मेवाड़ के लिए तय हो रही है, उसमें टाडगढ़ को छूट कैसे मिलेगी? टाडगढ़ के कार्यकर्ता बोले—हम गांव में जाकर सब लोगों को समझाएंगे। यदि बात स्वीकार कर लेंगे तो ठीक अन्यथा उन्हें यहां लाना पड़ेगा। टाडगढ़ के कुछ लोगों ने रात भर प्रयास किया, पर पूरी सफलता नहीं मिली। आखिर प्रातः काल पांच बजे वे दूधालेश्वर पहुंचे। उन्होंने कहा—हमने सात दिन फ्री भोजन की तैयारी की है। ऐसी स्थिति में दो दिन की छूट हमें मिलनी चाहिए पर इस छूट से आगे भी यही रास्ता बन सकता था। इसलिए उनकी बात स्वीकृत नहीं हुई। उस पर वे बोले—गांवों के लोग इस व्यवस्था को मान्य नहीं करेंगे तो? इस प्रश्न को सकारात्मक ढंग से समाहित किया गया। अब किसी को कुछ कहने की बात नहीं रही। मन को अच्छा तो नहीं लगा, पर सर्व सम्मति से निर्णय ले लिया गया। अब टाडगढ़ के आम आदमी को समझाने की बात बाकी रही। आचार्यवर मार्च के तीसरे दिन टाडगढ़ पहुंचे। वहां पहुंचते ही डाक बंगले में गांव के सब लोगों को आपने पहला संदेश भोजन व्यवस्था के संबंध में दिया। लोगों ने थोड़ी आनाकानी की और एक दिन फ्री भोजन की बात पर बल देने लगे। आचार्यवर ने उनको चेतवनी दी—आप लोग केन्द्र का दृष्टिकोण नहीं समझते हैं, फिर हम भी अपनी दृष्टि से सोचेंगे। हम आपको बलपूर्वक कोई बात मनवा नहीं सकते, पर कर तो सकते हैं। ये शब्द सुनते ही लोग सहम गए। तेरापंथ धर्मसंघ में यह आस्था बनी हुई है कि आचार्यश्री की इच्छा के उपरान्त कोई काम होगा, वह ठीक नहीं होगा। ऐसा होता भी है। इसलिए समाज के सभी लोग सामान्यतः गुरु के चिन्तन को महत्त्व

देते हैं। टाडगढ़वासियों ने भी अपनी इच्छा का विसर्जन कर आचार्यवर के निर्देश को क्रियान्वित करने की भावना व्यक्त की।

प्रारम्भ में ही एक नीति निर्धारित हो जाने से मारवाड़ में आगन्तुकों को एक दिन भोजन कराने की जो परम्परा थी, वह वदल गई। गांववासियों की ओर से आगन्तुकों के लिए भोजन की व्यवस्था कूपन पद्धति से की गई। कई गांवों में इस व्यवस्था के प्रति पूरी सतर्कता वरती गई। किन्तु कुछ गांवों में व्यवस्था का खुला अतिक्रमण भी हुआ। मेवाड़ व्यवस्था समिति के कार्यकर्ताओं द्वारा सजग करने पर भी कुछ व्यक्ति व्यवस्था के महत्त्व का अंकन नहीं कर सके। जव कभी आचार्यवर को स्थिति की जानकारी मिली, आपने उस सन्दर्भ में कहा—मेवाड़ी भाई जव तक अपनी समझ को सही नहीं करेंगे, मानदण्डों को नहीं वदलेंगे, तब तक वे कोई वड़ा काम नहीं कर सकेंगे। एक समय था, जव खाने-खिलाने का मूल्य था और वह सौहार्द का प्रतीक था। अव वह प्रेम के स्थान पर प्रदर्शन का प्रतीक वन गया है। मेवाड़ में एक नीति निर्धारित होने के वाद जहां कहीं उसका अतिक्रमण होता है, वे अनुशासन को भंग करते हैं।

मुफ्त में खिलाने वाले लोग अनुशासन भंग के जितने अपराधी हैं, उनसे भी अधिक अपराधी वे हैं, जो समाज द्वारा नीति निर्णीत होने के वाद भी मुफ्त में भोजन करते हैं। उपासना करने वाले नीति के अनुरूप चलें तो ठीक, अन्यथा उनके साथ रहने का औचित्य भी क्या है? जिनको नयी व्यवस्था पसन्द न हो, वे अपने-अपने गांवों में साधु-साध्वियों की उपासना कर सकते हैं। मुफ्त में खाना पुरुषार्थहीनता और अविवेक की वात है। आचार्यवर ने समय-समय पर आगन्तुक लोगों को भी प्रतिवोध दिया। गांव-गांव में अनेक व्यक्तियों ने मुफ्त में भोजन करने का परित्याग किया।

अपनी नजरों से न उतारें

मेवाड़ व्यवस्था समिति द्वारा भोजनालय में भोजन करने वालों के लिए प्रति व्यक्ति तीन रुपये कूपन की व्यवस्था दी गई। प्रायः गांवों में व्यवस्था का ध्यान रखा गया। दौलतगढ़ वालों ने अपनी ओर से दो रुपये कूपन का शुरू कर दिया। काफी लोग उसी क्रम में भोजन करते गए। दूसरे दिन आसीन्द के श्रावक भोजन करने आए। उन्होंने कहा—दो रुपये की व्यवस्था गलत है। इसमें तत्काल सुधार होना चाहिए। दौलतगढ़ वालों ने इस सुझाव को सुनकर भी अनसुना कर दिया। आखिर वात आचार्यप्रवर तक पहुंची। यह वात लगभग चार वजे की है। उस समय प्रवचन की समाप्ति के वाद अधिक लोग अपने-अपने घरों को लौट गए थे। पांच-सात भाई वहां खड़े थे। आचार्यवर ने उनसे पूछा—आप लोगों ने यह गलती

कैसे की ? भाई एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। इससे बात स्पष्ट हो गई कि उन लोगों ने गलती की है। आचार्यवर ने उनको प्रतिबोध देते हुए कहा—आप लोग केन्द्र की दृष्टि का अतिक्रमण करते हैं। यदि आपका यही रवैया है तो आज रात्रि में मैं प्रवचन नहीं करूंगा। उन पांच-सात भाइयों के माध्यम से बात पूरे गांव में फैल गई। अब लोगों में खलबली मची। गांव के प्रमुख-प्रमुख लोग मिलकर आए। आचार्यवर ने उस समय मौन कर लिया। प्रतिक्रमण के बाद वे फिर आए। आचार्यश्री स्थानीय महिलाओं को प्रशिक्षण देने में व्यस्त हो गए। इसी बीच अर्हत् वंदना हुई। अर्हत् वंदना में गांव के बच्चे, बूढे, युवक सब आचार्यवर को घेरकर बैठ गए। लोगों ने विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। पर उसी समय कुछ व्यक्ति बोले—हमें कुछ पता नहीं है। यह बात ठीक नहीं थी। आचार्यवर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा—आप लोग प्रवचन में उपस्थित थे। वहां आपको स्पष्ट रूप से सजग कर दिया गया था, फिर भी आप कहते हैं कि हमें जानकारी नहीं है। इस लापरवाही का क्या अर्थ है? आचार्यवर का एक-एक शब्द उन्हें भीतर तक कुरेद गया। वे सब कुछ सहन कर सकते थे, पर अपने गुरु की नाराजगी उनके लिए सह्य नहीं थी। आचार्यवर के मन में व्यक्ति विशेष के प्रति कोई चिन्तन नहीं था। किन्तु एक मूल्य को बदलने के लिए कठोरता और कोमलता से काम लेना जरूरी था।

दौलतगढ़ के श्रावकों ने उस समय बात को गंभीरता से नहीं लिया था। आचार्यश्री का दृष्टिकोण समझने के बाद उन्हें अपनी भूल का पूरी तरह से अहसास हो गया। उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और उसके लिए प्रायश्चित की मांग की। उन्होंने कहा—आप हमें उपवास का त्याग करा दें और कुछ करवा दें, पर अपनी नजरों से न उतारें। दौलतगढ़ के भाई अनुनय-विनय करते रहे और आचार्यवर उनके मनों को टटोलते रहे। लगभग दो घण्टे का समय उस पशोपेश में पूरा हो गया। गांववासियों ने पूरे मन से अपनी गलती का अनुभव किया, तब जाकर वह प्रसंग समाप्त हुआ।

एक प्रयोग : जो होते-होते टल गया

१३ अप्रैल को आचार्यश्री बेमाली पधारे। अपने प्रथम प्रवचन में आपने जीने की कला का प्रशिक्षण देते हुए भोजन-व्यवस्था पर टिप्पणी की। आगन्तुक लोगों को आगाह किया और स्थानीय सरपंच श्री मांगीलालजी मांडोत को सलक्ष्य सजग किया। आपने यहां तक कह दिया कि व्यवस्था का अतिक्रमण होने पर विहार किया जा सकता है। सरपंच बोले—गुरुदेव! आपके निर्देश का हम अतिक्रमण नहीं करेंगे। इतनी बात होने के बावजूद व्यवस्था का लगभग खुला अतिक्रमण

हुआ। उन्होंने भोजन करने वाले सब लोगों को कूपन दिए, पर उनसे रुपये नहीं लिये। रुपये न लें तो कूपन दें या नहीं, कोई फर्क नहीं पड़ता।

मध्याह्न का कार्यक्रम संपन्न होते ही व्यवस्था के अतिक्रमण की बात आचार्यवर तक पहुंच गई। आपने अविलम्ब गांव के प्रमुख लोगों को याद किया। डरते-सहमते हुए वे लोग आए। आचार्यवर ने कहा—स्पष्ट निर्देश देने के बाद भी आप लोगों ने गलती की है। इसका मतलब यह है कि आप केन्द्र की दृष्टि नहीं समझते। इस सम्बन्ध में आप को पहले ही संकेत दिया जा चुका है। कल यहां रहने का कार्यक्रम बदलकर विहार करना होगा।

विहार की बात सुनते ही लोगों में खलबली मच गई। केवल तेरापंथी श्रावक ही इस बात से प्रभावित नहीं हुए, जैन-अजैन, महाजन-किसान सबके मन खिन्न हो गए। यहां तक कि रावले में भी हलचल हो गई। लोगों ने बहुत अनुनय-विनय किया, अपनी गलती स्वीकार की, भविष्य में निर्देश का अतिक्रमण नहीं करने का विश्वास दिलाया। किन्तु आचार्यवर का मन नहीं पिघला। इसका कारण भी था। बार-बार इस सम्बन्ध में समझाने के बावजूद कई गांवों में कहीं कम और कहीं अधिक व्यवस्था का भंग हुआ। लोगों ने समझ लिया कि व्यवस्था की बात केवल कहने की है, थोड़ा-बहुत तो यों ही चलता रहेगा। इस प्रकार की लापरवाही को दूर करने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही जरूरी थी। बेमाली के श्रावकों ने सबसे अधिक प्रमाद किया, इसलिए बात उन पर आ गई। अब उनके माध्यम से आचार्यवर समूचे मेवाड़ को शिक्षा देना चाहते थे, इसलिए विहार के चिन्तन में परिवर्तन नहीं किया।

बेमाली से विहार कर १५ अप्रैल को चांदरास जाना था। आगे का यात्रा-क्रम भी तारीखों में बंधा हुआ था। वहां से १४ अप्रैल को विहार की स्थिति में एक दिन हाथ में रहा। उसका उपयोग कहां हो, इस दृष्टि से चिन्तन शुरू हो गया। चांदरास जाने से तो आगे का सारा क्रम बदल जाता। इसलिए बेमाली से नाथड़ियास जाने का कार्यक्रम बना। वहां के भाइयों को इस सम्बन्ध में संभावित सूचना दे दी गई। आचार्यवर ने साधु-साध्वियों को भी विहार के लिए तैयार रहने का निर्देश दे दिया।

इस घटना से बेमाली के श्रावक व्यथित हो उठे। अनेक लोगों की आंखों में आंसू आ गए और अनेक लोगों की धड़कनें तेज हो गईं। वे फिर आचार्यश्री के पास आए और बोले—गुरुदेव! हमें गलती का दण्ड दो, पर ऐसा नहीं। आपकी नाराजगी से तो हम मटियामेट हो जाएंगे। यदि कल आपका यहां से विहार हो गया तो मेवाड़ के क्षेत्रों में बेमाली का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। हम लोग मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। आप कृपा करें और अपना निर्णय बदलें।

आचार्यश्री ने उनकी बात सुनी, उनकी पीड़ा पढ़ी पर अपना निर्णय नहीं

बदला। आपने कहा—इसमें नाराजगी की कोई बात नहीं है। यह नीति की बात है। मैं इस बहाने से सबको शिक्षा देना चाहता हूं। आप इसे प्रेस्टीज का प्रश्न न बनाएं। आप चाहें तो मैं यहां साधु-साध्वियों को छोड़ दूं, पर मुझे आप बाध्य न करें।

इधर रावले के ठाकुर साहब आए। उन्होंने कहा—गांव के लोगों को व्यवस्था-भंग नहीं करनी चाहिए थी, पर अब तो लगाम इनके हाथ से छूट गई है। आप महान् हैं। गांववासियों की भूल पर ध्यान न देकर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार यहां दो दिन का समय दिलाएं। इस पर भी आपका मन न माने तो आप यहां से विहार कर रावले में पधार जाएं। विहार भी हो जाएगा और हमारा मन भी रह जाएगा।

बात बेमाली तक ही सीमित न रहकर आसपास फैल गई। गांव-गांव से आने वाले लोग अनुभव कर रहे थे कि गलती गांव वालों ने की है, पर इसका दण्ड इस रूप में नहीं दिया जाए। स्थानीय श्रावकों में तरुण श्रावक मोहनलालजी बोहरा आचार्यवर के चरणों में सिर टिकाकर बैठ गये। वे बोले—गुरुदेव ! यदि आपने कल यहां से विहार कर दिया तो हमारा हार्ट फेल हो जाएगा। उधर बहनों ने अपनी योजना बनाई। उनका कहना था कि गलती की है भाइयों ने। गलती का दण्ड उन्हें मिले। हम इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगी। आचार्यवर हमारा अनुरोध स्वीकार कर लेंगे तो ठीक नहीं तो हम प्रातः स्कूल को घेरकर खड़ी हो जाएंगी। आचार्यवर कल यहां से नहीं जा सकेंगे।

अनुनय-विनय, ऊहापोह आदि के बीच रात्रिकालीन कार्यक्रम का समय हो गया। आचार्यवर ने युवाचार्यश्री को प्रवचन करने का निर्देश दिया और आप भीतर पधारकर विश्राम करने लगे। प्रवचन शुरू हो गया, फिर भी कुछ लोग आचार्यवर के कमरे में बाहर जमकर बैठ गये। न उनकी प्रवचन सुनने की इच्छा हो रही थी, न दूसरा काम करने की। यहां तक कि उन्होंने शाम को भोजन भी नहीं किया। पूरे गांव का उत्साह क्षीण हो गया। सब खिन्न, उद्विग्न और चिन्तित थे।

युवाचार्यश्री ने प्रवचन किया। उन्होंने देखा कि लोग प्रवचन सुन रहे हैं, पर सबके मन भारी हैं। इन्हें इस स्थिति में छोड़कर आचार्यवर प्रस्थान कर देंगे तो पता नहीं क्या हादसा घटित हो जाए। यह बात सोचकर युवाचार्यश्री प्रवचन संपन्न कर आचार्यश्री के पास गये और विहार के निर्णय को स्थगित करने का अनुरोध करने लगे। आचार्यश्री ने कहा—मैं अपनी बात किसी पर थोपना नहीं चाहता। मैंने दृष्टि दे दी। वह बात लोगों के समझ में नहीं आती है तो मैं इन्हें क्यों बाध्य करूं? बाध्यता हिंसा है। इसलिए मैं यह प्रयोग स्वयं पर करना चाहता हूं। आचार्यश्री का चिन्तन बिल्कुल सही था, पर स्थिति कुछ अधिक

जटिल बन रही थी। युवाचार्यश्री ने बार-बार अनुरोध किया। उनकी बात टालनी असंभव-सी हो गई, तब आचार्यवर ने विहार का निर्णय वापस लिया। इससे वेमालीवासियों को ही नहीं, वहां उपस्थित सभी क्षेत्रों के लोगों को खुशी हुई। प्रसन्नता की बात तो थी ही, उससे सबको सबक भी मिल गयी। इस घटना के बाद प्रायः सभी गांवों के लोग काफी सजग रहे।

इस प्रसंग को दूसरे नजरिए से देखा जाए तो आगन्तुक लोगों को इतने उत्साह से भोजन कराना आतिथ्य का बड़ा गुण है। इस क्रम को बदलने से अतिथि सत्कार की परंपरा टूटने का खतरा भी सामने है। किन्तु इस परंपरा को जिस ढंग से बोझिल बना दिया गया है, उसे देखते हुए इसमें परिवर्तन की बात नितान्त आवश्यक है।

स्कूलों की स्थिति

१५ अप्रैल को आचार्यश्री वेमाली से प्रस्थान कर चांदरास पधारे। दो हजार की आबादी वाले गांव में बीस जैन परिवार रहते हैं। उनमें चार परिवार तेरापंथी हैं। गांव में ठहरने के लिए मकान तो थे, पर प्रवचन के लिए बड़ा स्थान नहीं था। इस दृष्टि से आचार्यवर का प्रवास राजकीय माध्यमिक विद्यालय में हुआ। विद्यालय में कमरे तो काफी थे, पर स्वच्छता जैसी कोई चीज वहां नहीं थी। हर कमरे में धूल इतनी जमी हुई थी कि बहुत सफाई करने पर भी वहां उसका अस्तित्व बना रहा। जिन स्कूलों में बच्चे निरन्तर पढ़ते हैं, उन स्कूलों में ऐसी गन्दगी देखकर यह अनुमान भी नहीं होता कि कमरों की सफाई नियमित रूप से की जाती है।

आचार्यवर ने चांदरास पहुंचते ही उपस्थित जनसमूह को संबोधित किया। स्थानीय सरपंच, प्रधान अध्यापक तथा अन्य लोगों ने स्वागत कार्यक्रम में अपने विचार व्यक्त किये। मध्याह्न और रात्रि में भी कार्यक्रम चले। आचार्यवर द्वारा व्यसन-मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा पाकर अनेक भाइयों ने मद्य, मांस, बीड़ी, सिगरेट आदि का परित्याग किया।

चांदरास खारोल जाति की चांदी नाम की महिला के द्वारा बसाया गया गांव है, वहां के खजूर काफी प्रसिद्ध हैं।

उदयपुर महाराणा की दृढ़ता

१६ अप्रैल को प्रातः आठ किलोमीटर का विहार कर आचार्यवर बावलास पधारे। बावलास के महाराज श्री जसवंतसिंहजी ने अपनी मेवाड़ी परंपरा के अनुसार पूरे

साज-बाज के साथ आचार्यश्री की अगवानी की। 'महाराज' यह बावलास के ठाकुरों को प्राप्त उपाधि है। कहा जाता है कि मुगल शासन के समय उदयपुर महाराणा के परिवार में शादी-विवाह के रिश्ते जोधपुर-जयपुर नरेश के परिवार में होते थे। मुगल बादशाह ने इन सबकी सत्ता हथियानी चाही, तब जोधपुर एवं जयपुर नरेश ने बादशाह के साथ अपनी कन्याओं का सम्बन्ध कर उनके साथ संधि कर ली। उदयपुर के महाराणा कट्टर थे। उन्होंने मुगल बादशाह से मुकाबला किया और जोधपुर एवं जयपुर के राजपरिवारों में शादी-विवाह बन्द कर दिये। प्रश्न उठा कि लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध कहां होंगे। उदयपुर के राणाजी ने कहा—हम मेवाड़ के उमरावों को अपने बराबर का दर्जा देंगे। यह चिन्तन कर उन्होंने सोलह उमराव ऐसे बनाए, जिनके यहां ये अपनी बेटियां दे सकें और उनकी ले सकें। सोलह उमराव ऐसे बनाए, जिनके यहां बेटी दी जा सकती है, ली नहीं जा सकती। मोटागांव, सादड़ी आमेट, भीमगढ़ आदि अनेक कस्बों में यह प्रयोग हुआ। उनमें से किसी को राजराणा, किसी को राव और किसी को महाराज की पदवी दी गई। बावलास के ठाकुरों को महाराज की पदवी मिली। वर्तमान में राजाओं का युग समाप्त होने से वे पदवियां भी अकिंचित्कर हो गई हैं, फिर भी गांवों की जनता को अपने पूर्व शासकों से इतना स्नेह है कि वे आज भी उन्हें उसी सम्बोधन से सम्बोधित करते हैं। बावलास महाराज सोने की मूठ वाली तलवार हाथ में लेकर चलते हैं और उनके साथ कई लोग छड़ी लिये चलते हैं। यदि वे बिना तलवार बाहर चले जाते हैं तो लोग उनसे विनोद करने लगते हैं।

सिर भी भेंट करने को तैयार

दो हजार की आबादी वाले बावलास में केवल पन्द्रह परिवार तेरापंथी हैं। सभी परिवारों में धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा है। तेरापंथ के प्रारंभ काल से ही उनके बुजुर्ग तेरापंथी बन गये थे। वहां वि० सं० १९०९ में जयाचार्य का आगमन हुआ। सं० १९४३ में मघवागणी ने क्षेत्र को संभाला। सं० १९७१ में कालूगणी का पदार्पण हुआ और आचार्यवर ने तीन बार उस धरती का स्पर्श किया—सं० १९९३, २०१९ और २०४२। बावलास में आचार्यवर का प्रवास श्री छितरमलजी, रतनलालजी सिरोहिया के मकानों में हुआ।

स्वागत कार्यक्रम स्थानीय गढ़ के सामने वाले प्रांगण में हुआ। बालिकाओं के मंगलगीत से कार्यक्रम शुरू हुआ। स्थानीय सरपंच श्रावक छितरमलजी सिरोहिया, देवीलालजी सिरोहिया आदि ने वक्तव्य और गीत के माध्यम से आचार्यश्री का स्वागत किया। महाराज श्री जसवंतसिंह ने अपने वक्तव्य में कहा—आज आचार्यश्री का अभिनन्दन करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। गांव का यह

खुशहाल वातावरण देखकर मुझे अपने पूर्वजों के राज्यारोहण की स्मृति हो रही है। उस समय पूरे गांव की सफाई की जाती थी, गांव को सजाया जाता था। पर आज आचार्यश्री के स्वागत में तो न केवल गांव को सजाया गया है, जन-जन के दिल को संवारा गया है। आपका सच्चा स्वागत यही है कि हम आपकी शिक्षा को अपने जीवन में उतारें। मैं आज इस खुशी के अवसर पर अपने आपको आचार्यश्री के चरणों में समर्पित करता हूं। आवश्यकता होने पर मैं अपना सिर भी भेंट करने के लिए तैयार हूं। निवेदन इतना ही कि मुझ पर, मेरे परिवार और बावलास गांव पर आपकी कृपा सदा बनी रहे।

बच्चों पर मां का प्रभाव

स्थानीय ठाकुर जयसिंहजी सात्विक विचारों के व्यक्ति हैं। उन्होंने प्रातःकाल का प्रवचन तो सुना ही, दिन में भी जितना समय मिला, उपासना में बिताया। उनकी सहज धार्मिक रुचि को लेकर चर्चा चली तो उन्होंने बताया—हम दो भाई थे। मेरा बड़ा भाई धार्मिक नहीं था और मुझे बचपन से ही धर्म के प्रति लगाव था। दोनों भाइयों के स्वभाव में इतना अन्तर देखकर मेरा मन जिज्ञासा से भर गया। मैंने अपनी माताजी से इसका कारण पूछा। माताजी ने बताया कि इस अन्तर का कारण वह स्वयं है। जिस समय बड़े भाई का जन्म हुआ था, मां के संस्कारों में धार्मिकता की पुट नहीं थी। जवानी की अल्हड़ता में उस समय उन्होंने धर्म को समझने की कोशिश ही नहीं की। मेरे जन्म के समय उनकी वृत्ति में बड़ा परिवर्तन हो गया। तब रामायण और गीता का पाठ करना उनकी दिनचर्या का अंग बन गया था। रहन-सहन और चिन्तन में भी धार्मिक विचारों का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। मां की धार्मिकता का असर मुझ पर हुआ। यही कारण है कि मुझे जब कभी सत्संग का अवसर मिलता है, वह मेरे जीवन का दुर्लभ प्रसंग बन जाता है।

आगमन का प्रभाव

बावलास के ठाकुर खमाणसिंहजी छोटी उम्र से ही शराब पीते थे। शराब का नशा उन पर इस कदर सवार था कि वे अपनी औरत के कपड़े भी शराब के लिए बेच देते थे। उनके मित्र और परिचित उन्हें बहुत दिनों से प्रेरणा दे रहे थे कि वे शराब छोड़ दें। किन्तु नहीं छोड़ सके। आचार्यवर के आगमन से अचानक उनका मन बदला, उन्होंने जीवन भर शराब पीने का परित्याग कर दिया।

स्थानीय चुन्नीलालजी टेलर बत्तीस वर्षों से साधु-साध्वियों के संपर्क में है।

उसने दिल्ली, वम्बई आदि सुदूर क्षेत्रों में जाकर आचार्यश्री के दर्शन किये। राणावास में उसने गुरुमंत्र भी ले लिया, पर वह बीड़ी पीने की आदत नहीं छोड़ सका। उसे प्रेरणा भी वहुत दी गई, पर वह आदत से लाचार था। उसे यहां तक समझाया गया कि दस वर्ष बीड़ी पीने से जितना व्यय होता है, उसे संजोकर रखा जाए तो डेढ़ लाख की राशि हो सकती है। किन्तु चुन्नीलाल का मन नहीं वदला। इस बार आचार्यवर के पदार्पण के अवसर पर उसने अपने मन में पक्का निर्णय कर लिया और बीड़ी छोड़ दी। अव तक वह अणुव्रती नहीं था। यही एक वाधा थी उसके सामने अणुव्रती वनने में। बीड़ी छोड़ते ही उसने अणुव्रत के नियम स्वीकार कर आचार्यवर का त्यागमय अभिनन्दन किया।

महाजन जागे

महाराणा अड़सीजी के नाम पर कोठारी नदी के तट पर वसा गांव अड़सीपुरा लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पुराना है। गांव छोटा है। फिर भी नदी के किनारे वसने के कारण वह सरसब्ज रहता है। पन्द्रह सौ की आवादी वाले गांव में वीस परिवार तेरापंथी हैं। चार आचार्यों की चरणरज से पवित्र अड़सीपुरा की धरती पर १७ अप्रैल को आचार्यप्रवर का तीसरी वार आगमन हुआ। गांव में रहने वाले सभी वर्गों के लोग खुश थे। आचार्यश्री के दर्शन करने और उपदेश सुनने से उन्हें शान्ति का अनुभव होता है। गांव की आवादी को देखते हुए गांव में ही प्रवास की व्यवस्था हो सकती थी। किन्तु आसपास के गांवों से पहुंचने वाले हजारों लोग वैठ सकें, इतना विशाल प्रांगण गांव के वीच में नहीं था। इसलिए प्रवास की व्यवस्था विद्यालय में की गई।

स्वागत कार्यक्रम में स्थानीय युवक प्रकाश सूतरिया ने जीवन भर चतुर्दशी का उपवास करने का संकल्प स्वीकार किया। वागोर निवासी श्री उस्मान शेख ने एक मधुर व प्रेरक गीत गाया। आचार्यवर ने 'धार्मिकता की कसौटी : सन्तुलन' विपय पर विस्तार से प्रवचन किया। प्रवचन के अन्त में कई लोगों ने शराव, मांस, तम्वाकू आदि का परित्याग किया।

वागोर अड़सीपुरा से तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर है। मेवाड़ की यात्रा में वागोर क्षेत्र भी है, किन्तु उसका क्रम गंगापुर के वाद था। वागोर के श्रावकों को यह जानकारी थी। किन्तु गांव के अन्य लोगों को यह ज्ञात नहीं था। उन्होंने सुना कि आचार्यश्री अड़सीपुरा से वोरियापुरा होकर आगे चले जाएंगे। वहां से सैकड़ों-सैकड़ों लोग अड़सीपुरा आए। उन्होंने प्रवचन सुना और शिकायत के लहजे में वोले—आचार्यजी ! यह क्या ? गांव के इतने निकट पधारकर भी आप वागोर क्यों नहीं पधार रहे हैं ? क्या हमारी कोई भूल हो गई है ? आचार्यवर ने उनको

याथा के अप्रिय रूट की जानकारी दी। तब इन्हें सन्तोष हुआ।

भीलवाड़ा के पास एक छोटा गांव है—भादू। वहां एक परिवार तेरापंथी है। भादू से पूरा बस लेकर वे अहर्मापुरा आये। पिछली बार आचार्यवर भीलवाड़ा पधारे थे, तब भादू जाना नहीं हुआ था। यह बात सब गांववासियों को अच्छी तरह याद है। उन्होंने आग्रह भरा अनुरोध किया कि इस बार आचार्यश्री उनके गांव को नहीं भूल जाएं।

मध्याह्न के कार्यक्रम में प्रातःकाल जितनी ही उपस्थिति थी। सन्तों ने व्याख्यान किया। पर जनता को तृप्ति नहीं मिली। आचार्यवर प्रवचन सभा में पधारे तो हजारों लोग चित्तिचित्र-से होकर बैठ गये। उस सभा में आचार्यवर ने विशेष रूप से महाजनों की दुर्बलताओं पर प्रहार किया। उनकी चेतना झंकृत हुई। अनेक लोगों ने अधिक ब्याज लेने, तोलमाप में कमी-बेशी करने, मिलावट, दहेज की मांग आदि का परित्याग किया। रात्रिकालीन कार्यक्रम में सभी वर्गों के अनेक लोगों ने मद्यपान, बीड़ी-सिगरेट आदि बुराइयों को छोड़ा।

सवाल सुविधा का नहीं, भावना का

१८ अप्रैल को प्रातः अहर्मापुरा से प्रस्थान कर आचार्यवर बोरियापुरा पहुंचे। गांव में सभा-भवन होने पर भी प्रवचन की सुविधा से प्रवास की व्यवस्था स्कूल में थी। ढाई हजार की आबादी वाले गांव में सत्ताईस परिवार तेरापंथी हैं। गांव के ठाकुर तथा अन्य लोगों में भी अच्छा अनुराग है। आचार्यश्री को देखने और सुनने की प्रबल उत्कंठा थी उन लोगों में। प्रातः, मध्याह्न और रात्रि में, तीनों समय व्यवस्थित कार्यक्रम हुए। जनता को जीवन का नया दर्शन मिला। अनेक लोग व्यसन-मुक्त हुए। अपराह्न में स्थानीय ठाकुर साहब ने आचार्यवर को रावले में पधारने का अनुरोध किया। श्रावकों ने गांव में पधारने का आग्रह किया। रावला स्कूल से एक किलोमीटर दूर था। वहां जाने की सुविधा नहीं थी। फिर भी ठाकुर साहब की भावना इतनी प्रबल थी कि उसे पूरा करने की स्वीकृति देनी पड़ी। प्रातः आणावली के लिए विहार करते समय आचार्यवर गांव के मध्य होते हुए रावला पधारे और वहीं से आगे के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में कुछ समय रेवाड़ी गांव के लोगों को भी आपने प्रतिबोध दिया।

वर्षों का विवाद सुलझा

रायपुर तहसील का गांव आणाहोली (आणावली) आचार्य भिक्षु के समय से धार्मिक श्रद्धा का क्षेत्र है। चार हजार की आबादी वाले गांव में पचीस तेरापंथी

परिवार रहते हैं। जयाचार्य, मघवागणी, कालूगणी और तुलसी के चरण स्पर्श से छोटा-सा क्षेत्र भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। वहां कभी-कभी साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी होते हैं। आशाहोली में आचार्यवर का प्रवास राजमलजी सिंघवी के मकान में हुआ और साध्वियों का सोहनलालजी सिंघवी के मकान में। तीनों समय के कार्यक्रमों में गांव के लोगों ने पूरे उत्साह और उल्लास के साथ भाग लिया।

आशाहोली में सोहनलालजी, डालचन्दजी, राजमलजी और चांदमलजी सिंघवी एक ही परिवार के सदस्य हैं। उन लोगों में वर्षों से मनोमालिन्य चल रहा था। सिंघवी परिवार वहां का प्रमुख और प्रभावशाली परिवार है। उस परिवार के विवाद ने आसपास के गांवों को भी प्रभावित कर लिया। स्थानीय तथा पड़ोसी गांव वाले सभी चाहते थे कि यह विवाद निपट जाना चाहिए। किन्तु वात जहां की तहां थी। आचार्यवर के आगमन की सूचना से गांव वालों को सघन कुहासे में आशा की किरण दिखाई दी। कुछ व्यक्तियों ने आचार्यश्री को विवाद की जानकारी भी दे दी।

विवाद का मुद्दा वड़ा नहीं था। पर वात वड़ी हो गई। वहुत वर्षों पहले राजमलजी आदि भाइयों ने भीलवाड़ा में दुकानों के लिए प्लाट खरीदे थे। उनमें एक प्लाट दूसरे के लिए लिया गया था। कालान्तर में भाइयों में वंटवारा हुआ। उस प्लाट पर एक भाई ने अधिकार कर लिया। दूसरे भाई ने आपत्ति की और मनोभेद का वीज वपन हो गया। इधर आशावली गांव में भी उनके खेत और कुएं को लेकर झगड़ा हो गया। यह वात उनकी व्यक्तिगत हुई।

दूसरा झमेला खड़ा हुआ समाज के मकान को लेकर। वहां समाज का कोई मकान नहीं था। स्थानीय नाई अपना मकान वेच रहा था। एक भाई ने नाई से कहा—हमें सभा-भवन के लिए मकान की जरूरत है। तुम्हारा मकान हम ले लेंगे। अभी सव लोगों से वात नहीं की है। इसलिए मैं पांच सौ रुपये अग्रिम दे देता हूं। समाज चाहेगा तो इसे समाज के लिए खरीद लेंगे। यदि समाज को नहीं जंचा तो मैं खरीद लूंगा। वीस हजार में मकान का सौदा तय हो गया। उधर एक भाई ने तेईस हजार रुपये नाई को देकर अपने नाम से रजिस्ट्री करवा ली। यह वात पूरे चोखले में फैल गई। इस घटना ने भी मनोभेद के वीजों को अंकुरित कर दिया।

इसी प्रकार की कुछ घटनाएं और घटीं, कुछ भ्रान्तियां और कुछ वास्तविकता। दूरी इतनी वढ़ी कि एक-दूसरे के घर जाना-आना वन्द हो गया। उस झमेले से जितने लोग प्रभावित थे, सवके मन में चुभन थी, पर कोई रास्ता नहीं वैठा।

आचार्यवर ने मेवाड़-यात्रा का प्रारम्भ करते ही आपसी मनोभेद दूर करने का उपक्रम चला दिया था। उसी शृंखला में आशावली थी। आपने पहले दोनों

पक्षों से अलग-अलग बात की। सारी बात सुनने के बाद उन्हीं से पूछा गया कि इस विवाद को निपटाने का क्या रास्ता हो सकता है? दोनों पक्ष सोच में पड़ गये। गुरु को वे क्या रास्ता सुझाएं। आचार्यप्रवर उन पर कुछ थोपना नहीं चाहते थे। इसलिए काफी समय उनकी मानसिकता तैयार करने में लगा दिया। आखिर दोनों पक्षों ने अपनी ओर से संपूर्ण समर्पण कर दिया। उन्होंने आचार्यवर के निर्देशानुसार विवाद को समाप्त करने की उत्सुकता प्रदर्शित की।

सामान्यत: हर व्यक्ति की यह ख्वाहिश रहती है कि गुरु की कृपा का अनुदान उसे मिलता रहे। वह अपनी सुख-समृद्धि का रहस्य गुरु-कृपा को ही मानता है। गुरु के मुखारविन्द से निकला एक-एक शब्द उसके भविष्य का निर्माता है, इस विश्वास के आधार पर ही वह कई निर्णय ले लेता है। कभी-कभी कोई व्यक्ति अपनी बात पर अड़ भी जाता है, किन्तु समय आने पर उसका मन अपने आप बदल जाता है। ऐसे अनेक प्रसंग घटित होते रहते हैं।

आचार्यवर की मंगलमयी प्रेरणा और दो दिनों के परिश्रम से सिंघवी भाइयों के मन की सारी कलुषता धुल गई। उनका वर्षों से उलझा हुआ विवाद समाप्त हो गया। परिवार के सभी सदस्यों ने प्रसन्नता का अनुभव किया।

सन् १९८५ का वर्ष तेरापंथ धर्मसंघ के लिए अमृत वर्ष है। इस वर्ष हम अमृत महोत्सव मना रहे हैं। अमृत के प्रसंग में जहर कहां टिकेगा? मेवाड़ के पांच-सात क्षेत्रों में इतना जहर था, जिसके धुलने की आशा ही कम थी। आचार्यवर पधारे। अमृत की वर्षा हुई और जहर धुल गया।

गंगापुर तहसील के छोटे से क्षेत्र 'नान्दशा' को आचार्यश्री हंस द्वीप की उपमा देते हैं। राम ने हंस द्वीप से लंका पर चढ़ाई की थी। आचार्यवर अपनी जिम्मेवारी की जन्मभूमि गंगापुर की जनता के जीवन में जमी बुराइयों, कुरूढ़ियों और अन्धविश्वासों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए गंगापुर गए, वह भी एक प्रकार की चढ़ाई ही थी। २० अप्रैल को प्रात: आचार्यवर नान्दशा पहुंचे। प्रवचन का कार्यक्रम स्थानीय विद्यालय के प्रांगण में था। उसके बाद आचार्यवर सेंसमलजी बाफणा के मकान पर पधार गए। मध्याह्न और रात्रिकालीन कार्यक्रम साध्वियों के सान्निध्य में चले। दो हजार की आबादी वाले गांव में दस परिवार तेरापंथी हैं, फिर भी वहां आचार्यवर का चौथी बार आगमन हुआ था। गांववासी इस बात से प्रसन्नता और गौरव का साथ-साथ अनुभव कर रहे थे।

गंगापुर नामकरण का इतिहास

मेवाड़ में भीलवाड़ा जिला का क्षेत्र गंगापुर लगभग दो सौ वर्ष पहले लालपुरा के नाम से प्रसिद्ध था। उन दिनों मेवाड़ रियासत उदयपुर महाराणा के

अधीन थी। देवगढ़ के महाराजा भीमसिंहजी महाराणा की खिदमत में उदयपुर आए हुए थे। एक दिन महाराणा, महाराजा आदि मिलकर चौपड़ खेल रहे थे। महाराणा ने विनोदी मूड में कहा—पड़ रे पासा काणा। उन्होंने इस वाक्य को दो-तीन बार दोहराया। देवगढ़ के महाराजा वास्तव में एकाक्षु थे। उन्हें यह बात बुरी लगी। वे नाराज होकर वहां से चले गए। महाराणा की अवहेलना करने के कारण उन्होंने देवगढ़ को अपने पर्यवेक्षण में ले लिया।

देवगढ़ के महाराजा इस घटना के बाद जयपुर, जोधपुर आदि नरेशों से मिले। उन्होंने उनको किसी प्रकार का सहयोग देने से इनकार कर दिया। वहां से निराश हो वे ग्वालियर महाराजा महादेवजी सिंधिया के पास गए। उन्होंने भी बात को टाल दिया। ग्वालियर महाराजा की धर्मपत्नी गंगाबाई सिंधिया तक यह बात पहुंची। स्त्री सुलभ कोमलता से वे द्रवित हो गईं। शरणागत की सहायता के लिए उन्होंने सेना के एक हजार जवानों को साथ ले उदयपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। उदयपुर पहुंचकर उन्होंने पांच सौ सैनिकों को देवारीपोल पर और पांच सौ को चीरवा घाटे पर खड़ा कर दिया। इससे उदयपुर में माल का आना-जाना बन्द हो गया।

उदयपुर महाराणा ने इस सम्बन्ध में अपने दीवान से परामर्श किया। उन्होंने कहा—आप सूर्यवंशी हैं। एक अबला से लड़ना आपके लिए शोभास्पद नहीं है। आप उन्हें धर्म-बहन घोषित कर युद्ध की स्थिति को टाल दें और देवगढ़ जागीरी से अपना पर्यवेक्षण हटा लें। दीवान की बात महाराणा को पसन्द आ गई। उन्होंने गंगाबाई को धर्म-बहन बनाने की बात कही तो उन्होंने एक हजार की सेना को उदयपुर तक लाने के व्यय की क्षति-पूर्ति करने के लिए कहा। इस मांग पर महाराणा ने सिंगोली क्षेत्र का कुछ हिस्सा तथा लालपुरा के बारह गांव गंगाबाई को दे दिए।

यह घटना वि० सं० १८४८ की है। उसी वर्ष श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन गंगाबाई का स्वर्गवास हो गया। लालपुरा की उस एरिया में गंगाबाई के नाम पर एक मंदिर बनवाया गया और गांव का नाम भी बदलकर लालपुरा से गंगापुर कर दिया। उन दिनों गंगापुर क्षेत्र ग्वालियर राज्य की सीमा में था। देश की स्वतन्त्रता के तीन वर्ष बाद इसे राजस्थान की सीमा में ले लिया गया। किन्तु मंदिर अभी भी मध्यप्रदेश देवस्थान के अन्तर्गत ही है। उसकी सार-संभाल और देख-रेख मध्यप्रदेश देवस्थान बोर्ड करता है।

तेरापंथ का ऐतिहासिक क्षेत्र

गंगापुर के साथ तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास जुड़ने से वह धार्मिक और राजनैतिक

दोनों दृष्टियों से ऐतिहासिक क्षेत्र हो गया। वि० सं० १९९३ में आचार्यश्री कालूगणी मालव प्रदेश की यात्रा कर जावद पधारे। यह बात जेठ महीने के कृष्ण पक्ष की है। वहां आपके बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली के दूसरे पर्व में थोड़ी-सी पीड़ा हुई। आपने सोचा कोई सली होगी। सन्तों को दिखाने पर मुनि चौथमलजी ने उसको थोड़ा-सा कुरेद दिया। कुरेदने के कारण उस व्रण का विस्तार होता गया। जावद से प्रस्थान कर आप ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को चित्तौड़ पधारे। वहां मेवाड़ी श्रावकों और मुख्य रूप से गंगापुर के श्रावकों की प्रार्थना पर वि० सं० १९९३ का चातुर्मास पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने गंगापुर के लिए घोषित किया। हाथ में व्रण का विस्तार हो जाने के कारण आपके लिए यात्रा कष्टप्रद हो गई। किन्तु 'सत्यप्रतिज्ञा हि महात्मनः' महापुरुष अपने वचन को निष्फल नहीं करते, इस अनुश्रुति को चरितार्थ करने के लिए आपने कहा—मैं किसी भी स्थिति में गंगापुर पहुंचना चाहता हूं। उसी लक्ष्य के अनुसार बहुत छोटे-छोटे विहार कर यात्रा होती रही। रास्ते में व्रण की वेदना बढ़ी। डॉक्टरों ने ऑपरेशन का परामर्श दिया। छोटे गांवों में उचित साधन सुलभ नहीं हुए। आगन्तुक डॉक्टरों के औजार और ओषधि आपने काम में नहीं ली। ऑपरेशन करना जरूरी था। सब्जी काटने वाले चाकू का उपयोग कर ऑपरेशन किया गया। चाकू स्टेरेलाइज्ड नहीं था अथवा और कोई कारण हुआ, व्रण में सेप्टिक हो गया। उसने उग्र रूप धारण किया। वेदना को समभाव से सहते हुए आप अपनी मंजिल गंगापुर पहुंच गए। वहां पहुंचने के बाद उपचार हुआ, पर वेदना कम होने के स्थान पर बढ़ती रही। अंगुली से कलाई तक हाथ में रस्सी हो गई। धीरे-धीरे शरीर-बल क्षीण होने लगा। मंत्री मुनि मगनलालजी तथा कई डॉक्टर-वैद्यों ने अनुभव की आंखों से शरीर के लक्षण देखे, बीमारी के घात-प्रत्याघातों से क्षीण होती हुई ऊर्जाशक्ति को देखा और कालूगणी से भावी व्यवस्था के लिए निवेदन किया। आचार्य के सामने ऐसा निवेदन करना भी बड़े साहस की बात होती है। साहसी और दायित्व की गरिमा को गंभीरता से महसूस करने वाले व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं।

कालूगणी की इच्छा थी कि साठ वर्ष पूरे होने पर बीदासर पहुंचकर मातुश्री छोगांजी के पास उत्तराधिकारी की नियुक्ति का महत्त्वपूर्ण काम संपादित करना है। इस विचार से शुरू-शुरू में आपने मंत्री मुनि के निवेदन पर ध्यान कम दिया। किन्तु कुछ ही दिनों में आपको भी यह अनुभव हो गया कि अब यह शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है। इस अहसास ने आपके मन में उतावलापन ला दिया। अब आप एक दिन का समय भी खोना नहीं चाहते थे। मंत्री मुनि ने भाद्रपद शुक्ला तृतीया का दिन सुझाया तो आपने कहा—तीज तो बहुत दूर है। मैं तो जल्दी-जल्दी निश्चिन्त होना चाहता हूं। मंत्री मुनि आपकी अधीरता को

समझ रहे थे, पर इतने बड़ काम के लिए वे शुभ दिन और शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करना भी जरूरी समझते थे। आखिर उन्होंने बीच का रास्ता सुझाया। जो काम करना है, उसकी विधिवत घोषणा तृतीया को ही हो, पर उसकी पृष्ठभूमि पहले तैयार कर दी जाए। यह बात कालूगणी को पसन्द आ गई।

कालूगणी वि०सं० १९८२ में लाडनूं पधारे। उस समय मुनि तुलसी दीक्षित हुए थे। दीक्षित होने से पहले ही कालूगणी की पारखी नजरों ने बालक की असाधारण योग्यता का अंकन कर लिया। सम्भव है दीक्षा देते समय भी आपका यह लक्ष्य रहा हो कि मुनि तुलसी आपका भार संभालने वाला होगा। दीक्षा के बाद ग्यारह वर्षों का छोटा या बड़ा काल-खण्ड बीता था। जिसमें आपने मुनि तुलसी को पूरी तरह से संघीय व्यक्तित्व दे दिया। ग्यारह वर्ष की उम्र में दीक्षित होने वाले मुनि तुलसी बाईसवें वर्ष की रेखा को पार ही नहीं कर पाए थे कि उनके जीवन में एक अप्रत्याशित मोड़ की परिस्थिति पैदा हो गई। बाईस वर्ष का तरुण और धर्मसंघ का विशाल दायित्व। एक क्षण के लिए पूज्य कालूगणी सहमे। आपने अपने मन की बात मंत्री मुनि के सामने खोल भी दी। मंत्री मुनि ने इस सम्बन्ध में आपको आश्वस्त कर दिया। फिर तो आप निश्चिन्त हो गए और अनाकुल भाव से समय की प्रतीक्षा करने लगे।

भाद्रपद शुक्ला तृतीया का सूरज उगा। उसकी पहली किरण गंगापुर स्थित रंग-भवन पर पड़ी। रंग-भवन के बड़े हाल में पूज्य गुरुदेव कालूगणी अशक्त शरीर में बढ़ रहे प्रशस्त उल्लास के साथ विराज रहे थे। सूर्योदय के साथ ही आपने स्याही, पत्र और लेखनी मंगाकर पुलकित मन से अपने उत्तराधिकारी का पत्र लिखा। पत्र में पूर्वाचार्यों की नाम शृंखला में अपने नाम के आगे आपने 'तुलसी' का नाम जोड़ा और एक नये इतिहास का सृजन हो गया। युवाचार्य नियुक्ति पत्र लिखने के बाद आपने विधिवत् चद्दर-प्रदान की प्रक्रिया पूरी की। रंग-भवन जयघोषों से मुखर हो उठा। उस समय का दृश्य कितना सम्मोहक और कितना आह्लादक था, यह तो वहां उपस्थित व्यक्तियों ने ही अनुभव किया होगा। पर उसकी कल्पनामात्र से जो सुखद पुलक प्रकम्पन हो रहे हैं, वे भी अनिर्वचनीय हैं।

गंगापुर में तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास का एक अनुपम पृष्ठ जुड़ा। उस दिन का सूरज कुछ अधिक ज्योतिर्मय था। उस दिन का प्रकाश अधिक प्रसन्न था। उस दिन की बयार कुछ अधिक ही सुहावनी थी। गंगापुर की गलियों और वीथियों को पार करता हुआ वह संवाद मेवाड़ की घाटियों में पहुंचा और उन दुर्गम वादियों को लांघकर पूरे देश में फैल गया। उस दिन के वे खूबसूरत पल तेरापंथ धर्मसंघ को ऐसी खूबसूरती का वरदान दे गए कि उत्तरोत्तर धर्मसंघ का विकास हो रहा है।

गंगापुर में कालूगणी का स्मारक

गंगापुर तेरापंथ धर्मसंघ का प्राचीन क्षेत्र है। वहां तेरापंथ का उद्‌गम कब और कैसे हुआ ? यह तो खोज का विषय है। पर इतना निश्चित है कि आचार्य भिक्षु के समय में वहां के कुछ परिवार तेरापंथी हो गए थे। तेरापंथ के नौ आचार्यों में आठ आचार्यों का मंगलमय सान्निध्य पाने वाले क्षेत्र बहुत थोड़े रहे होंगे। उन क्षेत्रों में एक नाम गंगापुर का है। छठे आचार्य श्री माणकगणी का शासनकाल बहुत अल्पकालीन रहा। उस अवधि में वे मेवाड़ की धरती को पावन नहीं कर सके। उनके अतिरिक्त सभी आचार्यों ने मेवाड़ की यात्रा की और गंगापुर का स्पर्श किया। आचार्य भिक्षु का आगमन वहां वि० सं० १८५७ में हुआ था। आचार्यश्री भारमलजी और रायचन्दजी उसी सदी में गंगापुर पधार गए थे। जयाचार्य वहां दो बार गए—वि० सं० १९०९ और १९११। मघवागणी और डालगणी का पदार्पण एक-एक बार हुआ जबकि कालूगणी दो बार पधारे। आचार्यश्री ने अमृत महोत्सव का प्रथम चरण मनाने की दृष्टि से २१ अप्रैल १९८५ को चौथी बार गंगापुर की धरती पर अपने चरण टिकाए।

बारह हजार की आबादी वाले क्षेत्र गंगापुर में साठ परिवार तेरापंथी हैं। अन्य जैन परिवार भी वहां रहते हैं। तेरापंथी परिवार दो मोहल्लों में विशेष रूप से हैं। गोखरू और हिरण परिवारों की बहुलता होने के कारण दोनों मोहल्लों की पहचान इन्हीं नामों से होने लगी है। साधु-साध्वियों के चातुर्मास दोनों ही मोहल्लों में होते रहे हैं। कालूगणी का चातुर्मास हिरणों के मोहल्ले में रंग-भवन में हुआ था। स्थानीय लोगों के अनुसार पूज्य गुरुदेव कालूगणी के प्रवासकाल में वहां वैष्णव साधुओं की एक जमात आई थी। महंतजी हाथी पर सवार थे। रंग-भवन से निकलते समय हाथी वहीं पर बैठ गया। उसे बल्लमों से उठाने की कोशिश की गई, पर सफलता नहीं मिली। महंतजी ने पूछा—इस मकान के भीतर कौन है ? उन्हें बताया गया कि मकान में तेरापंथ के आचार्य हैं। महन्तजी के अनुरोध पर कालूगणी ने गैलरी में आकर दर्शन दिए। हाथी ने अपनी सूंड उठाकर तीन बार प्रदक्षिणा की और बिना किसी प्रयत्न के उठ खड़ा हुआ। महन्तजी बोले—'निश्चित ही ये कोई ज्ञानी, तपस्वी और योगी सन्त हैं।'

कुछ वर्षों बाद महन्तजी पुनः गंगापुर आए। गांव से बाहर कालूगणी का समाधि-स्थल उन्हें दिखाया गया तो वे बोले—'इतने बड़े सन्तों का समाधिस्थल यह छोटा-सा चबूतरा ! यदि हमारे महन्तजी होते तो यहां बड़ा स्मारक बन जाता।' महन्तजी की इस टिप्पणी पर उस समय क्या प्रतिक्रिया हुई, पता नहीं। चबूतरा अभी तक वही है। इन वर्षों में चूने के स्थान पर उसे संगमरमर का बना दिया गया है। उस पर जो आलेख होने चाहिए, वे अब तक नहीं हैं। शायद

निकट भविष्य में वहां इतिहास का अंकन हो जाए।

मेवाड़ में अमृत-महोत्सव की चर्चा और घोषणा के बाद गंगापुर के श्रावक-समाज ने पूज्य गुरुदेव कालूगणी की स्मृति में वहां एक विशाल स्मारक बनाने की योजना बनाई। किसी भी महापुरुष का सच्चा स्मारक उसके दर्शन और चिन्तन की क्रियान्विति में है। गंगापुर का वह स्मारक भी धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बने, यह लक्ष्य ध्यान में रखा गया है। कालूगणी जिस ज्ञान चौक में प्रवचन किया करते थे, उस चौक में बहुत बड़ा स्थान उपलब्ध होना भी एक संयोग की बात है। अन्यथा पचास वर्ष बाद खोजने पर भी इतना उपयोगी और ऐतिहासिक स्थान मिलना मुश्किल हो जाता है। लगता है कि उस भवन का भी इतिहास बनना था, इसलिए वह समय पर मिल गया। सामने का ज्ञान चौक भी बराबर काम आता रहेगा, ऐसी संभावना है। आचार्यवर वहां पधारे, तब तक भवन का ढांचा लगभग तैयार हो गया था। कुछ कमरे भी तैयार हो गए थे। धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र बनकर ही वह स्मारक सच्चा स्मारक बन सकता है। उसकी पहचान 'कालू कल्याण कुंज' नाम से कराई गई है।

यादों के गुलदस्ते खिल उठे

अपनी मेवाड़ यात्रा के मध्य छोटे-बड़े गांव-कस्बों का स्पर्श करते हुए २१ अप्रैल १९८५ को आचार्यश्री अपने वृहद् धर्मपरिवार के साथ गंगापुर पहुंचे। गांव में प्रवेश करने से पहले आचार्यवर ग्राम के किनारे सड़क के पास निर्मित अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के समाधि-स्थल के पास पधारे। वहां से प्रस्थान कर आप रंग-भवन पहुंचे। यह वही रंग-भवन है, जहां उन्चास वर्ष पहले मुनि तुलसी आचार्य-पद पर आसीन होकर आचार्य तुलसी के रूप में उभरकर सामने आए थे। रंग-भवन में प्रवेश करते ही यादों के अनेक गुलदस्ते एक साथ खिल उठे। बाहर सड़क पर हजारों लोग खड़े थे। वहीं से स्वागत-शोभा-यात्रा का प्रारम्भ होना था। आचार्यश्री अपने अतीत की स्मृतियों में इतने खो गए कि आगे का कार्यक्रम भूल ही गए। एक मुनि ने आकर सूचना दी कि शोभा-यात्रा की पूरी तैयारी हो गई है। लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब कहीं आपका ध्यान भंग हुआ। आपने उस अवसर पर एक सोरठा कहा—

रंग भवन में रंग, अमृत महोत्व अवसरे।
आए अमित उमंग, 'तुलसी' युव प्रमुखा सहित॥

लगभग आधा घण्टा का समय रंग-भवन में लगाकर एक विशाल और भव्य स्वागत-जुलूस के साथ आचार्यश्री ने गंगापुर की गलियों को पावन किया। मंगल

गीतों और जयघोषों की मधुर-मधुर ध्वनितरंगों से समूचे गांव का वातावरण मधुरिमामय हो गया। राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्रांगण में नव निर्मित प्रवचन-पण्डाल में पहुंचकर स्वागत-जुलूस ने स्वागत-सभा का रूप धारण कर लिया।

स्वागत-सभा में स्थानीय कन्या मण्डल की पचास कन्याओं ने एक स्वर में भक्ति-भरा गीत गाकर मंगलाचरण किया। उन कन्याओं ने रचनात्मक स्वागत के रूप में पांच संकल्प भी स्वीकार किए। उनमें उल्लेखनीय संकल्प था—जहां दहेज का ठहराव हो, वहां शादी नहीं करना।

स्थानीय व्यवस्था समिति के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी मेहता (एडवोकेट), नगर पालिका की ओर से नगर-पिता श्री कैलाश जैन आदि ने आचार्यश्री के अभिनन्दन में स्वागत-भाषण और अभिनन्दन-पत्र का समर्पण किया।

राजस्थान के शिक्षा मंत्री श्री रामपाल उपाध्याय अपनी जन्मभूमि में स्वयं उपस्थित होकर आचार्यवर का स्वागत करना चाहते थे। किन्तु चुनाव-कार्य की व्यस्तता के कारण वे नहीं पहुंच सके। उन्होंने अपनी भावनाओं को लिपिबद्ध कर गंगापुर पहुंचा दिया। वहां की व्यवस्था में श्री उपाध्यायजी का बहुत अच्छा सहयोग रहा। कार्यक्रम का संयोजन श्री देवेन्द्रकुमार हिरण ने किया। आभार ज्ञापन का काम किया श्री गणपतलालजी हिरण ने।

गंगापुर : एक अवतरण भूमि

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा—जैन आगमों में सिद्धशिला का उल्लेख आता है। सिद्धशिला का विशेष महत्त्व है। इसी प्रकार गंगापुर का भी अपना महत्त्व है। आज यहां आने पर अतीत साक्षात् हो रहा है। यह वही पुण्य भूमि है, जहां एक अवतरण हुआ। प्राणी जन्म लेता है; किन्तु अवतरण किसी-किसी का ही होता है। आज से पचास वर्ष पूर्व इसी गंगापुर में एक ऐसे महापुरुष का अवतरण हुआ, जिसने मानवीय मूल्यों के क्षेत्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम किया, धर्म की ज्योति पर आई राख को हटाया और दो शताब्दी पश्चात् घटने वाली बात को वर्तमान में प्रस्तुति दी।

अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में बोलते हुए उन्होंने कहा—कुछ लोगों का सुझाव आया कि दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े क्षेत्रों में अमृत महोत्सव का आयोजन होना चाहिए। किन्तु चुनाव हुआ मेवाड़ क्षेत्र के लिए, गंगापुर के लिए। अब लोग कह रहे हैं कि उपयुक्त स्थान का चुनाव हुआ। जहां यह महोत्सव होना चाहिए था, वहीं हो रहा है।

अमृत महोत्सव की आयोजना तेरापंथ के आचार्य की स्तवना नहीं है। यह मानवता की अर्चना है, मानवता की स्तवना है। आज तुलसी तेरापंथ तक सीमित नहीं हैं। वे जन-जन के हो गए हैं। इसलिए गांव-गांव में जन-जन के बीच में जाकर अमृत की वर्षा कर रहे हैं। इससे वर्षों-वर्षों के जमे हुए विष धुल रहे हैं और जन-मानस अमृत से अभिषिक्त हो रहा है।

हाल में जाने पर क्या हाल

आचार्यप्रवर ने स्वागत-सभा में उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा आज हम अपनी मंजिल पर पहुंच गए हैं। हम जोधपुर चातुर्मास कर चले, वाडमेर पहुंचे। वाडमेर से जसोल पहुंचे। वहां मर्यादा-महोत्सव का आयोजन हुआ। वहां से पाली होते हुए टाडगढ़ पहुंचे और उसके वाद मेवाड़ के अनेक गांवों का स्पर्श करते हुए आज गंगापुर पहुंच गए। यहां से हमें भीलवाड़ा होते हुए चातुर्मास के लिए आमेट जाना है। चातुर्मास के वाद मर्यादा-महोत्सव के लिए उदयपुर और उसके बाद राजसमन्द तक जाने का कार्यक्रम निश्चित हो चुका है।

गंगापुर के सम्बन्ध में बोलते हुए आचार्यवर ने कहा—गंगापुर पहुंचते ही पचास वर्ष का इतिहास मेरे सामने आ गया। रंग-भवन की सारी घटना सामने आ गई। कालूगणी के अनशन और स्वर्गवास की घटना सामने आ गई। पूज्य गुरुदेव अनन्त शक्तिशाली पुरुष थे। उन्होंने वाईस वर्ष की उम्र में मुझ पर भरोसा किया। ऐसा वे ही कर सकते थे। रंग-भवन का वह हाल, जहां यह सब कुछ घटित हुआ था, उस समय वहुत वड़ा दिखाई दे रहा था। अव तो वह भी छोटा लगने लगा है। आज उस हाल में जाने पर मेरा क्या हाल हुआ, वह मैं ही जानता हूं।

गंगापुर का मेरे जीवन के साथ जो इतिहास जुड़ा है, उसे मैं कैसे भूल सकता हूं? यहां के लोगों को चिन्ता थी कि उनका हक उन्हें मिलेगा या नहीं पर जो हक गंगापुर का है, उसे दूसरा कौन ले सकता है? आज हमारे यहां पहुंचने पर यहां के लोग प्रसन्न हैं। मैं भी यहां आकर प्रसन्न हूं। मैं जीवन भर ईमानदारी पूर्वक मानवता के कल्याण में लगा रहूं, यही मेरी एकमात्र इच्छा है।

उस दिन की स्वागत सभा में अनेक व्यक्ति ऐसे थे, जो अपने अन्तःकरण में उभरते हुए भावों को अभिव्यक्ति देकर आचार्यवर का अभिनन्दन करना चाहते थे। किन्तु भावनाओं में जो उत्साह, स्फुरणा और उमंग थी, वह अभिव्यक्ति के माध्यमों में कुंठित-सी होने लगी तो हजारों-हजारों श्रद्धालु भक्तों ने अपनी अवोल आस्था का अर्घ्य चढ़ाकर आत्मतोष का अनुभव किया। जो लोग वोलना ही चाहते थे, उनको मध्याह्न और रात्रि में अपनी वात कहने का अवसर मिल गया।

२३ अप्रैल का दिन 'अक्षय तृतीया' का दिन था। जैन परम्परा में प्राग्-ऐतिहासिक काल से वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन विशिष्ट दिन माना जाता रहा है। इस दिन का सम्बन्ध इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ और उनके प्रपौत्र श्रेयांस के साथ जुड़ा हुआ है। काल के इस प्रलम्ब अन्तराल में भी यह दिन अक्षय बना रहा, यही इसके वैशिष्ट्य का स्वयंभू साक्ष्य है।

कुछ वर्षों पहले तक तेरापंथ धर्मसंघ में अक्षय तृतीया का उत्सव व्यापक स्तर पर नहीं मनाया जाता था। इस दिन का महत्त्व बढ़ा वर्षी तप करने वाले भाई-बहनों की संख्यावृद्धि के साथ। एक समय था, जब देश भर में दस-पांच वर्षी तप होते थे। आज उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुंच गई है। सौ से अधिक तपस्वी तो वहां पहुंच जाते हैं, जहां आचार्यश्री का प्रवास होता है। सैकड़ों व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्रों में तपस्या का समापन करते हैं। कुछ तपस्वी ऐसे हैं, जो लगातार आठ-दस वर्षी तप पूरा कर लेने पर भी उससे उपरत नहीं होते।

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी अक्षय तृतीया के मंगल प्रसंग पर एक सौ चौबीस बहन-भाई अपनी तपस्या का पारणा करने के लिए गंगापुर पहुंचे। मेवाड़ का छोटा-सा कस्बा गंगापुर २१ अप्रैल से ही कुछ अनूठी चहल-पहल से भरा हुआ था। बहुत वर्षों बाद आचार्यश्री का आगमन, अक्षय तृतीया का महत्त्वपूर्ण अवसर और उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात, अमृत-महोत्सव वर्ष की पृष्ठभूमि में समायोजित अमृत-महोत्सव का प्रथम चरण। जनता में कुछ नया जानने और नया करने की उत्सुकता। कुल मिलाकर आह्लादक और रोमांचक वातावरण।

अक्षय तृतीया की समायोजना के लिए निर्मित भव्य प्रवचन-पण्डाल उस समय कितना खिल रहा था, बताया नहीं जा सकता। हजारों की संख्या में उमड़ता हुआ जनप्रवाह प्रवचन-पंडाल में इतनी स्थिरता और शान्ति से ठहर गया था, मानो उसके लिए आगे का रास्ता बन्द है। समवसरण के मूल मंच के निकट बने दो अन्य मंचों पर तपस्वी भाई-बहन व्यवस्थित रूप से बैठे थे। भीलवाड़ा के आयकर अधिकारी श्री मेहता भी तपस्वी भाइयों के बीच में थे। उनका यह पांचवां वर्षी तप था और उनकी पत्नी का आठवां। श्री मेहता ने तपःसाधना से प्राप्त अपने अनुभव बताते हुए कहा—तपस्या से न केवल शारीरिक व्याधियां ही समाप्त होती हैं, अपितु ऐसे चमत्कार घटित हो जाते हैं, जिनके बारे में कभी सोचा भी नहीं जा सकता।

ऋषभायण का निर्माण अपेक्षित

युवाचार्यश्री ने अपने प्रासंगिक प्रवचन में कहा—आज का दिन आयोजन का नहीं, एक मेले का दिन होना चाहिए। इसे क्या रूप दिया जाए, इस सम्बन्ध में

विस्तार से चिन्तन की अपेक्षा है।

उन्होंने आगे कहा—रामायण की भांति ऋषभायण का भी निर्माण होना चाहिए। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण (रामचरित मानस) की रचना की और वह जन-जन में बहुत प्रिय है। इसी प्रकार भगवान् ऋषभ का जीवन-चरित्र भी सहज-सरल भाषा में पद्यात्मक रूप में लिखा जाना चाहिए।

पर्व की महत्ता कैसे बढ़े

आचार्यप्रवर ने समवसरण में उपस्थित लगभग सवा सौ तपस्वी भाई-बहनों और पांच साधु-साध्वियों को विशेष रूप से सम्बोधित करते हुए समग्र जन-समूह को संबोधित किया। आपने कहा—भगवान् ऋषभ, उनकी तपस्या और तपस्या का पारणा—इन तीनों का अपना इतिहास है। भगवान् ऋषभ इतिहास पुरुष थे। उनकी साधना का एक-एक दिन नये इतिहास का सर्जक था। किन्तु जिस तपस्या का आज प्रसंग है, उसके इतिहास को बनाया राजकुमार श्रेयांस ने। हस्तिनापुर नगर में अपने महलों में श्रेयांस ने एक स्वप्न देखा—वह मेरुपर्वत का अमृत से अभिषेक कर रहा है। स्वप्न के तत्काल बाद उसकी नींद टूट गई। वह स्वप्न पर विचार करने लगा। कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। वह महल के गवाक्ष से नीचे देख रहा था। सहसा भगवान् ऋषभ उस पथ से गुजरे। श्रेयांस ने उनको देखा। क्षणिक ऊहापोह के साथ उसको जातिस्मृति ज्ञान उपलब्ध हो गया। वह दौड़ा-दौड़ा नीचे आया। भगवान् के चरणों में प्रणत होकर उसने भिक्षा ग्रहण करने का अनुरोध किया। एक वर्ष से भी कुछ अधिक दिनों से निराहार रहने वाले भगवान् ऋषभ ने श्रेयांस का अनुरोध स्वीकार कर लिया। इससे पहले भगवान् को हीरो-पन्नों, हाथी-घोड़ों से मनुहार करने वाले अनेक भक्त मिले। किन्तु रोटी-पानी की मनुहार किसी ने नहीं की। कोई जानता भी नहीं था। श्रेयांस को अवसर मिला। वह अन्दर जाकर देखता है। उस समय तक भोजन तैयार नहीं हुआ था। एक कमरे में इक्षुरस से भरे घड़े रखे हुए थे, जो उपहार में आए हुए थे। श्रेयांस ने घड़ा उठाया। भगवान् के पास कोई पात्र नहीं था। वे हाथों से अंजलि बना होंठों पर लगा खड़े हो गए। श्रेयांस ने भावविभोर होकर भगवान् को इक्षुरस पिलाया। मेरुपर्वत को अमृत से अभिषिक्त करने का उसका स्वप्न साकार हो गया। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन था। वह तृतीया 'अक्षय तृतीया' बन गई। परम्पराओं और अनुश्रुतियों में गूंथा हुआ उसका इतिहास प्राग् ऐतिहासिक काल से अनेक रूपों में लोकजीवन में मुखर होता रहा।

भगवान् ऋषभ की तपस्या का अनुकरण करते हुए लोग तपस्या का एक विशेष उपक्रम स्वीकार करते हैं। वे एक साथ बारह महीने की तपस्या नहीं कर

सकते। इस दृष्टि से एक रास्ता निकाला गया और बारह महीनों तक किए जाने वाले एकान्तर तप को वर्षी तप की संज्ञा मिल गई। कुछ लोग दो वर्ष तक वर्षी तप करके वर्षी तप को पूरा मानने हैं। वर्षी तप करने वाले एक-दो वर्ष तपस्या करके ही विराम नहीं लेते। कई बहन-भाई तो आठ, दस, पन्द्रह तक वर्षी तप कर चुके हैं, तो भी वे इसे आगे बढ़ा रहे हैं।

तपस्या के साथ बढ़ रही कुछ अवांछित प्रवृत्तियों पर टिप्पणी करते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में कहा—तपस्या का लक्ष्य है आत्मशोधन। जहां आत्मशुद्धि की बात गौण हो जाती है और आडम्बर एवं प्रदर्शन की बात मुख्य हो जाती है, वहां तपस्या भी एक परम्परा बन जाती है। हमारे समाज में इस क्षेत्र में काफी सादगी रखी जाती है, फिर भी इसे एक और नया मोड़ देने की जरूरत है।

तपस्या के साथ पलने वाले अहं से बचने का मार्गदर्शन देते हुए आपने आगे कहा--बाहुबली ने कठोर तप स्वीकार किया। किन्तु उन्हें मंजिल नहीं मिली। उनके अन्तःकरण में अहं छिपा हुआ था। उसी के कारण तपस्या का कोई परिणाम नहीं आ सका। अहं टूटा और उन्हें मंजिल मिल गई। भगवान् ऋषभ अहं से मुक्त थे। उनकी तपःसाधना का एक-एक क्षण सफल था, सार्थक था।

अक्षय तृतीया के पर्व को सांस्कृतिक पर्व का रूप देने का परामर्श देते हुए आपने कहा—भीड़ की उपस्थिति एक बात है और किसी दर्शन की प्रस्तुति एक बात है। ऐसे अवसर पर दस-पन्द्रह हजार लोगों का उपस्थित होना कोई बड़ी बात नहीं है। मूल बात यह है कि ऐसे प्रसंगों की उपयोगिता को बढ़ाना। मैं चाहता हूं कि हमारा श्रावक समाज भी इस दिशा में जागरूक भाव से चिन्तन कर कुछ ऐसे सूत्रों की खोज करेगा, जो पर्व की महत्ता को बहुगुणित कर सके।

आह्लाद के क्षण

अक्षय तृतीया के प्रसंग में दो घण्टों तक सुनने-समझने के बाद भी जनता तृप्त नहीं हुई। वह बड़ी तत्परता के साथ उस क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी, जो उसकी आंखों के लिए अधिक आह्लादक और सुखद था। समवसरण में लगाए हुए सामियाने पूरी तरह से सघन नहीं थे। इसलिए श्रोताओं के सिर पर धूप भी उतर आई। किन्तु इस कठिनाई के बावजूद परिषद में इतनी शालीनता, इतनी शान्ति, जो लोग पहली बार आए थे, वे तो परिषद और उनकी शालीनता पर ही मुग्ध हो गए थे। कार्यक्रम का एक चरण पूरा कर आचार्यवर स्वयं चलकर एक-एक तपस्वी भाई-बहन के निकट गए और प्रत्येक तपस्वी के हाथ से भिक्षा ग्रहण की। भक्ति और वात्सल्य का वह मिला-जुला रूप देखने वालों के रोमोद्गम कर रहा

था। उधर केमरे, वीडियो, मूवी आदि उस दृश्य को कैद करने के लिए उतावले हो रहे थे। यह विज्ञान की उपलब्धि है। उसने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है। पर मेंटल-पीस देने का सामर्थ्य उसमें भी नहीं है। इसीलिए मनुष्य को धर्म की शरण में आना पड़ता है।

नियोजन मण्डल का पुनर्गठन

२०, २१ अगस्त १९८३ को बालोतरा में श्रावक-समाज के शिखर सम्मेलन की निष्पत्ति के रूप में एक नियोजन मण्डल का गठन हुआ था। उसमें समर्पित और सेवाभावी नौ व्यक्तियों को काम करने का अवसर दिया गया। जोधपुर चातुर्मास में एक वर्ष की संपन्नता पर नियोजन मण्डल के संयोजक व सदस्य आचार्यवर के सान्निध्य में उपस्थित हुए। वे अग्रिम वर्ष का कार्यक्रम बनाएं, इससे पहले एक चिन्तन आया कि उन लोगों को एक वर्ष के कार्यकाल की जिम्मेदारी मिली थी। वह अवधि पूरी होने के बाद उन्हें गुरुदेव के चरणों में उस दायित्व का विसर्जन कर देना चाहिए। इस चिन्तन की क्रियान्विति के लिए वे आचार्यवर की सन्निधि में एकत्रित हुए। उन्होंने अपने दायित्व का विसर्जन किया। उस समय आचार्यवर ने विनोद की भाषा में कहा—तुम्हारा विसर्जन भी वैसा ही होगा जैसा हमारे बहिर्विहारी साधु-साध्वी करते हैं। थोड़े-बहुत फेरबदल के साथ उन्हीं लोगों को नियोजन मंडल का काम संभालना था, पर आचार्यवर की अन्य कार्यों में व्यस्तता होने के कारण वह प्रसंग वहीं छूट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो व्यक्ति नियोजन मण्डल में थे, वे यह सोचकर निश्चिन्त हो गए कि उन्हें अग्रिम वर्ष के लिए कोई निर्देश नहीं दिया गया है। इधर आचार्यश्री यह चिन्तन कर निश्चिन्त थे कि जिनके हाथ में काम है, वे अच्छे ढंग से कर रहे हैं। फिर उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन क्यों किया जाए ?

दोनों ओर की निश्चिन्तता एक दीवार बन गयी। कुछ महीनों बाद इस बात की ओर ध्यान गया। आचार्यवर ने नियोजन मण्डल के बारे में जानकारी चाही तो पता लगा कि नये निर्देश के बिना वे लोग काम कैसे करें? आखिर गंगापुर में उनकी एक मीटिंग रखी गयी। उसमें विगत वर्ष के कार्यों पर विश्लेपण हुआ और भविष्य में करणीय कार्यों पर चिन्तन-मंथन किया गया। नियोजन मण्डल का पुनर्गठन हुआ, उसमें महत्त्वपूर्ण बात थी बहनों का प्रतिनिधित्व। प्रथम बार नियोजन मण्डल के सदस्यों में सब पुरुप ही थे। इस बार इसमें अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मण्डल की अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का नाम जोड़कर समाज में महिलाओं की अस्मिता को भी स्थान दिया गया। यह प्रसंग महिलाओं के लिए जितने गौरव का है, उतने ही दायित्व-बोध का भी है। परमाराध्य आचार्यप्रवर

के मन में महिला-शक्ति को जागृत करने और उसका सम्यक् नियोजन करने की जो कल्पना है, उसे मूर्त रूप देने के लिए महिलाओं को गंभीरता से चिन्तन करना होगा, अपनी समग्र शालीनता को सुरक्षित रखते हुए कार्यक्षेत्र में उतरना होगा। नियोजन मण्डल के सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्री धर्मचन्दजी चोपड़ा
२. श्री मांगीलालजी सेठिया
३. श्री जंवरीमलजी बैंगानी
४. श्री कन्हैयालालजी छाजेड़
५. श्री हुलासचन्दजी गोलछा
६. श्री भंवरलालजी त्रेगवानी
७. श्री माणकचन्दजी सेठिया
८. श्रीमती सज्जनदेवी चोपड़ा
९. श्रीमती तारादेवी सुराना

२३ अप्रैल १९८५ को गंगापुर में यह कार्यवाही संपन्न हुई। नियोजक मण्डल के संयोजक श्री धर्मचन्दजी चोपड़ा तथा उनके सभी साथियों ने निष्ठा के साथ दायित्व का अनुभव करते हुए उसके अनुरूप समाज को अपनी सेवाएं दे रहे हैं।

पांच दशक पहले का सपना पूरा हुआ

आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कल्पनाशीलता का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जो आपको नया सोचने और नया करने के लिए प्रेरित करता रहता है। वि० सं० १९९२ में पूज्य गुरुदेव कालूगणी का चातुर्मास उदयपुर था। आचार्यश्री उस समय मुनि थे। उस वर्ष आपने कालूगणी की सन्निधि में जैनागम भगवती सूत्र का सामूहिक वाचन होने की कल्पना की। उस समय कल्पना साकार नहीं हुई। सं० १९९३ में गंगापुर चातुर्मास में कालूगणी का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद धर्मसंघ का दायित्व आपके कंधों पर आ गया। आपके शासनकाल में सामूहिक स्वाध्याय का क्रम चला। कभी नियमित, कभी अनियमित। अध्यापन आपकी सहज हाबी है। इस दृष्टि से भी आप कभी बाल साधु-साध्वियों का, कभी प्रौढ़ साधु-साध्वियों का और कभी परीक्षार्थी साधु-साध्वियों का अध्यापन करते रहते हैं। आगम और उनके व्याख्या-साहित्य का सामूहिक स्वाध्याय भी समय-समय पर होता रहा है, किन्तु भगवती सूत्र के सामूहिक वाचन का प्रसंग नहीं बना।

अमृत-महोत्सव को लक्ष्य कर आचार्यश्री ने मेवाड़ की यात्रा शुरू की। सं० १९९२ से चलते हुए वे सं० २०४२ में पहुंच गए। एक आधी सदी तक अपने सपने को भीतर ही भीतर संजोते हुए आचार्यवर ने निर्णय लिया कि गंगापुर से भगवती सूत्र का सामूहिक वाचन शुरू करना है।

सामूहिक अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए अक्षय तृतीया का दिन निर्धारित किया गया। उस दिन गंगापुर में आगन्तुक यात्रियों की बहुत भीड़ थी। फिर भी जो काम करना था, करना ही था। मध्याह्न में ठीक चार बजे

लगभग पचीस साधु-साध्वियां और समणियां उपस्थित हो गयीं। आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में युवाचार्यश्री ने सूत्र का वाचन शुरू करने से पहले अध्ययन करने की नयी दृष्टियों का विश्लेषण करते हुए कहा—किसी भी आगम का पठन-पाठन केवल शब्द की अर्थयात्रा तक सीमित नहीं रहना चाहिए। पाठ्यग्रन्थ में निहित ऐतिहासिक दृष्टिकोण को समझने, समीक्षात्मक विवेचन करने तथा अन्य धर्मों और दर्शनों के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करने का लक्ष्य रहना चाहिए।

आचार्यवर ने सभी साधु-साध्वियों को निष्ठा और जागरूकता के साथ अपनी ज्ञानधारा को व्यापक बनाने की प्रेरणा देते हुए कहा—धर्मसंघ के दायित्व से प्रतिबद्ध होने पर भी, समूची मानव जाति के लिए व्यापक कार्यक्रम चलाने का बीड़ा उठाकर भी हम निश्चिन्त भाव से अपने धर्मशास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन करने में समय का विनियोजन कर रहे हैं, यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। हमारे साधु-साध्वियां आगमों का जितना तलस्पर्शी अध्ययन करेंगी, सत्य की शोध में उतना ही आगे बढ़ सकेंगी।

ज्ञान का चौराहा

आचार्यवर और युवाचार्यश्री की सन्निधि में आगम का अध्ययन शुरू हुआ। सैकड़ों दर्शक इधर-उधर आते-जाते एक क्षण के लिए वहां रुकते और उस दृश्य को अपनी पलकों में बंदी बनाकर ही वहां से आगे बढ़ते। उन्हें ऐसा महसूस हो रहा था मानो वे भारत की प्राचीन संस्कृति में सांस ले रहे हैं और भारतीय गुरुकुलों की जीवित परंपरा का दर्शन कर रहे हैं।

आचार्यश्री का मंगल सान्निध्य वस्तुतः ही ज्ञान का चौराहा है। वहां से किसी भी दिशा में आगे बढ़ा जाए, चारों ओर ज्ञान ही ज्ञान बिखरा हुआ है। अपेक्षा एक ही है कि ज्ञान-प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति श्रद्धा से लबालब होकर वहां आए। श्रद्धा के अभाव में ज्ञान का प्रवाह निकट आता-आता दूसरी दिशा में मुड़ जाता है। श्रद्धा के साथ स्थिरता, नियमितता और कठोर पुरुषार्थ का योग व्यक्ति को कहीं से कहीं पहुंचा देता है। अज्ञान की अंधेरी गलियों में सत्य का सूरज उगाना कोई सीधा काम तो नहीं है पर आचार्यश्री का अनन्त आयामी व्यक्तित्व ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सहस्र-सहस्र ऊर्जाधाराओं से इतना अभिषिक्त हो रहा है कि उनके आसपास अंधेरे के पांव ही नहीं जम पाते।

जैन आगम कोई कथा या उपन्यास नहीं है, फिर भी उसके अध्ययन में उपन्यास से भी अधिक सरसता का अनुभव करवाना अध्यापक का अनूठा कलाकौशल है। आचार्यश्री इस कला में सिद्धहस्त हैं। न्याय व्याकरण, सिद्धान्त

या आगम का कोई कितना ही गंभीर ग्रन्थ क्यों न हो, आचार्यवर के पास अध्ययन करते समय वह बहुत रोचक बन जाता है। रुचि परिष्कार के साथ-साथ उससे अनेक नयी दृष्टियां उपलब्ध होती हैं, जो पाठक को सत्यशोध की दिशा में अग्रसर करती हैं।

जहां अमंगल भी मंगल बन जाता है

२६ अप्रैल को राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री रामपाल उपाध्याय ने अपनी जन्मभूमि गंगापुर में आचार्यश्री के दर्शन किए। श्री रामपालजी आचार्यश्री के प्रति हृदय से आस्थावान हैं। उन्होंने आपके प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए कहा—आचार्यजी ! आपके मंगल पदार्पण से अमंगल की राहें स्वयं मंगलमय बन जाती हैं। अमांगलिक काम मांगलिक हो जाते हैं। और तो क्या वह हवा भी मंगल बन जाती है, जो आपका स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती है। आप एक दूरदर्शी आचार्य हैं। यदि यह दूरदृष्टि नहीं होती तो ये प्रगतिशील आयाम कहां और कैसे खुल पाते ? इस द्वन्द्वात्मक जगत में इस प्रकार बढ़ना कैसे संभव हो पाता ? हम सब ऐसे नररत्न को पाकर बहुत-बहुत कृतज्ञ हैं। युवापीढ़ी को भी आपने सही दिशा देकर भटकन से उबारा है, इसलिए वह भी आपका बहुत आभार मानती है। हमारे देश का भविष्य युवापीढ़ी पर निर्भर है। आचार्यश्री युवाओं के भी युवा हैं। सत्तर वर्ष की अवस्था में भी आप पूर्ण युवा हैं। आप सदा-सदा युवा रहते हुए देश की युवापीढ़ी को सक्रिय मार्ग-दर्शन देने की कृपा करें।

उपाध्यायजी वहां २८ अप्रैल को समायोजित होने वाले अमृत महोत्सव कार्यक्रम के लिए स्थान और व्यवस्था का निरीक्षण करने आए थे।

नये आयामों का अभिनन्दन

आचार्यतुलसी बीसवीं शताब्दी के महान् संत हैं। वे विगत साठ वर्षों से भारत की धरती पर परिव्रजन कर रहे हैं। सन् १९१४ में उन्होंने जन्म लिया। सन् १९२५ में तेरापंथ के आठवें आचार्यश्री कालूगणी के पास मुनि जीवन स्वीकार किया और सन् १९३६ में पूज्य कालूगणी ने उनकी क्षमताओं और उनमें छिपी संभावनाओं का अंकन कर उन्हें तेरापंथ के आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय आचार्यश्री की अवस्था बाईस वर्ष की थी। मानव मस्तिष्क में सर्वाधिक ग्रहण शक्ति बाईस वर्ष की उम्र मानी जाती है। संभवतः इसी उत्कृष्ट ग्रहणशक्ति के कारण उन्होंने उस समय अपने धर्मसंघ में जिन सृजनात्मक बीजों का वपन

किया, वे धीरे-धीरे अंकुरित और पल्लवित होते रहे। २७ अगस्त १९३६ को स्वीकृत दायित्व के पांच दशकों के लम्बे सफर में उन्होंने मानवजाति की जो सेवा की है, कोई सौभाग्यशाली जन ही कर पाता है। अपने युगीन चिन्तन और अनुभवों की संपदा का समुचित उपयोग कर उन्होंने संघीय और सामाजिक परिवेश में जो नये आयाम खोले हैं, युग उनका अभिनन्दन करता है।

जागरण का संदेश

पूर्व निर्धारित रूपरेखा के अनुसार अमृत महोत्सव वर्ष की पृष्ठभूमि में महोत्सव का प्रथम चरण गंगापुर में मनाने का निर्णय लिया जा चुका था। गंगापुर वह ऐतिहासिक स्थल है, जहां आचार्यश्री ने धर्मशासन का सूत्र संभाला था। उसी क्षेत्र में २८ और २९ अप्रैल १९८५ को अमृत महोत्सव मनाया गया। १ जनवरी १९८३ में जो स्वप्न संजोया गया, वह २८ अप्रैल को पूरा हो गया। जैन शासन के पिछले ढाई हजार वर्षों में इतने बड़े संघ के महान् शक्तिशाली आचार्य की अर्ध शताब्दी मनाने का वह पांचवां अवसर था, ऐसा कुछ लोगों ने बताया।

२८ अप्रैल को सूर्योदय से पहले ही प्रभात जागरिका क्रम शुरू हो गया। बालक, बालिकाएं, महिलाएं, युवक, वृद्ध सब लोग व्यवस्थित पंक्तियों में एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए चले। उनके मन का उत्साह उछल-उछलकर बाहर आ रहा था। दर्शक लोग उन्हें देखकर ही मुग्ध हो रहे थे। जो लोग तब तक सो रहे थे, वे उनके संयत किन्तु गंभीर जयघोष सुन बरबस उठ खड़े हो गए। कभी-कभी छोटा-सा उपक्रम भी जागरण का संदेश देकर जनता को नया दर्शन दे जाता है।

प्रधानमंत्री की मंगल-कामना

प्रातः साढ़े आठ बजे अमृत समवसरण में अमृत महोत्सव का चिर-प्रतीक्षित कार्यक्रम शुरू हुआ। मंगल गीतों, मंगल भावों और मंगल अभिवन्दनाओं के क्रम में युवा साधुओं का गीत और बाल साध्वियों द्वारा प्रस्तुत 'प्रकृति की पुलकन' परिसंवाद श्रोताओं को बहुत रुचिकर लगा।

राजीव गांधी भारत के युवा प्रधानमंत्री हैं। वे प्रधानमंत्री पद पर आने से पहले गंगा शहर (बीकानेर) मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आचार्यश्री से मिले थे और आपके कर्तृव्य से अतिरिक्त रूप में प्रभावित होकर गए थे। वे चाहते थे कि आचार्यश्री के धर्मशासन के ऐतिहासिक क्षणों को वे भी अपनी आंखों से देखें। किन्तु उनकी चाह पूरी नहीं हो सकी। उन्होंने उस अवसर के लिए अपनी शुभ कामनाएं प्रेपित कीं। उनके द्वारा प्रदत्त शुभकामना संदेश को पढ़ा राजस्थान के

मुख्यमंत्री श्री हरिदेश जोशी ने। संदेश की भाषा इस प्रकार है—'मानव जन्म विकास के लिए है, विनाश के लिए नहीं। व्यक्ति और समाज निष्ठा, आदर्शों और सत्य के अन्वेषण से बढ़ते हैं। आचार और विचार में संयम होना चाहिए और हम सब मनुष्य की एकता के लिए काम करें।'

आचार्यश्री तुलसी इन नैतिक मूल्यों के प्रसार के काम में लगे हैं। उनके अमृत-महोत्सव के अवसर पर मैं उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूं।

नये भारत का निर्माण

प्रमुख अतिथि की हैसियत से बोलते हुए राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेश जोशी ने कहा—'आचार्य तुलसी एक छोटे, किन्तु संगठित परिवार द्वारा समाज में शान्ति और देवत्व को उतारने के लिए संकल्पित हैं। आचार्यजी के मार्ग-दर्शन के अनुसार हम नये भारत का निर्माण कर सकें और देश में शान्ति प्रतिष्ठित कर सकें तो हमारे लिए एक नयी उपलब्धि होगी।'

राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री रामपाल उपाध्याय ने कहा— 'गंगापुर की धरती पर इस भव्य आयोजन को देखकर मैं प्रसन्न हूं। आचार्यश्री अपनी ओर से नैतिक समाज का निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। धार्मिक प्रवृत्तियों द्वारा सदाचार की शिक्षा देना भावी पीढ़ी के लिए एक शुभ कदम है। धर्म का काम मानवीय मूल्यों का उत्थान ही नहीं है, वह समाज-संरचना में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आचार्यश्री के इस प्रयत्न के लिए हम उनके आभारी हैं।'

जीवन-विज्ञान वर्ष की घोषणा

अमृत महोत्सव की आयोजना के प्रमुख सूत्रधार श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने अपना प्रासंगिक प्रवचन करते हुए कहा—आज का आदमी विषैले वातावरण में जी रहा है। पूरा वातावरण विषमय बन रहा है। एक ओर प्रदूषण का जहर है, दूसरी ओर मिलावट, मद्य, दहेज, साम्प्रदायिकता और छुआछूत का जहर है। ऐसे समय में अमृत महोत्सव मनाने की अधिक प्रासंगिकता है।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का सजीव विश्लेषण करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—'आचार्यप्रवर गंगापुर की धरती पर आचार्य बने। आपने गति की सीमा को विस्तार दिया और आप मानव जाति के मसीहा बन गये। आप परम्परा में जीते हैं, पर परम्परावादिता से मुक्त हैं। इसीलिए आप समाज को निरन्तर विकास की दिशाएं दे रहे हैं। अणुव्रत, नया मोड़, प्रेक्षाध्यान, जीवन-विज्ञान आदि नये अभिक्रम आचार्यश्री के व्यापक चिंतन की निष्पत्तियां हैं।

वौद्धिक और भावनात्मक विकास के सन्तुलन की चर्चा करते हुए युवाचार्यश्री ने जीवन-विज्ञान के महत्त्व को समझाया और आचार्यवर की अनुमति से अमृत महोत्सव वर्ष को जीवन-विज्ञान वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की है। भावी युवा पीढ़ी का निर्माण करने के लिए जीवन विज्ञान का विशिष्ट उपयोग हो सकता है। पर यह तभी संभव है, जब इसकी क्रियान्विति के लिए सघन प्रयत्न किया जाए।

ठोस काम करने का संकल्प

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने अमृत महोत्सव के प्रथम कार्यक्रम में अपना प्रथम उद्‌बोधन संदेश देते हुए कहा—आज सबसे पहले मैं तेरापंथ धर्मसंघ का स्मरण कर रहा हूं, जिसके माध्यम से हमें अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ काम करने का अवसर मिला। पूज्य गुरुदेव कालूगणी तो आज पूरी तरह साक्षात् हो रहे हैं। उन्हीं की कृपा से मुझे संघ, समाज और देश की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेव ने मुझे अन्तिम समय में तीन शिक्षाएं दीं—

- तुलसी; तुझे सबसे पहले साध्वियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना है।
- हमारा संघ वड़ा संघ है। किसी साधु-साध्वी की छोटीं-बड़ी गलती देखकर घबराना मत।
- कोई साधु-साध्वी थोड़ी-बहुत मानसिक कमजोरी कर बैठे, उन्हें संभाल लेना। जहां तक साधुत्व निभाने की स्थिति हो, उन्हें निभाना, सहारा देना। गण से बाहर मत करना।

ये तीनों सूत्र मेरे लिए आलम्बन सूत्र बन गये। मैंने इन तीनों बातों को ध्यान में रखकर अपनी अनुशासन शैली और कार्यपद्धति का विकास किया।

पचास वर्ष पहले की स्मृतियों का एक रंगीन चित्र प्रस्तुत कर आचार्यश्री ने वहां उपस्थित जनसमूह को भी उस अतीत में लौटा दिया। लोग चाहते थे कि आचार्यश्री की अनुभवपूत वाणी स्मृतिकोष में उभरे हुए एक-एक प्रसंग को रूपायित करती रहे। किन्तु आपने अतीत की थोड़ी-सी झांकियां दिखाकर अपने करणीय की चर्चा करते हुए कहा—हमारे सामने अभी मुख्य रूप से दो काम हैं—चरित्र-निर्माण और जीवन-विज्ञान। ये दोनों ही कार्यक्रम व्यापक हैं, मानव जाति के लिए उपयोगी हैं। चरित्र-निर्माणमूलक कार्यक्रम को विस्तार देने में माध्यम बना अणुव्रत। अणुव्रत के मंच से हमने किसी भी मनुष्य को तेरापंथी या जैन बनाने से पहले मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया। प्रारंभ में इस बात का विरोध हुआ। अब अणुव्रत इस युग की आचार-संहिता बन गया है। इस संदर्भ में मुझे तेरापंथ या धर्म का नहीं, मानवता का आचार्य कहा जाता है। इस बात की मुझे प्रसन्नता है। मैं चाहता हूं कि आने वाले युग में कुछ और ठोस काम हों, जिससे

मानवता को त्राण मिल सके।

देश की वर्तमान समस्याओं को छूते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा—'देश में हिंसा बढ़ रही है। हिंसा से हिंसा नहीं मिटेगी। हिंसा को मिटाने के लिए अहिंसा की शक्ति को बढ़ाना होगा। आज देश में जो हिंसा बढ़ रही है, अपराध बढ़ रहे हैं, उनका एक कारण है मद्यपान। आज पानी की कमी हो रही है, पर शराब की कोई कमी नहीं है। मद्यपान की प्रवृत्ति नियंत्रित हो जाए तो अपराधों में भी कमी आ सकती है। मुख्यमंत्री जी सामने बैठे हैं। ये थोड़ा साहस कर शराब पर रोक लगाएं और फिर देखें, इसके क्या परिणाम होते हैं। यदि कानून निर्माता भी शराब को अर्थार्जन का साधन मानकर इसे प्रश्रय देते रहेंगे तो अपराध और हिंसा कम होने की संभावना नहीं है।'

आचार्यश्री ने पंचसूत्री संकल्प योजना की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया तो तत्काल कुछ महानुभाव मंच पर आये। वहां पहले ही एक अमृत कलश रखा हुआ था, जिसको संकल्पों के अमृत से भरना था। उन महानुभावों ने संकल्प-पत्र भरे और विशेष गौरव की अनुभूति के साथ उन्हें कलश में समर्पित कर दिया। उस चरित्र-निर्माण के नये कार्यक्रम से जुड़ने की ललक हजारों लोगों के मन में भी थी। वे सब एक साथ अपने संकल्प-पत्र नहीं भर सकते थे। इसलिए इस अभियान को पूरे देश में स्थान-स्थान पर स्वतंत्र रूप से चलाने का परामर्श दिया गया और मेवाड़ क्षेत्र में अमृत कलश पद-यात्रा के द्वारा लोक-चेतना जागृत करने का निर्णय लिया गया।

प्रस्तुति आकर्षक : दर्शक कोई नहीं

कार्यक्रम के प्रारंभ में आगमवाणी द्वारा आचार्य-वंदना और सामूहिक त्रिपदी वंदना का उपक्रम बहुत ही सुन्दर और आकर्षक रहा। एक साथ हजारों स्वरों की गूंज, सबका एक साथ झुकना और उठना आंखों को बहुत ही सुखद प्रतीत हुआ। उल्लेखनीय है कि इस उपक्रम की प्रस्तुति में दर्शक के रूप में भाग लेने वाले कोई नहीं थे।

साहित्य का उपहार

कार्यक्रम के बीच में साहित्य-समर्पण का सिलसिला शुरू हुआ तो आचार्यश्री के पट्ट पर साहित्य का ढेर लग गया। एक समय था जब तेरापंथ धर्म संघ में साहित्य के नाम पर एक भी पुस्तक नहीं थी। आचार्य भिक्षु और जयचार्य का बहुमूल्य साहित्य भी मुद्रित न होने के कारण किसी को उपलब्ध नहीं था। आधुनिक भाषा

और विचारों की दृष्टि से तो साहित्य की धाराएं ही विरल-सी थीं। आचार्यप्रवर के युग में साहित्य-लेखन, संपादन, संकलन और प्रकाशन की परम्परा इतनी आगे बढ़ गयी कि कभी-कभी इसे नियंत्रित करने की बात भी सोची जाने लगी है। जैन विश्व भारती, आदर्श साहित्य संघ, तेरापंथी महासभा, अणुव्रत समिति, तेरापंथ युवक परिषद् आदि संघीय संस्थान तथा कुछ अन्य संस्थान भी अच्छे ढंग से साहित्य प्रकाशित कर उसे जन-सुलभ बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यहां से संपादित आगम साहित्य तथा प्रेक्षाध्यान साहित्य के प्रति अन्य सम्प्रदायों के साधु-साध्वियों में गहरा आकर्षण है। कुछ साधु-साध्वियां तो इतने जिज्ञासु हैं कि नये साहित्य की प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रेक्षाध्यान और अणुव्रत का साहित्य जैन-अजैन सभी प्रबुद्ध लोग गहरी रुचि से पढ़ते हैं। इस स्थिति में धर्मसंघ के लेखक साधु-साध्वियों पर विशेष रूप से यह दायित्व आता है कि वे साहित्य के क्षेत्र में अधिक जागरूकता से आगे बढ़ें। युग की आकांक्षा और अपेक्षा को ध्यान में रखकर अच्छे स्तर का साहित्य लिखने से ही उसकी गरिमा सुरक्षित रह सकती है।

आचार्यश्री और युवाचार्यश्री के साहित्य को हम अलग कर दें तो शेष लेखक साधु-साध्वियों में गंभीर और मौलिक साहित्य का सृजन करने वालों की संख्या पर्याप्त नहीं है। आचार्यश्री की प्रेरणा और प्रोत्साहन से नयी प्रतिभाओं को भी अच्छे अवसर मिल रहे हैं। अपेक्षा एक ही है कि सृजन-परम्परा अप्रतिहत गति से आगे बढ़ती रहे और लिखने के लिए लिखने की बात को गौण कर विशेष उद्देश्य को सामने रखकर ही लेखन प्रक्रिया को गतिशील रखा जाए।

आस्था के स्वस्तिक

आचार्यश्री की अभिवंदना के क्रम में साध्वियों ने एक नयी शैली अपनायी। साध्वी-जीवन की यात्रा तक पहुंचने से पहले की तीन श्रेणियां—उपासिका बहनें, मुमुक्षु बहनें, समणियां तथा साध्वियां सबने सामूहिक रूप से मिलकर इक्यावन की संख्या में नयी संस्कृति के सूर्योदय की अर्चना की। उनकी काव्यमयी अभिवंदना के कुछ बोल इस प्रकार हैं—

अर्थवान् हर भोर मुबारक,
नयी क्रांति के हस्ताक्षर को।
चन्दन चर्चित नये स्वप्न सब,
अर्पित हैं इस ज्योतिर्धर को।
मन के नभ पर आज उकेरें,
आस्था के स्वास्तिक मंगलमय।
मना रहे उत्सव इमरितमय॥

इक्कीसवीं सदी आचार्य तुलसी की

पण्डित दलसुख भाई मालवणिया किसी समय आचार्यश्री तुलसी के प्रमुख आलोचकों में से थे। किन्तु जब से वे आपके निकट संपर्क में आए, आपकी साधना और श्रमनिष्ठा से परिचित हुए और आपके सान्निध्य में चलने वाली गतिविधियों से अवगत हुए, उनके मन में आचार्यश्री के प्रति गहरी श्रद्धा के भाव उभर आए। आचार्यवर के सान्निध्य में चल रहे आगम संपादन के कार्य से भी वे बहुत प्रभावित हुए। इन वर्षों में वे कई बार आचार्यश्री से मिलते रहे हैं। गंगापुर भी वे आने वाले थे, पर नहीं आ सके। उन्होंने आचार्यवर के दीर्घजीवन की कामना करते हुए अहमदाबाद में कहा—'अठारहवीं सदी अंग्रेजों की, बीसवीं सदी अमेरिका की और इक्कीसवीं सदी आचार्य तुलसी की है। आचार्यश्री के उदार दृष्टिकोण के कारण आज तेरापंथ जैनधर्म की पहचान बन गया है।'

मंच का संचालन डॉ० महेन्द्र कर्णावट ने अत्यन्त कुशलता के साथ किया।

अमृत-कलश-पदयात्रा

२६ अप्रैल का मंगल प्रभात। आचार्यप्रवर सदा की भांति प्रसन्न मुद्रा में पट्ट पर आसीन थे। दर्शन करने वाले श्रद्धालु भक्तों का तांता लग रहा था। सहसा उन सबको शान्तभाव से बैठने का आह्वान किया गया। उसी समय साध्वियां भी गुरु-वंदन के लिए वहां पहुंच गईं। आचार्यश्री के निकट एक ओर युवाचार्यश्री थे। सामने एक पट्ट पर ताम्रमय अमृत-कलश रखा हुआ था। अमृत पट्ट महोत्सव की कल्पना और आयोजन करते समय अमृत-कलश पदयात्रा का चिन्तन आया। चिन्तन महत्त्वपूर्ण था। उसे स्वीकृत कर लिया गया। उस समग्र आयोजन के कल्पनाकार थे युवाचार्यश्री। कल्पना की रेखाओं में रंग भरने का समय उपस्थित हो चुका था। उसका प्रथम समारोह भी सुनियोजित ढंग से पूरा हो गया। उस सन्दर्भ में होने वाली अमृत-कलश पदयात्रा के प्रारम्भ का क्षण निकट आ रहा था। 'अमृत-कलश' एक मांगलिक पात्र था। उसे भरकर आचार्यश्री को अपहृत करने की योजना थी। सामान्यतः ऐसे प्रसंगों पर सामाजिक या राजनैतिक नेताओं को सोने, चांदी या रुपयों से तोला जाता है। और वह उन्हें भेंट कर दिया जाता है। आचार्यश्री के आध्यात्मिक जीवन में ऐसे उपहार की न तो कोई संगति थी और न वे ऐसा उपहार स्वीकार ही कर सकते थे।

अमृत महोत्सव की कल्पना के समय आचार्यश्री ने कहा था कि उन्हें आयोजनों में विशेष रस नहीं है। आपकी भावना को ध्यान में रखते हुए उस उत्सव को प्रयोजनात्मक रूप दिया गया था। आचार्यश्री ने लोक-चेतना को जागृत

करने के उद्देश्य से अणुव्रत का काम शुरू किया। अणुव्रत वैयक्तिक, सामाजिक और भावनात्मक परिष्कार का एक सफल उपक्रम है। अणुव्रत भावना से भावित पांच संकल्पसूत्रों को जनव्यापी बनाने के लिए प्राथमिक रूप से इक्यावन दिनों की अमृत-कलश पदयात्रा करने का निर्णय लिया गया। संकल्प-पत्र मुद्रित थे। संकल्प स्वीकार करने वाले व्यक्तियों को मुद्रित पत्रों में अपना नाम, पता आदि लिखकर उन्हें अमृत-कलश में डालना था। उस यात्रा में समाज के गण्यमान्य व्यक्ति तथा समणियों का एक-एक वर्ग साथ रहेगा, ऐसा चिन्तन किया गया। यात्रा का प्रथम प्रयोग मेवाड़ में होने जा रहा था। उसकी निष्पत्ति के आधार पर अन्य क्षेत्रों में भी उस प्रयोग की संभावना की जा रही थी। व्यक्ति सुधार की दिशा में समायोजित वह रचनात्मक कार्यक्रम समाज और राष्ट्र के जीवन में नया प्रकाश भरे और जन-जन को स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा दे, यही एकमात्र उद्देश्य था उस यात्रा का।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार २९ अप्रैल को प्रातः यात्रा का प्रारम्भ था। अमृत-महोत्सव राष्ट्रीय समिति के संयोजक श्री देवेन्द्र कुमार कर्णावट ने यात्रा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला।

युवाचार्यश्री ने अमृत-कलश पदयात्रा को एक रचनात्मक अभियान बताते हुए कहा—इससे बुराइयों को मिटाने का एक नया संकल्प जागेगा। अमृत-पुरुष आचार्यश्री तुलसी ने वर्तमान युग की समस्याओं को समझा है और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया है। यह उपक्रम भी युगीन समस्याओं को एक समाधान देगा, ऐसा विश्वास है।

आचार्यवर ने यात्रादल के सदस्यों तथा वहां उपस्थित अन्य लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—संसार का वातावरण विषैला है। आदमी को अमृत की खोज है। अमृत-कलश पदयात्रा द्वारा वह खोज पूरी हो सकेगी, ऐसी आशा है। सामान्यतः लोग कहते हैं कि कुछ होना चाहिए। पर क्या होना चाहिए? कैसे होना चाहिए? किसके द्वारा होना चाहिए? इन प्रश्नों पर आदमी मौन हो जाता है। वह अपनी ओर से पहल करना नहीं चाहता। मुझे करना चाहिए, इस भाषा में नहीं सोचता। अमृत-कलश पदयात्रा के यात्रियों ने इस भाषा में सोचा है। वे स्वयं बुराई मुक्त होकर दूसरों को बुराई छोड़ने की प्रेरणा देंगे। इससे राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में योग मिलेगा, विचार क्रान्ति होगी और एक नये जीवन-दर्शन का प्रारंभ होगा।

अमृत-कलश एक खुली जीप में रखा गया। समणियां तथा अन्य पदयात्री उसका अनुगमन करने के लिए उद्यत थे। परमाराध्य आचार्यप्रवर ने उनको मंगलमंत्र सुनाया। आपने मंगलमंत्र सुनाकर ही विराम नहीं लिया, साधु-साध्वियों को साथ लेकर उस अमृत-कलश-यात्रा का प्रारंभ भी किया। धरती और आकाश

जयघोषों से गूंज उठे। वातावरण खुशियों से भर उठा। उस दिन के वे क्षण भी अपने आपको एक नये इतिहास से जोड़कर धन्य हो उठे। अमृत-कलश पदयात्रा के संयोजक श्री पूरणचन्द बड़ाला पूरी निष्ठा और जागरूकता के साथ अपने दायित्व का निर्वाह करने के लिए कटिबद्ध थे। उस यात्रा का प्रथम पड़ाव गंगापुर से दस किलोमीटर पर स्थित अणुव्रत-ग्राम आगली (आम्रावली) में हुआ।

अमृत-कलश पदयात्रा को रचनात्मक रूप देने के लिए निर्धारित पांच संकल्प इस प्रकार हैं—

१. मद्य निषेध : मद्यपान नहीं करूंगा।
२. मिलावट निरोध : खाद्य पदार्थों, औषधि आदि में मिलावट नहीं करूंगा।
३. दहेज उन्मूलन : विवाह के सन्दर्भ में दहेज तथा तिलक का ठहराव, मांग एवं प्रदर्शन नहीं करूंगा।
४. अस्पृश्यता निवारण : जाति आदि के आधार पर किसी को हीन एवं अस्पृश्य नहीं मानूंगा।
५. भावात्मक एकता : भाषा, सम्प्रदाय, जाति, धर्म, रंग, दलगत भावना आदि को लेकर हिंसात्मक गतिविधियों एवं तोड़फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा। विश्वशान्ति के पक्ष में अणुअस्त्रों के निर्माण, परीक्षण एवं प्रयोग का विरोध करूंगा।

तब से अब

२६ अप्रैल, साढ़े आठ बजे का सुहावना समय, अमृत महोत्सव का दूसरा दिन। महोत्सव की भीड़ काफी छंट गई थी, फिर भी आसपास के गांवों से आए हुए हजारों-हजारों श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाएं उपस्थित थे। २८ अप्रैल का कार्यक्रम पूरी तरह से व्यवस्थित होने पर भी एक मेला जैसा लग रहा था। २६ अप्रैल को उसने एक गंभीर आयोजन का रूप ले लिया था। उसमें कई साधुओं और साध्वियों ने सुमधुर संगीत की तरंगों से वातावरण को रसमय बनाते हुए अपने आराध्यदेव की अर्चना की। अर्चना-अभ्यर्थना के उन क्षणों को ऐतिहासिक परिवेश देने के लिए ग्यारह साध्वियां खड़ी हुईं। उन्होंने 'तब से अब' परिसंवाद को रुचिकर शैली में प्रस्तुति दी। परिसंवाद का कथ्य था—पांच दशकों में साध्वी-समाज में हुई गति-प्रगति का तथ्यपूर्ण चित्रण। आचार्यश्री जिस समय आचार्यपद पर आसीन हुए, उस समय साध्वियों की मानसिकता और शैक्षणिक स्थिति क्या थी? उसमें कहां-कहां उतार-चढ़ाव आए? साध्वियों ने किन-किन राजपथों और पादवीथियों को पार किया? उनके विकास में आचार्यश्री का कितना समय और

श्रम लगा ? आदि अनेक तथ्यों को जिस सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया, श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए। श्रोताओं की बात ही क्या, स्वयं आचार्यप्रवर ने उस प्रस्तुति से प्रभावित होकर परिचर्चा में भाग लेने वाली सभी साध्वियों को पुरस्कृत कर अपनी सहज करुणा से अभिष्णात कर दिया।

पूज्य कालूगणी के युग में दीक्षित बुजुर्ग साध्वियां भी उत्सव की रसमयता में सराबोर हो रही थीं। उन्होंने भी एक भक्ति भरा गीत प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति के बाद उन्होंने अमृत-महोत्सव वर्ष १९८५ के चातुर्मास में आचार्यश्री की मंगलमय सन्निधि में रहने के लिए जो भावभरा अनुरोध किया, श्रोता लोग भावविभोर हो उठे। कितनी श्रद्धा ! कितनी भक्ति ! कितना उत्साह ! और कितना विनय ! गुरु की सन्निधि का एक-एक क्षण आह्लादक और प्रेरक होता है, फिर इस वर्ष तो पांच मास का ऐतिहासिक चातुर्मास होने वाला था। आचार्यवर ने उनकी प्रार्थना के उत्तर में आश्वासन देने वाले शब्द तो नहीं कहे, पर उस समय आपकी फेसरीडिंग करने वालों ने इतना अवश्य अनुभव किया कि आपका अन्तःकरण अनुकंपित है और भीतर ही भीतर चिन्तन की प्रक्रिया शुरू हो गई है। बुजुर्ग साध्वियों का प्रतिनिधित्व कर रही थीं वर्तमान में धर्मसंघ की सबसे बुजुर्ग साध्वीश्री नजरकुमारी जी।

कलात्मक अमृत-कलश

अमृत महोत्सव कार्यक्रम के दृश्य अभिक्रमों में एक था 'अमृत-कलश'। वह आचार्यश्री के पट्ट के पास एक छोटे पट्ट पर रखा हुआ था। उसमें कुछ लोगों ने अपने संकल्प-पत्र डाले। मंच के एक ओर बैठी साध्वियों ने अमृत-कलश, संकल्प-पत्र और पत्र-समर्पण की प्रक्रिया देखी। साध्वी कमलूजी के दिमाग में एक नयी कल्पना ने जन्म लिया। वे साध्वी-समाज की ओर से भी ऐसा ही कोई उपक्रम प्रस्तुत करने के लिए उत्सुक हो रही थीं। मन की बात को उन्होंने अभिव्यक्ति दी। कल्पना सुन्दर थी। इसलिए उसे आकार देने का निर्णय ले लिया गया। अब प्रश्न था अमृत-कलश के निर्माण का। यह बात कुछ दिन पहले सोची जाती तो कोई कलात्मक कलश तैयार हो सकता था। किन्तु समय पर कलश कहां से आए ? चाह हो तो राह अपने आप बन जाती है, इस कहावत को चरितार्थ करती हुई साध्वियों ने एक नये कलश का निर्माण कर लिया। कलश-निर्माण के काम में लिया गया नारियल की खोल से बने हुए छोटे-बड़े प्यालों को। एक प्याला सुलटा, उस पर दूसरा उलटा और उस पर एक छोटा-सा उलटा प्याला रखकर उसे टेम्प्रेरी रूप में चिपका लिया गया। प्याले कालात्मक ढंग से बनाए हुए थे। दोनों प्यालों को आपस में चिपकाते समय थोड़ा-सा स्थान खाली रख

लिया गया, वह अन्तराल संकल्प-पत्र भरने के लिए था। आकार में छोटा होने पर भी कलश इतना सुन्दर बन गया था कि वह प्रथम दर्शन में ही आह्लादजनक था। संकल्प-पत्र भरने के लिए नौ संकल्प निश्चित किए गए—

१. चलते समय बात न करना।
२. प्रतिक्रमण प्रतिलेखन में विधि का जागरूकता से ध्यान रखना।
३. प्रतिदिन एक घण्टा मौन।
४. प्रतिदिन आधा घण्टा ध्यान या जप।
५. प्रतिदिन तीन सौ गाथाओं का स्वाध्याय।
६. एक वर्ष में पांच सौ गाथाओं को कंठस्थ करना।
७. उत्तेजना का प्रसंग उपस्थित होने पर भी अपना संतुलन न खोना।
८. संघीय सेवा के लिए सर्वात्मना समर्पण।
९. चाय परिहार।

वहां उपस्थित प्रायः सभी साध्वियों ने पांच, सात या नौ संकल्प स्वीकार किए। इस सम्बन्ध में मुनिजनों को जानकारी दी गई तो उन्होंने भी साध्वियों को अपना सक्रिय सहयोग दिया।

प्रवचन के समय अमृत-कलश आचार्यवर को भेंट किया गया। आचार्यवर ने उसे अपने हाथों में लेकर उपस्थित जनसमूह को दिखाया। आपके हाथों का स्पर्श पाकर उसकी कला में नया निखार आ गया। उस दिन सैकड़ों-सैकड़ों लोगों ने विस्मित-विमुग्ध होकर उस अमृत-कलश को निकटता से देखा।

मन नहीं भरता

युवाचार्यश्री ने आचार्यप्रवर के शासन काल की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए कहा—आचार्यवर के जीवन में निरन्तर गतिशीलता है। किसी भी क्षेत्र में रुकना आपका स्वभाव नहीं है। आप अबाध रूप में चलते रहे हैं और चलते रहेंगे। जैन दर्शन के जाने-माने विद्वान श्री दलसुख भाई मालवणिया के शब्दों में आचार्यश्री तुलसी जैन धर्म की पहचान बन गए हैं। यह कितनी बड़ी बात है।

आचार्यप्रवर ने निरंतर की आलोचनाओं और झंझावातों के बीच जो प्रसिद्धियों के पांवड़े भरे हैं, वह एक अद्भुत घटना है। आपके मन की गहराइयों और कल्पना की ऊंचाइयों का चित्रण असंभव है। आपके बारे में आपके श्रद्धालु भक्त जितना नहीं सोचते, प्रबुद्ध चिन्तन-शील लोग सोचते हैं। वे आपकी श्रमशीलता और कार्यपद्धति को देखकर ठगे-से रह जाते हैं। आपके शासनकाल में हुई प्रगति को देखते-सराहते उनका मन ही नहीं भरता। इधर आचार्यवर भी अपने धर्मसंघ के विकास को देखकर उल्लसित हैं। आपका मंतव्य हैं कि हमारी

गति सही है, पर है मन्द। यदि हमारा समाज छलांगें भरने लगे, संघ के सब सदस्य विशेष अभियान चलाकर विकास करें तो और अधिक शुभ और कल्याणकारी हो सकता है।

आचार्यवर के अमृत महोत्सव को निमित्त बनाकर अनेक कवि, लेखक और मनीषी मुखर हो उठे। उन्होंने लिखित और मौखिक रूप में अपनी भावांजलियां प्रस्तुत कीं। उन सबको उल्लिखित करना संभव नहीं है। प्रसिद्ध कवि श्री कन्हैया लालजी सेठिया की चार पंक्तियों को यहां उद्धृत किया जा रहा है—

तुम अमृत के रूप, कर दिया,
तुमने क्षर को अक्षर।
धन्य हो गया तुम्हें प्रकट कर,
यह भव का रत्नकार।।

अमृत महोत्सव पर समागत अनेक क्षेत्रों के लोगों ने इस उत्सव का पांचवां चरण अपने क्षेत्र में मनाने के लिए आग्रह भरा अनुरोध किया। आचार्यवर ने किसी के क्षेत्र के प्रतिनिधि को आगामी कार्यक्रम के बारे में कोई संकेत नहीं दिया।

रंगभवन में

२ मई को प्रातः राजकीय विद्यालय से प्रस्थान कर आचार्यश्री रंग-भवन पहुंचे। गंगापुर के प्रसिद्ध श्रावक श्री रंगलालजी हिरण का वह भवन वि० सं० १९८४ में बनकर तैयार हुआ था। नया-नया बना था भवन। उस समय तक गांव में वैसा दूसरा मकान दिखाई नहीं देता था। भवन-निर्माण के नौ वर्ष बाद सं० १९९३ में वहां अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने चातुर्मासिक प्रवास किया। चातुर्मास के लिए रंग-भवन में प्रवेश करते समय किसने सोचा था कि कालूगणी यह चातुर्मास पूरा किए बिना ही प्रस्थान कर देंगे। पर नियति को यही मान्य था। भाद्रपद शुक्ला छठ के दिन कालूगणी अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर चले गए। स्वर्गारोहण के दिन से तीन दिन पूर्व उन्होंने अपने युवा शिष्य मुनि तुलसी को अपना समग्र दायित्व सौंप दिया। इसके बाद उन्होंने निश्चिन्तता का अनुभव किया। उनका व्यक्तित्व अपने आप में अखण्ड था। कहीं एक दरार भी उसे खंडित नहीं कर पायी थी। उनकी सर्जनात्मक चेतना ने उस युग के साधु-समाज में अनेक आयाम खोले थे। वे चाहते थे कि विकास की परम्परा में कोई अवरोध न आए। धर्मसंघ श्रद्धा एवं समर्पण की सांसें जीता हुआ भी बौद्धिक प्रगति की दिशा में पीछे न रहे। ये सब बातें उन्होंने अपने उत्तराधिकारी के मन में संक्रान्त कर दीं। यही कारण है कि आचार्यश्री तुलसी ने अपने स्वर्गीय गुरुदेव की चिन्तनधारा को पूरी जागरूकता से आगे बढ़ाया। आचार्यश्री ने अपने युग में जिन नये क्षितिजों का स्पर्श किया है,

उसके मूलभूत प्रेरणास्रोत कालूगणी हैं। इस बात को स्वयं आचार्यप्रवर बार-बार अभिव्यक्त करते हुए भी थकते नहीं हैं।

उस दिन रंगभवन में पहुंचते ही आचार्यश्री की स्मृतियों में पचास वर्ष का इतिहास सजीव हो उठा। एक विराट् धर्मसंघ का नेतृत्व संभालते समय होने वाली मनःस्थिति पांच दशकों में कितने घुमाव ले चुकी थी, यह अनुभव भी मुखर होने लगा। उस समय के मार्मिक प्रसंग रह-रहकर उभर रहे थे। उस भवन के चप्पे-चप्पे का इतिहास जीवंत हो रहा था। आचार्यश्री उसको अपने अन्तःकरण और मस्तिष्क की सीमाओं में बांध नहीं पा रहे थे। उधर साधु-साध्वियां भी बिना आमंत्रण रंगभवन के बड़े हाल में आकर जम गए। स्थान की सुविधा कम थी, इसलिए श्रावक-श्राविकाओं को पूरा अवकाश नहीं मिला। फिर भी काफी भाई-बहनें हॉल से बाहर अपनी उपस्थिति से लाभान्वित हो रहे थे। पहले से नियोजना न होने पर भी हॉल सुनियोजित रूप में एक स्मरणीय कार्यक्रम हो गया।

यादों का खजाना

आचार्यप्रवर ने साधु-साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा—गंगापुर तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास का वह पृष्ठ है, जो कभी अनपढ़ा नहीं रह सकता। यहां पचीस साधुओं और सत्ताईस साध्वियों के साथ पूज्य कालूगणी चातुर्मास करने पधारे थे। उस समय आप स्वस्थ नहीं थे, पर यह आशा थी कि स्वास्थ्य लाभ अवश्य होगा। धीरे-धीरे अस्वस्थता बढ़ती रही और आशा निराशा में बदलने लगी। कालूगणी का प्रवास यहां था, पर प्रवचन ज्ञान चौक में होता। वहां तक जाने में काफी कठिनाई होती थी। फिर भी प्रातःकालीन प्रवचन में आप पधारते ही थे। संध्या के समय इसी मकान के दरवाजे में विराजना होता। वंदना और प्रतिक्रमण वहीं होता। रामचरित का वाचन पीछे वाली चौकी पर होता। रामचरित सुनाने का काम मुझे सौंपा गया था। उस चातुर्मास में जो साधु-साध्वियां थीं, उनमें से यहां एक-दो ही होंगी। तत्कालीन श्रावकों में रंगलालजी मगनलालजी, शोभालालजी, बख्तावरमलजी हिरण, साहजी शा० डालचन्दजी चीपड़, मगनलालजी गोखरू आदि अत्यन्त श्रद्धाशील श्रावक थे। यहां पधारने के बाद माहेश्वरी वैद्य चैनरामजी सोमाणी का उपचार शुरू किया गया, पर लाभ नहीं हुआ। पण्डित रघुनन्दनजी निष्ठाशील भक्त वैद्य थे। उन्हें याद किया। वे दूसरे दिन ही उपस्थित हो गए। वे एक अनुभवी और प्रौढ़ वैद्य थे। उन्होंने व्यवस्थित चिकित्सा शुरू की, किन्तु उसका भी असर नहीं हुआ। इससे गांव में एक वातावरण बना कि औषधि ठीक नहीं है। इसमें परिवर्तन करना चाहिए। कालूगणी को पण्डितजी पर पूरा भरोसा था। आपके मन में किसी प्रकार की

विचिकित्सा नहीं थी। पर गांव वालों की भावना देखकर पण्डितजी ने जयपुर के राजवैद्य लच्छीरामजी से परामर्श किया। उन्होंने पंडितजी की चिकित्सा का समर्थन किया। इससे पंडितजी को बल मिला और वे जागरूक भाव से चिकित्सा में संलग्न हो गए।

कालूगणी के स्वास्थ्य और चिकित्सा की बात बताते-बताते आचार्यवर को तत्कालीन साधुओं और व्यवस्था की स्मृति हो आई। आपने आगे कहा—यह हॉल उस समय समुच्चय में था। कालूगणी हॉल में ही एक ओर विराजते थे। सामने वाली तिरवारी में जो तीन कोठरियां हैं, उनमें मुनि मगनलालजी का साझ रहता था। उसमें बाईं ओर वाली कोठरी में मैं बैठा करता था। वहीं हमारी पाठशाला चलती थी। मुनि नथमलजी, बुधमलजी, दुलीचन्दजी, जंवरीमलजी, मीठालालजी आदि कई संत विद्यार्थी थे। तिरवारी में मुनि मगनलालजी बैठते। वहां भाइयों का जमघट रहता था। तिरवारी से बाहर रसोई में मुनि शिवराजजी का साझ था और सब काम व्यवस्थित चल रहे थे, किन्तु कालूगणी के स्वास्थ्य की स्थिति चिन्ताजनक बन रही थी। औषधि सेवन के बावजूद आपकी वेदना बढ़ती जा रही थी।

कालूगणी का नाम आते ही आचार्यवर अपने भीतर कुछ विशेष प्रकार के प्रकंपनों का अनुभव करने लगे। उस बात को वहीं छोड़कर आप बोले—भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, नवमी तक पंडित रघुनन्दनजी निराश हो गए। अब मुनि मगनलाल जी को भी स्वास्थ्य के आसार कम दिखाई देने लगे। वे तीनों परामर्श कर दसमी के दिन कालूगणी के पास पहुंचे। सबकी आंखें गीली थीं। वे कुछ कहना चाहते थे पर कह नहीं पा रहे थे। कुछ क्षण वे मौन बैठे रहे। आखिर मुनि मगनलालजी ने साहस बटोरकर कहा—गुरुदेव ! कुछ आवश्यक निवेदन करना है। निवेदन करने में मन व्यथित होता है और न करूं तो स्वामीद्रोह का पाप लगता है।

कालूगणी ने वात्सल्यपूरित आंखों से देखा। वह देखना ही बोलने की स्वीकृति थी। मुनि मगनलालजी बोले—गुरुदेव ! अब आपका यह शरीर अधिक समय तक टिक सके, ऐसा प्रतीत नहीं होता। संघीय व्यवस्था के लिए आपको जो कुछ करना हो, करने की कृपा करें।

इससे पहले भी उन्होंने कालूगणी से इस सम्बन्ध में एक-दो बार बात की थी। पर आपने उसे उनके मन का सन्देह कहकर टाल दिया। इस बार के निवेदन में दो प्रसिद्ध चिकित्सकों की सहमति थी, इसलिए उसमें कुछ वजन अधिक था। इधर कालूगणी को भी यह अहसास हो गया था कि अधिक समय निकलना मुश्किल है। मुनि मगनलालजी के निवेदन से वे पूरी तरह सजग हो गए। चिकित्सकों को वहां से विदा कर दिया गया।

अब कालूगणी ने अपना मन खोलते हुए कहा—मगनलालजी स्वामी ! अब

तो काम जल्दी करना है।

मुनि मगनलालजी बोले—गुरुदेव! जो कुछ करना है, आप खुलकर बात करें। कृपा कर आप बताएं कि आपकी दृष्टि किस पर है और किस रूप में काम करना चाहते हैं।

यह बात सुनकर कालूगणी की आकृति पर एक गंभीर स्मित खिल उठा। आपने धीरे से कहा—मेरी दृष्टि किस पर है, इस बात को आप नहीं जानते हैं क्या?

ग्यारह वर्ष से जिसको तैयार कर रहे हैं, वह सामने ही है और सब तो ठीक है, पर उसकी अवस्था छोटी है···। कहते-कहते कालूगणी रुक गए।

मुनि मगनलालजी को उस समय विनोद सूझा। उन्होंने कालूगणी की आंखों में झांकते हुए कहा—आपका चिन्तन बहुत ठीक है। आप किसी दूसरे के लिए निर्देश करें, जो प्रौढ हो, अवस्था प्राप्त हो और मजबूत शरीर वाला हो। मैं उसे अभी श्रीचरणों में उपस्थित कर दूंगा।

यह बात सुनकर कालूगणी सहम गए। आप बोले—नहीं-नहीं, और की बात नहीं है। केवल अवस्था की बात है।

मुनि मगनलालजी ने कहा—इसके लिए आपको चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। आप मुझ पर भरोसा करें। गहरे विश्वास से कहता हूं कि सब काम आपकी कृपा से ठीक होगा। अब आप यह बताएं कि यह काम करना कब है? कालूगणी ने अपने मन के उतावलेपन को अभिव्यक्ति देते हुए कहा—कल ही हो जाए तो ठीक रहे। इस बात पर मुनि मगनलालजी सहमत नहीं हुए। वे बोले—कल के लिए मैं कुछ नहीं कह सकता। यह इतना बड़ा काम है, इसके लिए दिन अच्छा होना चाहिए।

कालूगणी ने उनको दिन देखने के लिए निर्देश दिया। उन्होंने ज्योतिषविद्या के मर्मज्ञ मुनि भीमराजजी से पूछा। एक-दो अन्य लोगों से भी जानकारी की। सबने भाद्रपद शुक्ला तृतीया का दिन शुभ बताया। मुनि मगनलालजी ने यह बात कालूगणी तक पहुंचाई तो आप बोले—मगनजी स्वामी! तीज किसे आएगी। मुझे एक क्षण का भी भरोसा नहीं है। निकट से निकट जो दिन हो, वह बताओ।

मुनि मगनलालजी अपनी बात पर अडिग थे। वे तीज से एक दिन भी इधर-उधर करना नहीं चाहते थे। उधर कालूगणी की बेचैनी बढ़ रही थी। शरीर उत्तरोत्तर क्षीण हो रहा था। किसी तरह तीन दिन बीते। त्रयोदशी के दिन कालूगणी कुछ अधिक चिन्तित हो गए। शरीर की क्षीण होती हुई शक्ति ने आपको उद्वेलित कर दिया। उस समय आपको छठे आचार्यश्री माणकगणी के समय की घटना याद आ गई। वे वैसी घटना की पुनरावृत्ति देखना नहीं चाहते थे। आपने मुनि मगनलालजी के सामने अपने मन का उद्वेलन खोलकर रख दिया।

मुनिजी बोले—गुरुदेव ! आपका चिन्तन बिलकुल सही है। पर काम तो तीज को ही होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि आप बहुत भाग्यशाली हैं और कर्तापुरुष हैं। जैसा आप चाहेंगे, वैसा ही हो जाएगा। मानसिक आश्वस्ति के लिए आप एक काम करें—आप उसे एक बार एकान्त में बुलाकर बात कर लें। इससे वातावरण बन जाएगा। बाकी काम मैं कर लूंगा।

कालूगणी के सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। इसलिए आपने मुनि मगनलालजी द्वारा सुझाए गए क्रम को क्रियान्वित करने का निर्णय ले लिया।

वे क्षण, जो भुलाने पर भी नहीं भूले

तेरापंथ धर्मसंघ के या अपने जीवन के अन्तरंग प्रसंगों का अनावरण करते समय आचार्यवर पूरी तरह से अतीत में चले गए। स्मृतियों की धरोहर के एक-एक परत उतर रहे थे। श्रोता अपने अस्तित्व को भूलकर उसी में एकाकार हो रहे थे। एक के बाद एक मार्मिक वृत्त अभिव्यक्त होकर अगले के प्रति नया आकर्षण पैदा कर रहे थे। अग्रिम प्रसंग, जो स्वयं आचार्यश्री से जुड़ा हुआ था, को सुनाते हुए आपने कहा—भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को लिये गए निर्णय के अनुसार कालूगणी अमावस्या को ही मेरे साथ बात करना चाहते थे। अमावस्या सोमवती थी। इसलिए उसकी श्रेष्ठता सहज सिद्ध हो गई। आपने मुनि चौथमलजी को बुलाकर निर्देश दे दिया। वे मेरे पास आकर बोले—तुलसीरामजी ! आज भोजन जल्दी कर लेना। मैंने कारण जानना चाहा तो वे बोले—फिर गुरुदेव के पास जाना है। मैं अब तक सहज था। कालूगणी की वेदना से मन पर भार अवश्य था, पर कोई दूसरा चिन्तन नहीं था। मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि कालूगणी का मंगल साया सिर से उठने वाला है। उस दिन अप्रत्याशित रूप में गुरुदेव ने याद किया तो कुछ विचित्र-सा लगा पर मेरी कल्पना मुझे उस बिन्दु तक नहीं ले गई जहां पर गुरुदेव पहुंच गए थे। मैं भोजन कर निवृत हुआ ही था कि मुनि चम्पालालजी ने कहा—तुलसी ! तुमको गुरुदेव याद कर रहे हैं। मैं अविलम्ब आपके पास पहुंचा, यही स्थान था वह। कालूगणी लेटे हुए थे। मुनि मगनलालजी कुछ समय पहले वहां थे, पर मेरे पहुंचने से पहले ही वे बाहर चले गए। इस इतने बड़े हॉल के एक कोने में पूज्य गुरुदेव और मैं। हॉल से बाहर मुनि चम्पालालजी खड़े हो गए। गुरुदेव ने लेटे-लेटे ही कुछ कहना चाहा, पर कह नहीं सके। तब आपने बिठाने के लिए निर्देश दिया। मैं अपने छोटे-छोटे हाथों के सहारे आपको बिठाने का प्रयत्न करने लगा तो हाथ कांप उठे। उस दिन तक कभी वैसी सेवा करने का सौभाग्य भी नहीं मिला था। एक बार मैं घबराया, पर फिर से हिम्मत बटोरकर प्रयत्न करने लगा। तब तक मुनि चम्पालालजी आ गए। उनके सहयोग से

कालूगणी को विठा दिया। मुनि चम्पालालजी वापस चले गए।

पूज्य गुरुदेव भींत का सहारा ले पूर्व दिशा की ओर मुंह करके वैठ गए। मैं आपके सामने था। एक-दो मिनट तक न आप वोले, न मैं वोला। केवल आंखों से वात हुई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो गुरुदेव मेरे मन की थाह ले रहे थे। फिर धीरे से वोले—आज मैंने तुमको विशेष उद्देश्य से यहां वुलाया है। तुम देख रहे हो कि हाथ में वेदना वढ़ रही है। इस स्थिति में शरीर का टिकना मुश्किल लगता है। किस समय क्या हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए मैं अपना दायित्व तुम्हें सौंपना चाहता हूं।

पूज्य गुरुदेव के इन शव्दों ने मुझे एक वार तो चौंका दिया। इस रूप में कभी कोई संकेत न मिलने पर भी धर्मसंघ में मेरे वारे में धारणा काफी पुष्ट हो चुकी थी। मुझे भी थोड़ा-थोड़ा अहसास होने लगा था, पर मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि इतनी जल्दी ही कुछ होने वाला है। इसलिए मैं थोड़ा-सा सहमकर वोला—गुरुदेव! अभी मेरी अवस्था क्या है? मैं तो आपके चरणों में ही रहूंगा।

मेरे सहमे हुए मन को आश्वस्त करते हुए आपने कहा—देखो, तुम घवराओ मत। जव तक मैं हूं, मुझे काम करना ही है। अन्यथा जिम्मेवारी तुम्हीं पर आने वाली है। अव रही अवस्था की वात, उसकी चिन्ता मत करो। गांव अपने आप कोतवाली सिखा देता है।

पूज्य गुरुदेव ने जो कुछ कहा, वह मेरे लिए असह्य था। फिर भी मैं वोल नहीं सका। वोलना तो दूर की वात, आपकी आंखों के सामने देखना भी कठिन हो रहा था। फिर भी मैं वहां वैठा रहा। कालूगणी ने कुछ वातें मौखिक रूप से वतायीं। कुछ वातें लिखवायीं और कुछ विशेष निर्देश दिये। उधर कई साधु हॉल के वाहर घूम रहे थे। मैं मन-ही-मन सकुचा रहा था। लगभग आधा घण्टा की दुर्लभ उपासना का अवसर मिलने के वाद मुझे वहां से जाने का निर्देश मिला। मैं वहां से चला तो गया, पर मन पुनः-पुनः वहीं लौट रहा था। मैं उन क्षणों को भुलाने की कोशिश कर रहा था, पर वे क्षण ऐसे थे कि चलचित्र की भांति सामने घूमते रहे।

श्रद्धालुओं का मन

आधा घंटा के प्रसंग को सुनाकर आचार्यवर ने पुनः कालूगणी के क्षीण होते हुए शरीर वल की चर्चा करते हुए कहा—शारीरिक दुर्वलता के कारण पूज्य गुरुदेव का ऊपर-नीचे जाना-आना वन्द हो गया। व्याख्यान भी वन्द हो गया। श्रद्धालु लोग एक ओर से ऊपर चढ़ते और वाहर से ही दर्शन कर दूसरी ओर से नीचे उतर जाते। वेचैनी अधिक वढ़ी तो लोगों का ऊपर आना-जाना ही वन्द हो गया।

इसलिए लोग तिलमिला उठे। गुरु का दर्शन किए विना उनका मन मानता नहीं था। उन्होंने कहा—हम किसी प्रकार डिस्टर्व नहीं करेंगे। केवल हम गुरुदेव का मुखारविन्द देखना चाहते हैं। इस पर भी कार्यकर्ताओं ने ऊपर जाने की छूट नहीं दी तो वे उन्हें कोसने लगे। कालूगणी को इस बात की जानकारी मिली तो आपने प्रतिवन्ध हटाने का निर्देश दिया। श्रद्धालु लोग खिल उठे। वे दूर से ही दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ मानने लगे।

मुझे स्थान नहीं बदलना है

कालूगणी के स्वास्थ्य में थोड़ा-भी सुधार न देखकर कुछ लोगों ने दैविक उपद्रव की आशंका व्यक्त की। पर किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन मकान के नीचे वाले भाग में वीकानेर से आये हुए श्रावक जवाहरमलजी कोठारी सामायिक कर रहे थे। उन्हें सामायिक में नींद आ गई और वे नीचे गिर पड़े। उनके गिरते ही गांव में हल्ला मचा दिया गया कि कोठारीजी देव प्रकोप से गिरे हैं। इधर कुछ व्यक्तियों ने परामर्श दिया कि कालूगणी का स्थान परिवर्तन होना चाहिए। यदि किसी देव का उपद्रव होगा तो स्थान वदलने से स्वास्थ्य लाभ हो जाएगा। यह वात कालूगणी तक पहुंचाई गई। आपने विना एक भी क्षण सोचे दृढ़ता से कहा—मुझे किसी भी स्थिति में स्थान परिवर्तन नहीं करना है। पहली वात तो यह है कि मेरे मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। यदि सन्देह होता तो भी मैं ऐसा करने की वात नहीं सोचता। मुझे इस लाखों की हवेली को मिट्टी नहीं वनाना है। यदि मैंने स्थान वदल लिया तो यहां रहने की मानसिकता किसकी होगी? विना मतलव ऐसी-वैसी वात कर वातावरण को दूषित नहीं करना चाहिए। गुरुदेव की दृढ़ता का गांव पर वहुत ही अनुकूल प्रभाव हुआ। अपने आदर्शों और मूल्यों की सुरक्षा करने वाले व्यक्ति ही महापुरुष वनते हैं।

कालूगणी की आत्मनिष्ठा

पूज्य कालूगणी की अस्वस्थता के संवाद पूरे देश में फैल गये। उन संवादों ने देश की श्रद्धालु जनता को वेचैन वना दिया। उसका गांव और घर में रहना मुश्किल हो गया। सव लोगों के लिए घर छोड़कर गंगापुर आना संभव नहीं था, पर मन से वे लोग निरन्तर यात्रा करने लगे। जिन लोगों को थोड़ा भी अवकाश मिला, वे यथासंभव गंगापुर पहुंचने लगे। कुछ श्रावक अपने साथ डॉक्टरों और वैद्यों को लेकर पहुंचे। डॉक्टर-वैद्य ने कालूगणी के स्वास्थ्य की जांच की और औषधि सेवन के लिए अनुरोध किया। पूज्य गुरुदेव ने उन सवका अनुरोध यह कहकर

ठुकरा दिया कि वे सभी मेरे निमित्त औषधियां लेकर आये हैं।

डॉ० अश्विनीकुमार पूज्य कालूगणी का परम भक्त था। वह प्रायः प्रतिवर्ष दर्शन, उपासना किया करता था। उसने भी औषधि देने का आग्रह किया, पर उसकी प्रार्थना भी स्वीकृत नहीं हुई। वह रुंआसा होकर बोला—'गुरुदेव ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं तो आपका श्रावक हूं। प्रति वर्ष आपकी सेवा में आता हूं। मैं आपके संघ की मर्यादाओं से भी परिचित हूं। मेरी औषधि का सेवन करने में कौन-सा दोष है ? यह बात सुन कुछ साधुओं ने कहा—डॉक्टर साहब का कथन ठीक है। उपासना करने के लिए आने वालों की औषधि तो हम लेते ही हैं। कालूगणी अपनी मानसिकता में कुछ भी बदलाव लाये बिना बोले—मैं जानता हूं कि डॉक्टर साहब हमारे भक्त हैं और वे समय-समय पर आते रहते हैं। इनकी दवा का प्रयोग करने में दोष की संभावना नहीं है। पर इस बात को अन्य डॉक्टर, वैद्य कैसे समझेंगे। अन्य लोग भी कहेंगे कि उनकी दवा नहीं ली और इनकी ले ली, इसमें कौन-सा रहस्य है। विधि-सम्मत काम भी यदि व्यवहार-विरुद्ध लगे तो उसको सहन नहीं करना चाहिए। पूज्य कालूगणी की यह बात सुन डॉ० अश्विनीकुमार भावावेश में आकर बोला—बड़ी विचित्र बात है। हाथ में हथियार है। सामने से दुश्मन वार कर रहा है और आप कह रहे हैं कि उसका प्रतिकार नहीं करना है। यह भी कोई व्यवहार होता है ?

डॉक्टर साहब के यौक्तिक निवेदन को भी इस प्रकार अस्वीकार कर देना पूज्य कालूगणी की मानसिक दृढ़ता, व्यवहार कुशलता और मर्यादा के प्रति प्रगाढ़ आस्थाभाव का प्रतीक है। यदि आपके मन में जीवन का थोड़ा भी व्यामोह होता, मन दुर्बल होता या व्यावहारिक पक्ष पर इतनी गंभीरता से ध्यान नहीं जाता तो औषधि का उपयोग हो सकता था। औषधि सेवन या अन्य अनुकूल चिकित्सा पूज्य कालूगणी के जीवन को कुछ समय के लिए बचा लेती, यह संभावना तो की जा सकती है, पर इसमें भी नियामकता नहीं है। जो कुछ हुआ उसने कालूगणी की नितान्त आत्मनिष्ठा को पूरी तरह से उजागर कर दिया।

एक रहस्य का अनावरण

कालूगणी महान् मृत्युंजयी पुरुष थे। मौत सिरहाने खड़ी थी पर आपके मन में कोई प्रकम्पन नहीं था। आपके मनोबल को देखकर दर्शक विस्मित हो रहे थे। आपके मजबूत मनोबल की चर्चा को बढ़ाते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा—भाद्रपद कृष्णा अमावस्या को पाक्षिक प्रतिक्रमण और सामूहिक 'खपत-खामणा' करने के बाद मुनि मगनलालजी ने कालूगणी से शिक्षा देने के लिए निवेदन किया। आपने असीम अनुकम्पा कर सहजभाव से साधु-समाज और श्रावक-समाज को करणीय

का विवेक दिया। किन्तु स्पष्ट रूप से कोई वात नहीं कही। इससे मुनि मगनलालजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने प्रार्थना की—गुरुदेव ! हम जानते है कि आपको एक-एक शब्द वोलने में कष्ट हो रहा है। पर संघ को संतोष देने के लिए आपको स्पष्ट रूप में कुछ संकेत देने की कृपा करानी चाहिए। उनके अनुरोध पर कालूगणी ने फिर से वोलना शुरू किया—मेरी इच्छा तो कुछ और थी, पर वह नियति को मान्य नहीं है। इसलिए मैंने अपना काम प्रारम्भ कर दिया है। आज दिन में ग्यारह वजे मैंने उसको बुला लिया। कहने की वातें कहीं और लिखाने की लिखवा दीं। मैंने एक प्रकार अपना दायित्व सौंप दिया। अव मैं पूरी तरह से निश्चिन्त हूं। ये शब्द सुनते ही मुनि मगनलालजी वोले—गुरुदेव ! आपने वहुत वड़ी कृपा की। अव आपको अधिक कष्ट नहीं देंगे। आप लेटने की कृपा करें।

मुनि मगनलालजी का यह विशेष कौशल था कि उन्होंने थोड़े में सव कुछ कहलाकर संघ को भी सव तरह से आश्वस्त कर दिया।

अंतरंग क्षण

आचार्यश्री को अपने दीक्षागुरु कालूगणी की असीम अनुकंपा प्राप्त थी। दीक्षा देने से पहले ही आपके उज्ज्वल भविष्य के वारे में निर्णायक विन्दु पर पहुंच जाना गुरु और शिष्य दोनों की विलक्षणता का परिचायक है। दीक्षित होते ही आपको गुरु का जो वात्सल्य मिला, वह उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। गुरु के जीवन की सांध्य वेला में तो वह इतना जीवंत हो गया था कि कोई भी व्यक्ति दूर से ही उसके स्पन्दनों को पकड़ सकता था। चतुर्दशी को एकान्त वार्तालाप के वाद तो उस पर जो झीना-सा आवरण था, वह पूरी तरह से दूर हट गया। उसके वाद तो दिन में, रात में, किसी भी समय गुरु-शिष्य की निकटता और आत्मीयता एवं दायित्ववोध से भरे संक्षिप्त किन्तु सारपूर्ण संवाद होते ही रहते थे। अमावस्या से द्वितीया तक वरावर वह क्रम चला। उन अन्तरंग क्षणों की थोड़ी-सी झलक देते हुए आचार्यश्री ने वताया—उन तीन दिनों में मुझे संवीय दृष्टि से अनेक दृष्टियों से प्रशिक्षण मिला। शिक्षा कैसे देनी चाहिए? किसी का विश्वास कैसे करना चाहिए ? महापुरुष की महनीयता क्या होती है ? यह सव मुझे प्रायोगिक रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। उन दिनों पूज्य गरुदेव ने एक वार भी मेरी छोटी अवस्था को लेकर कोई शब्द नहीं कहा। न आपने भावी व्यवस्था के वारे में किसी प्रकार की चिन्ता ही व्यक्त की। अपनी ओर से कहने की वात कहकर आप मेरी ओर भरपूर नजरों से देखकर फिर कहते—मुझे विश्वास है कि तू जो कुछ करेगा, ठीक ही करेगा। तुमसे कभी ऐसा काम नहीं होगा, जो तुम्हारी छोटी

अवस्था का सूचक हो। साध्वियों के काम में झमकूजी तुम्हारा सहयोग करेगी। तुम निश्चिन्त भाव से अपना काम करते रहना। गुरुदेव के इन प्रेरक मार्ग-दर्शक और आशीर्वादात्मक शब्दों से मुझे जो शक्ति मिली, उसे मैं अभिव्यक्ति देने में सक्षम नहीं हूं।

इतिहास का सृजन

साधु-साध्वियों की उत्सुकता को देख आचार्यश्री ने बात का सिलसिला चालू रखते हुए कहा—भाद्रपद शुक्ला द्वितीया की रात्रि में सोते समय पूज्य कालूगणी ने मुझे और चम्पालालजी (सेवाभावीजी) को बुलाकर सूर्योदय के बाद पानी आते ही स्याही निकालने कलम-पटड़ी और पन्ना लाने का निर्देश दिया। साध्वीप्रमुखा झमकूजी को 'पछेवड़ी' लाने का संकेत पहले ही दे दिया गया था।

द्वितीया की वह रात गहरी उत्सुकता में बीती। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं कालूगणी भी उस समय बहुत उत्साहित नजर आ रहे थे। प्रतिक्रमण का समय होने पर प्रतिक्रमण किया। प्रतिलेखन के समय आपने नया चोपट्ट, नयी पछेवड़ी और नयी मुखवस्त्रिका धारण की। मैं हाल के दूसरी ओर प्रतिलेखन कर रहा हूं। उस समय वस्त्र-प्रक्षालन की परम्परा नहीं थी, इसलिए मेरे वस्त्र काफी मलिन थे।

सूर्योदय होते ही साध्वीप्रमुखा झमकूजी साध्वियों के साथ पहुंच गईं। मुनि मगनलालजी पहले से ही वहां थे। कालूगणी ने इधर-उधर देखकर कहा—चम्पालाल अभी आया नहीं? मुनि चम्पालालजी दूर से ही बोले—गुरुदेव! साध्वियां पानी लेकर आई ही हैं, मैं अभी आ रहा हूं। मुनि चम्पालालजी के आने पर पूज्य गुरुदेव हाथ में कागज और कलम लेकर लिखने लगे। हाथ में पीड़ा बहुत अधिक थी। मुनि मगनलालजी ने परामर्श दिया कि सारा काम साक्षात हो रहा है, तब लिखने की क्या जरूरत है? कालूगणी ने दृढ़तापूर्वक कहा—लिखना जरूरी है। मुनि मगनलालजी द्वारा दूसरी बार प्रार्थना करने पर भी गुरुदेव अपनी बात पर टिके रहे। आपने अपने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा—साक्षात् का मूल्य वर्तमान में है। इतिहास तो इसी से बनेगा। मैं अपनी ओर से किसी बात में कमी रखना नहीं चाहता। अपनी थोड़ी-सी कठिनाई को देखूं या संघ के इतिहास को?

कालूगणी के ऐसा कहने पर सब मौन हो गये। आपने लिखने की प्रक्रिया शुरू की। उस समय आपकी मुद्रा भी विलक्षण थी। एक पांव पट्ट से नीचे था। घुटने पर लिखने का पन्ना था। एक हाथ में कलम थी। दूसरे हाथ का उपयोग तो संभव ही नहीं था। उस स्थिति में भी आपने पूरे मनोयोग से अपने

उत्तराधिकारी का नियुक्ति पत्र लिखा। लिखने में कठिनाई थी। पन्ने में यत्र-तत्र स्याही अवश्य बिखर गई, पर एक भी अक्षर आपने छोड़ा नहीं। पूरा पत्र लिखकर मुनि मगनलालजी को दिया। उन्होंने स्याही सुखाई। सारा काम पूरा हो गया तब मुझे बुलाया गया। मैं दूर बैठा कुछ-कुछ देख तो रहा था, पर बिना बुलाए वहां कैसे जाता? मेरे वहां पहुंचते ही पूज्य गुरुदेव ने स्निग्ध वात्सल्यमयी निगाहों से मुझे देखते हुए वह नियुक्त-पत्र मेरे हाथ में थमा दिया। सकुचाते हुए और सहमते हुए पत्र स्वीकार किया। मुनि मगनलालजी तत्काल खड़े हुए और उन्होंने पत्र पढ़कर सुना दिया। उस समय कुछ साधु-साध्वियां और कुछ श्रावक ही उपस्थित थे। साधु सब उसी मचान में थे, पर जो सहज रूप में वहां आए हुए थे, वे ही थे। विशेष सूचना देकर किसी को बुलाया नहीं गया।

पत्र सुनाने के बाद पूज्य गुरुदेव ने एक नयी पछेवड़ी ओढ़ी, उतारी और मुझे निकट बुलाकर ओढ़ा दी। उस समय मैं तो एक शब्द भी नहीं बोल सका। कुछ बोलना चाहिए या नहीं, यह अनुभव भी नहीं था और किसी ने सुझाया भी नहीं। मैं बद्धांजलि होकर गुरुदेव के सामने बैठा रहा। मुनि मगनलालजी ने कालूगणी के गुणगान करते हुए कहा—आपने शासन की समुचित व्यवस्था कर हमको निहाल कर दिया। उन्होंने उस समय एक दोहा भी कहा—

रंग भवन में रंगरली, पद युवराज प्रकाश।
मुनिच्छत्र महिमानिलो, पूरण करदी प्यास॥

पूज्य कालूगणी उन क्षणों में पूरी तरह से सहज और प्रसन्न थे। आपने कहा—अब मैं सर्वथा निश्चिन्त हूं। आज से सारा काम यही करेगा।

युवाचार्य सन्तों की पंक्ति से अलग

साध्वियां प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय होते ही गुरु-वंदना के लिए आचार्य के पास पहुंचती हैं। उस समय यह परम्परा थी कि आचार्य को वन्दना करने के बाद एक साध्वी आचार्य के साथ रहने वाले सब साधुओं का क्रमशः नामोल्लेख करती और सब साध्वियां वन्दना करती जातीं। उस दिन वन्दना के क्रम में सदा की भांति आचार्य-वंदन के बाद दीक्षा-पर्याय से बड़े-छोटे साधुओं का नाम आता रहा। जहां मेरा क्रम था, वहां मेरे नाम से वन्दना की गई। नामोल्लेखपूर्वक वन्दन कर रही थी साध्वी किस्तूरांजी (लाडनूं)। वह आगे बढ़ ही रही थीं कि कालूगणी ने टोकते हुए कहा—क्या वंदना करती हो? जानती भी नहीं कि युवाचार्य का नाम कब और कैसे लिया जाता है? फिर से वंदना करो। साध्वी विनम्रता से अपनी भूल स्वीकार कर फिर बोलने लगी। इस बार उसने मेरा नाम छोड़ ही दिया। कालूगणी ने उसको बीच में टोक दिया और कहा—अब भी वन्दना ठीक से नहीं

की। यह वात सुन साध्वी किस्तूरांजी घवरा गईं। कालूगणी ने उनको यह संकेत तो दो वार कर दिया कि वन्दना का क्रम ठीक नहीं है। पर यह नहीं वताया कि उसका क्रम कैसे रखा जाए? साध्वी की घवराहट देखकर मुनि मगनलालजी ने उनका मार्ग-दर्शन देते हुए कहा—'पहले आचार्य को वन्दना करो। उसके वाद 'मत्थएणं वंदामि युवाचार्य महाराज' इस रूप में युवाचार्य को वन्दना करो। फिर क्रमशः सव साधुओं का नाम वोलो।' इस क्रम से वन्दना करने पर कालूगणी ने साध्वीजी को उत्तीर्ण वताते हुए कहा—अव क्रम ठीक हुआ है। युवाचार्य को सन्तों की पंक्ति से अलग करना ही होगा।

साध्वी किस्तूरांजी क्या, वहां जितनी छोटी-वड़ी साध्वियां थीं, कोई भी उस विधि से परिचित नहीं थी। साधुओं को भी उसका ध्यान नहीं रहा। मुनि मगनलालजी का ध्यान भी तव गया, जव कालूगणी ने संकेत किया। लगभग चलीस वर्षों से वैसा कोई प्रसंग ही सामने नहीं आया था। उस दिन पूज्य गुरुदेव ने सव साधु-साध्वियों को एक संघीय विधि का सक्रिय प्रशिक्षण दे दिया।

एक नयी यात्रा का प्रथम दिन

आचार्यश्री उस घटना-प्रसंग के द्रष्टा ही नहीं, भोक्ता भी थे। आपने उसके एक-एक क्षण को जीया या नहीं, कहना कठिन है, पर आपकी स्मृतियों में वे सभी क्षण जीवंत हैं, ऐसा कहा जा सकता है। युवाचार्य की नियुक्ति होने के वाद तो सारे क्षण आपको जीने ही पड़े थे। उन क्षणों को शब्दों में वांधते हुए आपने कहा—कालूगणी ने अपने पीछे युवाचार्य की नियुक्ति कर दी, यह संवाद कुछ देर में पूरे गांव में पहुंच गया। संवाद मिलते ही लोग अपने-अपने काम छोड़कर हिरणों के मोहल्ले में पहुंच गए। रंग-भवन के चौक से लेकर ज्ञान-चौक तक सारा स्थान जनसंकुल हो गया। वे मुझे देखने के लिए उतावले हो रहे थे। उधर मैं अपने वारे में कुछ सोच ही नहीं पा रहा था। मुझे अव क्या करना चाहिए? किसी ने कुछ नहीं वतलाया। आखिर कालूगणी ने कहा—इसका चोलपट्ट भी वदल दो। इतनी छोटी-सी वात की ओर भी अन्य किसी का ध्यान नहीं गया। साध्वीप्रमुखा झमकूजी को पछेवड़ी लाने के लिए कहा गया, वह पछेवड़ी ले आईं। पछेवड़ी के साथ नया चोलपट्ट लाने की वात न उन्हें सूझी, न मुनि मगनलालजी को। दूसरों का ध्यान जाना तो संभव ही नहीं था। कालूगणी का संकेत मिलते ही सवको अनुभव हो गया कि यहां फिर साधु-साध्वियों की अनुभवहीनता प्रकट हुई है।

चोलपट्ट वदलकर मैं उपस्थित हुआ तो पूज्य गुरुदेव ने कहा—अव पंचमी समिति के लिए जाओ। पात्री में पानी लेकर साथ चलने का निर्देश मिला मुनि नथमलजी को। अन्य सव सन्तों को साथ में जाने की आज्ञा प्राप्त हुई। मुनि

मगनलालजी भी उठकर साथ चलने लगे तो उनको गुरुदेव ने वहीं रोक लिया। मैं गुरुदेव की आज्ञा लेकर नीचे उतरा तो चलना मुश्किल हो गया। एक तो भीड़ ही अधिक थी। दूसरी वात—मुझे पहली बार इस रूप में इतनी आंखों का सामना करना पड़ रहा था। सव लोग मेरी ओर देख रहे थे। मेरी आंखें धरती की ओर थीं। स्वाभाविक संकोच से मैं कैसा-कैसा ही अनुभव कर रहा था। फिर भी चलना तो था ही। चला और ज्ञानचौक तक पहुंचने में पन्द्रह मिनट का समय लग गया। वाहर जाकर लौट आए। गुरुदेव को वंदना की। अब वैठना कहां? कौन बताए? गुरुदेव ने कहा—सामने वाली कोठरी में पट्ट विछा दो। यह वहां वैठेगा। पट्ट पर वैठना भी मुश्किल लगा, फिर भी वैठा। फिर सन्तों को पांव प्रमार्जन करने का संकेत मिला। इसमें भी मुझे संकोच का अनुभव हुआ। थोड़ी देर हुई और व्याख्यान में जाने का निर्देश मिला। उन दिनों कालूगणी की अस्वस्थता बढ़ने के बाद मैं उपदेश देता था और मुनि मगनलालजी व्याख्यान देते थे। उस दिन 'कभी गाडा नाव में और कभी नाव गाडे में' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। मुनि मगनलालजी ने उपदेश दिया और मुझे व्याख्यान देना पड़ा। सामान्य व्याख्यान देने में मेरी रुचि थी, पर उस दिन रुचि अनिवार्यता में वदल गई। व्याख्यान तो मैंने दिया, पर श्रोताओं के साथ तादात्म्य नहीं जुड़ा। जुड़े भी कैसे। मैंने उनकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। मेरी निगाहें तो व्याख्यान के पन्ने पर केन्द्रित थीं।

मैं देखता रह गया

आचार्यश्री अपने संस्मरण सुना रहे थे तब ऐसी प्रतीति हो रही थी मानो सब कुछ सामने ही घटित हो रहा है। उधर ज्ञानचौक में नवनिर्मित कालू कल्याण कुंज के सामने बने प्रवचन-पण्डाल में सैकड़ों-सैकड़ों लोग आचार्यश्री की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर आचार्यश्री पूरी रसमयता के साथ अपने अतीत का अनावरण कर रहे थे। समय कम था फिर भी आपने आगे कहा—भाद्रपद शुक्ला तृतीया और चतुर्थी का समय जैसे-तैसे निकल गया। पंचमी को संवत्सरी थी। उस दिन उपवास था ही। स्वास्थ्य की स्थिति देखते हुए वार-वार विचार आ रहा था कि आज का दिन कैसे निकलेगा? गुरुदेव सुवह से ही लेटे हुए थे और दिन भर लेटे रहे। कभी वेचैनी होती और कभी वेहोशी-सी आती। संवत्सरी का व्याख्यान मैंने दिया। व्याख्यान पूरा कर आया। आपको वन्दना की। आप आंखें वन्द किए लेटे थे। कुछ निवेदन करने की स्थिति भी नहीं थी। मैं चला गया।

रात ढलने के बाद थोड़ी ठंडी हवा चली तब पूज्य गुरुदेव को होश हुआ। आपने उसी समय मुझे अपने पास बुलाकर कहा—कल मैं दिन भर निढाल रहा।

तू व्याख्यान देकर कब आया, मुझे पता ही नहीं चला। तुमने उपवास में इतनी देर व्याख्यान दिया, प्यास का अनुभव तो नहीं हुआ? मैं दिन भर पूछ ही नहीं सका। पूज्य गुरुदेव की यह असीम अनुकंपा मुझे भीतर तक भिगो गई। मैं गद्गद हो गया। अधिक तो कुछ बोल ही नहीं सका। केवल एक ही वाक्य निवेदन कर सका—गुरुदेव आपको कितनी बेचैनी रही, आप मुझे क्या पूछते!

वह रात सामान्य ढंग से बीत गई। प्रातः उपवास का पारणा अच्छी तरह से हो गया। इससे सबको बड़ा संतोष हुआ। गुरुदेव की आकृति में भी कोई अन्तर नहीं आया। मन में एक नयी आशा का संचार हुआ। दिन भर सब काम व्यवस्थित रूप में होते रहे। अपराह्न में आप नीचे की ओर सोए। पंचमी समिति से लौटने के बाद मैं आपकी सेवा में ही था। सूरज अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। लगभग ३५ मिनट दिन शेष था। आपने सहसा एक वाक्य कहा—'मगनलालजी स्वामी कहां हैं?' वे पंचमी समिति के लिए गए थे। एक साधु उन्हें सूचित करने के लिए गया। वे रास्ते में आ ही रहे थे। सूचना मिलते ही तत्परता से पहुंचे। पहुंचते ही उन्होंने कहा—मैं आ गया हूं। पूज्य कालूगणी ने उनकी ओर देखा और सांकेतिक भाषा में कहा—'अब!' मुनि मगनलालजी उस भाषा को समझते थे। उन्होंने पूछा—आपको अनशन (संथारा) करा दूं? पूज्य गुरुदेव ने स्वीकृति दी और उन्होंने यावज्जीवन के लिए चार आहार का त्याग करा दिया। मैं पास ही खड़ा था। मुनि मगनलालजी के साहस को मैं देखता ही रह गया। उन्होंने मुझे पूछा तक नहीं। एक क्षण के लिए यह बात मन में आई। फिर सोचा—पूछते तो समय चला जाता। उन्होंने बड़ी सूझबूझ से काम लिया था। यदि उस समय वे नहीं होते तो शायद अनशन नहीं हो पाता। उन्होंने अपने गुरु और बचपन के साथी पूज्य कालूगणी को अंतिम समय में ऊंचा आध्यात्मिक सहयोग देकर कृतार्थता का अनुभव किया। दवा और पानी साधुओं के हाथ में था, पर आपको अब कुछ लेना-देना था नहीं। हम सब उनके सौम्य मुख-मंडल को देखते रहे। देखते ही देखते सात मिनट बाद प्राण त्याग दिए।

यह कैसी रीत

आचार्यप्रवर पूरे उत्साह के साथ पांच दशक पहले के इतिहास को दोहरा रहे थे। रेडियो और टी० वी० जैसे आधुनिक संयंत्रों के बिना भी आचार्यवर श्रव्य और दृश्य दोनों रूपों में उन क्षणों को बांधकर प्रस्तुति दे रहे थे। कालूगणी के स्वर्गारोहण का प्रसंग आते ही आप कुछ अधिक ही गंभीर हो गए। उससे आगे के वृत्त को संक्षेप में रखते हुए आचार्यवर ने कहा—पूज्य गुरुदेव अपनी जीवन-यात्रा को इतनी जल्दी सम्पन्न कर देंगे, मुझे ऐसी कल्पना नहीं थी। पर नियति को

यही मान्य था। उन्होंने अपना सब कुछ मुझे सौंपा, किन्तु स्वयं का साया उठा लिया। मन पर एक आघात-सा लगा, पर मैंने अपने आपको बहुत जल्दी सम्भाल लिया। गांव में सबको सूचना प्राप्त हो गई। देश भर में मुख्य-मुख्य स्थानों में टेलीग्राम संवाद पहुंचा दिया गया। लोगों का आगमन शुरू हो गया।

पूज्य गुरुदेव का शरीर हमारे सामने पट्ट पर रखा हुआ था। शरीर को देखने से कुछ अनुभव नहीं हो पाया पर प्राणपंछी अपनी मंजिल तय कर चुके थे। लगभग ३६ मिनट तक शरीर को उसी स्थिति में रखा गया। उसके बाद जमीन पर चिलमिली बिछाकर उसे नीचे लिटाया गया। सन्तों ने वस्त्र परिवर्तित किए। मैं सामने बैठा देख रहा था। अब मुनि मगनलालजी आए और बोले—पधारो, शरीर का व्युत्सर्ग आप करो। मुझे बहुत अटपटा लगा। अनशन करवाया उस समय तो मुझे पूछा भी नहीं और देह-व्युत्सर्ग करने का समय आने पर मुझे बुलाया गया। यह कैसी रीत ? पर दूसरा कोई उपाय भी नहीं था। सत्ताईस वर्ष तक जिस शरीर के स्वामी ने संघ को त्राण दिया, संरक्षण दिया, आज वही नहीं रहा था। फिर शरीर का करना ही क्या था ? संघीय विधि के अनुसार देह का व्युत्सर्ग करने पर श्रावक लोगों ने अपना दायित्व सम्भाल लिया। वे पूज्य गुरुदेव के शरीर को उठाकर नीचे ले गए। वहां तिरबारी के खंभे के निकट पट्ट बिछाकर उसे विराजमान कर दिया। रात-भर रंग-भवन में भीड़ लगी रही। उस रात सभी सन्त ऊपर हाल में थे। नीचे श्रावक थे। वे लोग रात भर संगीत गाते रहे। जयपुर के श्रावक गुलाबचन्दजी लूणिया कई दिनों से गंगापुर आए हुए थे। उन्होंने एक गीत बनाकर गाया—

'ॐ जय कालू गुरुदेव !
धन्य जमारो तिण रो, निशदिन सारी सेव।'

पूरा गीत भक्ति रस से ओत-प्रोत था। लूणियाजी ने उसे जितने उत्साह से गाया, वह उतना ही लोकप्रिय हो गया।

मन नहीं भरा

पूज्य कालूगणी की बढ़ती हुई अस्वस्थता और डॉक्टर, वैद्यों के निराशाजनक अनुभवों से गंगापुर के श्रावक अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो गए थे। उन्होंने अंतिम यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। उस अभिक्रम में पैंसठ खण्डों की बैकुंठी बनवाई गई। उसमें पैंसठ चांदी के कलशिये लगे। इक्यावन सौ चांदी के रुपये उछाल के लिए मंगवाए। उछाल के लिए दस भरी सोने के फूल बनवाए गए। उदयपुर का लवाजमा तीन दिन पहले ही आ गया था। मलयगिरि चन्दन भी मंगवा लिया गया। इन सब चीजों का धार्मिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है।

लोकोपचार के सामने रखकर ही यह सब किया जाता है। इस प्रसंग को यहां उल्लिखित करने का उद्देश्य भी मात्र इतिहास का आकलन करना है। मूलतः पूज्य गुरुदेव कालूगणी का कर्तृत्व और व्यक्तित्व इतना प्रभावी था कि जन-जन के मन में उनके प्रति असीम आस्था थी।

रंग-भवन में आज भी मलयगिरि चन्दन के टुकड़े, शाटन का वस्त्र, मोती, स्वर्णफूल चांदी के रुपये आदि वस्तुएं इतिहास के दुर्लभ दस्तावेज के रूप में सुरक्षित रखे हुए हैं। उस दिन आचार्यप्रवर की मंगल सन्निधि में, संस्मरणों के मधुर वातावरण में वहां उपस्थित प्रायः सभी साधु-साध्वियों ने उन वस्तुओं का निरीक्षण किया। रंग-भवन में वे पट्ट भी सुरक्षित हैं, जो कालूगणी के बैठने और सोने के काम में आते थे। आचार्यवर ने भी वहां उन्हीं पट्टों का उपयोग किया।

आचार्यश्री अपने दायित्वपूर्ण जीवन के प्राथमिक दिनों की मनःस्थिति और अनुभूति को भी बताना चाहते थे और सुनने वालों की तो वहां से उठने की इच्छा ही नहीं होती थी, पर प्रवचन-पण्डाल में प्रतीक्षारत जनता की उपेक्षा भी संभव नहीं थी। उन अनछुए नितान्त व्यक्तिगत अनुभवों को सुने बिना ही वहां से उठना कैसा-कैसा ही लगा। किसी का मन नहीं भरा था। पर जब आचार्यवर प्रवचन-पंडाल में पधार गए तो उस हाल में बैठे रहने का कोई अर्थ भी नहीं था। धीरे-धीरे सब उठे और वहां बिछी हुई साधु-साध्वियों की धवलिमा अदृश्य हो गयी। आचार्यवर ने प्रवचन में कालूयशोविलास का वाचन किया, जो बहुत प्रासंगिक लगा। जो लोग उस घटनाचक्र के प्रत्यक्षदर्शी थे, उन्हें तो सब कुछ साक्षात्कार करने जैसा ही लगने लगा था। वास्तव में ही वे क्षण बहुत दुर्लभ क्षण थे।

संघ का अनुरोध

आचार्यवर ५ मई को गंगापुर से प्रस्थान करने वाले थे। भारतीय तिथि मास के अनुसार उस दिन जेठ कृष्णा एकम का दिन होता था। ज्योतिष में विश्वास करने वाले लोग जेठ की प्रतिपदा को वर्जित तिथि मानते हैं। आचार्यवर न तो किसी विद्या में अविश्वास करते हैं और न अतिविश्वास करते हैं। आपने सहजभाव से ५ मई को विहार करने का निर्णय लिया था। गंगापुर के श्रावक किसी भी स्थिति में उस दिन विहार कराने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने आचार्यश्री से ठहरने का अनुरोध किया। आचार्यवर ने ५ मई को आमली में निश्चित कार्यक्रम का हवाला देकर अपने निर्णय में परिवर्तन की संभावना क्षीण कर दी। गंगापुर के श्रावक भी हार मानकर बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने आमली के श्रावकों से सम्पर्क कर सारी बात कही और उन्हें अपने साथ कर लिया। उन लोगों ने भी गंगापुर में आचार्यवर के दर्शन कर ५ मई को वहीं रुकने का निवेदन किया। आसपास

के गांवों से समागत अन्य व्यक्ति भी गंगापुर वालों का समर्थन कर रहे थे। संघ के विनम्र अनुरोध के सामने आचार्यवर को अपना निर्णय वदलना पड़ा। ५ मई को गंगापुर में रहने की घोषणा ने सव लोगों को अत्यधिक उल्लसित कर दिया। गंगापुर के श्रावक समाज ने उस एक दिन को वहुत करके माना।

गंगापुर में आचार्यवर का यह पन्द्रह दिन का प्रवास अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। अक्षय तृतीया और अमृत महोत्सव के आयोजन तो अपने आप में विशिष्ट थे ही, क्षेत्रीय संभाल की दृष्टि से भी वहुत अच्छा काम हुआ। एक-एक परिवार के एक-एक व्यक्ति को निकटता से संभाला गया। वहां के कुछ लोग संघीय गतिविधियों की आलोचना करने वाले थे। उनको सलक्ष्य समझाया गया। आचार्यवर के वत्सल स्पर्श से उनका रोम-रोम संवेदित हो उठा। उन्होंने भविष्य में कभी आलोचना न करने का संकल्प स्वीकार किया। जिन लोगों का सम्पर्क कम था, उन्हें संपर्क वढ़ाने की प्रेरणा मिली। उन्होंने प्रतिदिन सामायिक और दर्शन करने की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

साध्वी आनन्दकुमारीजी पिछले वाईस महीनों से वहां प्रवासित थीं। कारण उनके साथ उनकी संसारपक्षीया माता साध्वी सुजानाजी वृद्धा थीं। वे तपस्या भी अच्छी करती थीं। उनकी तपस्या और साध्वियों की सेवाभावना का वहां अच्छा प्रभाव था। आचार्यवर ने साध्वीजी के प्रवास-स्थल पर पधारकर उन्हें उपासना का अवसर दिया। इससे वृद्ध साध्वीजी को परम समाधि का अनुभव हुआ।

शिक्षा के अमूल्य वोल

गंगापुर में अमृत महोत्सव का कार्यक्रम धर्मसंघ के इतिहास की प्रथम घटना थी। सभी साधु-साध्वी ऐसे अपूर्व अवसर पर उपस्थित रहना चाहते थे। पर यह तो संभव होने वाली वात नहीं थी। मेवाड़ क्षेत्र में उस समय जितने साधु-सध्वियां थीं, उन सवको गंगापुर पहुंचने का निर्देश मिल गया। लगभग सौ साध्वियां और पचास साधु वहां उन ऐतिहासिक क्षणों को अपनी आंखों से देख सके। गंगापुर के वाद सवको अलग-अलग क्षेत्रों में जाना था। साध्वियों ने अनुरोध किया कि विहार से पूर्व एक वार उन्हें गुरुदेव के शिक्षावचन सुनने का सौभाग्य मिले तो सोने में सुगंध हो जाए। साध्वियों का अनुरोध स्वीकार कर आचार्यवर ने उनको ५ मई को प्रातः समय दिया। साध्वियों को संवोधित करते हुए आपने कहा—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते, पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र विवर्धन्ते, दुर्भिक्षं मरणं क्षयः॥

—जहां अपूज्य की पूजा होती है और पूज्य की अवहेलना होती है, वहां दुर्भिक्ष,

मृत्यु और विनाश की वृद्धि होती है। यह एक प्रासंगिक तथ्य है। इसका प्रतिपाद्य यह है कि जिनको प्राथमिकता मिलनी चाहिए, वे यदि गौण हो जाते हैं तो वांछित लाभ नहीं मिल सकता। विनय और वैराग्य हमारे धर्मसंघ के मौलिक मूल्य हैं। इनको सर्वाधिक महत्त्व मिलना चाहिए। किसी भी स्थिति में इनका व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए। ललाट नाक से ऊपर ही अच्छा लगता है। नाक यदि ललाट से ऊपर चढ़ जाए तो आदमी का चेहरा ही भद्दा हो जाए। विद्या, कला, शिक्षा—सबका अपना मूल्य है। पर इनका मूल्य विनय और वैराग्य से अधिक नहीं हो सकता। आभूषण और वस्त्र शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, पर इनका सौन्दर्य तभी तक है, जब तक शरीर सजीव है।

साधु-जीवन का आधार है संयम। संयम का विश्लेषण करते हुए आचार्यवर ने आगे कहा—हमारा ध्यान संयम पर केन्द्रित रहना चाहिए। संयम निर्मल है तो सब कुछ है। हमारे संघ की शोभा और आभार का मूलभूत कारण संयम है। इसका दूसरा कारण है आचार्यनिष्ठता। संघ के सब सदस्यों की दृष्टि एक स्थान पर टिकी हुई रहती है। तद्दिट्ठी, तम्मुत्ती, तप्पुरक्कारे, तस्सन्नी तन्निवेसणे—यह आगमवाणी हमारी संघीय व्यवस्था पर पूरी तरह से सही उतरती है। हमारा संघ जितना आचार्य केन्द्रित है, आचार्य भी उतने ही संघ केन्द्रित हैं। वे क्षण-क्षण संघीय विकास के लिए जागरूक रहते हैं। इसलिए किसी भी सदस्य को अपनी चिन्ता करने का अवसर नहीं आता। जब कभी कोई विशेष समस्या सामने हो, तत्काल गुरु की स्मृति करो, दिमाग का भार उतर जाएगा। गुरु के प्रति समर्पित रहने वाला साधक निश्चिन्त रहता है। इस दृष्टि से संपूर्ण समर्पण की भावना का विकास करना चाहिए। गुरु के प्रति समर्पण और साथियों के प्रति प्रमोद भावना—यह है निश्चिन्त जीवन का एक प्रयोग। आपके साथ कोई भी साध्वी रहती है, उसमें कुछ न कुछ विशेषता तो है ही। उस विशेषता का चिन्तन करते समय उसकी दुर्बलता को मन से निकाल दो। किसी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है—

श्लोकार्थस्वादकाले तु शब्दोत्पत्तिविचिन्तकाः।

—काव्य के कथ्य का आनन्द लेते समय शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में चिन्तन करने वाला व्यक्ति काव्यरस का आस्वादन नहीं कर सकता। इसी प्रकार वैशिष्ट्य का चिन्तन करते समय गलती को उभारने वाला साधक प्रमोद भावना का विकास नहीं कर सकता।

भावना, अनुप्रेक्षा को सफलता का अमोघ साधन बताते हुए परमाराध्य आचार्यवर ने साध्वियों को मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना का अभ्यास करने की विशेष प्रेरणा दी। ये चार भावनाएं आत्मसात हो जाएं तो साधक का आंतरिक और व्यावहारिक जीवन आनन्द से अनुप्राणित हो सकता है। साध्वियों

ने गुरुदेव की इस अमूल्य शिक्षा को अपनी जीवनयात्रा में विशेष संवल के रूप में स्वीकार किया।

जैन समाज का सौहार्द

अमृत महोत्सव के अवसर पर गंगापुर में समाज के सब लोगों ने एकजुट होकर काम किया। जिसको जहां नियुक्त किया गया, पूरी निष्ठा से कर्त्तव्य का पालन हुआ। आगन्तुक लोगों पर उनकी संगठन शक्ति का अच्छा प्रभाव हुआ। तेरापंथी श्रावकों के अतिरिक्त अन्य जैन-अजैन लोग भी हर काम में सहयोगी रहे। आवास-व्यवस्था में सार्वजनिक स्थान उपलब्ध कराने में शिक्षामंत्री श्री रामपालजी उपाध्याय का सक्रिय सहयोग मिला। स्थानकवासी समाज में भी अधिकांश लोग सौहार्द और समन्वय की भावना से भरे हुए थे। कुछ लोगों की फूट डालने वाली हरकत से वे स्वयं दुःखी थे। इस वात की जानकारी तव मिली जव वड़े साजन और ल्होड़े साजन को लेकर चल रहे सामाजिक संघर्ष को समाप्त करने की दृष्टि से स्थानकवासी और तेरापंथी समाज के प्रमुख लोग आपस में मिले। स्थानकवासी समाज की ओर से उन्होंने वहुत ही आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए कहा—'हमारे समाज के कुछ लोगों ने आपके संघ से वहिष्कृत साध्वी को प्रश्रय देकर हमारी हलकी लगाई। हमने पहले से यह निर्णय ले रखा था कि राष्ट्र के महान् आचार्य हमारे गांव में आ रहे हैं, हम सवको इनके प्रवास का लाभ लेना चाहिए। इसी भावना से हमने अपने समाज की साध्वियों (साध्वी प्रेमकंवरजी आदि) को कह दिया था कि यहां जव तक आचार्यजी का प्रवास हो, आपको नीचे व्याख्यान नहीं देना है। उन्होंने नीचे व्याख्यान नहीं दिया। हमने अपने समाज के लोगों से भी कह दिया कि जिनको आचार्यजी का व्याख्यान सुनना है, वे वहीं सुनें। वाकी लोग साध्वियों के स्थान पर ऊपर ही व्याख्यान सुनें। इस समय हम पब्लिक व्याख्यान का आयोजन नहीं करेंगे। हमारे इस चिन्तन के वावजूद कुछ लोगों ने गलत तत्त्व को प्रश्रय दिया, इस वात का हमें दुःख है।'

स्थानकवासी समाज के उन प्रमुख लोगों का यह चिन्तन वास्तव में ही उनके समन्वयमूलक विचारों का प्रतीक है। वैसे हर समाज में कुछ व्यक्ति अपनी पकड़ पर चलने वाले मिल ही जाते हैं। तेरापंथी समाज के लोगों ने भी उनकी इस उदारता पर उन्हें साधुवाद दिया और कुछ लोगों द्वारा की गयी हरकतों में उनका हाथ न होने का अखण्ड विश्वास व्यक्त किया। इससे दोनों समाजों के वीच सहज सद्भावना की वृद्धि हुई।

शिवरती या सौरती

गंगापुर से छह किलोमीटर की दूरी पर डेढ़ हजार की आबादी वाला गांव है शिवरती। शिवदानसिंहजी दरबार के नाम को केन्द्र में रखकर गांव का नामकरण हुआ, ऐसा कहा जाता है। बोलचाल की भाषा में शिवरती को सौरती भी बोला जाता है। कुछ लोगों का अभिमत है कि गांव का प्राचीन नाम सौरती था। आधुनिकीकरण के क्रम में वह शिवरती हो गया। वैसे प्राकृत व्याकरण के अनुसार शिवरती का सौरती रूप सहज ही बन जाता है। लगभग पांच दशक पहले गंगापुर चातुर्मास के लिए आते समय पूज्य गुरुदेव कालूगणी का वहां पदार्पण हुआ था, यह सूचना कालूयशोविलास में उपलब्ध है। उस समय गांव का नाम सौरती ही प्रसिद्ध था। आचार्यवर ने इस शब्द पर श्लेषात्मक टिप्पणी करते हुए लिख दिया—

एक रती विण सौ रती, स्याणी ! कहसी कौण ?

एक रती या सौरती का होना और न होना एक बात है। पर इतिहास पुरुष के साथ किसी भी क्षेत्र का इतिहास जुड़ता है, वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

तेरापंथ के सातवें आचार्यश्री डालगणी के समय में सौरती श्रद्धा का क्षेत्र बना। इस समय वहां केवल तीन परिवार तेरापंथी हैं। इन परिवारों के सदस्य भी स्थायी रूप में रहने वाले बहुत कम हैं। आचार्यवर के गंगापुर प्रवास और महेन्द्रगढ़, आमली आदि के कार्यक्रमों की सूचना पाकर बम्बई रहने वाले कई सदस्य गांव में पहुंच गए। उन्होंने गंगापुर दर्शन कर सौरती पधारने का अनुरोध किया। पर आमली का कार्यक्रम पहले से ही निर्धारित होने के कारण वहां समय लगाना संभव नहीं था। गांववासी चाहते थे कि ठहरने के लिए समय अनुकूल न हो तो आचार्यश्री उन लोगों को पन्द्रह मिनट उपदेश सुनाकर आगे पधार जाएं। पर उनके गांव को अछूता न छोड़ें। गांव में होकर जाने से चक्कर भी पड़ता था। एक ओर भावना की तीव्रता, दूसरी ओर समय की अनुकूलता का अभाव। दो दिनों तक कसमकस-सी चलती रही। आखिर आचार्यवर ने उनको हम साध्वियों का रात्रिकालीन प्रवास कराने का निर्देश देकर राजी कर लिया।

आचार्यवर को अपने गांव और घर के बीच में पाकर उनको जो सन्तोष एवं आनन्द मिलता, उसकी पूर्ति तो कौन कर सकता था। फिर भी अपने छोटे से गांव में एक साथ हम तेरह साध्वियों को देखकर वे पुलक उठे। राजकीय विद्यालय में साध्वियों के प्रवास की व्यवस्था थी। रात्रि में गांव के काफी लोग सत्संग में उपस्थित हुए। संगीत, भाषण आदि सुनने का आनन्द सभी ने लिया, पर त्याग-प्रत्याख्यान के प्रसंग में कुछ ही व्यक्ति खड़े हुए। उन्होंने शराब, बीड़ी आदि

मादक वस्तुओं का परित्याग कर अपने जीवन को नयी दिशा दी। दूसरे दिन प्रातः काफी लोगों ने गंगापुर से आमली के रास्ते में आचार्यवर के दर्शन कर अपनी भावना को आंशिक रूप में पूरा किया।

कुछ चौंकाने वाले तथ्य

गंगापुर से उत्तर में बारह किलोमीटर की दूरी पर एक गांव है आमली। ढाई हजार की आबादी वाले उस गांव में पांच सौ परिवार रहते हैं। कुछ लोग खेती करते हैं और कुछ व्यवसाय करते हैं। गांववासियों में पारस्परिक सामंजस्य अच्छा है। सभी वर्गों के लोग वहां मानवीय एकता के धागे से जुड़े हुए हैं।

आचार्य भिक्षु के समय से ही धार्मिक चेतनासंपन्न उस गांव में आचार्यश्री भारमलजी, आचार्यश्री रायचन्दजी, आचार्यश्री जीतमलजी, आचार्यश्री कालूरामजी और आचार्यश्री तुलसी के मंगल चरण टिक चुके हैं। कभी-कभी वहां साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी होते हैं। तेरापंथी परिवारों की संख्या तेरह है, पर पूरे गांव के अधिकांश लोगों पर तेरापंथ और अणुव्रत का प्रभाव है। सन् १९७२ से वहां अणुव्रत समिति काम कर रही है। समिति के माध्यम से आमली में अणुव्रत न्याय पंचायत स्वच्छता समिति, अणुव्रत परीक्षा आयोजना, अणुव्रत पुस्तकालय एवं वाचनालय, अणुव्रत साक्षरता केन्द्र, दीवारों पर आदर्श वाक्यों का लेखन आदि कई प्रवृत्तियां चल रही हैं। अब तक बीस-पचीस भाई अणुव्रती भी बन चुके हैं।

आचार्यप्रवर के आचार्यकाल के यशस्वी पचास वर्षों की उपलब्धि के रूप में कुछ गांवों को अणुव्रत-ग्राम बनाने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय की क्रियान्विति के लिए जिन गांवों का चयन हुआ उनमें एक नाम आमली का भी था। वहां चातुर्मास करने वाले साधु-साध्वियों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया। स्वर्गीय मुनि नेमीचन्दजी और मुनि सुखलालजी के प्रयत्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अणुव्रत समिति के कार्यकर्ता भी जागरूक भाव से काम करते रहे। उनके सामने मुख्य रूप से काम करने के चार मुद्दे थे—व्यसन-मुक्ति, आपसी विवाद-मुक्ति, रूढ़ि-मुक्ति और अज्ञान-मुक्ति। उन सब प्रयत्नों, प्रवृत्तियों और निष्पत्तियों का आकलन करने से कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आए—

- वहां के ९५ प्रतिशत व्यक्ति शराब से मुक्त हैं।
- वहां धूम्रपान करने वालों का अनुपात भी कम है।
- वहां मृत्युभोज करने वालों की संख्या में भी काफी कमी आई है।
- वहां का कोई परिवार भूमिहीन और बेरोजगार नहीं है।
- वहां शिक्षा और चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था है।

- वहां के वीस विवादों को समझौता वार्ता द्वारा सुलझाया गया।
- वहां का कोई भी केस इस समय कोर्ट में नहीं है।
- वहां पुराना शराव का ठेका था। पर अधिकांश लोगों द्वारा शराव छोड़ देने से वह ठेका समाप्त होने की स्थिति में आ गया।
- वहां रहने वाले लोगों में अस्पृश्यता की भावना में काफी कमी आई है।
- वहां रहने वाले प्रायः सभी वर्गों के लोग अणुव्रत में निष्ठा रखते हैं और अणुव्रत के साथ जुड़े हुए हैं।

अणुव्रत ग्राम : आमली से आम्रावली

६ मई को प्रातः आचार्यश्री गंगापुर से प्रस्थान कर आमली पहुंचे। राजकीय माध्यमिक विद्यालय में प्रवास की व्यवस्था थी। छोटा-सा गांव आचार्यश्री के आगमन से जनाकीर्ण हो गया। अभिनन्दन कार्यक्रम में स्थानीय लोगों के साथ आसपास के गांवों से भी वहुत लोग उपस्थित थे। स्वागत की औपचारिकताओं के वाद स्थानीय अणुव्रती कार्यकर्ता श्री रामनारायण चेचाणी ने अणुव्रत की गति-प्रगति के वारे में जानकारी देते हुए अनुरोध किया कि वहां अणुव्रत कार्य को गतिशील बनाये रखने के लिए क्षेत्र की वरावर संभाल होती रहे, यह अपेक्षित है।

आचार्यवर ने आमली के लोगों की सामंजस्यपूर्ण नीति, अणुव्रत कार्य के प्रति उत्साह और तब तक हुए अणुव्रत कार्य का मूल्यांकन करते हुए आमली को अणुव्रत ग्राम के रूप में स्वीकार कर लिया। अणुव्रत ग्राम वनने के साथ आमली की पहचान आम्रावली नाम से करने का निर्णय भी क्रियान्वित कर दिया गया। उसी अवसर पर आचार्यवर ने श्री रामनारायण चेचाणी को अणुव्रतसेवी सम्बोधन से सम्बोधित किया। श्री चेचाणीजी आचार्यश्री की असीम अनुकम्पा के सामने प्रणत हो गए। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में युगीन समस्याओं के सन्दर्भ में अणुव्रत की भूमिका के बारे में चर्चा की और उपस्थित जनसमूह को अणुव्रत आचार संहिता के अनुरूप जीवन वनाने की प्रेरणा दी।

अणुव्रत द्वार

आचार्यश्री आमली पधारे, उसी दिन वहां महेन्द्रगढ़ जाने वाले राजपथ पर निर्मित अणुव्रत द्वार अणुव्रत समिति को भेंट किया गया। उस द्वार का निर्माण स्थानीय वृद्धिचन्दजी सुरतिया ने अपने पिताश्री भूरालालजी की स्मृति में करवाया था। अणुव्रत द्वार पर अणुव्रत की आचार संहिता, अणुव्रत प्रार्थना आदि अंकित हैं।

गांव में प्रवेश करते ही 'अणुव्रत-ग्राम' का बोध देने वाला वह द्वार नये आगन्तुकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है ।

अणुव्रत बाल भारती

अमृत महोत्सव वर्ष में करणीय रचनात्मक कार्यों में एक निर्णय यह भी लिया गया है कि बच्चों को संस्कारी बनाने के लिए कम से कम पचास ऐसे केन्द्र खोले जाएं, जो अणुव्रत बाल भारती के रूप में प्रतिष्ठित हों। और वहां जीवन-विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाए । प्राथमिक रूप में अणुव्रत विश्व भारती ने नौ अणुव्रत बाल भारती बनाने का प्रावधान रखा है। अणुव्रत ग्राम आम्रावली में इस प्रकार का केन्द्र रहने से ही वहां विकसित होने वाली नयी पीढ़ी अणुव्रत के आदर्शों को अपना सकेगी, यह सोचकर वहां एक केन्द्र खोलने की बात निर्णीत हुई और स्थानीय पंचायत की ओर से उसके लिए निःशुल्क जमीन भी उपलब्ध हो गयी ।

७ मई को प्रातः देवीलालजी कच्छारा ने आम्रावली गांव के बाहर अणुव्रत बाल भारती का शिलान्यास कर दिया। कुछ लोग चाहते थे कि उस काम में पूरे मेवाड़ से आर्थिक सहयोग प्राप्त किया जाए। किन्तु एक भाई का सुझाव आया कि बाहर के भरोसे रहने से काम में विलम्ब भी होगा और अधूरापन भी रहेगा। इस सुझाव पर विचार-विमर्श के बाद स्थानीय लोगों ने अपने पुरुषार्थ और अपनी सामग्री के बल पर काम करने का निर्णय ले लिया। उसके लिए पांच-सात व्यक्तियों ने पूरी जिम्मेवारी स्वीकार कर ली ।

आम्रावली में आचार्यवर ने दो दिन प्रवास किया। इस प्रवासकाल में आपने वहां के हर घर को अपनी पावन पदरज से पवित्र किया। सामूहिक प्रवचनों के अतिरिक्त व्यक्तिगत और पारिवारिक रूप में प्राप्त उद्‌बोधन से अनेक व्यक्तियों की मानसिकता में गहरा बदलाव आया ।

पांच वर्ष चावल छोड़े

बैंगलोर निवासी श्री नेमीचन्दजी धारीवाल की पत्नी श्रीमती कान्ता धारीवाल ने सात वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद आम्रावली में आचार्यवर के दर्शन किए। उसने दो वर्ष में कम से कम एक बार दर्शन करने का संकल्प स्वीकार कर रखा था। दो वर्ष की अवधि में संकल्प पूरा न होने पर उसे चावल और चावल से बनी सब प्रकार की वस्तुएं खाने का परित्याग था। तीव्र इच्छा के बावजूद वह समय पर गुरु-दर्शन नहीं कर पायी। फलतः उसे चावल से बनी सब वस्तुएं छोड़नी पड़ीं। वैसे चावल छोड़ना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, पर बैंगलोर में इडली,

डोसा आदि विशिष्ट खाद्य पदार्थ चावल के ही वनते हैं, वहां रहने वालों के लिए यह संकल्प उल्लेखनीय वन जाता है। पांच वर्ष तक निरन्तर चावल छोड़े, तव कहीं ६ मई को वह वहन गुरुदेव के दर्शन कर कृतार्थ हुई।

८ मई को प्रातः आम्रावली से छः किलोमीटर चलकर आचार्यवर महेन्द्रगढ़ पधारे। रास्ते में वहनें मंगलगीत गा रही थीं—'कुंकुरा पगल्या हो म्हारासा पधारिया' भोली-भाली अशिक्षित महिलाएं गीत के वोलों का अर्थ तो नहीं समझ पा रही थीं फिर भी इतनी तन्मय होकर गा रही थीं कि गीत सुनने वालों का मन वरवस वहीं अटक जाता था।

दो हजार की आवादी वाले गांव में तेरह परिवार तेरापंथी हैं। तेरापंथ के प्रारम्भ से ही वहां धर्म का प्रभाव है। पर प्रथम सात आचार्यों में से किसी भी आचार्य का आगमन नहीं हुआ। सं० १९९३ में पूज्य गुरुदेव कालूगणी पहली वार पधारे थे। आचार्यवर का महेन्द्रगढ़ में तीसरी वार पदार्पण हो गया, इसे स्थानीय लोग अपना अहोभाग्य मानते हैं। वहां के लोगों में अणुव्रत के प्रति वहुत अनुकूल भावना है। पांच भाई अणुव्रती हैं और निष्ठा के साथ अपने स्वीकृत व्रतों का पालन कर रहे हैं। स्थानीय सरपंच श्री कमलाप्रसादजी सोमानी ने यात्रासंघ की व्यवस्था में अच्छा योगदान दिया। आचार्यवर का प्रवास राजकीय वालिका उच्च प्राथमिक विद्यालय भवन में हुआ। प्रवचन में सभी वर्गों के हजारों लोग उपस्थित थे। आसपास के गांवों से भी वहुत लोग आए थे। प्रवचन के वाद कई व्यक्तियों ने व्यसन-मुक्त रहने का संकल्प स्वीकार किया।

विवशता साधना नहीं है

आचार्यवर विद्यालय से गांव की ओर पधार रहे थे। साथ में सरपंच कमलाप्रसादजी थे। रास्ते में कुछ लोहार अपनी गाड़ी के पास वैठे लोहा पीट रहे थे। उन्हें देखकर आचार्यवर ने कहा—इनका जीवन कितना सादा है। इनकी गाड़ी भी कितनी अच्छी है। एक-एक परिवार के लिए एक गाड़ी पूरे घर का काम करती है। रहना, सोना, खाना आदि सारे काम गाड़ी में होते हैं। एक वात और है, गाड़ी में भी ये स्थिर होकर अपनी जिन्दगी वसर नहीं करते, घूमते रहते हैं। वे घुमक्कड़ क्यों बने? यह पूछने पर एक गाड़ी वाले भाई ने वताया—मूल वात तो यह है कि हमारे पूर्वजों को रहने के लिए मकान नहीं मिले, इसलिए गाड़ी को ही अपना घर माना। गाड़ी के साथ हम गांव-गांव घूमते हैं। इसका कारण है काम की तलाश। निरन्तर एक ही स्थान पर रहें तो हमें इतना काम नहीं मिलता। घूमते रहते हैं तो कुछ-न-कुछ काम मिलता रहता है। अव हम ऐसी जिन्दगी के आदी हो गए हैं। इसलिए कहीं झुग्गी-झोंपड़ी वसाने की इच्छा ही नहीं

होती। यह बात सुन आचार्यवर ने कहा—संतों के पास रहने के लिए मकान नहीं होता और इन लोगों के पास भी नहीं होता। वेघरबारी जिन्दगी संतों के लिए शान और इज्जत की बात है। किन्तु इनके लिए विवशता और अभाव की प्रतीक है। संत भी राही हैं और ये भी राही हैं। पर दोनों के उद्देश्य में वहुत वड़ा अन्तर है। ऊंचे लक्ष्य को सामने रखने से हर प्रवृत्ति ऊंची हो सकती है।

महंतजी की उदारता

महेन्द्रगढ़ में साध्वियों का प्रवास स्थानीय मठ में हुआ था। वह मठ रामस्नेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा का है। इस सम्प्रदाय के दो वड़े ठिकाने हैं—खेड़ापा और सींथल। सम्प्रदाय के प्रथम गुरु हुए हैं श्री रामचरणजी महाराज। वे आचार्य भिक्षु के समकालीन थे और गृहस्थ जीवन में उनकी भीखणजी के साथ अच्छी दोस्ती थी। वर्तमान में उनका दायित्व महंत रामकिशोरजी संभाल रहे हैं। महंतजी वहां नहीं थे। मठ के लिए पूछा गया तो उन्होंने कहा—समय मिलने पर मैं स्वयं आचार्यजी के दर्शन करूंगा। उनके संघ के लिए हमारा मठ सदा खुला है। उनकी व्यवस्था के लिए आप लोगों को दस हजार रुपये तक व्यय करने की जरूरत हो तो मुझे पूछे बिना ही कर सकते हैं। आचार्यवर के लिए किसी अतिरिक्त व्यवस्था की कोई अपेक्षा ही नहीं थी, पर महंतजी ने जो सौहार्द और औदार्यभाव प्रदर्शित किया, वह उनकी महंतता का प्रतीक था।

कारोई में एक दिन

कारा नामक गूजर के नाम से कारोई गांव वसा है। भीलवाड़ा तहसील का चार हजार की आवादी वाला यह गांव आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथ धर्मसंघ के साथ जुड़ा हुआ है। तेरापंथ के चार परिवारों में छोटे-वड़े लगभग पचास सदस्य हैं। सभी सदस्यों में धर्म और गुरु के प्रति गहरी निष्ठा के भाव हैं। वे परिवार पहले राजाजी का 'करेड़ा' में रहते थे। करेड़ा से आकर वसे वे लोग स्थानीय लोगों के साथ पूरी तरह से घुल-मिल गये हैं।

९ मई को प्रातः आठ कि० मी० चलकर आचार्यवर कारोई पहुंचे। स्थानीय राजकीय महाविद्यालय में प्रवास हुआ। छोटा-सा गांव, श्रद्धा के मात्र चार घर, फिर भी प्रवचन पण्डाल में हजारों की उपस्थिति। किसान लोग विशेष रूप से प्रवचन सुनने आये। आचार्यवर ने मद्य-निषेध, मिलावट निरोध आदि पांच सूत्रों की व्याख्या कर उपस्थित जन-समूह को बुराई छोड़ने के लिए आह्वान किया। कई व्यक्तियों ने पांचों संकल्प सूत्र स्वीकार किये। कुछ लोग एक-एक, दो-दो

संकल्प ही ले पाये।

भीलवाड़ा के जिलाधीश और एस० पी० ने भी कारोई में आचार्यवर के दर्शन किये। आचार्यवर ने उनको अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान की जानकारी दी। पहुना के वी० डी० ओ० बालकृष्ण व्यास ने अपनी पत्नी के साथ आचार्यवर के दर्शन किये और अपूर्व आत्मतोष का अनुभव किया।

प्रतिदिन नये-नये लोगों से संपर्क और उन्हें अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि के बारे में बताना आचार्यश्री की दिनचर्या का एक प्रमुख अंग है। इस व्यक्तिगत सम्पर्क से हजारों व्यक्ति लाभान्वित हो चुके हैं।

भृगु-संहिता में आचार्यश्री

कारोई के पंडित नाथूरामजी व्यास भृगु-संहिता के अच्छे जानकार माने जाते हैं। उन्होंने नाथद्वारा मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर केवल पांच मिनट के लिए आचार्यश्री को देखा था। तब से ही उनके मन में निकटता से दर्शन करने की उत्सुकता और लालसा थी। सौभाग्य से आचार्यवर स्वयं चलकर कारोई पहुंच गये। पंडितजी की खुशी का पार नहीं रहा। प्रवचन संपन्न होते ही वे अपने पुत्र भंवरलाल के साथ दर्शन करने आये। थोड़ी-सी बातचीत के बाद उन्होंने भृगु संहिता में आचार्यश्री की कुंडली का फलादेश बताने की इच्छा व्यक्त की। आचार्यवर के मन में कोई खास उत्सुकता नहीं थी। पर पंडितजी की भावना थी। इसलिए उन्होंने अपराह्न में तीन बजे के बाद का समय दे दिया।

पंडितजी ठीक समय पर दो बड़े बक्सों के साथ आचार्यवर के सान्निध्य में पहुंच गये। उस समय भगवती सूत्र का सामूहिक स्वाध्याय चल रहा था। स्वाध्याय पूरा होने के बाद पंडितजी ने आचार्यश्री के हाथ की रेखाएं देखकर गणित के आधार पर एक कुंडली बनायी। उस कुंडली का पूर्व निर्मित कुंडली के साथ मिलान किया गया। नव निर्मित कुंडली सही थी। उस कुंडली को आधार मानकर उन्होंने भृगु संहिता की १००, ४६, ५० नम्बर वाली कुंडली निकाली। उस कुंडली के सम्बन्ध में वहां जो सूचनाएं अंकित थीं, पंडितजी पढ़ने लगे और उनकी व्याख्या करने लगे। उन्होंने जो कुछ बताया, वह शत-प्रतिशत सही ही था, यह कहना तो कठिन है। फिर भी उनके द्वारा बताई गई कई बातें विस्मयोत्पादक प्रतीत हुई। उनके द्वारा व्याख्यात प्रसंगों का सार संक्षेप इस प्रकार है—'यह कुंडली लाखों में एक है। इस कुंडली वाले जातक का भाग्य प्रबल है और यश-कीर्ति उसके चारों ओर बिखरी पड़ी है। इसके विद्या की पूर्णता है और जीवन में आनन्द ही आनन्द है। इसका संकल्प दृढ़ है और प्रताप चढ़ता हुआ है। इसके जीवन में संघर्ष बहुत आएंगे, पर यह हर संघर्ष को दृढ़ता से पार कर लेगा।'

कुंडली की कुछ बातें बार-बार पुनरुक्त हो रही थीं। यह उनकी व्याख्या की शैली थी या भृगु संहिता में शब्दशः वैसा ही लिखा हुआ था, पूरी तरह से समझ में नहीं आया। फिर भी पंडितजी का फलादेश कथन का तरीका अपना अलग ही था। उन्होंने आगे कहा—इस कुंडली का जातक बचपन में ही घर छोड़कर संन्यासी बन जाएगा। गृह-त्याग की घटना उसकी जन्मभूमि में होगी। एक ओर इसके शत्रु अधिक रहेंगे दूसरी ओर यह राजा-महाराजाओं से घिरा रहेगा। यह जिस संस्था को संभालेगा, उसके लिए दिन-रात एक कर परिश्रम करता रहेगा। इसके वचन-सिद्धि का योग है। यह भोजन कम लेगा, निद्रा भी कम लेगा। भोजन के सम्बन्ध में नये-नये प्रयोग करता रहेगा। इसके जीवन में भ्रमण का योग बहुत है। यह स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद-भाव नहीं रखेगा। इसके साथ किसी कलश का योग है, जो त्याग से भरा जाएगा। इसके जीवन में रामचरित्र को लेकर कोई बड़ा संघर्ष आएगा। उस संघर्ष में कोर्ट में जाना भी संभव लगता है, पर आखिर में विजय इसी की होगी।

इस प्रकार पंडितजी ने और भी अनेक बातें बतायीं, जिनमें कुछ का सम्बन्ध अतीत से था और कुछ भविष्य में घटित होने का संकेत दे रही थीं। जो कुछ बताया गया, वह कितना सही है और कितना आरोपित ? इसे प्रमाणित करने के लिए 'भृगु-संहिता' पर ही नयी रिसर्च की जरूरत है। यदि कोई ज्योतिर्विद इस सन्दर्भ में विशेष शोध करे तो शायद अनेक अज्ञात तथ्यों का रहस्योद्घाटन हो सकता है। आवश्यकता है दृढ़ अध्यवसाय के साथ उस दिशा में आगे बढ़ने की।

अनेक लोगों ने दिशा बदली

१० मई को दस कि० मी० चलकर आचार्यवर सांगवा पहुंचे। वहां हरखचन्दजी दूगड़ के मकान में आपका प्रवास हुआ। दो हजार की आबादी वाला 'सांगवा' सांगा गूजर के नाम से बसा हुआ है। वहां कुल तीन सौ परिवारों में से चार परिवार तेरापंथी हैं। वे वर्षों से आचार्यश्री के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। अमृत महोत्सव वर्ष में मेवाड़ की यात्रा का निर्णय दीर्घकाल से प्रतीक्षारत भक्तजनों के लिए अमृत वर्षा जैसा सुखद और आह्लादक था। छोटे-छोटे गांव, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पर श्रद्धा और भक्ति से भीगे हुए सीधे-सादे लोग। उनकी इच्छाएं भी कितनी संयत ! आचार्यश्री एक दिन गांव में रह गए तो पूरा आत्मतोष। दो-चार घंटे भी ठहर जाएं तो अपने आप को धन्य मानने लगते हैं। कुछ गांव-वासी तो इससे आगे यहां तक कह देते हैं कि आचार्यजी गांव से होकर पधार जाएं और गांववासियों को आधा घंटा उपदेश सुना दें, इतने से ही उनकी मुराद पूरी हो जाएगी।

आचार्यश्री उन श्रद्धालु लोगों की भावना को पहचानते हैं। जितना संभव हो सकता है, उन्हें समय भी देते हैं। पर समय को लेकर आपके सामने सदा कठिनाई रहती है। एक चातुर्मास का समय तो निश्चित होता है। शेष काल में तो किसी भी क्षेत्र को पर्याप्त समय शायद ही मिले।

आचार्यश्री जिन दिनों गावों और कस्बों में रहते हैं, भारतीय जनता की सही स्थिति का गंभीरता से आकलन करते हैं। एक ओर कठोर परिश्रम, दूसरी ओर शहरीपन की ओर झुकाव। एक ओर युग के बदलते हुए मापदण्ड, दूसरी ओर संस्कारों की रूढ़ता। सब कुछ मिलाकर अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति पैदा हो जाती है। दिन-रात अभावों में जीने वाले लोगों को धर्म या साधु-सन्तों की बात अच्छी लगती है, फिर भी उसके आचरण में काफी कठिनाई महसूस की जाती है। इस स्थिति के बावजूद आचार्यश्री के प्रवचनों में अनायास ही हजारों-हजारों व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। अचार्यश्री का प्रवचन सुनकर वे सब बदल जाते हैं, यह सोचना ही अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाता है। किन्तु इतना निश्चित है कि उससे अनेक लोगों को प्रेरणा मिलती है और अनेक लोग अपने जीवन की दिशा को मोड़ दे देते हैं।

सांगवा में तीनों समय अच्छे कार्यक्रम चले। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त आस-पास के गांवों से भी वहां काफी व्यक्ति पहुंच गए थे। स्थानीय सरपंच श्री उदयरामजी ने उपस्थित जनसमूह को आचार्यश्री द्वारा दिखाए रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी। कई लोगों ने मद्यपान और धूम्रपान छोड़ा।

बागोर का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भीलवाड़ा नगर से पश्चिम की ओर पचीस कि० मी० की दूरी पर बनास की सहायक नदी कोठारी के किनारे पर बागोर बसा हुआ है। यह गांव मेवाड़ रियासत का एक परगना था। अठारहवीं सदी के प्रारंभ में राणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के पुत्र नाथसिंह को यह जागीर में मिला था। वहां के आखिरी महाराणा श्री सोहनसिंहजी के द्वारा सन् १८७५ में उदयपुर महाराणा के विरुद्ध विद्रोह करने पर उनकी जागीर समाप्त कर दी गई। बागोर एक ऐसा क्षेत्र है, जहां कई महाराणाओं का बचपन बीता है। वहां के राजपूत परिवारों से अनेक बच्चे गोद दिए गए, जो आगे जाकर महाराणा बने।

बागोर मेवाड़ की पथरीली भूमि में बसा हुआ गांव है। उसके आस-पास की भूमि ऊबड़-खाबड़ और चट्टानों वाली है। इस कारण वहां खेती कम होती है। नदी के किनारे अथवा नीचे की ओर वाली भूमि को खेती योग्य माना जाता है। नदी में पानी वर्षा से आता है। वर्षा ऋतु के बाद बहुत जल्दी नदी सूख जाती

है। फिर भी नदी की तलहटी में पानी की सतह बहुत ऊंची है। नदी के किनारे अनेक कुएं हैं, जिनका पानी सिंचाई के काम में लिया जाता है। सिंचाई के लिए बरसाती पानी एकत्रित करने के लिए वहां कुछ तालाब और झीलें भी हैं।

बागोर क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। पुरातत्त्व विभाग की देख-रेख में हुई खुदाई के आधार पर कहा जाता है कि वहां की सभ्यता पांच हजार वर्ष पहले की है। कालक्रम की दृष्टि से हड़प्पा और मोहन-जोदड़ो से भी प्राचीन मानी जाती हैं वहां की सभ्यता और संस्कृति।

इतिहासकारों का अभिमत है कि बहुत वर्षों पहले बागोर ताम्बावती नाम की प्रसिद्ध और बड़ी नगरी थी। धीरे-धीरे वहां के लोग दूसरे क्षेत्रों में जाकर बस गए। फिर भी आज वहां लगभग आठ हजार की आबादी है। ऐसा भी कहा जाता है कि बागोर के पास बकदाणा नाम की टेकरी है। वहां महाभारत काल में बकासुर नाम का राक्षस रहता था।। पांडवों ने यहीं पर उसका वध किया था।

तीसरी बार आगमन

आठ हजार की आबादी वाले बागोर में इक्कीस परिवार तेरापंथी हैं। यह क्षेत्र आचार्य भिक्षु के समय से है। जयाचार्य, मघवागणी, डालगणी, कालूगणी और आचार्यश्री तुलसी—इन पांचों आचार्यों की पावन पदरज के स्पर्श से बागोर वास्तव में ही काबिले-गौर बन गया। वहां से छह भाई-बहनों की दीक्षाएं भी हो चुकी हैं। साधु-साध्वियों के चातुर्मास वहां कभी-कभी होते हैं।

११ मई को आचार्यश्री बागोर पधारे। यह आपका तीसरी बार आगमन था। इसलिए स्थानीय लोग बहुत खुश थे। स्थानीय पंचायत-भवन में आपके प्रवास की व्यवस्था थी। प्रवचन का कार्यक्रम पंचायत-भवन के सामने वाले प्रांगण में हुआ। स्थानीय पंचायत के प्रधान श्री राधाकृष्णजी देवपुरा, सरपंच श्री जगदीशजी शर्मा ने आचार्यश्री के आगमन को गांव का सौभाग्य बताते हुए आपका भावभीना स्वागत किया। आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—संपत्ति मनुष्य को सुख का अनुभव देती है, पर विपत्ति भी निरर्थक नहीं है। उससे भी व्यक्ति को बहुत कुछ सीखने को मिलता है। आप इस बात पर विचार करें कि किसी भी वस्तु की प्राप्ति मन को कोमल थपकियां देती है, मीठी नींद में सुलाती है और नये सपनों को जन्म देती है। इसके विपरीत वांछित वस्तु की प्राप्ति न हो तो मन को शिक्षा मिलती है, शक्ति मिलती है और कुछ नये उपाय खोजने की प्रेरणा मिलती है। बन्धुओ ! धर्म आपको यही रास्ता दिखाता है कि आप दुःख और लाभ-अलाभ आदि सभी स्थितियों में अपना संतुलन बनाए रखें और हर परिस्थिति को प्रेरक मानकर आगे बढ़ते रहें।

अड़सीपुरा से आदर्शपुरम्

मध्याह्न में अड़सीपुरा के सैकड़ों भाई-बहन सामूहिक रूप में बागोर पहुंचे। उस दिन उनके आने का विशेष लक्ष्य था। अमृत महोत्सव वर्ष में 'अणुव्रत ग्राम' निर्माण की योजना में एक नाम अड़सीपुरा का भी था। आचार्यवर जिस समय वहां पधारे थे, गांववासी अत्यन्त उल्लसित थे। अधिकांश लोग पूरे मन से यह चाहते थे कि उनका गांव अणुव्रत ग्राम बन जाए। किन्तु प्राथमिक स्तर पर जितना काम अपेक्षित था उतना पूरा किए बिना अणुव्रत ग्राम का लक्ष्य सफल नहीं होता था। आचार्यवर ने उनको विशेष उद्बोधन दिया और एक बार वहां फिर साधु-साध्वियों को भेजने का निर्देश देकर वहां से प्रस्थान कर दिया।

कुछ समय बाद साधु और साध्वियों को अड़सीपुरा भेजा गया। मुनि सुखलालजी ने गांववासियों से संपर्क कर उन्हें पूरी योजना समझाई। गांववासी तैयार हो गए। वे सब मिलकर आचार्यवर के सान्निध्य में उपस्थित हुए। आचार्यश्री ने उनको अणुव्रत ग्राम के आदर्शों के अनुरूप अपना जीवन बनाने की प्रेरणा दी। व्यसन-मुक्ति, रूढ़ि-मुक्ति आदि की दृष्टि से उनकी मानसिकता बदली। उन्होंने अणुव्रत का आदर्श सामने रखकर जीवन-यापन करने की भावना व्यक्त की। आचार्यवर ने सारी स्थिति को गंभीरता से समझकर अड़सीपुरा को 'अणुव्रत ग्राम' घोषित कर दिया। अणुव्रत ग्राम बनते ही अड़सीपुरा का नाम भी 'आदर्शपुरम्' हो गया। गांववासी नये उत्साह और नये संकल्प के साथ अपने गांव का निर्माण करने के लिए कटिबद्ध होकर लौट गए।

रात्रिकालीन कार्यक्रम साध्वियों के सान्निध्य में चला। दूसरे दिन भी आचार्यश्री का प्रवास बागोर में ही हुआ। दो दिन का समय बहुत अधिक नहीं होता। पर स्थानीय श्रद्धालु लोगों के जीवन में वे दो दिन भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिन बन जाते हैं।

प्रसिद्ध पियक्कड़ों ने शराब छोड़ी

बागोर से आठ कि० मी० का विहार कर आचार्यश्री १३ मई को प्रातः 'घोड़ास' पहुंचे। घोड़ जाति के राजपूतों द्वारा आबाद गांव का नाम सहज रूप में घोड़ास हो गया। वहां लगभग तीन सौ परिवार हैं। साठ-सत्तर परिवार ब्राह्मणों के हैं। तेरापंथी परिवार एक ही है। जिस गांव में एक ही परिवार रहता है, उसके सभी सदस्यों की यह प्रबल इच्छा रहती है कि आचार्यश्री की इस मेवाड़ यात्रा में उनका क्षेत्र अछूता न रहे। आचार्यवर भी इधर-उधर चक्कर लेते हुए जहां तक संभव हो, हर क्षेत्र को स्पर्श करने का लक्ष्य रखते हैं। फिर भी कभी-

कभी कोई क्षेत्र छूट जाता है। उसके निवासी उस रिक्तता को पूरी तरह से महसूस करते हैं।।

घोड़ास में आचार्यश्री का प्रवास पंचायत-भवन में हुआ। स्थानीय सरपंच एवं श्रावक मूलचन्दजी कोठारी ने पूरे गांव की ओर से आपका भावभीना स्वागत किया। आचार्यवर ने अपने मिशन की जानकारी देते हुए अधिक से अधिक लोगों को अणुव्रती बनने की प्रेरणा दी। अणुव्रती बनने की पहली शर्त है व्यवसन-मुक्त बनना। ग्रामीण लोग अज्ञान और अज्ञानी लोगों के संपर्क के कारण व्यवसनों के चंगुल में फंस जाते हैं। फंसने के बाद उनको प्रतिबोध देने वाला नहीं मिलता और वे अपने जीवन की गाड़ी को ऐसे ही खींचते रहते हैं। जब कभी उनको ऐसे त्यागी संतों का सान्निध्य मिलता है, जानने-समझने का अवसर मिलता है, कुछ व्यक्ति अपने जीवन को एकदम बदल लेते हैं।

घोड़ास में भी आचार्यवर का प्रवचन सुनकर पांच ऐसे व्यक्तियों ने शराब का परित्याग किया जो यह कहा करते थे कि वे रोटी-पानी छोड़ सकते हैं, पर शराब नहीं छोड़ सकते। वे पांचों ही व्यक्ति इतने अधिक पियक्कड़ थे कि उनके कारण नये-नये शराबी जनम ले रहे थे। गांववासियों में किसी को कल्पना भी नहीं थी कि वे व्यक्ति भी इतना बड़ा काम कर सकते हैं। जब वे लोग खड़े हुए, एक बार तो लोगों को विश्वास ही नहीं हुआ। आचार्यवर ने उनको दो बार सजग किया और नियम स्वीकार करने के बाद 'प्राण जाए पर प्रण न जाए' का बोध दिया तो वे बोले—गुरुजी ! हमारा मन नहीं बदलता तो हम खड़े ही नहीं होते। आपकी वाणी में पता नहीं क्या जादू है कि उसने हमारे भीतर को झकझोर दिया। अब तक अनेक व्यक्ति हमें समझाकर हार गये, हमारी शराब नहीं छूटी। आज उसके प्रति हमारा सारा आकर्षण समाप्त हो गया है। हम इतने लोगों के बीच में खड़े होकर नियम लेते हैं तो इतनी ही जागरूकता से उसका पालन भी करेंगे।' उन लोगों द्वारा शराब छोड़ने पर पूरी सभा में प्रसन्नता और आश्चर्य की लहर दौड़ गई।

अन्धकार आलोक बन गया

भगवती की जोड़ के सम्पादन का काम चल रहा था। काम करते-करते एक स्थान पर अवरोध आ गया। दसवें शतक की जोड़ में एक स्थान पर लिखा है 'युगल क्षेत्र हेमवंतवासो'। इस पंक्ति को बार-बार पढ़ने पर भी अर्थ समझ में नहीं आया। एक ही संदेह सिर उठा रहा था कि युगल क्षेत्र का अर्थ है दो क्षेत्र, फिर यहां क्षेत्र का एक ही नाम कैसे ? संशय को समाधान नहीं मिला तो आचार्यवर के पास जाना पड़ा। आचार्यवर ने वह पंक्ति पढ़ी और कहा—यहां युगल शब्द दो

का वाचक नहीं है। इसका अर्थ है यौगलिक क्षेत्र। एक ही शब्द में सारा सन्देह धुलकर साफ हो गया।

भगवती की जोड़ में दूसरी समस्या थी संख्या का अन्तर। दसवें शतक में वैमानिक देवों के प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्र का वर्णन है। उस वर्णन का प्रारम्भ भगवती सूत्र में हैं। वाद में उसे रायपसेणइय सूत्र में समागत सूर्याभ देव के वर्णन की भोलावण दे दी गयी। रायपसेणइय के साथ जोड़ का मिलान करते समय बड़ी दुविधा उपस्थित हो गयी। वहां सूर्याभ की सामानिक परिषद चार हजार बतायी गयी है और अग्रमहिषी की संख्या चार बतायी गयी है। भगवती की जोड़ में सामानिक परिषद की संख्या चौरासी हजार और अग्रमहिषी की संख्या आठ है। संख्या का यह विसंवाद सिर-दर्द बन गया। काफी सोचा, किन्तु मूल बात पर ध्यान ही नहीं गया। आखिर इस समस्या को भी आचार्यवर के सामने रखा। आपने एक ही नजर में दोनों ग्रन्थों के संदर्भ पढ़े औरसमाधान की भाषा में कहा—सूर्याभ देव है और शक्र इन्द्र है। देव और इन्द्र की रिद्धि एक समान कैसे हो सकती है? भगवती में रायपसेणइय में वर्णित सूर्याभ की भोलावण का तात्पर्य वर्णन के क्रम की समानता है। सामानिक परिषद आदि की संख्या में अन्तर तो रहेगा ही। आचार्यवर द्वारा प्राप्त समाधान के प्रकाश ने भीतर को आलोकित कर दिया। पहले उन सन्दर्भो को पढ़ते समय अंधेरा ही अंधेरा सामने था। किन्तु आचार्यवर द्वारा पथदर्शन मिलने के बाद वह अन्धकार ही प्रकाश में परिणत हो गया।

तत्त्वज्ञान के लिए ग्रन्थ-निर्माण का चिन्तन

आचार्यवर की मंगल सन्निधि में भगवती सूत्र का अध्ययन चल रहा था। प्रसंगवश एक चिन्तन सामने आया कि श्रावकों के लिए किसी ऐसे ग्रन्थ का संकलन होना चाहिए, जिसमें आगमों में विकीर्ण श्रावकोचित सामग्री एक स्थान पर उपलब्ध हो सके। श्रावक के तीन मनोरथ, चार विश्राम, ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रत, तपस्या, धर्म जागरणा आदि को समीचीन रूप से संकलित कर दिया जाए तो उस ग्रन्थ का सर्व साधारण के लिए उपयोग हो सकता है। चिन्तन बहुत सामयिक था। आज, जबकि श्रावक अपनी चर्या, दायित्व और कर्त्तव्य से अनजान होता जा रहा है, साहित्य के माध्यम से उसे बोध देना बहुत जरूरी है। केवल साधु-संतों के पास आने मात्र से तो तत्त्व का ज्ञान हो नहीं सकता। तत्त्वज्ञान के लिए तो निरन्तर नियमित रूप से अध्ययन-अध्यापन की उपयोगिता को स्वीकार करना होगा। उसके लिए विशेष ग्रन्थों के निर्माण की बात पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा।

तीन के तेरह

घोड़ास से मध्याह्न में भादू के लिए विहार था। घोड़ास और भादू के बीच की दूरी किसी ने चार कि० मी० वतायी और किसी ने पांच। रास्ता कच्चा था। कि० मी० के पत्थर तो कहीं थे नहीं। अनुमान से कि० मी० का माप होता था। मध्याह्न का समय, कड़ी धूप और लम्बा रास्ता। चार-पांच कि० मी० चलने पर भी गांव दूर था। आखिर छह कि० मी० पर गांव आया। पर गांव में भी ठहरना नहीं था। गांव से एक कि० मी० दूर राजकीय माध्यमिक विद्यालय में प्रवास की व्यवस्था थी। एक सीधा रास्ता विद्यालय जाता था। किन्तु गांववासी आचार्यश्री की पदरज से अपने गांव की माटी को पावन करना चाहते थे। इसलिए गांव का चक्कर लेकर आचार्यश्री विद्यालय पहुंचे। दिन काफी कम रह गया था, फिर भी सब काम समय पर हो गये। रहने और प्रवचन के लिए स्थान पूरा सुविधाजनक था। गांव दूर होने पर भी रात्रि में प्रवचन सुनने के लिए सभी वर्गों के लोग भारी संख्या में उपस्थित हुए।

पांच सौ घरों की वस्ती वाले भादू में केवल एक परिवार तेरापंथी है। उसके लिए आचार्यवर ने तेरह कि०मी० चलना स्वीकार किया। वैसे घोड़ास से आपको पीथास जाना था। पीथास और घोड़ास के वीच की दूरी मात्र तीन कि० मी० है। घोड़ास से भादू छह कि० मी० और भादू से पीथास सात कि० मी०। इस प्रकार तेरह कि० मी० का मार्ग तय करके भी आपने भक्तों की भावना पूरी की।

परिवार से जीवन चलता है, वनता नहीं

भादू से प्रस्थान कर आचार्यवर चार कि० मी० चले और सामेलिय नाम का गांव आया। राजपूतों और जाटों के उस गांव में तेरापंथी भाई घीसूलालजी चपलोत का परिवार रहता है। उनके विशेष अनुरोध पर वहां एक घंटा रुकने का कार्यक्रम वन गया। समूचे गांव में एक परिवार होने से संघीय गतिविधियों के पूरे संवाद वहां नहीं पहुंच पाते हैं। फिर भी चपलोतजी प्रति वर्ष गुरु-दर्शन कर विशेष पाथेय पाते रहते हैं। उस दिन अपने छोटे से गांव और छोटे से घर में गुरु के चरण टिकने से उस परिवार की खुशियों का पार नहीं रहा। अन्य गांववासी भी वहां एकत्रित हो गए थे। आचार्यवर ने उनको सम्वोधित करते हुए कहा—धन और परिवार मिलना सहज है, पर सही मार्ग दिखाने वाले गुरु की प्राप्ति सहज नहीं है। परिवार से जीवन चलता है, पर जीवन वनता नहीं। जीवन वनाने के लिए गुरु की शरण में जाना जरूरी है। जीवन वनाने का पहला सूत्र है—व्यसन-

मुक्त रहना। गांवों के लोग व्यसनी वनकर अपने जीवन को गतरस कर लेते हैं। इससे उनका आर्थिक और आन्तरिक दोनों प्रकार का नुकसान होता है।' आचार्यवर की मंगल प्रेरणा से प्रेरित होकर कई व्यक्तियों ने शराब, तम्बाकू आदि का परित्याग किया।

गांव का नाम लेने पर रोटी की किल्लत

कोठारी नदी के तट पर पीथास नामक गांव है। पीथा जाट के नाम पर गांव आवाद हुआ है, किन्तु उसकी पहचान खजूरों का गांव नाम से ही अधिक होती है। किंवदन्ती यह है कि सुवह-सुवह भूखे पेट पीथास का नाम लेने से भोजन नहीं मिलता है। इस किंवदन्ती के पीछे कोई ठोस आधार है या नहीं? कहना मुश्किल है। पर कुछ घटनाएं ऐसी हैं जो इस परंपरा को आगे से आगे खींचने में निमित्त वन रही हैं।

कहा जाता है कि पीथास गांव में एक दिन कोई ढोली आया। गांव के ठाकुर ने पूछा—तुम कहां आए हो? वह वोला—खजूरों के गांव में। ठाकुर को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। उन्होंने पूछा—गांव का नाम क्या है? ढोली ने कहा—मालिक! यही नाम है इस गांव का। ठाकुर साहव थोड़ा उत्तेजित होकर वोले—मूर्ख, गांव का नाम क्यों नहीं लेता? ढोली सहमता-सहमता वोला—मालिक! गांव का नाम लेने से रोटी नहीं मिलेगी। ठाकुर ने कहा—रोटी मैं दूंगा, तुम गांव का नाम बताओ। ढोली के पास वचाव का कोई उपाय नहीं रहा। उसे विवश होकर पीथास नाम लेना पड़ा। ठाकुर ने अपने निकट खड़ी लड़की को आदेश दिया कि वह ढोली को भरपेट रोटी खिला दे।

ठाकुर के आदेश का पालन करने के लिए लड़की ने तत्काल रोटी वनानी शुरू कर दी। उधर ढोली सोचा—रोटी तैयार होती है, तव तक वाजार में मैं अपने सम्वन्धी से मिलकर आता हूं। ढोली चला गया। लड़की रोटियां सेंककर थाली में रखकर लायी। ढोली तो वहां था नहीं। एक दूसरा व्यक्ति ठाकुर साहव से मिलने आया था, वह वैठा था। लड़की ने उसी को ढोली समझकर खाने का अनुरोध किया। वह रोटी खाना नहीं चाहता था, पर लड़की ने उसे हठ मनुहार करके भोजन करा दिया। भोजन कर वह वहां से विदा हो गया। उधर ढोली वाजार का काम पूरा होते ही लौटकर आया, पर किसी ने उसको भोजन के लिए नहीं पूछा। दस वजे, वारह वजे, दो वजे, चार वजे और पांच वज गए। ढोली को रोटी नहीं मिली। अब वह ठाकुर के पास पहुंचा। ठाकुर ने उसको देखते ही पूछ लिया—कहो भाई, क्या हाल-चाल हैं? ढोली के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। फिर भी उसने टाल-मटोल कर दिया। ठाकुर ने दूसरी वार पूछा—'सही-सही वता, क्या

बात है ? इस बार वह बोला—मालिक ! और तो सब ठीक है, पर पेट भूखा है। ठाकुर को आश्चर्य हुआ। उन्होंने लड़की को बुलाकर जानकारी की तो उसने कहा—मुझे यह तो मालूम नहीं था कि भोजन किसको कराना है। यहां एक आदमी बैठा था, उसको भोजन कराकर मैं तो निश्चिन्त हो गई। यह बात सुनकर ठाकुर साहब को गुस्सा आ गया। उन्होंने हाथ में जरखा (जूता) लेकर लड़की को मारने के लिए हाथ उठाया। लड़की तो नीचे झुककर बच निकली, पर वह जूता जाकर ढोली को लगा। ठाकुर साहब देखते ही रह गए। ढोली हाथ जोड़कर बोला—मालिक ! आज तक तो यही सुना था कि पीथास का नाम लेने से रोटी नहीं मिलती। उसके साथ जरखा भी खाना पड़ता है, यह तो आज ही जाना।

ढोली की उक्त घटना किस समय की है ? और उसमें कितना सत्यांश है; यह तो खोज का विषय है, पर इस सन्दर्भ में एक प्रश्न अवश्य उठता है कि जब पीथास प्रारंभ से ही तेरापंथ का क्षेत्र रहा है, तब वहां आचार्य भिक्षु का आगमन क्यों नहीं हुआ ? पीथास के निकटवर्ती क्षेत्र पुर में भिक्षु स्वामी ने दो चातुर्मास किए। इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि पुर के आस-पास आपका काफी विहार हुआ, इसके बावजूद पीथास नहीं जाने के दो ही कारण हो सकते हैं—पुर से पीथास जाने का रास्ता न हो या वहां ठहरने का स्थान न हो। इस सम्बन्ध में सम्प्रति गांववालों को कोई जानकारी नहीं है। कहीं प्राचीन ख्यात या दस्तावेजों में कुछ उल्लेख प्राप्त हो सके तो उसकी खोज होनी चाहिए। पर यह बात सही है कि आज भी अनेक लोग पीथास गांव का नाम नहीं लेते।

आन्तरिक सम्पन्नता जरूरी

पांच सौ वर्ष प्राचीन पीथास गांव की आबादी लगभग ड़ेढ हजार की है। वहां पचीस परिवार तेरापंथी हैं। आचार्य भिक्षु के समय से ही उनकी श्रद्धा स्वीकार की हुई है। प्रथम पांच आचार्य का पीथास पदार्पण नहीं हुआ। सं० १९४३ में मघवागणी वहां पधारे। उसके बाद सं० १९६० में डालगणी का पधारना हुआ। कालूगणी सं० १९७१ में पधारे। आचार्यश्री ने पहले सं० १९९३ और २०१९ में पीथास को पावन किया था। इस बार सं० २०४२ की अमृत महोत्सव यात्रा में भी आचार्यवर ने पीथास को एक दिन का समय दिया। पीथास के लोगों ने आचार्यवर का भावभीना स्वागत किया।

आचार्यवर ने तेईस वर्ष पहले के पीथास की स्मृतियों को उकेरते हुए वर्तमान स्थिति पर टिप्पणी की। उस समय के कच्चे झोंपड़े और खपरैल के मकान अब पक्के मकानों में बदल गए थे। आर्थिक दृष्टि से भी क्षेत्र में सम्पन्नता बढ़ी थी। पर उसके साथ आन्तरिक सम्पन्नता बढ़े बिना मनुष्य जीवन की सार्थकता कैसे

हो सकती है? आन्तरिक सम्पन्नता अथवा जीवन को वदलाव की दिशा देने के लिए आचार्यवर ने पंच सूत्री संकल्प योजना पर विस्तार से प्रकाश डाला। प्रवचन के वाद अनेक लोगों ने उन संकल्पों को स्वीकार किया।

ढाई हजार वर्ष प्राचीन क्षेत्र पुर धार्मिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है कि पहले वहां वहुत घनी आवादी थी। जैन परिवार काफी थे और तेरापंथी परिवार सैंकड़ों थे। भीलवाड़ा का विकास होने के वाद वहां की आवादी कम होती चली गई। जानकार लोगों के अनुसार उदयपुर के महाराणा भोपालसिंहजी ने भीलवाड़ा में भोपालगंज नाम से एक मंडी आवाद करनी चाही। उन्होंने आसपास के व्यापारियों को वुलाकर कहा—आप लोग इस मंडी को अपना व्यापार क्षेत्र वनाओ तो वीस वर्ष तक सोने-चांदी और कपड़े के व्यापार पर किसी प्रकार का कर नहीं लगेगा। इस छूट का लाभ उठाकर एक साथ सैंकड़ों व्यापारियों ने वहां व्यापार शुरू कर दिया। उस समय पुर से हजार-वारह सौ व्यक्ति प्रतिदिन पैदल चलकर भीलवाड़ा जाते और सायं पुनः लौट आते। धीरे-धीरे वे वहीं आवास करने लगे और पुर की जनसंख्या कम होती गई।

एक किंवदन्ती यह है कि किसी समय पुर में एक योगी आया था। वह शहर के वड़े-वड़े चार मोहल्लों में भिक्षा के लिए घूमा, पर उसे कहीं भी भिक्षा नहीं मिली। आखिर वह कुम्हारों के मोहल्ले में गया। वहां उसे ससम्मान भिक्षा मिली। इस घटना से योगी का मन खिन्न हो गया। उसके मुंह से अनायास ही ये वोल निकल पड़े—'पुर पट्टण सव डट्टण' एक कुम्हारों का पाड़ा रह जाना। उस दिन के वाद पुर की आवादी धीरे-धीरे कम होती चली गई और वहां से दस-वारह कि० मी० की दूरी पर भीलवाड़ा आवाद हो गया।

कारण कुछ भी वना हो 'पुर' का अतीत वर्तमान की अपेक्षा अधिक संपन्न था, ऐसा माना जाता है। इस समय वहां की आवादी दस हजार से अधिक नहीं है। अन्य जैन सम्प्रदायों के पांच-चार परिवार हैं। तेरापंथी परिवारों की संख्या सत्तर है। व्यवसाय की दृष्टि से अधिक लोग गुजरात में रहते हैं। वहां की काली तम्वाकू काफी प्रसिद्ध है।

पोपां वाई का न्याय

कुछ किंवदन्तियों में 'पोपां वाई का न्याय' वाली घटना काफी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वे पोपसिंहजी जो पोपां वाई के नाम से जाने जाते थे, पुर में ही हुए थे। पोपां वाई के रूप में उनको प्रसिद्धि देने वाली घटना इस प्रकार है—

पुर के दो व्यापारियों ने आपस में गोल मिर्च (काली मिर्च) का सौदा तय किया। उस समय वटखरे नहीं थे। इसलिए लेन-देन का माध्यम आठक, खारी,

पायली आदि होते थे। उन व्यापारियों ने पायली के माप को स्वीकार किया था। एकाएक गोल मिर्च के भाव में तेजी आ गई। सौदा देने वाले व्यापारी की नीयत बिगड़ गई। जब ग्राहक व्यापारी आया तो उसने पायली औंधी कर उसमें गोल मिर्च भर पायली की गणना शुरू की। इस पर ग्राहक व्यापारी ने आपत्ति की। सौदा लेने वाला बोला—हमने पायली भरने की बात की थी। सीधी भरूं या औंधी यह मेरी मर्जी है। सौदा लेने वाले ने कहा—कोई भी सौदागर इस माप से नहीं मापता। ऐसी स्थिति में मैं इस माप को स्वीकार नहीं करूंगा। बहुत कहा-सुनी के बावजूद व्यापारी अपनी बात पर अड़ा रहा।

ग्राहक व्यापारी न्याय पाने के लिए राजदरबार में उपस्थित हुआ। उस समय वहां पोपसिंह नामक राजा का राज्य था। राजा के पास न प्रशासन का अनुभव था और न ही बुद्धि-कौशल। वंश-परंपरा के आधार पर ही वह सत्तारूढ़ हुआ था। जब राजा पोपसिंह के पास दोनों व्यापारियों का झगड़ा पहुंचा तो वह बोला—मैं अपने राज्य में अन्याय नहीं होने दूंगा। तुम दोनों मिलकर सुलह कर सको तो ठीक, अन्यथा मेरा फैसला मान्य करना होगा। दोनों व्यापारी बोले—'हम आपस में विवाद नहीं सुलझा सके, इसीलिए आपके पास आए हैं।'

राजा ने बारी-बारी से दोनों व्यापारियों की बात सुनी। थोड़ी देर उसके सम्बन्ध में चिन्तन किया। फिर अपना निर्णय देते हुए कहा—'तुममें से एक कहता है कि काली मिर्च का माप सीधी पायली से होगा और दूसरा कहता है कि औंधी पायली से होगा। सीधी और औंघी पायली से तुम्हारा विवाद समाप्त नहीं होगा। इसलिए इस सौदे में आड़ी पायली से काली मिर्च का माप करना होगा।'

इस निर्णय से सौदा देने वाला व्यापारी तो खुश था। पर सौदा लेने वाला तो पूरी तरह से हार में रहता था। उसने राजा को अपने निर्णय पर पुनर्विचार का अनुरोध करते हुए कहा—'महाराज! पायली भी गोल होती है और काली मिर्च भी गोल होती है। आड़ी पायली पर गोल मिर्च टिकेगी कैसे? मिर्च टिकेगी ही नहीं तो माप कैसे होगा? यह बात सुन राजा बोला—मेरे सामने किसी का तर्क नहीं चलेगा। मैंने पहले ही कह दिया कि मैं जो निर्णय दूं, वही दोनों को मानना होगा। यह व्यापारी कुछ नहीं बोलता है, तब तू अकेला मेरे फैसले में हस्तक्षेप क्यों करता है? जाओ यहां से, मैंने जो फैसला दिया है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा।

व्यापारी हताश होकर वहां से लौट गया। उसने राजा के फैसले की बात लोगों को बताई तो कुछ व्यक्तियों ने उस पर टिप्पणी करते हुए कहा—'यह पोपसिंहजी का नहीं, पोपां बाई का इंसाफ है।' इस कथन का तात्पर्य पूछने पर उन्होंने कहा—'कोई अनपढ अविकसित और व्यवसाय को नहीं समझने वाली

औरत ही ऐसी बात कह सकती है। विवेकशील और व्यापार में कुशल पुरुष का निर्णय ऐसा नहीं हो सकता। कहा जाता है कि तब से राजा पोपसिंह पोपांबाई के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस घटना को किसी कवि ने छप्पय में बांधकर साहित्यिक रूप भी दे दिया—

मिरी झिरप्पी वाणिया, मेमूंदी की माप,
भरवा बगत हुया कहे, ऊंधी भरल्यो आप।
ऊंधी भरल्यो आप, हुआ तब झगड़ा भारी,
झगड़त-झगड़त दोय, आया तब राजदुवारी।
आड़े मापे स्यूं भरो, पाड़ी पोपां छाप,
मिरी झिरप्पी वाणिया, मेमूंदी की माप।।

पोपां बाई का राज

इस घटना के बाद पोपां बाई का राज और पोपां बाई का न्याय जैसी कितनी ही अनुश्रुतियां लोगों के मुंह पर जम गईं। जहां कहीं औचित्य का अतिक्रमण होता, पोपां बाई का नाम सामने आ जाता। इसी आशय की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं—

उकती उपाई, ए ती उमर गमाई,
कछु कीन्हीं न कमाई, काम भयो न भलाई को।
आंधी जब आई, तब कोई न सहाई भाई,
राई भर कछु ना बसाई ठकुराई को।
आई पहुंचाई पिछताई बाई माई जाई,
छूटो नातो टूटो तांतो 'किसन' सगाई को।
इंयां तो सदाई धूमधाम ही चलाई,
पर उवां तो नहीं है कछु राज पोपां बाई को।।

मनुष्य जीवन प्राप्त करके भी उससे कोई सार नहीं निकालने वाले लोगों को कवि किशनजी की यह हिदायत सजग होकर मानव जीवन को सफल बनाने की प्रेरणा देती है। यहां कुछ नहीं किया तो अगले जन्म में मनचाहा काम नहीं होगा। क्योंकि वहां पोपां बाई का राज नहीं है जो गलत काम करने वाला उसका फल भोगे बिना ही छुटकारा पा सके। इस प्रकार की और भी कुछ किंवदन्तियां घटनाओं के साथ प्रचलित हैं। एक घटना में पोपसिंहजी दोषी को फांसी की सजा देते-देते स्वयं फांसी के तख्त पर चढ़ जाते हैं। इन घटनाओं की प्रामाणिकता के बारे में कुछ भी बताना कठिन है। पर इतना सम्भव लगता है कि किसी समय किसी अनुभवहीन राजा ने कुछ इस प्रकार के फैसले दिए होंगे, जो आगे आकर

कुछ जोड़-तोड़ के साथ जन-जन के मुंह पर आ गए।

प्रभावशाली जैन यति

प्राचीन काल में पुर के जैन यति भी काफी प्रभावशाली थे, ऐसा माना जाता है। वे मन्त्र-तन्त्र के जानकार थे और समय-समय पर कुछ चामत्कारिक प्रयोग भी करते थे। एक बार कोई यति अपनी मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से छतरियों को आकाश में उड़ाकर ले जा रहे थे। पुर के यतियों ने उनको देखा। उन्होंने इस घटना को अपने लिए चुनौती माना। देखते ही देखते उन्होंने मन्त्र पढ़ा और छतरियां नीचे उतर आयीं। आज भी वे छतरियां पुर गांव से बाहर पहाड़ी पर ऊपर से टिकी हुई हैं। बिना नींव पहाड़ी पर टिकी हुई वे छतरियां दर्शनीय चीज बन गई हैं। अनेक व्यक्ति उन्हें देखने के लिए आते रहते हैं। इसी प्रकार एक बार आकाश में उड़ती हुई अनाज की बोरियों को भी किसी यति ने अपनी मन्त्र-शक्ति से वहां उतार लिया था।

नाथजी का प्रयोग

नाथ और सिद्ध जातियां भी हैं और साधु-संन्यासियों की परम्परा भी है। ऐसा कहा जाता है कि पुर में नौ नाथ और चौरासी सिद्ध हुए थे। वहां के कुछ नाथ बड़े चामत्कारिक हुए हैं। उनके चमत्कारों का आधार उनकी मन्त्र-साधना थी। एक बार उदयपुर के महाराणा ने पूरे मेवाड़ की गायों को गिनने का आदेश दिया। राज-कर्मचारी आदेश की क्रियान्विति में जुट गए। वे घूमते-घूमते पुर पहुंचे। वहां वे नाथजी की गायें गिनने लगे। नाथजी ने कहा—आप गांव की गायें गिन लीजिए, हम साधु-संन्यासियों को छोड़िए। राजकर्मचारी बोले—हमें दरबार का आदेश है। हम तो सारी गायों की गणना करेंगे। दो-तीन बार समझाने पर भी वे नहीं माने तब नाथजी ने कहा—अच्छा, गिनो मेरी गायों को।

इधर नाथजी ने आग जलाई। एक चिमटा उसमें डाला और मन्त्र का जाप शुरू किया। मन्त्र जपते ही एक गाय और उसके पीछे सिंह, दूसरी गाय और उसके पीछे सिंह—इस प्रकार गायों के साथ सिंहों की कतार खड़ी हो गई। राज कर्मचारी डरकर भाग गए। उदयपुर दरबार तक यह जानकारी पहुंची तो उन्होंने नाथजी की साधना से खुश होकर उन्हें एक सौ पचीस बीघा जमीन का उपहार दिया और उन्हें निर्बाध रूप में अपना काम करने का अनुरोध किया।

यह भी कहा जाता है कि पुर के राजा शालिवाहन के नाम का सिक्का चार

सौ वर्षों तक चला था। इस प्रकार और भी अनेक बातें पुर के सम्बन्ध में कही जाती हैं। पुरातत्त्वविद् और इतिहासविद् उन पर रिसर्च करें तो शायद कुछ नये तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं।

पुर की धार्मिक चेतना

किसी भी क्षेत्र के विकास में उसकी आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थितियों का भी पूरा योग रहता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने गए हैं। इनमें मनुष्य की अन्तिम मंजिल मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति का अमोघ उपाय है—धर्म। धर्म वह तत्त्व है, जो व्यक्ति को जीवन की जीवन्त दृष्टि देता है, नयी दिशा देता है और अविश्रान्त भाव से मंजिल की ओर गतिशील रहने की प्रेरणा देता है।

दो सौ वर्ष पहले पुर की धार्मिक चेतना किस महापुरुष के दर्शन और प्रेरणा से प्रभावित थी, इसके लिए ऐतिहासिक दस्तावेजों का अध्ययन जरूरी है। जन-धारणा के आधार पर इतना माना जा सकता है कि वहां की जनता जैन और वैदिक इन दोनों संस्कृतियों के प्रति आस्थाशील थी। जब से मेवाड़ में आचार्य भिक्षु का वर्चस्व स्थापित होने लगा, पुर के अधिकांश जैन परिवारों ने उनका अनुयायित्व स्वीकार कर लिया। तेरापंथ के प्रारम्भ में जो क्षेत्र तैयार हुए, पुर का नाम उल्लेखनीय है। सवा दो सौ वर्षों के इस कालखण्ड में तेरापंथ धर्मसंघ ने नौ आचार्यों के कर्तृत्व से विस्तार और निखार पाया है। पुर का इतिहास आठ आचार्यों के आगमन और प्रवास से गौरवान्वित है। छठे आचार्यश्री माणकगणी का कार्यकाल कुल साढ़े चार साल का ही रहा। इस छोटे से काल में वे मेवाड़ की यात्रा कर ही नहीं पाए। इसलिए पुर को आपके चरण स्पर्श का सौभाग्य नहीं मिला। शेष सभी आचार्यों की करुणा से यहां की जनता को समय-समय पर धार्मिक सिंचन मिलता रहा। पूज्य भिक्षु स्वामी और भारमलजी स्वामी ने तो पुर क्षेत्र को अपने पावस-प्रवास का दुर्लभ अवसर भी दिया। आचार्यों के आगमन और पावस-प्रवास का क्रम इस प्रकार है—

आचार्य भिक्षु	सं० १८३८, १८४२ सं० १८४७ चातुर्मास, १८५७ चातुर्मास
आचार्य भारमलजी	सं० १८७६ चातुर्मास
आचार्य रायचन्दजी	सं० १८९४
आचार्य जीतमलजी	सं० १९०९, १९१२
आचार्य मघराजजी	सं० १९४३
आचार्य डालचन्दजी	सं० १९६०

आचार्य कालूरामजी सं० १९७१, १९९३

आचार्यश्री तुलसी सं० १९९३, २०१२, २०१९, २०४२

आचार्यश्री भिक्षु ने पुर का स्पर्श चार बार किया। उसी इतिहास को दोहराते हुए आचार्यश्री तुलसी ने भी १५ मई को प्रातः पीथास से पुर के लिए प्रस्थान किया।

अध्यात्म का अभिनन्दन

प्रातः काल का समय था, सूरज अपने पूरे तेज के साथ तप रहा था। पदयात्री साधु-साध्वियों का एक बड़ा काफिला कंधों पर बोझ लिये पुर की सड़क पर चल रहा था। उधर से पुर के नागरिक मन में उत्साह और उमंग संजोए उस काफिले की अगवानी में जा रहे थे। सभी जाति और वर्गों के लोग छोटी-छोटी टुकड़ियों में एक ही लक्ष्य से आगे बढ़ रहे थे। बैरवा समाज की महिलाएं और पुरुष भी संगठित रूप से आ रहे थे। मार्ग में साध्वियां मिलीं, साधु मिले, पर लोग ठहरते ही नहीं थे। उनके आकर्षण का केन्द्र बिन्दु एक ही था। इसलिए वे चलते चले। सामने से आ रहा था हवा में लहराता हुआ पंचरंगा ध्वज और उससे थोड़े से पीछे चले आ रहे थे सधे हुए कदमों से आचार्यश्री तुलसी। लोगों को अपनी मंजिल मिल गई। वे रुक गए। सामने का रास्ता खुला होने पर भी बन्द था। इसलिए लोग मुड़े और आचार्यवर का अनुगमन करते हुए पुनः शहर के अभिमुख होकर चलने लगे। साफ-सुथरे रास्ते, स्थान-स्थान पर बने हुए दरवाजे और टंगे हुए मोटोज, मोड़-मोड़ पर श्रद्धालु भक्तों की बद्धांजलि भीड़। दर्शनीय को देखते हुए और जनता को असीसते हुए आचार्यवर स्थानीय राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में पहुंचे।

आचार्यवर मंच पर पधारे, तब तक जन समूह व्यवस्थित रूप से सभा के रूप में बदल गया था। तेईस वर्षों के बाद आचार्यवर को अपने गांव में देखकर स्थानीय लोग हर्ष-विभोर हो रहे थे। वे अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्ति देने के लिए उतावले हो रहे थे। उनके लिए एक छोटा-सा कार्यक्रम रखा गया, जिसमें अभिनन्दन-गीत, स्वागत-भाषण, अभिनन्दन-पत्र का वाचन आदि के माध्यम से अनेक व्यक्तियों ने अपने मन की मुराद पूरी की। पंडित कहैन्यालाल व्यास ने अपनी भावना को एक कविता में गुंफित कर प्रस्तुति दी।

मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए श्री रामप्रसाद लड्ढा ने कहा—आज विश्व में हिंसात्मक उपकरणों का विकास बहुत तेजी से हो रहा है। चारों ओर भय एवं आतंक का वातावरण बना हुआ है। जिधर देखें उधर तनाव। आज न सम्पन्न राष्ट्रों में शान्ति है और न गरीब राष्ट्रों में शान्ति है। गरीब देश अमीर

वनने की होड़ में हैं। अमीर देश और अधिक अमीर वनना चाहते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि शान्ति न गरीबी में है, न अमीरी में है। वह है धर्म में। यही वात वताने के लिए आचार्यश्री यहां आए हैं। आचार्यश्री का उपदेश सुनकर हम अपने भीतर झांकें और वहां वह रहे शान्ति के स्रोत को हस्तगत करें।'

अभिनन्दन के कार्यक्रम में वोलने वालों की सूची लम्वी थी। वे सव लोग अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देना चाहते थे। इधर जनता आचार्यश्री को सुनने के लिए वेचैन हो रही थी। कुछ वक्ताओं को समय देने के वाद सवको यह निर्देश दिया गया कि वे आचार्यवर का शाब्दिक नहीं, भावनात्मक अभिनन्दन करें। उसके लिए न शब्दों की जरूरत है और न समय की। यह सुझाव सवको पसन्द आया। उन्होंने अपनी अरूप भावनाओं को रूप दिए विना ही गुरुदेव के पास संप्रेपित कर सहज प्रसन्नता का अनुभव किया।

मुझे क्या मिला ?

आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—'जनता की सवसे वड़ी भूख है शान्ति की। इस भूख को कौन मिटा सकता है ? जो स्वयं शांत हों, वे ही किसी को शान्ति का उपाय वता सकते हैं। सन्तजन सहज, शान्तिमय जीवन जीते हैं। वे अपने जीवन के अनुभवों से दूसरों को पथदर्शन देते हैं। शान्ति प्राप्त करने के प्रयोग सुझाते हैं। पर उपाय या प्रयोग जानने मात्र से क्या होगा ? आखिर तो उन्हें काम में लेने से लाभ मिलेगा। वीमार व्यक्ति को वैद्य ने दवा वताई। वह दवा नहीं लेगा तो स्वस्थ कैसे होगा ? आप लोग भी अगर अशान्ति से व्यथित होकर शान्ति पाना चाहते हैं, तो उसकी प्रक्रिया हम सुझा सकते हैं, पर प्रयोग करने के लिए आपको तैयार रहना होगा।

प्रायोगिक जीवन में अणुव्रत और प्रेक्षा ध्यान के मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा कर आचार्यवर ने प्रासंगिक टिप्पणी करते हुए कहा—आज आप सव अपार खुशी में डूव रहे हैं। आपके चेहरे और मन खिल रहे हैं। आपने गलियां संवारी हैं। पंडाल सजाया है। अभिनन्दन-पत्र भेंट किए हैं। इन सवसे मुझे क्या मिला ? क्या एक भी वस्तु मेरे उपयोग में आएगी ? आप जानते हैं कि आपके गुरु न तो आपसे थैलियों की भेंट लेंगे और न ये अभिनन्दन-पत्र ही हमारे काम आएंगे। कहां ले जाकर रखें इन सवको ? कहीं चार इंच भी स्थान तो है नहीं। कंधे हैं घर के। जितना वोझ जीवन की न्यूनतम आवश्यकता के रूप में उठाना जरूरी है, उतना ही कंधों पर लादा जा सकता है। ऐसी स्थिति में आपने हमारी प्रसन्नता के लिए क्या किया ? यदि आप इस सन्दर्भ में जानना चाहें तो मैं एक ही वात कहूंगा कि हमारी प्रसन्नता का आधार है त्याग-वैराग्य। आप अपनी वुराइयों का त्याग

करें और अच्छाइयों को वढ़ाने के लिए संकल्प स्वीकार करें। यह त्यागमय अभिनन्दन ही सच्चा अभिनन्दन हो सकता है।'

आचार्यवर के प्रवचन ने जनता के चिन्तन की दिशा मोड़ दी। जो लोग यह सोच रहे थे कि आचार्यश्री उनकी औपचारिक तैयारियों से खुश हो जाएंगे, उनकी धारणा टूट गयी। एक क्षण के लिए सबको अपने भीतर झांकने का मौका मिला। संकल्प स्वीकार करना अगला कदम होता है। प्रारम्भिक रूप में अपनी दुर्वलता को दुर्वलता समझ लेना भी कोई कम उपलब्धि नहीं होती।

संस्कृत और संस्कृति का सम्बन्ध

मध्याह्न में सदा की भांति भगवती सूत्र का अध्ययन चल रहा था। आचार्यवर आगम के अध्ययन-अध्यापन में आध्यात्मिक विकास की नयी सभावनाएं देखते हैं। इसलिए समय-समय पर साधु-साध्वियों को गंभीर अध्ययन की प्रेरणा देते रहते हैं। साध्वियों के शैक्षणिक विकास को देखकर तो आपको अतिरिक्त प्रसन्नता होती है। उस दिन आपने कहा—हमारे धर्म संघ की साध्वियां आगम कार्य में संलग्न हैं, यह एक नयी बात है। साध्वियां वोलीं—'गुरुदेव ! आपकी कृपा से हमें यह अवसर मिला है। अन्यथा हम क्या कर सकती थीं ? यदि ऐसा अवसर पहले मिला होता तो साध्वियों का भी अपना इतिहास होता।' आचार्यवर ने साध्वियों को संस्कृत और प्राकृत में और अधिक ठोसता प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

यह प्रसंग चल ही रहा था कि स्थानीय वयोवृद्ध पंडित केशवदेव व्यास आ गए। उन्होंने आचार्यश्री के साथ संस्कृत में बातचीत की। पंडितजी के मन में संस्कृत भाषा की उपेक्षा से एक पीड़ा थी। आचार्यश्री अपने साधु-साध्वियों को संस्कृत पढ़ाते हैं और यहां संस्कृत भाषा के विकास की संभावना है, यह जानकारी पाकर उन्हें विशेष खुशी का अनुभव हुआ। उन्होंने कहा—आचार्यजी ! संस्कृत छूटने से हमारी संस्कृति धूमिल हो जाएगी और अच्छे संस्कार छूट जाएंगे। आप इसे पोषण देते रहें।

रात्रिकालीन कार्यक्रम में युवाचार्यश्री का विशेष प्रवचन हुआ। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त भीलवाड़ा से भी काफी लोगों ने प्रवचन का लाभ लिया। १६ और १७ मई को भी तीनों समय कार्यक्रम आयोजित हुए। सभी लोगों ने विना किसी भेदभाव के सत्संग का लाभ लिया।

वैरवा सम्मेलन

१७ मई को मध्याह्न में वैरवा समाज का एक वृहद् संस्कार निर्माण सम्मेलन

आयोजित किया गया। वैरवा समाज के लगभग दो सौ भाई-बहन उसमें उपस्थित थे। अन्य हजारों लोग तो उपस्थित थे ही। उस सम्मेलन को मुनि सुखलालजी के अतिरिक्त श्री मनोहरसिंह मेहता, मोहनलाल जैन, डालचन्द बोदिया आदि कई व्यक्तियों ने सम्बोधित किया। सम्मेलन के प्रेरक श्री नारायणलाल एवं देवीलाल वैरवा ने भी अपने विचार व्यक्त किए। आचार्यश्री ने अपने मंगल प्रवचन में कहा—'इस सम्मेलन का उद्देश्य है वैरवा जाति के लोगों को अपने अस्तित्व की पहचान करवाना। अस्तित्व की पहचान तब होगी जब आप स्वयं को अछूत न समझेंगे। सामाजिक बुराइयों को छोड़ेंगे। व्यसन-मुक्त बनेंगे। अपने संस्कारों का सुधार करेंगे और जीवन में धार्मिकता को स्थान देंगे। ऐसा हुआ तो यह समाज निश्चित रूप से गति-प्रगति कर सकता है। उस अवसर पर आचार्य प्रवर ने मद्य निषेध, मिलावट निरोध, दहेज उन्मूलन, अस्पृश्यता निवारण और भावात्मक एकता रूप पंच सूत्री संकल्प योजना को विस्तार से समझाया। अनेक भाई-बहनों ने वे संकल्प स्वीकार किए। उस समाज के कार्यकर्ताओं ने अणुव्रत कार्य को अधिक तेजी से आगे बढ़ाने की भावना व्यक्त की। वहां एक अणुव्रत बाल भारती बनाने का निर्णय भी लिया गया।

वैरवा समाज में जागृति

लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व सं० २००७ में मुनि कानमलजी का चातुर्मास पुर में था। उस चातुर्मास में वहां का वैरवा समाज सन्तों के सम्पर्क में आया। सन्तों ने उनको उपदेश सुनाया। कुछ लोग सुलभ बोधि थे। उन्हें उपदेश की बातें अच्छी लगीं। उनके मन में सन्तों के प्रति, धर्म के प्रति श्रद्धा जागृत हुई। पीढ़ियों से चर्मकार होने पर भी इस समाज का खानपान शुद्ध है, मद्य-मांस से वे लोग परहेज रखते हैं। धार्मिकता की पहली सोपान है श्रद्धा और दूसरी है खानपान की शुद्धि। श्रद्धा और आहार-शुद्धि के साथ निरन्तर सन्तों के सम्पर्क से उनके मन की धरती पर धार्मिकता के बीज अंकुरित हो गए। उन्होंने गुरु-मन्त्र की दीक्षा स्वीकार की और मौका पाकर वे आचार्यश्री के दर्शन करने पहुंच गए। शिक्षा और संस्कारों की कमी के कारण तत्त्वज्ञान की उनमें काफी कमी है। फिर भी कुछ भाई बहुत पक्के और निष्ठावान हैं। उनमें भक्त नन्दलाल का नाम सबसे प्रथम पंक्ति में रखने योग्य है। वह प्रतिदिन सामायिक करता है, प्रतिवर्ष गुरु-दर्शन करता है और साधु-साध्वियों की सेवा करता है। तेरापंथ श्रावक समाज में उसका अच्छा स्थान है। रामूजी आदि कई अन्य भाई सामायिक, माला आदि उपासना में अच्छा रस लेते हैं। महिलाओं और बच्चों में भी लगन है। पर संभाल कम होने से उनमें जागृति नहीं आ पायी है। सलक्ष्य संभाल रखने से इस समाज में विकास की

अच्छी संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

आचार्यश्री के आगमन से पुर के वैरवा समाज में भी जागृति की नयी लहर आ गयी। १५ मई को आचार्यवर वहां पधारे। १६ मई को प्रातःकाल वैरवा समाज के प्रमुख लोगों की एक मीटिंग बुलाई गई। मीटिंग में इस बात पर चर्चा हुई कि समाज के युवक-युवतियों को धार्मिक वोध कैसे मिले ? तथा धर्म जागृति में आया गतिरोध दूर कैसे हो ? इस काम के लिए साधु-साध्वियों को विशेष जिम्मेवारी देने का निर्णय लिया गया। सामाजिक संगठन की दृष्टि से वैरवा समाज की तेरापंथी सभा स्थापित हो गई।

उलझा हुआ विवाद सुलझा

१७ मई को प्रातः आचार्यवर वैरवा मुहल्ले में पधारे। मुहल्ले के अधिकांश लोग एक स्थान पर एकत्रित हो गए। पहले वहां कोई कार्यक्रम करने का चिन्तन नहीं था, पर जव इतने लोगों को सामने देखा तो आचार्यश्री ने उनको सम्वोधित करते हुए कहा—पुर में आपके मुहल्ले में सबसे पहले आया हूं। मेरा यहां आने का एक ही उद्देश्य है कि आप अपने आचार-विचार को सुधारें और निष्ठाशील श्रावक वनें। वैरवा समाज के प्रायः सभी भाई-वहनें मेरे सामने हैं। मुझे पता है कि आप लोगों में कुछ मतभेद, मनमुटाव चल रहा है। मनमुटाव समाज के विकास में सबसे बड़ी वाधा है। मैं चाहता हूं कि वह पूरी तरह से समाप्त हो और आपके विकास का रास्ता प्रशस्त हो।

आचार्यवर की प्रेरणा से वे लोग सामने आए, जो उस विवाद में प्रमुख रूप से जुड़े हुए थे। उन्होंने अन्तःकरण से स्वीकार किया कि वे अपनी ओर से विवाद को निपटाने में तत्परता दिखाएंगे। यह वात सुन सव लोगों को प्रसन्नता हुई। आचार्यवर ने वैरवा वन्धुओं के घरों को भी पावन किया।

चालीस परिवारों के वैरवा समाज में जमीन के एक छोटे से टुकड़े को लेकर तीन गुट हो गये थे। उन गुटों के सदस्यों में लेन-देन और रोटी-वेटी के व्यवहार में भी कठिनाइयां उपस्थित होने लगीं। आचार्यवर ने उस स्थिति को समझने और संभालने के लिए मुनि सुखलालजी और स्थानीय श्रावक श्री गणेशमलजी चोरड़िया को कुछ विशेष निर्देश दिए।

मुनि सुखलालजी और भाई गणेशजी ने उन लोगों से संपर्क किया। दिनभर मेहनत करने के वावजूद उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। कुछ लोगों के मन में कई प्रकार की आशंकाएं थीं। जव तक आशंकाओं का निरसन न हो, वे कोई निर्णय मानने की स्थिति में नहीं थे। रात को ग्यारह वजे विवाद से सम्वन्धित सव लोगों को एकत्रित किया गया। यद्यपि वे उक्त विवाद के सम्वन्ध में होने वाले निर्णय को

स्वीकार करने के लिए लिखित स्वीकृति दे चुके थे। फिर भी उनका चिन्तन स्थिर नहीं था। भाई गणेशजी ने सारी स्थिति का आकलन कर एक फैसला लिख लिया था। पर उन सबकी मानसिकता बदले बिना उसे सुनाने का कोई अर्थ नहीं था। इसलिए वे उन लोगों के साथ आचार्यवर के सान्निध्य में उपस्थित हुए।

आचार्यवर की मंगल प्रेरणा से दो पक्षों के लोगों ने अपना समर्पण कर दिया। तीसरा पक्ष अब तक दुविधा में था। उसे भय था कि फैसला उसके हक में नहीं रहा तो? इस प्रश्नचिह्न ने उस पक्ष के लोगों को एक बार फिर विचार करने के लिए प्रेरित किया। आचार्यवर ने उनकी ओर इंगित कर कहा—'तुम लोग अलग बैठकर सोच लो। तुम्हारी स्वीकृति के बाद ही फैसला सुनाया जाएगा। तुम पर कुछ भी थोपा नहीं जाएगा। पर यह बात अवश्य है कि ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता है। इस अवसर को खो दिया तो पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

आचार्यश्री की प्रेरणा से उनका मन पिघला, पर आश्वस्त नहीं हुआ। एक क्षण वे फैसले को स्वीकार करने के लिए तैयार होते हैं और दूसरे क्षण अपने निर्णय से हट जाते हैं। इस कशमकश में कुछ लोगों ने कह दिया—'इस झगड़े का फैसला हम यहां नहीं, कोर्ट में लेंगे।' वहां उपस्थित लोगों ने समझा कि बात टूट गई। रात के बारह बजे का समय था। लोग हताश और निराश हो चुके थे। पर आचार्यश्री के मन में विश्वास का दीप जल रहा था। एक-दो युवक वहां से उठ कर भी चले गये। फिर आचार्यवर उनको समझाते रहे। आखिर तीसरे पक्ष ने भी अपना आग्रह छोड़ दिया।

तीनों पक्षों की सहर्ष स्वीकृति के बाद फैसला सुनाया जा रहा था। बीच में बिजली चली गई और अंधेरा हो गया। इस पर आचार्यवर ने कहा—'अंधेरे के बाद फिर प्रकाश होता है।' कुछ देर बाद ही बिजली आ गई। कमरे में प्रकाश फैल गया। फैसला पूरा पढ़ दिया गया। इस पूरे घटनाचक्र में आश्चर्य की बात यह हुई कि तीसरे पक्ष ने सहमति देकर भी फैसले को मानने से इनकार कर दिया। 'रात भर पीसा और ढकनी में उसेरा' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। उस समय आचार्यवर मंगल पाठ सुना देते तो बात वहीं समाप्त हो जाती, किन्तु आपने उनको फिर समय दिया। कुछ अन्य लोगों ने भी समझाया। एक क्षण ऐसा आया, जब उन्हें अपनी भूल का बोध हो गया। उन्होंने आचार्यवर के चरणों में नमस्कार कर फैसले को मान्य कर लिया।

तीनों पक्षों द्वारा फैसले का स्वीकार ही विवाद का अन्त था। अब तो सब लोग परस्पर गले मिले। उन्होंने आपस में क्षमायाचना की और आचार्यवर की शिक्षाओं को शिरोधार्य कर अपने समाज को संगठित बनाए रखने का संकल्प

व्यक्त किया। उस दिन वैरवा समाज के लोगों को नयी दिशा मिली, नया जीवन मिला और उनके मन की कलुपता धुल गई।

पुर में रहने वाले सवर्ण भी वैरवा समाज के प्रति उपेक्षा भाव न रखें, यह भी वहुत आवश्यक था। क्योंकि उन लोगों का अहं और अनुसूचित जाति के लोगों की हीनभावना दोनों वर्गों के बीच एक दीवार बन रही थी। आचार्यवर ने दोनों वर्गों को अहं और हीनभावना से मुक्त होकर भ्रातृत्व भाव विकसित करने की प्रेरणा दी। कुल मिलाकर वहां वहुत अच्छा वातावरण वन गया।

वच्चों का शिविर

१८ मई को प्रातः आचार्यवर के सान्निध्य में तत्त्वज्ञान प्रशिक्षण शिविर का समापन समारोह था। मेवाड़ क्षेत्रीय वच्चों के साप्ताहिक शिविर में पिचासी वच्चों ने भाग लिया था। शिविर काल में वच्चों को प्रमुख रूप से तीन विषयों का प्रशिक्षण दिया गया था—तत्त्वज्ञान, अनुशासन और व्यावहारिक प्रशिक्षण। मुनि सुमेरमलजी आदि सन्तों ने पूरा परिश्रम कर वच्चों को क्षण-क्षण का उपयोग करने का सुन्दर वातावरण निर्मित कर दिया। शिविर संचालक हस्तीमलजी ने शिविर की दिनचर्या तथा अन्य कार्यक्रमों की जानकारी देते हुए साप्ताहिक रिपोर्ट प्रस्तुत की। प्रिंसिपल श्रीमती वडेरा ने बच्चों के संस्कार-निर्माण के इस प्रयत्न की सराहना करते हुए आचार्यश्री द्वारा की जा रही मानवता की सेवा का उल्लेख किया।

आचार्यवर ने अपने उद्‌बोधन प्रवचन में कहा—इस प्रकार के शिविरों का समायोजन इन नन्हें-मुन्नों के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। यदि बच्चे शिविर में प्राप्त संस्कारों को संजोकर रखें तो ये क्षण इनके जीवन में वहुत उपयोगी वन सकते हैं। इन्होंने यहां जिस अनुशासनप्रियता का परिचय दिया है, उसे सदा-सदा के लिए आत्मसात कर लें तो ये एक आदर्श वन सकते हैं। वच्चों को संस्कार देना, अनुशासन में ढालना और तत्त्वज्ञान सिखाना वहुत वड़ी वात है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभिभावकों को वच्चों के निर्माण की चिन्ता नहीं है। वे अपने इस दायित्व से वेदरकार रहते हैं। यही कारण है कि समूचे मेवाड़ का शिविर और इतने कम वच्चों की उपस्थिति। अभिभावकों को तो केवल पैसे की चिन्ता है। न तो वे स्वयं वच्चों को समय दे पाते हैं और न वे उनको ऐसे शिविरों में भेजते हैं। इसीलिए संस्कारों का ह्रास हो रहा है। वच्चों को संस्कारी बनाने के लिए शिविर एक प्रयोगशाला है। इसका पूरा-पूरा उपयोग होना चाहिए।

आचार्यवर द्वारा दिए गए संकेत से अभिभावकों को अपने प्रमाद का एहसास हो गया। सभा में यह भी वताया गया कि कुछ वच्चों ने तत्त्वज्ञान में शत

प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं। अनुशासन और व्यावहारिक प्रशिक्षण में भी उन्हें अच्छे अंक मिले हैं। इस बात से उन बच्चों के आकृति पर भी हल्का-सा अनुताप का भाव नितर आया, जो शिविर में रहने की प्रेरणा पाकर भी उसका लाभ नहीं उठा सके। सभी शिविरार्थी बच्चों को पुरस्कृत किया गया।

दो विवाद सुलझे

आचार्यवर का व्यक्तित्व बहुरंगी है। उसमें एक ओर प्रशासन की अनुभव संपदा है, तो दूसरी ओर है साधना का स्वाभाविक निखार। उसका एक अंग साहित्यिक प्रतिभा का साक्ष्य देता है तो दूसरा अंग वक्तृत्व और संगीत की कुशलता से तराशा हुआ है। उसमें एक तरफ अवस्थागत गांभीर्य है तो दूसरी तरफ बाल सुलभ सहजता और स्फुरणा है। व्यक्तित्व का कौन-सा कोण ऐसा है, जो अपने आप में पूर्ण और अद्भुत न हो। जन सभाओं में आप मानव धर्म की सीधी व्याख्या करते हैं तो लोक जीवन के अन्तरंग में प्रवेश कर व्यक्ति-व्यक्ति के मन में उलझी हुई ग्रंथियों को खोलते हैं। अमृत महोत्सव की यह अमृत-यात्रा तो लोक-मानस में घुले हुए विष को धोकर जन-जन को प्रेम और मैत्री का अमृत बांट रही है।

पिछले कई वर्षों से पुर के ओसवाल समाज में बांवलिया और नैनावटी परिवारों में कुछ पुरानी बातों को लेकर विवाद चल रहा था। उस विवाद के कारण समाज की पंचायत से भी उनका सम्बन्ध नहीं रहा। बांवलिया परिवार इन वर्षों में प्रायः कलकत्ता रहने लगा। इसलिए विवाद एक बिन्दु पर पहुंचकर ठहर गया। आचार्यश्री के पुर आगमन के अवसर पर वह परिवार भी पुर पहुंचा। नैनावटी परिवार वहां था ही। आचार्यश्री को विवाद की जानकारी दी गई तो आपने दोनों परिवारों को एक-एक कर पूछा—क्या आप लोग वास्तव में झगड़ा मिटाना चाहते हैं? दोनों पक्षों की ओर से सहज स्वीकृति प्राप्त करने के बाद आपने उनको पुरानी बातें भूलकर आपस में 'खमतखामणा' करने का परामर्श दिया। आचार्यवर के शब्दों में न जाने क्या जादू था, दोनों परिवारों ने उदार मन से खमतखामणा किया और उनका विचार-भेद पूरी तरह से समाप्त हो गया।

दूसरी घटना का सम्बन्ध पूरे समाज से था। उसका निमित्त था मृत्युभोज। मेवाड़ में मोसर, किरियावर, प्रसादी, ब्रह्मभोज आदि कई नामों से मृत्युभोज किया जाता है। पुर में कुछ लोगों ने मृत्युभोज का त्याग कर दिया। कुछ लोग उस पुरानी परम्परा को निभाते रहे। समाज दो भागों में विभक्त हो गया। उस समय उनको सही दिशा दिखाने वाला कोई मिला नहीं, इसलिए विवाद में

स्थिरता आ गई। आचार्यवर ने उस सन्दर्भ में अपना चिन्तन स्पष्ट रूप में रख दिया। नया मोड़ कार्यक्रम में आए हुए ठहराव को दूर करने के लिए भी आपने विशेष वल दिया। लोगों को वोध मिला। उन्होंने अपने आग्रह को छोड़कर यह स्वीकार कर लिया कि किरियावर, प्रसादी, ब्रह्मभोज आदि किसी भी नाम से मृत्युभोज नहीं किया जाएगा। दूसरे गांव में किसी सम्वन्धी के यहां जाने का प्रसंग हो और वहां मृत्युभोज हो तो उस भोज में वनी मिठाई खाने पर भी प्रतिवन्ध लगा दिया। यह वात सर्व सम्मति से मान्य हो गयी।

पुर में आचार्यवर का चार दिवसीय प्रवास वहुत कार्यकारी रहा। धार्मिक जागृति के अतिरिक्त वहां समाज में सव प्रकार के विवाद सुलझ गए। वर्षों का मनोमालिन्य धुल गया और चारों तरफ प्रेम और सद्भावना की धाराएं वह निकलीं। यह सवसे वड़ी उपलव्धि रही। इससे वर्तमान पीढ़ी और भावी पीढ़ी दोनों को लाभ मिलता है। अन्यथा इस पीढ़ी में पड़ी हुई दरारें आगे चलते-चलते चौड़ी होकर किसी खाई का रूप भी ले सकती हैं।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

एक लाख से अधिक आवादी वाला भीलवाड़ा शहर मेवाड़ के चार जिला क्षेत्रों में से एक है। वहां लगभग एक हजार जैन परिवार रहते हैं, जिनमें से दो सौ परिवार तेरापंथी हैं। भीलवाड़ा शहर कव और कैसे आवाद हुआ? इस संवंध में सव लोग एकमत नहीं हैं। कुछ लोगों का अभिमत है कि भीलवाड़ा एक भील के नाम पर वसा हुआ है। उस भील ने वहां एक शिव मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मन्दिर शहर के प्राचीनतम भाग जूनावास में जतुनका मन्दिर क्षेत्र में है। इस वात को स्वीकार किया जाए तो भीलवाड़ा शहर कम से कम नौ सौ वर्ष प्राचीन सिद्ध होता है।

एक दूसरी मान्यता के अनुसार भीलवाड़ा शहर अधिक से अधिक तीन सौ पचास वर्ष पुराना है। राजस्थान के वड़े कस्वों की तरह इसका कोई विशेष इतिहास नहीं है। किसी समय यह एक छोटा-सा कस्वा था। जैसे-जैसे यहां व्यापार वढ़ा व्यापारियों की संख्या वढ़ी, आर्थिक विकास के साधन सुलभ हुए, वैसे-वैसे यह एक शहर के रूप में प्रतिष्ठित होता गया।

भीलवाड़ा के विकास और ह्रास पर प्राकृतिक स्थितियों के साथ राजनैतिक स्थितियों का भी विशेष प्रभाव रहा। दिल्ली के मुगल वादशाह खिलजी सुलतान और मेवाड़ के तत्कालीन राणा के आपसी सम्वन्ध मधुर नहीं थे। उस तनावपूर्ण वातावण में सुरक्षा-व्यवस्था की कमी और स्थायी शान्ति के अभाव में इसकी समृद्धि एवं विकास में वाधाएं आती रहीं।

ई० सन् १६१५ से १८१० के मध्य का समय भीलवाड़ा के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस काल में प्रमुख रूप से राणा अमरसिंह और राणा राजसिंह ने इस शहर को विकसित करने के लिए सर्वाधिक ध्यान दिया। राणा अमरसिंह ने सन् १६१५ में जहांगीर के साथ संधि कर ली। इससे उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो गयीं। इसके बाद हर दृष्टि से वहां विकास की संभावनाएं बढ़ती गयीं।

सन् १८१० के बाद आठ वर्ष का समय सम्पूर्ण उत्तरी भारत और राजस्थान के लिए विशेष आतंक का था। जागीरदारों ने विद्रोह का बिगुल बजाकर कहर ढहा दिया। जनता की सम्पत्ति लूट ली गयी। सुख-शान्ति में अवरोध उपस्थित हो गए। राज्य की स्थिरता और निश्चिन्तता संदिग्ध हो गयी। इतिहासकार टाड ने उस समय की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है—'जितना विनाश इस समय हुआ है, उतना किसी भी आक्रमण के समय नहीं हुआ। इस विनाश की कहानी बोलती है कि सन् १८०६ में छह हजार परिवार की आबादी वाला यह क्षेत्र सन् १८१८ में सर्वथा निर्जन हो गया। मनुष्य की तो बात ही क्या, इसके पद चिह्नों तक का लोप हो गया। इस स्थिति में भीलवाड़ा भूतों का शहर कहलाने लगा।

भीलवाड़ा के पुनर्निर्माण का काल सन् १८१८ से १६४७ तक माना गया है। उस काल में मेवाड़ के शासकों ने अंग्रेज शासकों के साथ सन्धि कर ली। ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने पर इसका विकास तीव्र गति से होने लगा। सन् १८१२ तक वहां पुनः सत्ताईस सौ परिवार आबाद हो गए। सन् १८१८ से सन् १८२२ तक चार वर्षों में भीलवाड़ा राजस्थान का मुख्य बाजार बन गया। व्यावसायिक केन्द्र बनते ही वहां आबादी का विस्तार होने लगा। थोड़े ही समय में वहां दस हजार परिवार बस गए। इस विकास कार्य में राणा भीमसिंह और कर्नल टॉड के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं।

भीलवाड़ा में तेरापंथ

भीलवाड़ा आचार्य भिक्षु के समय से ही तेरापंथ का कार्यक्षेत्र रहा है। तीसरे और छठे—दो आचार्यों के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने अपने चरण स्पर्श से उस धरती को पावन किया। आचार्य भिक्षु का आगमन सं० १८५७ में हुआ। आचार्य भारीमालजी सं० १८१६ में वहां पधारे। चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने सं० १६०६ में भीलवाड़ा में प्रवास किया। मघवागणी का प्रवास सं० १६४३ में हुआ। डालगणी सं० १६६० में पधारे। अष्टमाचार्य कालूगणी ने दो बार सं० १६७१ और १६६३ में वहां प्रवास किया। आचार्यश्री तुलसी पहले सं० १६६३

और २०१२ में भीलवाड़ा पधारे। उसके बाद सं० २०४२ में तीसरी बार कृपा कर नगरवासियों को कृतार्थ कर दिया। वहां साधु-सध्वियों के चातुर्मास वि० सं० १९१२ से होने लगे। कुछ वर्षो बाद लम्बे समय तक वहां चातुर्मास नहीं हुए। सं० १९९७ से चातुर्मासों की टूटी हुई शृंखला फिर जुड़ी। उसके बाद प्रायः प्रति वर्ष चातुर्मास होते रहे हैं। सवा दो सौ वर्ष की इस अवधि में वहां से केवल एक ही दीक्षा हुई है। अन्य अनेक विषयों में अग्रणी क्षेत्र भीलवाड़ा इस प्रसंग में काफी सुस्त रहा, ऐसा प्रतीत होता है।

भीलवाड़ा में औद्योगिक विकास के साथ-साथ शैक्षणिक प्रगति भी अच्छी है। यही कारण है कि वहां छोटे से तेरापंथी समाज में लगभग एक सौ पचास व्यक्ति स्नातक और स्नातकोत्तर परीक्षाएं उत्तीर्ण किए हुए हैं। वह समाज उन्नत और जागृत माना जाता है, जिसमें उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की टीम होती है। भीलवाड़ा के तेरापंथी समाज में डॉक्टर, एडवोकेट, सी० ए० और पी-एच० डी० करने वाले युवक भी हैं, यह उसके लिए गौरव की बात है।

तीस वर्ष बाद

२० मई की स्वर्णिम सुबह। भीलवाड़ा के उपनगर बापूनगर में विशेष प्रकार की हलचल थी। शहर के स्त्री, पुरुष, बच्चे उत्साहित मन से एक ही दिशा में बढ़ रहे थे। तीस वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद नगरवासियों के सपने साकार हो रहे थे। सन् १९५६ में आचार्यश्री वहां पधारे थे। उस समय भीलवाड़ा में मर्यादा महोत्सव का आयोजन था। महोत्सव भी अपने ढंग का और ऐतिहासिक हुआ था। उस समय जो युवा थे, वे बुढ़ापे का स्पर्श कर चुके थे, बच्चे युवा बन चुके थे और उसके बाद जनमने वाले भी यौवन की दहलीज पर पहुंच गए थे। सबसे अधिक उत्सुकता और उमंग इसी पीढ़ी के सदस्यों में थी। वह अपने गुरु, मार्ग-दर्शक और आराध्य को अपने शहर एवं घर में देखने की तमन्ना को साकार करने जा रही थी।

आचार्यश्री १९ मई को बापूनगर पहुंच गए थे। २० मई को प्रातः वहां से जवाहर रोड, सांगानेरी दरवाजा तथा शहर के अनेक मुख्य मार्गों का स्पर्श करते हुए आप एक भव्य और वृहद् जुलूस के साथ चले। ठीक समय पर जुलूस राजेन्द्र मार्ग स्थित राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के विशाल प्रांगण में पहुंच गया। वहां पहुंचते ही स्वागत-जुलूस स्वागत-सभा में रूपान्तरित हो गया।

स्वागत समारोह का कार्यक्रम आयोजित था। राष्ट्र के महान सन्त आचार्य-प्रवर के स्वागत में त्याग-तपस्या की भेंट समर्पित की जाती तो अधिक उपयुक्त रहती। किन्तु सामान्यतः लोग प्रवाहपाती होते हैं। इसलिए उन्होंने द्वारों,

फरियों और मोटोज टांगकर एक प्रकार का स्वागत किया। स्वागत के दूसरे चरण में मंगल गीतों और स्वागत भाषणों की परंपरा का निर्वाह हुआ।

स्वागताध्यक्ष श्री निरंजनकुमार सुराना ने मेवाड़ की औद्योगिक और बौद्धिक नगरी भीलवाड़ा की ओर से आचार्यवर का स्वागत करते हुए कहा—तीस वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद आपके आगमन से हमारी नगरी का कण-कण उल्लसित एवं पुलकित है। आप अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से जन-जीवन को सही ढंग से जीने की कला सिखा रहे हैं। आपके इस प्रवासकाल में हम लोग भी कुछ सीखेंगे और अपने जीवन की दिशा को बदल पाएंगे, ऐसा विश्वास है।

भारत जैन महामण्डल के स्थानीय प्रतिनिधि श्री शान्तिलाल पोकरना ने कहा—'आज पूरे भारत की नजरें आचार्यश्री तुलसी पर टिकी हुई हैं। देश के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के लिए आपका मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहे, यही मंगल कामना है।'

राजस्थान के पूर्व नहर मन्त्री श्री चन्दनमलजी बैद ने आचार्यश्री को गंगा से उपमित करते हुए कहा—'गंगा में नहाने से आदमी पवित्र हो जाता है, ऐसा माना जाता है। पर गंगा का रास्ता निश्चित है। आचार्यश्री टेढ़े-मेढ़े रास्तों से चलते हैं और आसपास के समग्र पर्यावरण को पावन कर देते हैं। आचार्यश्री अपने साधु जीवन के नहीं, आचार्य जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रहे हैं। पचास वर्ष तक नेतृत्व को संभालना और नैतिक जागरण की कड़ी को संभालना वास्तव में ही बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। इसके लिए हम आपका अभिनन्दन करते हैं।'

राजस्थान के पूर्व सिंचाई मन्त्री श्री रामप्रसाद लड्ढा ने आचार्यश्री द्वारा चलाए गए पंच सूत्री अभियान की चर्चा करते हुए उसे सफल बनाने का आह्वान किया।

नये आदमी के निर्माण का प्रयोग

आचार्यश्री के अभिनन्दन समारोह के साथ एक रचनात्मक कार्यक्रम जुड़ा हुआ था। वह था दस दिवसीय जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर। २० से २९ मई तक चलने वाले शिविर का उद्घाटन करते हुए युवाचार्यश्री ने कहा—'यह दुनिया बहुत बड़ी है। भीतर का जगत उससे भी बड़ा है। इन पैरों से सारी दुनिया की परिक्रमा हो, यह संभव नहीं लगता। सारी दुनिया के एक-एक व्यक्ति को सुधारने की बात भी संभव नहीं है। इस स्थिति में आचार्यश्री ने एक रास्ता निकाला कि अध्यापक वर्ग का सुधार हो जाए तो सारे संसार का सुधार हो सकता है। अध्यापक वर्ग एक ऐसा वर्ग है, जिसके निकट से विचारक, वैज्ञानिक,

इंजीनियर, साहित्यकार, डॉक्टर, वकील आदि सबको गुजरना पड़ता है। इन सबको उन्नत जीवन की प्रक्रिया सिखाने के लिए अध्यापकों को ऊंची तकनीक विकसित करनी होगी। अध्यापक उस तकनीनक को खोजकर विकसित कर सके, इसी दृष्टि से इस अध्यापक शिविर की समायोजना है।

शिविर के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—आज नये संसार का निर्माण करने की जरूरत है। उस नये संसार में नये आदमी को पैदा करना होगा। आज पुराना आदमी लड़खड़ा गया है। नया आदमी पैदा नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। प्रश्न होगा—नया कौन है? नया वह है, जो हिंसा को समस्या का समाधान न माने। नया वह है, जो पदार्थ को सुविधा का साधन माने, पर सुख का साधन न माने। नया वह है, जो नैतिकता और ईमानदारी के प्रति आस्थावान हो। इसके लिए उपदेश पर्याप्त नहीं होगा। सिद्धान्तों का ज्ञान ही काफी नहीं होगा, प्रयोग करना होगा। जीवन-विज्ञान का शिविर अपने आप में एक प्रयोग है। भीलवाड़ा के नागरिक इसका लाभ उठाकर स्वयं को नवनिर्मित आदमी के रूप में प्रस्तुत करेंगे, ऐसा विश्वास है।

घी तैल को चुपड़ना जरूरी

मई और जून के महीनों में सुवह का सूरज ही अपने सम्पूर्ण तेज के साथ तपने लगता है। ग्यारह बजने के बाद तो तारकोल पुती सड़कों पर पांव टिकाना ही मुश्किल हो जाता है। वैसे शहरी जीवन में यातायात के साधन बहुत सुलभ हो गए हैं। हजारों-हजारों लोग उन साधनों का उपयोग कर दो घंटों की यात्रा को पन्द्रह मिनट में तय कर लेते हैं। पर जो लोग साधना सम्पन्न नहीं हैं; उन्हें तो पांव-पांव चलकर ही अपनी मंजिल तक पहुंचना होता है। फिर भी उनके पास जूते-चम्पल तो होते ही हैं। इससे पांवों को बड़ी राहत मिलती है। किन्तु जो लोग साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं। जिनके पास ऊपर के ताप से बचने के लिए छत्ता नहीं होता और धरती के ताप से बचने के लिए जूता नहीं होता, फिर भी उनको अंगारों-सी तपती सड़क पर चलना होता है, यह उनके जीवन की विवशता नहीं, साधना है। इसलिए इसमें भी उनको आत्मतोष ही मिलता है।

२० मई को आचार्यप्रवर भीलवाड़ा पधारे। उस दिन के सूरज ने भी पूरी गर्मजोशी के साथ आचार्यवर का स्वागत किया। श्रद्धालु भक्तों की स्वागत प्रक्रिया में समय काफी हो गया। तब तक सड़कें तपने लगी थीं। पर आचार्यश्री की अमृत वाणी सुने बिना कोई भी वहां से उठने के लिए तैयार नहीं था। विलम्ब हो जाने से साधु-साध्वियों को होने वाली कठिनाई को वे महसूस कर रहे थे। फिर भी तीस वर्ष के बाद उनकी धरती पर अमृत की वर्षा

करने वाले मेघ मंडराए तो वे अमृत पान किये विना कैसे लौट सकते थे। उपस्थित जन-समूह के मन की वढ़ती हुई प्यास को ध्यान में रखकर मंच संचालक भाई प्रेमसिंह तलेसरा ने आचार्यप्रवर से विनम्र अनुरोध किया कि वे अमृत वर्षा कर युग-युग से संतप्त प्राणों को तृप्ति के तट पर पहुंचा दें।

आचार्यवर ने भीलवाड़ा की जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—हमारे आगमन के लिए आप लोगों को बहुत लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी, यह बात सही है। हमने भी नहीं सोचा था कि यहां इतनी देर से आना होगा। पर काललब्धि का योग होने से ही कोई काम हो सकता है। आज यहां मेरे आगमन के साथ ही जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर शुरू हो रहा है। ऐसे रचनात्मक काम को ही मैं अपना अभिनन्दन और स्वागत मानता हूं। इस शिविर में शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाएगा। यह वात घी-तेल को चुपड़ने जैसी वात है। आजकल घी तेल में चिकनाहट कम होती है, अतः उन्हें भी चुपड़ना जरूरी हो जाता है। इसी प्रकार शिक्षक तो शिक्षा देने वाले होते हैं। उन्हें क्या प्रशिक्षण दिया जाये? पर लगता है कि कभी-कभी ऐसा करने की अनिवार्यता हो जाती है।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में युगीन समस्याओं पर टिप्पणी की। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के द्वारा उन समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया सुझाई। आधुनिक शिष्टाचार को भ्रष्टाचार करार देते हुए आपने कहा—शिष्टाचार के नाम पर शराव पीना वीड़ी-सिगरेट पीना, अन्य मादक पदार्थों का सेवन करना मानव समाज को विकृति की ओर ले जाना है। जब तक ऐसा शिष्टाचार नहीं मिटेगा, भ्रष्टाचार को कैसे मिटाया जा सकता है? जीवन को संस्कारी वनाने के लिए इस तथाकथित शिष्टाचार से दूर रहकर सही अर्थ में शिष्ट आचरण को आत्मसात् करना होगा। इसके लिए पहले बुराई का वोध और उसके वाद स्वयं का उससे बचाव होना चाहिए। बुराई से बचाव करने के वाद शिष्ट आचरण या उन्नत जीवन की प्रक्रिया सीखने के लिए व्यक्ति को प्रायोगिक जीवन जीना होगा। आपके नगर में आज से एक ऐसा ही प्रयोग होने जा रहा है। आप उसे समझें, करें और अपने जीवन में रूपान्तरण का अनुभव करें।

संतों और विद्वानों के मिलन से नयी ऊर्जा

२२ और २३ मई को आचार्यश्री के सान्निध्य और युवाचार्यश्री के निर्देशन में एक विशेष संगोष्ठी बुलाई गई। उस संगोष्ठी का उद्देश्य था—जीवन-विज्ञान की दृष्टि से ६ से ८ और ९ से ११ कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करवाना। माध्यमिक शिक्षा वोर्ड, अजमेर और जैन विश्व भारती, लाडनूं के संयुक्त तत्वावधान में वह संगोष्ठी हो रही थी। उस गोष्ठी को आमंत्रित किया था भीलवाड़ा की

स्वागत समिति ने। उसमें लगभग पन्द्रह शिक्षाविद् प्रवक्ता और व्याख्याता उपस्थित हुए थे।

२२ मई को प्रवचन के बाद वे सब लोग आचार्यवर का मार्गदर्शन पाने के के लिए आपके सान्निध्य में पहुंचे। आचार्यवर ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा—आज शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी निश्चिन्त नहीं है। शिक्षा के लक्ष्य-निर्धारण में शिक्षाविद् एकमत नहीं हैं। कुछ लोग शिक्षा का सम्बन्ध श्रम और जीविका से जोड़ना चाहते हैं और कुछ लोग बौद्धिक क्षमताओं के विकास को केन्द्र में रखकर सोचते हैं। पर मूलभूत समस्या यह है कि विद्यार्थी के भाव कैसे बदलें ? भावात्मक विकास के लिए अध्ययन के साथ-साथ प्रयोगों पर भी ध्यान देना होगा। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों बिन्दुओं पर समानान्तर ध्यान देना होगा। बच्चों को जो कुछ भी पढ़ाया जाए, वह मजहबी प्रभाव से मुक्त हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी मजहब की अच्छी बात भी बच्चों को न बताई जाए। उदाहरण के लिए हमारे सामने अणुव्रत है। अणुव्रत एक असाम्प्रदायिक आन्दोलन है। यद्यपि यह शब्द जैनों का है। पर इसमें कहीं भी जैनत्व की पुट नहीं है। हम यह चाहते हैं कि शिक्षा में उन सर्वमान्य सिद्धान्तों का समावेश रहना चाहिए, जो सबके लिए उपयोगी हों। यदि मजहबीपन के भय से नैतिक और मानवीय मूल्यों को शिक्षा के साथ नहीं जोड़ा गया तो बच्चों का भावनात्मक विकास नहीं हो सकेगा। केवल बौद्धिक विकास किसी भी स्थिति में काम्य नहीं हो सकता। यह एकांगीपन शिक्षा की विकृति है। किसी मनुष्य के हाथ छोटे रहेंगे और पांव बड़े हो जाएंगे तो उनमें तालमेल कैसे बैठेगा ? इसी प्रकार केवल बुद्धि बढ़ती रहेगी और भावनात्मक विकास नहीं होगा तो सन्तुलन कैसे रहेगा ? भावनात्मक विकास के लिए नैतिक, धार्मिक शिक्षा में आज किसी को रस नहीं रहा है। इसलिए हमने एक नया शब्द गढ़ा है—'जीवन-विज्ञान'। जीवन-विज्ञान का मतलब है बौद्धिक और भावनात्मक विकास में सामंजस्य। इसी काम को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा बोर्ड की ओर से आपको याद किया गया है।'

आचार्यवर शिक्षा के एक-एक पहलू पर गंभीरता से बोल रहे थे और आगन्तुक सभी लोग उतनी ही गहराई से उन बोलों को झेल रहे थे। आपने द्विदिवसीय संगोष्ठी के मूलभूत उद्देश्य को सामने रखकर कहा—एक गैर सरकारी संस्था की ओर से ऐसी पुस्तकें तैयार करवाई जा रही हैं, जो जीवन-विज्ञान से सम्बन्धित हों। इस काम के लिए आप जैसे कुछ चुने हुए व्यक्तियों को जिम्मेवारी दी जा रही है। इसमें आप को दो-तीन बातों पर ध्यान रखना होगा—

- देश का नैतिक स्तर गिर रहा है, उसे शिक्षा के माध्यम से उन्नत कैसे किया जा सकता है ?
- धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, प्रान्त, राष्ट्र आदि भेद-भावों से ऊपर उठकर

व्यक्तित्व निर्माण के उद्देश्य को पूरा करना।

- बौद्धिक विकास को क्षति न पहुंचे और भावनात्मक विकास का पक्ष गौण न हो, इस दृष्टि से एक नयी शैली का प्रयोग करना।

इन तीन बातों को सामने रखकर आपको काम करना है। इसके लिए संतों और विद्वानों का यह मिलन एक नयी ऊर्जा को जन्म देगा, ऐसा विश्वास है। यह काम जीविका-प्रधान न होकर दायित्व-प्रधान है। इसमें पहली ईंट का काम आप लोगों पर आ रहा है, यह आपके लिए भी गौरव की बात है।'

शिक्षा क्षेत्र की संभावनाएं और जीवन-विज्ञान

वहां उपस्थित विद्वानों की ओर से डॉ० शिवकुमार शर्मा ने कहा—आज हमें जो काम सौंपा जा रहा है, इस क्षेत्र में अभी तक कोई काम नहीं हुआ है। एक दृष्टि से मैं यह भी कह सकता हूं कि हमें बंजर भूमि को खोदकर काम करना है। हमें ऐसी पुस्तकें तैयार करनी हैं, जो बच्चों की रुचि को परिष्कृत करने वाली हों और शिक्षकों को भी दिशा देने वाली हों। हमें दो दिनों में इस निष्कर्ष पर पहुंचना है कि पुस्तक का स्वरूप क्या होगा? उसके अध्याय किस आधार पर लिखे जाएंगे? उसमें शरीर-विज्ञान, प्रेक्षा-ध्यान आदि को किस रूप में प्रस्तुति दी जाएगी? ऐसे कुछ बिन्दुओं का निर्धारण होने के बाद पुस्तकें तैयार करने में सुगमता हो सकती है।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के उप सचिव श्री मांगीलाल जैन ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—आज हम लोग एक विशेष उद्देश्य से यहां आये हैं। हम इस बात को जानते हैं कि आचार्यश्री शिक्षा क्षेत्र में रही संभावनाओं को उजागर करने के लिए प्रयत्नशील हैं। हम लोगों को यह एहसास हो रहा है कि शिक्षा जगत में प्रेक्षा-ध्यान और जीवन-विज्ञान उपयोगी सिद्ध होंगे। अभी पिछले दिनों जयपुर में शिक्षा सम्बन्धी संगोष्ठी हुई थी। शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता भी उसमें उपस्थित थे। स्कूलों में जीवन-विज्ञान का पाठ्यक्रम लागू करने की दृष्टि से उस गोष्ठी में विचार-विमर्श हुआ। इस काम के लिए एक समिति का गठन भी हो गया। बोर्ड ने यह निर्णय लिया है कि जुलाई १९८५ से आन्तरिक मूल्यांकन की गतिविधियों के साथ इसे जोड़ दिया जाए। छठी से आठवीं और नवीं से ग्यारहवीं कक्षाओं तक के बच्चों को इससे निरन्तर लाभ मिले, ऐसा चिन्तन किया गया है। राज्य सरकार और बोर्ड का निर्देश तथा जैन विश्व भारती का पूरा सहयोग हमें प्राप्त है। यहां दो दिन में हमें अपने मानस को पूरी तरह से तैयार कर लेना है। जीवन-विज्ञान का अध्ययन और अध्यापन कैसे हो? अध्यापकों को प्रशिक्षित कैसे किया जाए? छात्रों को कैसे

पढ़ाया जाये ? इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमें ऐसी पुस्तकें तैयार करनी हैं, जिनका राजस्थान में तो उपयोग हो ही, अन्य राज्यों को भी उनका उपयोग करने की प्रेरणा मिले ।'

उक्त संगोष्ठी में भाग लेने के लिए उपस्थित होने वाले शिक्षाविदों के कुछ नाम इस प्रकार हैं—श्री जे० एम० श्रीवास्तव, निदेशक कॉलेज शिक्षा (राजस्थान); श्री मोहम्मद हुसैन, अनुसंधान अधिकारी, राज्य विज्ञान संस्थान (उदयपुर); श्री जगन्नार्थसिंह मेहता, अध्यक्ष माध्यमिक शिक्षा वोर्ड (अजमेर), डॉ० महावीरराज गेलड़ा, प्राचार्य एम० एल० वी० राजकीय महाविद्यालय (भीलवाड़ा); रूपलाल सोमानी, सर्वोदयी विचारक; डॉ० एम० एन० सिंघवी, मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी (भीलवाड़ा); जेठा भाई जवेरी, प्रेक्षा प्रवक्ता आदि ।

संगोष्ठी के अन्त में जीवन-विज्ञान पाठ्यक्रम के लिए पुस्तकें लिखने हेतु दो दलों का गठन किया गया। पहले दल के संयोजक थे डॉ० महावीरराज गेलड़ा और दूसरे दल के संयोजक का दायित्व डॉ० शिवकुमार शर्मा को सौंपा गया।

शिविर में बुद्धिजीवी वर्ग

२० मई ८५ से भीलवाड़ा में जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर प्रारंभ हुआ था। उसमें १३० शिविरार्थी सम्मिलित हुए। शिवरार्थियों में पचास शिक्षक-शिक्षिकाएं थीं, जो विशेष उद्देश्य के साथ वहां आये थे। ग्राम भारती (सेवा सदन) में शिविर का समायोजन था। शहर से दूर होने के कारण स्थान शिविर साधना की दृष्टि से काफी अनुकूल था। उस एकान्त और शान्त वातावरण में युवाचार्यश्री का सान्निध्य और मार्गदर्शन शिविरार्थी भाई-बहनों को बाहर से भीतर की ओर देखने और वहां तक पहुंचने में आलम्बन का काम कर रहा था। शिविर में ध्यान, कायोत्सर्ग, योगासन आदि के साथ युवाचार्यश्री के मध्यकालीन प्रवचन विशेष आकर्षण के केन्द्र थे। प्रवचनों के कुछ विषय इस प्रकार थे—शिक्षा और सामाजिक समस्याएं, शिक्षा और नैतिकता, शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षा और जीवन मूल्य, जीवन-विज्ञान : स्वरूप और उद्देश्य आदि ।

भीलवाड़ा का बुद्धिजीवी वर्ग आचार्यश्री और युवाचार्यश्री के नाम से पूरा परिचित था। उसने आचार्यवर को कई बार सुना और आपके क्रान्तिकारी विचारों से एक नयी दिशा भी प्राप्त की। युवाचार्यश्री शिविर के कारण ग्राम भारती में रहते थे। इसलिए आपके प्रवचन नहीं हो सके। शिविर सम्पन्न होने के बाद वहां अधिक समय तक रुकना संभव नहीं था। इस बात को ध्यान में रखकर शिविर स्थल पर ही बौद्धिक लोगों के लिए विशेष रूप से कुछ गोष्ठियां आयोजित की

गई। उनमें महाविद्यालय के प्राध्यापकों, वार एसोसिएशन के वकीलों और स्थानीय गांधी चिकित्सालय के डॉक्टरों की गोष्ठियां उल्लेखनीय रहीं।

अपराधी कौन नहीं ?

भीलवाड़ा मेवाड़ का औद्योगिक और बौद्धिक क्षेत्र है। वहां आचार्यश्री के प्रवास-काल में शहर की प्रमुख चर्चाओं में एक चर्चा आचार्यश्री के प्रवचनों की होती थी। जो लोग पहली वार प्रवचन सुनते, वे तत्त्व को समझ पाते या नहीं, पर प्रवचन शैली से इतने मुग्ध हो जाते कि दूसरे दिन खिंचे हुए-से आते और अपने साथ परिचितों एवं मित्रों को भी ले आते। लोगों में आचार्यश्री के मिशन—अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के वारे में जानने-समझने की जिज्ञासाएं वढ़ने लगीं। प्रेक्षाध्यान द्वारा स्वभाव-परिवर्तन की वात तो सवको सुखद और आह्लादक लग रही थी। सामान्यतः हर व्यक्ति के स्वभाव में वदलाव की अपेक्षा रहती है। यह अपेक्षा और अधिक पुष्ट हो जाती है, जहां इसका संवंध अपराधी वर्ग से जुड़ जाता है। जिला कारागृह भीलवाड़ा के अधिकारियों ने भी चाहा कि आचार्यश्री कारागृह के वन्दियों को उद्‌वोधन देकर उनकी अपराधी मनोवृत्ति को थोड़ा भी वदल दें तो देश के हित में बड़ा काम हो सकता है। अधिकारियों की इस भावना को वहां के उपाधीक्षक श्री पांचूलाल वैरवा ने लिखित रूप से आचार्यश्री के पास पहुंचा दिया, जो इस प्रकार है—अणुव्रत अनुशास्ता युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी !

हम जानते हैं कि कस्तूरी की सुगंध की भांति आपके प्रवचनों से औद्योगिक नगरी भीलवाड़ा महक रही है। शराव, नशा एवं चारित्रिक पतन आपराधिक प्रवृत्ति को वढ़ावा देते हैं। आप इन सभी के विरोध में प्रवचन करते आए हैं।

मैं समस्त जेल स्टाफ एवं सव वन्दियों के आग्रह पर आपसे विनम्र अनुरोध करता हूं कि दिनांक २६-५-८५, रविवार को समय निकालकर जेल में प्रवचन करने की कृपा करें। यदि आप अपने व्यस्त कार्यक्रम में से थोड़ा-सा समय निकाल कर जेल में पधार सकें और वन्दियों को शिक्षा प्रदान कर सकें तो हम आपके आभारी रहेंगे।

मुझे पूर्ण विश्वास है आप यहां अवश्य पधार कर हमें अनुग्रहीत करेंगे।

आचार्यवर ने आवेदन पत्र पढ़ा और अपनी स्वीकृति दे दी। प्रतिदिन के नियमित कार्यक्रम और कारावास की दूरी तथा चढ़ती हुई धूप आचार्यश्री के निर्णय में वाधक नहीं बन सकी। जब कभी ऐसे लोगों के वीच में जाने का प्रसंग आता है, आचार्यश्री अपनी सुविधा-दुविधा को गौण कर वहां पहुंच जाते हैं और आत्मीय भाव से वहां उपदेश सुनाते हैं। स्वीकृति कार्यक्रम के अनुसार २६ मई को प्रातः आचार्यश्री कारागृह पधारे। जेल के अधिकारियों ने मुख्य गेट पर

आपका भावपूर्ण स्वागत किया। आचार्यवर ने अधिकारियों और अपराधियों को संवोधित करते हुए कहा—'मैं जेल की तरफ आ रहा था तो कुछ लोगों ने पूछा—आप कहां जा रहे हैं ? मैंने समाधान देते हुए कहा—डॉक्टर कहां जाता है ? जहां बीमार होता है, वहीं डॉक्टर की जरूरत पड़ती है। आज मैं भी मानस चिकित्सक की हैसियत से अपराधी मनोवृत्ति वाले रोगियों के पास जा रहा हूं। जेल में सामान्यत: दो प्रकार के व्यक्ति प्रवेश करते हैं। एक वे, जो अपराधी होते हैं और दूसरे वे, जो अपराधियों को सुधारने का कार्य करते हैं। यहां वैठे सभी व्यक्ति अपराधी ही हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। कई बार ऐसा होता है कि जो वेगुनाह हैं, वे भी कानून की गिरफ्त में आ जाते हैं और उन्हें अपराधी घोषित कर दिया जाता है। अपराधियों के लिए तो यह दण्ड स्थान है ही।'

आचार्यश्री ने अपराध के अनेक रूपों का विश्लेषण करते हुए अपने प्रवचन में आगे कहा—'मैं अभी अपराधियों के वीच में वैठा हूं, पर समझ नहीं पा रहा हूं कि अपराधी कौन नहीं है ? क्या जेल में आने वाले या कानून की पकड़ में आने वाले इतने व्यक्ति ही अपराधी हैं ? दो क्षण आंख मूंदकर देखें कि आज कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो मिलावट नहीं करते, रिश्वत नहीं लेते एवं शोषण नहीं करते। मैं इन अपराधियों के माध्यम से पूरे मानव समाज को यह संदेश देना चाहता हूं कि मनुष्य अपने जीवन में मानवीय गुणों का विकास करे और उन सव प्रवृत्तियों से वचे, जो मानवता के लिए कलंक हैं। चोरी, डकैती, हत्या आदि वड़े अपराध हैं। इन अपराधों के पीछे एक तत्त्व काम करता है, वह है शराव। शराव पीने वालों का दिमाग विकृत हो जाता है और एक वुराई के साथ वुराइयों का समूह आदमी को घेर लेता है। मैं कैदियों से कहना चाहता हूं कि वे अच्छे नागरिक की तरह जीना चाहते हैं तो अपना आत्म-निरीक्षण करें, अपनी भूलों को समझें, स्वीकार करें और छोड़ें। भविष्य में अपराधी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन न मिले, इस वास्ते शराव आदि दुर्व्यसनों से अपना वचाव करें।'

आचार्यवर के प्रभावी उद्‌वोधन से प्रेरित होकर अनेक कैदियों ने अपने अपराध स्वीकार किये और भविष्य में उन अपराधों से वचने का संकल्प व्यवत किया। लगभग पचास कैदियों ने मद्यपान का परित्याग किया।

शिक्षा जगत् में समाधान-किरण

२८ मई को प्रातः आचार्यश्री ग्राम भारती पधारे। शिविरार्थी भाई-वहनें शिविर काल में आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री—दोनों का सान्निध्य चाहते हैं। पर व्यवस्था की दृष्टि से ऐसा कम ही संभव हो पाता है। क्योंकि आचार्यश्री दिन भर आम लोगों से घिरे रहते हैं। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त वाहर से आने वाले

लोगों का भी तांता-सा लगा रहता है। यह सारी भीड़ आचार्यश्री का सान्निध्य प्राप्त किये बिना रह नहीं सकती। यदि आचार्यश्री शिविर स्थल में पधार जाएं तो वह भीड़ वहां पहुंच जाती है। फिर एकान्त स्थान में शिविर लगाने का अर्थ ही समाप्त हो जाता है। इसलिए एक प्रकार से विभाजन जैसा हो गया है कि युवाचार्यश्री शिविर में रहें और आचार्यश्री जनता में। इस व्यवस्था के वावजूद दस दिनों की अवधि में प्रायः एक-दो वार आचार्यवर शिविरार्थियों के वीच पधार जाते हैं। वैसे शिविर का प्रारंभ और समापन तो आपके सान्निध्य में होता ही है।

शिविरार्थियों का अनुरोध तो एक निमित्त था, आचार्यश्री स्वयं ग्राम भारती में चल रहे प्रशिक्षण शिविर का निरीक्षण करना चाहते थे। इस दृष्टि से शिविर के नौवें दिन आपका वहां पधारना हुआ। उस दिन शिविरार्थियों में अतिरिक्त उत्साह था। आचार्यवर हॉल में पहुंचे, तव तक वह खचाखच भर चुका था। आचार्यश्री के उद्वोधन संदेश से पहले युवाचार्यश्री ने अपने प्रासंगिक प्रवचन में कहा—'यह शिविर ध्यान शिविर नहीं, जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर है। इसका उद्देश्य है अध्यापकों को प्रशिक्षित करना। शिविर में समागत सभी शिक्षक बौद्धिक हैं, कार्यकर्त्ता हैं और शिक्षा-जगत् में काम करना चाहते हैं। आठ दिनों के प्रयोग से इन्हें यह अनुभव हो रहा है कि जीवन-विज्ञान शिक्षा जगत में एक समाधान-किरण है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में आध्यात्मिक, नैतिक और भावनात्मक कार्यक्रमों को और जोड़ दिया जाए तो निश्चय ही एक नया मोड़ आएगा। पर इसके लिए लोगों को खपना पड़ेगा, अपने आप को तैयार करना होगा। ऐसा होने से ही इस काम में सफलता प्राप्त हो सकेगी।'

जीवन की मंजिल

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में शिविर के शांत वातावरण की प्रशंसा करते हुए कहा—'ऐसे शांत, स्वस्थ और एकांत वातावरण को देखकर मन करता है, हम भी ऐसे स्थान का लाभ उठाएं। पर हमारे लिए ऐसा वातावरण दुर्लभ है। हमारे आते ही यहां का एकांत भी अनेकांत वन जाता है, भीड़ में बदल जाता है। इसलिए हम दूर वैठे-वैठे आपकी साधना की सफलता के लिए मंगल कामना करते हैं। आप लोग यहां विशेष उद्देश्य से आये हैं। आपके आने का मुख्य उद्देश्य है—व्यक्तित्व-निर्माण या रूपान्तरण की प्रक्रिया का वोध करना। वोध के साथ प्रयोग और उसका अनुभव करने से ही वह प्रक्रिया प्रभावी हो सकती है।'

शिविरार्थी जागरूक मन से आचार्यश्री को सुन रहे थे और एक-एक वात को कानों के रास्ते भीतर उतार रहे थे। आपने उनको जीवन की वास्तविकता से परिचित कराते हुए कहा—जीवन की मंजिल है—शान्ति, सुख और आनन्द। इस

मंजिल तक पहुंचने के तीन पड़ाव हैं—जीवन-ज्ञान से प्रकाशमय बनें, मोह का आवरण क्षीण हो और राग-द्वेष का विलय हो। इन तीन पड़ावों को पार करते ही आपको अनुभव होगा कि मोक्ष यही है, मंजिल यही है। यह मोक्ष कब होगा? मरने के बाद? नहीं, मैं इसी जन्म में प्राप्त होने वाले मोक्ष की बात कर रहा हूं। मोक्ष में सबसे बड़ा बाधक अहं है। साधना अहं तोड़ने के लिए की जाती है। हमने साधना प्रारंभ की है, इसलिए हमें शांति, सुख और आनन्द का अनुभव हो रहा है। शिविरार्थी भाई भी इस साधना से जुड़कर अपने अज्ञान, अहं और मोह को क्षीण कर सकते हैं।'

शिविरार्थी चाहते थे कि आचार्यश्री बोलते रहें और वे उस अमृतवाणी का पान करते रहें। किन्तु आपको तो वहां से चलकर शहर में पहुंचना था। वहां हजारों लोग आपकी प्रतीक्षा में बैठे थे। इसलिए प्रवचन सम्पन्न कर आचार्यश्री ने ग्राम भारती से प्रस्थान किया। अनायास ही सैकड़ों भाई-बहन साथ हो गये। आचार्यवर चले तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो नदी का प्रवाह बहुत तेजी से बह रहा है और अपने साथ सब कुछ बहाए ले जा रहा है। आचार्यश्री उच्च राजकीय महाविद्यालय के विशाल प्रांगण में पहुंचे और वहां एकत्रित जन-समूह को प्रतिबोध दिया।

२९ मई को प्रातः दस दिवसीय शिविर का समापन समारोह था। कुछ शिविरार्थियों ने अपने अनुभव सुनाये। शिविर की रिपोर्ट पढ़कर सुनायी गयी। युवाचार्यश्री एवं आचार्यश्री ने पाथेय के रूप में शिविरार्थियों को विशेष सम्बल प्रदान किया।

दृष्टि पारदर्शी कैसे बने

३० मई को भीलवाड़ा के टाउन हाल में आचार्यवर के सान्निध्य में एक विशेष गोष्ठी आयोजित थी। उस गोष्ठी में स्थानीय बौद्धिक लोगों को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। गोष्ठी का विषय था—पारदर्शी दृष्टिकोण। रोटरी क्लब के अध्यक्ष श्री भंसाली, लायंस क्लब के उपाध्यक्ष श्री बंशीलाल जैन ने अपनी संस्थाओं की ओर से आचार्यश्री का स्वागत किया। स्थानीय महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० महावीरराज गेलड़ा ने आचार्यश्री का परिचय दिया। जिलाधीश श्री सत्यप्रिय गुप्त ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—आज के सन्दर्भ में आचार्यश्री का सन्देश न केवल भारत के लिए, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आवश्यकता इस बात की है कि लोग आपके उपदेशों से प्रेरणा लेकर शोषण, छल-कपट और गरीबी से मुक्त आदर्श राष्ट्र के निर्माण में सहयोग करें।'

युवाचार्यश्री ने पारदर्शी दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए कहा—आज हम उस युग में सांस ले रहे हैं, जिसमें मनुष्य के मस्तिष्क का बायां पटल सक्रिय है

और दायां पटल निष्क्रिय है। इसी आधार पर शरीरशास्त्रियों एवं मस्तिष्क विशेषज्ञों का कहना है कि आज तर्क, भाषा, गणित आदि लौकिक विद्याएं और सभी अपरा विद्याएं विकासमान हैं। दायां भाग जब निष्क्रिय हो जाता है, आंतरिक चेतना सो जाती है और मानव का दृष्टिकोण अपारदर्शी बना रहता है, पारदर्शी नहीं बन सकता। बाएं पटल की जागृति से मनुष्य की दृष्टि पदार्थवादी बनती है। पदार्थवादी दृष्टिकोण ही सारे द्वंद्वों को जन्म देता है। धर्म की और मेधा की चर्चा भी तब द्वंद्व बन जाती है। इन सारे द्वंद्वों को समाप्त करने के लिए पारदर्शी दृष्टिकोण निर्मित करना होगा, दाएं पटल को सक्रिय करना होगा।'

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा— बीसवीं सदी में बुद्धि का विकास बहुत हुआ है। केवल बौद्धिक विकास अन्तर्दृष्टि को जगा सके, यह संभव नहीं है। इसीलिए मेरी मान्यता है कि केवल पुस्तकीय ज्ञान तब तक बेकार है, जब तक मानव मानवीय भावना का आदर करना न सीखे। केवल बुद्धि बड़ी खतरनाक होती है। आज तक जितने विनाश के साधनों का आविष्कार हुआ है, उसमें बुद्धि का ही प्रमुख रूप से योगदान रहा है। बुद्धि विकास के साथ संयम और विवेक का पर्याप्त विकास होने से ही ज्ञान का सदुपयोग हो सकता है। अग्नि और पानी में प्राकृतिक विरोध है। दोनों एक-दूसरे को समाप्त करते हैं, पर बीच में पात्र आ जाए तो पानी गर्म हो जाता है और अग्नि नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार बुद्धि के बीच में संयम का पात्र रख दिया जाए तो वह उपयोगी हो सकती है।

आपका प्रताप बढ़ता जा रहा है

हिन्दुस्तान दैनिक के भूतपूर्व समाचार सम्पादक श्री शोभालालजी गुप्त गांधीवादी व्यक्ति हैं। अणुव्रत में उनकी गहरी निष्ठा है। आचार्यश्री जब पहली बार दिल्ली पधारे, उस समय जिन पत्रकारों ने अणुव्रत के काम में रस लिया, उनमें श्री शोभालालजी गुप्त, मुकुटबिहारी वर्मा, सत्यदेव विद्यालंकार आदि प्रमुख थे। श्री गुप्त के मन में आज भी आचार्यश्री और उनके मिशन के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। मूलतः वे मेवाड़ में ही मांडलगढ़ गांव के हैं, पर रहते दिल्ली में हैं। इस समय वे अपनी उम्र के आठ दशक पूरे कर बयासीवें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। वे अचानक बिना पूर्व सूचना के अपनी पत्नी के साथ भीलवाड़ा पहुंचे। आचार्यवर के प्रवास-स्थल को खोजते हुए वे ठीक जगह पहुंच गये। उस समय आचार्यवर प्रवचन कर रहे थे। लोगों ने उनको पहचाना नहीं। वे प्रवचन सुनने बैठ गये। प्रवचन पूरा होते ही वे आचार्यश्री से मिले। आचार्यश्री ने उनको देखते ही पहचान लिया? आपने पूछा—अभी कहां से आना हुआ? गुप्तजी बोले—आचार्यजी! अभी मैं मजेरा गया था। वहां उसी दिन आपकी अमृत कलश पद-

यात्रा पहुंची। पदयात्रा करने वाली चार समणियों और कार्यकर्त्ताओं से मिलकर मुझे खुशी हुई। अमृत-कलश की परिकल्पना भी सुखद लगी। मैंने अपना संकल्प-पत्र भरकर डाल दिया है। आपका प्रताप दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, इसीलिए स्थान-स्थान पर इतना काम हो रहा है। आपने मेवाड़ पर कृपा की। आपके प्रवास से यहां के जन-जीवन को भी नयी दिशा मिलेगी, ऐसी आशा है। मैं अभी केलवा भी गया था। वहां अंधेरी ओरी देखकर लौटा हूं। उसका भी मन पर प्रभाव है।'

गुप्तजी आचार्यवर से बहुत वर्षों बाद मिल रहे थे। आचार्यश्री ने इस बात की ओर संकेत किया तो वे बोले—'इन्दिराजी थीं, उस समय मैं मेवाड़ आया था। उसके बाद अब आया हूं। उन्होंने स्वतन्त्रता सेनानियों का वर्धापन किया था, उनमें एक नाम मेरा भी था। इस समय मैं अधिकांश रूप में गुलमोहर पार्क, दिल्ली में रहता हूं। वहां सन्तों से भी मिला था। आपके दर्शनों की इच्छा सदा बनी रहती है। सौभाग्य से आज मौका मिला है।' आचार्यवर ने उनको अणुव्रत के साथ प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के बारे में विस्तृत जानकारी दी।

दीक्षा लेने की हिम्मत नहीं

जून का पहला दिन। भीलवाड़ा में उस दिन एक अनूठी हलचल थी। उस हलचल का सम्बन्ध था दीक्षा महोत्सव से। पारमार्थिक शिक्षण संस्था में अध्ययनरत दो ग्रेज्युएट कन्याएं आचार्यश्री तुलसी के पास दीक्षित होने जा रही थीं। भीलवाड़ा में तेरापंथ धर्मसंघ की दीक्षा का वह प्रथम प्रसंग था। तेरापंथ के बारे में विस्तार से जानने-समझने के बाद वहां के लोगों में दीक्षा महोत्सव देखने की गहरी उत्सुकता जाग गयी थी। आचार्यवर ने अनुकम्पा की और वहां दीक्षा महोत्सव होना निश्चित हो गया। दीक्षार्थिनी बहनों की शोभा-यात्रा का कार्यक्रम ३१ मई को अपराह्न में था। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त आस-पास के गांवों से हजारों लोग तब तक वहां पहुंच चुके थे। उत्साह भरे वातावरण में शोभा-यात्रा निकली। जिन्होंने भी उस यात्रा और उन मुमुक्षु कन्याओं को देखा, वे अभिभूत हुए बिना नहीं रहे। एक ओर मनुष्य की सुविधावादी मनोवृत्ति और भोगवादी दृष्टिकोण, दूसरी ओर कठोर त्याग के पथ पर जीवन समर्पण करने की उदग्र आकांक्षा। लोगों को एक अन्तर्विरोध की प्रतीति हुई। पर वह प्रतीति उस समय कपूर की तरह बिखर गयी, जब रात्रि में होने वाले विदाई-बधाई समारोह में उन कन्याओं ने खुलकर अपने विचार रखे। वैराग्य का उद्भव, अभिभावकों द्वारा परीक्षण, पारमार्थिक शिक्षण संस्था में शिक्षण और उसके बाद आचार्यश्री की नजरों में उत्तीर्ण होने के बाद मुमुक्षु की भावना आकार ले पाती है।

केन्द्रीय राज्यमंत्री श्रीमती रामदुलारी सिन्हा आचार्यश्री के दर्शन करने और दीक्षा के भव्य कार्यक्रम को देखने के लिए दिल्ली से भीलवाड़ा आयी थीं। उन्होंने दीक्षा समारोह के कार्यक्रम में अपने विचार रखते हुए कहा—ऐसे कार्यक्रम में उपस्थित होने का मेरा यह पहला अवसर है, फिर भी मैं ऐसे माहौल से अपरिचित नहीं हूं। मेरा जन्म ऐसे परिवार में हुआ, जो सन् १९२० से १९४५ तक देश की आजादी के लिए लड़ा। मेरी तीन पीढ़ियों ने स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लिया। मेरे ससुराल पक्ष के लोग भी क्रान्तिकारी थे। मेरे ससुरजी ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। हम लोग महात्मा गांधी के आदर्श के प्रति समर्पित थे। उनकी पुकार पर हम आजादी के लिए परवाने हो गए।

श्रीमती सिन्हा तब से अब तक की राजनैतिक परिस्थितियों की अद्भुत कहानी सुनाती-सुनाती उस क्षण भावविह्वल हो गयीं, जब उसने कहा—मुझे इस बात को याद करते ही रोमांच हो रहा है कि मैं उस क्षेत्र में जन्मी हूं, जहां भगवान महावीर ने जन्म लिया। मैं उस धरती से जुड़ी हूं, जहां भगवान बुद्ध ने साधना की। भगवान महावीर ने जिन पांच महाव्रतों और अणुव्रतों का उपदेश दिया, आज उन्हीं सिद्धान्तों को जीवित रखने, नयी दिशा देने और घर-घर पहुंचाने का काम आचार्यश्रीजी कर रहे हैं। ऐसे महान् आचार्य को मैं सौ-सौ बार प्रणाम करती हूं।

श्रीमती सिन्हा ने दीक्षार्थिनी बहनों के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए कहा—मैं दीक्षा लेने की हिम्मत तो नहीं कर सकती, पर आचार्यजी के मुख से अणुव्रत का उपदेश सुनकर उस पर अमल करने की कोशिश अवश्य करूंगी।

समूचे देश को दीक्षित होना होगा

युवाचार्यश्री ने अपने प्रासंगिक प्रवचन में दीक्षा को समस्याओं का समाधान बताते हुए कहा—देश में आए दिन समस्याएं बढ़ रही हैं। इस स्थिति में दो-चार व्यक्तियों की दीक्षा से क्या होगा? उन समस्याओं का समाधान करने के लिए पूरे देश को दीक्षा स्वीकार करनी होगी। दीक्षा शब्द सुनकर आप चौंकिए नहीं। मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि आपको कौन-सी दीक्षा लेनी होगी? वह दीक्षा है संयम, सम्यक् दृष्टिकोण और विश्वास की दीक्षा। आगम की भाषा में—

असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि
मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि
अबंभं परियाणामि, बंभं उवसंपज्जामि

किसी भी युग की समस्याओं का समाधान इस दीक्षा से हो सकता है।'

युवाचार्यश्री की बात सुनकर जो लोग पहले चौंक गए थे, वे पूरा प्रवचन

सुनने के वाद अपने-अपने मन की थाह लेने लगे। पर ऐसे व्यक्ति विरल ही थे, जो इस दीक्षा के लिए भी स्वयं को प्रस्तुत कर सकें।

दीक्षा-संस्कार

दीक्षा का कार्यक्रम शुरू हुए काफी समय हो चुका था। शुरू-शुरू में वर्षा के कारण कुछ व्यवस्था-सी रही किन्तु कार्यकर्ताओं की तत्परता ने शीघ्र ही सब व्यवस्थाओं को संभाल लिया। बाद में वर्षा भी वन्द हो गयी। दीक्षा का समारोह आन्तरिक उत्ताप को दूर कर रहा था। उस स्थिति में शायद वाह्य उत्ताप को दूर करने के लिए वर्षा का होना जरूरी हो गया था। पिछले कई दिनों से बढ़ रही भयंकर गर्मी से जनता को त्राण देकर वर्षा भी शान्त भाव से उस भव्य कार्यक्रम को देखने में लीन हो गयी।

आचार्यश्री के सामने दो दीक्षार्थिनी वहनें उपस्थित थीं। अनेक लोगों ने उनके प्रति शुभकामनाएं व्यक्त कीं। उनके अभिभावकों की ओर से लिखित आज्ञा-पत्र आचार्यश्री को समर्पित किए गए। वहनों ने अपने विचारों की अवगति दी और आचार्यवर से अनुरोध किया कि वे अब अविलम्ब दीक्षा-संस्कार से संस्कारित होना चाहती हैं। दीक्षा-संस्कार सम्पन्न करने की औपचारिकताएं ज्यों-ज्यों पूरी हो रही थीं, जनता की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। आखिर वह क्षण उपस्थित हो गया जब दीक्षार्थिनी वहनें साध्वी वेश पहनकर खड़ी हो गयीं। लिखित स्वीकृति प्राप्त होने पर भी आचार्यवर ने हजारों लोगों के मध्य उनके परिजनों की मौखिक स्वीकृति ली। दीक्षार्थिनी वहनों की आखिरी परीक्षा लेते हुए आपने उनसे कहा—मन के किसी भी कोने में थोड़ी-सी भी दुर्बलता हो तो एक वार फिर सोच लो। दीक्षित होने के वाद फिर जीवन भर छुट्टी नहीं मिलेगी। एक गुरु का अनुशासन, कठोर जीवनचर्या, साध्वियों के साथ प्रकृति का मेल, यात्रा, बीमारी आदि सब विन्दुओं पर विचार करके ही आगे बढ़ो। अभी तक कुछ नहीं हुआ है। साध्वी का वेश पहनने मात्र से साध्वी नहीं बनी हो। बोलो, क्या कहती हो? दोनों बहनों ने भावविभोर होकर विनम्र अनुरोध किया—गुरुदेव ! हमने बहुत परीक्षाएं दे दीं। अब तो आपकी कृपा ही हमें जीवन दे सकती है। हमने एक-एक वात पर गहराई से सोच-समझकर ही यह निर्णय लिया है। हमारे मन में गृहस्थ जीवन के प्रति, सुख-सुविधाओं के प्रति कोई व्यामोह नहीं है। आप हमें अपने धर्मसंघ में सम्मिलित कर कृतार्थ करने की कृपा करें।

दीक्षार्थिनी वहनों की इतनी आतुरता और संकल्प की दृढ़ता देखकर आचार्यवर ने आर्षवाक्यों के उच्चारण—करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं

पच्चक्खामि—के साथ दोनों बहनों को दीक्षित कर लिया। जय घोषों की अनुगूंज से वातावरण मुखर हो उठा। दीक्षा संस्कार सम्पन्न करने के बाद नवदीक्षित साध्वियों को रजोहरण दिया गया। उनके अतीत की आलोचना करवाई गयी। केश लुंचन की रस्म पूरी की गयी। साधु जीवन में सजगता के लिए विशेष शिक्षा सम्बल दिया गया और अन्त में नाम परिवर्तन कर उन्हें प्रेम से पीयूषप्रभा और राकेश से अमृतप्रभा बना दिया गया। अमृत महोत्सव वर्ष को ध्यान में रखकर ही उक्त नामों का चयन किया गया था। बहुत ही शान्त और उल्लासपूर्ण वातावरण में दीक्षा समारोह का समूचा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उस अवसर पर आचार्यवर ने एक भाई अभयकुमार को भी मुनि दीक्षा दी। वह पहले कई वर्षों तक साधु जीवन की साधना कर एक साल पहले आवेश में आकर घर चला गया था। घर जाने के बाद उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। उसने पुनः प्रयत्न किया। अपने मन को खोलकर गुरु चरणों में रखा। अनुनय-विनय किया। अपनी गलती स्वीकार की और गुरु के मन में विश्वास उत्पन्न कर डूबी हुई जीवन नौका को तट तक लाने में सफलता प्राप्त की।

दीक्षा है युग की सब समस्याओं का समाधान

दीक्षा समारोह में उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—दीक्षा का पथ ऐसा पथ है, जिसमें पग-पग पर कांटे बिछे हुए हैं। कांटों भरे इस रास्ते पर चलने का संकल्प अपनी आत्मा का कल्याण ही नहीं, राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भी है। आज देश के सामने हिंसा की समस्या है, परिग्रह की समस्या है, चरित्रहीनता की समस्या है, जातिवाद, वर्गवाद और अलगाववाद की समस्या है। श्रम परांमुखता और सुविधावादिता की समस्या है। अनुशासन-हीनता की समस्या और भी न जाने कितनी समस्याएं हैं। दीक्षा उन सब समस्याओं का समाधान है। दीक्षा का मतलब है अहिंसा का व्रत, अपरिग्रह का व्रत। दीक्षा की परिभाषा है—चरित्र की उच्चता का संकल्प, अनुशासन निष्ठा का संकल्प। दीक्षा में न जाति है और न वर्ग। वह है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का व्रत। ऐसी स्थिति में अलगाववाद की समस्या कहां उपजेगी? दीक्षा का मतलब है स्वावलम्बन। जीवन भर पदयात्रा, अपना बोझ कंधों पर रखकर चलना, अपना प्रत्येक काम हाथ से करना, आधुनिक सुविधावादी उपकरणों का उपयोग नहीं करना। भिक्षा से जीवनयापन करना। क्या यह श्रम परांमुखता की समस्या के गाल पर सीधा तमाचा नहीं है? इस प्रकार और भी कितनी समस्याएं हैं, दीक्षा उन सबका समाधान है। दीक्षित होने वाला व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान पाता है और राष्ट्र की समस्याओं को समाधान देता है। इस दीक्षा समारोह को

देखने के लिए हजारों लोग यहां उपस्थित हैं। वे इस वात पर अवश्य विचार करें कि उनके द्वारा किसी समस्या का समाधान न हो सके तो कम से कम वे समस्या उलझाएं नहीं। इसके लिए उन्हें दो वातों को स्वीकार करना होगा—पूर्वाग्रह का संयम और वाणी का संयम। संयम के इस प्राथमिक प्रयोग से स्वयं को जोड़कर जनता समाधान की नयी दिशाएं खोलेगी, ऐसा विश्वास है।

भीलवाड़ा में आचार्यश्री तीस वर्ष वाद पधारे थे। भीलवाड़ावासी चाहते थे कि आचार्यवर उन्हें एक-एक वर्ष का एक-एक दिन भी दें तो वहां तीस दिन का प्रवास तो होना ही चाहिए। भीलवाड़ा की प्रवुद्ध वर्ग की जिज्ञासाओं और उत्सुकताओं को देखते हुए वहां पर्याप्त समय देना आवश्यक भी था। किन्तु आमेट में चातुर्मासिक प्रवास हेतु २४ जून का प्रवेश निश्चित हो चुका था। भीलवाड़ा से आमेट के वीच वीस क्षेत्रों का स्पर्श करना भी जरूरी था। इन सव वातों को ध्यान में रखते हुए वहां अधिक समय तक रहना संभव नहीं था। इसलिए आचार्यवर ने २ जून को प्रातः ही वहां से प्रस्थान करने का निर्णय ले लिया।

चार सप्ताह की अपेक्षा को दो सप्ताह में पूरा करना वहुत मुश्किल था। फिर भी आचार्यवर ने वहां प्रातः, मध्याह्न और रात्रि में सार्वजनिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त भीलवाड़ा के श्रद्धालु परिवारों को पारिवारिक उपासना का अवसर दिया, उनके मकानों को पावन किया और अनेक विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया। भीलवाड़ा की जनता को एक प्रकार से परितृप्त कर आचार्यवर ने २ जून को प्रातःकाल ही वहां से प्रस्थान कर दिया।

एक और विवाद सुलझा

भीलवाड़ा मेवाड़ का प्रसिद्ध औद्योगिक शहर है। वहां की धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और राजनैतिक चेतना भी जीवन्त मानी जाती है। वहां का तेरापंथ समाज भी संगठित और वर्चस्वशील रहा है। पिछले दो दशकों में समाज में विचार-भेद के अंकुर फूटने लगे। उन्हें जड़-मूल के उखाड़ने के लिए कई प्रयत्न हुए, पर उनका अस्तित्व समाप्त नहीं हो पाया। कभी छोटा-सा विचारभेद उग्र विवाद का रूप ले लेता और कभी वह कुछ उपशान्त हो जाता। पारस्परिक विवाद से कोई काम हो या नहीं, विकास में अवरोध तो आ ही जाता है। भीलवाड़ा में भी जितने विकास की संभावना थी, उतना नहीं हो सका। इस कारण से तेरापंथ सभा-भवन के निर्माण और विकास में भी वाधाएं आती रहीं। विवाद के मूल को खोजा जाए तो कोई महत्त्वपूर्ण वात हाथ नहीं लगती है। अमुक व्यक्ति के समय में कोई काम नहीं हो सका, उसका श्रेय किसी दूसरे को भी न मिले, विवाद का मूलभूत मुद्दा यही प्रतीत होता है।

सभा-भवन का विस्तार और उसमें रह रहे किरायेदारों को हटाकर भवन की एक मंजिल बैंक को किराये पर देना—इस वात पर सवकी सहमति थी। किन्तु जव लम्वे समय तक यह काम नहीं हुआ तो सभा के पदाधिकारियों में परिवर्तन की वात सामने आई। कुछ लोगों ने नया चुनाव करवाने का परामर्श दिया। वह भी मान्य नहीं हुआ। अध्यक्ष और मंत्री त्याग पत्र दे दें तो नया चुनाव करना ही होगा, यह फार्मूला भी कार्यकारी नहीं हो सका। आखिर वाहर के कुछ व्यक्तियों ने मध्यस्थता कर चुनाव करवा दिया। उसके वाद अधिकृत व्यक्ति जमकर काम में लगे। किरायेदारों से मकान खाली करवाने की वात असंभव-सी लगती थी, पर उन्होंने इस तरीके से काम किया कि मकान खाली हो गया। भवन के पुर्ननिर्माण का काम शुरू कर दिया गया।

इधर आचार्यश्री की मेवाड़-यात्रा निश्चित हो गई थी। भीलवाड़ा के श्रावकों ने समय-समय पर वहां पधारने का अनुरोध किया, पर आचार्यश्री ने यह कहकर टाल दिया कि वैमनस्य की स्थिति में जाने से क्या लाभ? आचार्यश्री का अमृत महोत्सव, मेवाड़ की यात्रा, मेवाड़ के अधिकांश क्षेत्रों का स्पर्श, ऐसी स्थिति में भीलवाड़ा छूट जाए तो लोगों में प्रतिक्रिया का होना अस्वाभाविक नहीं है। इस विन्दु पर भीलवाड़ा के प्रमुख व्यक्तियों का ध्यान केन्द्रित हुआ। उन्होंने जैसे-जैसे परस्पर एकत्व कर लिया। एकत्व हुआ, पर उनका अन्तर्मन नहीं वदला। फिर भी काम चलता रहा। विवाद समाप्त होने की जानकारी पाकर आचार्यप्रवर ने भीलवाड़ा जाना स्वीकृत कर लिया। आचार्यश्री के आगमन को निमित्त वनाकर उन लोगों ने स्वागत समिति का गठन किया। निरंजनकुमारजी सुराना स्वागत समिति के अध्यक्ष मनोनीत हुए और मंत्री का दायित्व प्रेमसिंहजी तलेसरा को दिया गया। निरंजनकुमारजी तव तक सभा संस्थाओं में सक्रिय नहीं थे। अतः वे निर्विवाद थे। प्रेमसिंहजी पहले के झमेले से जुड़े हुए थे। फिर भी उनको लिया गया। इसका उद्देश्य यही था कि आचार्यवर के प्रवास-हॉल में कोई भी व्यक्ति या पक्ष समाज से अलग न रहे। जैसा लोगों ने सोचा था, सव लोग उत्साह के साथ काम में जुट गए। आचार्यश्री के प्रवासकाल को सफल वनाने में सवने अपनी शक्ति श्रम और समय का विनियोजन किया। सारी व्यवस्थाएं अच्छे ढंग से संभाल ली गईं। आगन्तुक यात्री वहां की व्यवस्थाओं का अच्छा प्रभाव लेकर लौटे। दो सप्ताह का प्रवास सानन्द सम्पन्न कर आचार्यवर ने वहां से प्रस्थान कर दिया।

आचार्यश्री का विहार होने के वाद व्यवस्था से जुड़े हुए स्थानीय लोगों में फिर तनाव उभरने लगा। आन्तरिक एकत्व न होने के कारण तनाव तो होना ही था। प्रसंगवश समाज ने स्वागत समिति से कहा कि वह आय-व्यय का विवरण कार्यकारिणी के सामने प्रस्तुत करे। समिति के अध्यक्ष निरंजनलालजी और उनके साथियों ने इस वात को अच्छे रूप में लिया तथा अपनी ओर से पूरा प्रयत्न भी

किया, पर वे समाज को सन्तोष नहीं दे सके। क्योंकि कुछ व्यक्तियों ने उनको भी हिसाब का पूरा ब्यौरा नहीं दिया। सक्रिय साझेदारी के अभाव में उनका काम पूरा नहीं हो पाया।

उधर समिति के मंत्री प्रेमसिंहजी तलेसरा और उनके ग्रुप ने एक नयी परिस्थिति उत्पन्न कर दी। बात यों हुई कि स्वागत समिति को समाज से जो अनुदान मिला था, उसमें आवश्यक व्यय के बाद भी पचास-बावन हजार रुपये बच गए। उनमें से कुछ हजार रुपये बैंक में थे और कुछ हजार व्यक्तियों में। उन रुपयों का क्या करना चाहिए? इस सम्बन्ध में कार्य समिति ने कोई निर्णय नहीं लिया था। कुछ व्यक्तियों का अनुदान लिखित तो था, पर वह तब तक प्राप्त नहीं हो सका था। उस अनुदान को संग्रहीत करना और पूरी बचत का उपयोग किसी सामाजिक काम में करना या उसे अनुदानदाताओं में वितरित करना? यह एक प्रश्न खड़ा था। इसी बीच मंत्री महोदय ने दो व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से बैंक के रुपये उठाकर उन्हें कुछ लोगों में बांट दिया। जब यह बात ज्ञात हुई तो समाज में हलचल मच गई। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इस सम्बन्ध में तत्काल कार्यवाही की मांग की गई, पर कार्यवाही करे कौन? सब लोग आपस में मिलकर बैठें, शान्ति से चिन्तन करें तब कोई बात बने। आखिर मामला उलझता देख कुछ लोगों ने आचार्यश्री के दर्शन किए और आपको सारी स्थिति से अवगत करवा दिया। आचार्यवर ने मंत्री महोदय को दर्शन करने का निर्देश दिया। कुछ लोग उन्हें लिवाने के लिए भी गए, पर वे नहीं आए। कभी कुछ बहाना, कभी कुछ बहाना। समय बीतता गया। गंगापुर, देवगढ़, आशाहोली आदि क्षेत्रों के कुछ श्रावकों ने उनको समझाया। फिर भी वे दर्शन नहीं कर सके। इसमें उनकी कोई कठिनाई रही होगी, पर कुछ लोगों ने समझा कि वे दर्शन करना नहीं चाहते हैं। उन्हें प्रेरित करने का क्रम चालू था। आखिर उन्होंने फतेनगर में आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए अपनी अनुकूलता बताई।

२५ दिसम्बर को आचार्यश्री फतेनगर पधारे। वहां भीलवाड़ा विवाद से सम्बन्धित प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हुए। उस दिन आचार्यवर कुछ अधिक ही व्यस्त थे। एक दिन का प्रवास। स्थानीय लोगों द्वारा अधिक सन्निधि प्राप्त करने की इच्छा। उधर आगन्तुकों की भीड़। चित्तौड़ की एक बस विशेष रूप से कुछ अनुरोध करने आई थी। इधर प्रवचन-पंडाल का स्थान तो बहुत बड़ा था, पर आवास-स्थान बहुत छोटा था। लोग उमड़ रहे थे। उन सबको समय देना और सन्तुष्ट करना बड़ा कठिन काम था। कुछ व्यक्ति तो प्रातः नौ बजे से पांच मिनट बात करने की प्रतीक्षा कर रहे थे, चार बजे से पहले उन्हें समय नहीं मिल सका। कुछ नये व्यक्ति, जो पहली बार ही दर्शन करने आए थे, दूर से दर्शन कर तृप्त नहीं हो सके। निकट साक्षात्कार के लिए उन्हें घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ी। दर्शन,

बातचीत, प्रवचन सबके बीच में महत्त्वपूर्ण काम था भीलवाड़ा का विवाद समाप्त करवाना। आचार्यवर ने उनको एक बार समय दिया। विवाद को निपटाने के लिए उनकी मानसिकता तैयार की। उन्हें कुछ विशेष निर्देश देकर कहा गया कि जब तक वे विवाद को समाप्त करने की दृष्टि से उचित निर्णय नहीं लेते हैं, कमरे से बाहर न जाएं। आचार्यवर बाहर पधारकर अन्य लोगों के बीच में बैठ गए। भीतर उनका चिन्तन चलता रहा।

लगभग तीन बजे आचार्यवर आगन्तुक लोगों से अवकाश लेकर पुनः भीतर आए। आपने उनकी वार्ता में हुई प्रगति की जानकारी ली और अपनी ओर से जो कुछ कहना आवश्यक था, कहा। आचार्यवर के बोल इतने मार्मिक थे कि तलेसराजी ने अपनी भूल का अनुभव कर लिया। उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की।

अन्त में यह निर्णय लिया गया कि स्वागत समिति के पास जो पैसा बचा है, वह तलेसराजी द्वारा उठाये गए कदम के अनुसार शेष अनुदानदाताओं में पच्चीस प्रतिशत के हिसाब से वितरित कर दिया जाएगा। उसमें जितना पैसा कम रहेगा, उसकी पूर्ति स्वयं तलेसराजी करेंगे। इस निर्णय की सम्यक् क्रियान्विति के लिए गणपतमलजी हिरण (गंगापुर) और चांदमलजी दूगड़ (आसीन्द) को पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया। इन दोनों व्यक्तियों ने भीलवाड़ा पहुंचकर उक्त विवाद को समाप्त करने में पूरी तत्परता से काम किया।

पचास वर्ष बाद

२ जून को भीलवाड़ा से दस कि० मी० का विहार कर आचार्यश्री 'आरजिया' पहुंचे। कोठारी नदी के किनारे पर बसा गांव आरजिया चार सौ वर्ष प्राचीन माना जाता है। ढाई हजार की आबादी वाले गांव में पन्द्रह परिवार तेरापंथी हैं। पांच दशक पहले वहां आचार्यवर का पदार्पण हुआ था। उससे पहले अन्य आचार्यों के आगमन की कोई जानकारी नहीं मिलती। सं० १९४३ में वहां साध्वी भूरांजी का चातुर्मास हुआ था। अब चातुर्मास तो नहीं होता है, शेषकाल में साधु-साध्वियां क्षेत्र को संभालते हैं। उस छोटे से गांव में पांच व्यक्ति अणुव्रती हैं, यह एक उल्लेखनीय बात है।

आचार्यश्री ने गांव में प्रवेश करते ही उस रावले के प्रांगण को पावन किया, जहां प्रथम बार के आगमन में आपका प्रवास हुआ था। ठाकुर श्री सूर्यभानसिंह तथा उनका पूरा परिवार आचार्यश्री की इस अनुकम्पा से खिल उठा। इस बार आचार्यश्री का प्रवास राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में हुआ। रावले में साध्वियां ठहरीं। विद्यालय के पीछे वाले प्रांगण में गांववासियों ने आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। स्वागत-सभा में सभी वर्गों के लोग उपस्थित थे। ठाकुर

सूर्यभानजी प्रवचन सुनकर आचार्यश्री के पास आकर बोले—भीलवाड़ा में कई वार यहां से जाकर मैंने प्रवचन सुना। आज का प्रवचन सुनकर तो मैं मुग्ध हो गया। आपने शराब छोड़ने की बात कही। मैं शराव पीता तो नहीं हूं, पर घर में मेहमान आ जाएं तो हाथ लगाना पड़ता है। मेरे जीवन में सबसे बड़ा अवगुण है क्रोध। आज आपके चरण स्पर्श और उपदेशामृत पान का मौका मिला है। इससे मेरा क्रोध कम हो जाए तो मैं समझूंगा कि मेरा कल्याण हो गया।

आप कितने महान् हैं !

मनोहर सिंहजी मेहता के मन में आचार्यश्री के प्रति सहज श्रद्धा है। वे जव कभी आपके दर्शन करते हैं, भावविभोर हो जाते हैं। आपके मिशन अणुव्रत के लिए तो वे एक प्रकार से बहुत काम कर रहे हैं। आरजिया में जव आचार्यवर विहार करके आए, सन्त आपके पांव साफ करने लगे। उस समय मेहताजी नीचे झुककर पांवों को अपने हाथ में लेते हुए वोले—क्या इतना-सा काम मैं नहीं कर सकता? आज तो यह अवसर मुझे मिलना चाहिए। साधुओं का काम साधु ही कर सकते हैं, इस प्रकार समझाने पर वे वहां से हट गए। उस समय गीले चरणों के स्पर्श से उनके हाथ भी गीले हो गए थे। उनको अपने सिर पर लगाते हुए वे बोले—आज मेरी जिम्मेवारी वढ़ गई है। मैं आपके उपदेशों को जीवन में उतारूं, तब मुझे सन्तोष हो। सच कहता हूं, आप कितने महान् हैं! आपकी महत्ता का स्पर्श भी कर पाऊं तो मेरे जीवन की सफलता हो जाए।

कर्मणा जैन वह है

३ जून को आचार्यश्री का प्रवास-स्थल था 'मांडल'। मेवाड़ के इतिहास में मांडल की पहचान एक प्राचीन नगर के रूप में होती है। सं० १०४१ के ताम्रपत्रों में मांडल का आलेख है। इस आधार पर यह माना जा सकता है कि मांडल का इतिहास कम से कम एक हजार वर्ष पुराना तो है ही। मांडल की कुछ चीजें ऐतिहासिक महत्त्व की हैं, जैसे—मांडल का तालाव, मांडल की मीनार, दलकट की छतरियां, वत्तीस खम्भों की छतरी आदि।

ऐसा माना जाता है कि पृथ्वीराज चौहान के वंशजों में आणोजी और मांडल जी नामक दो सामंत हुए। आणोजी ने सं० ११३० में अजमेर में एक तालाव वनवाया, जो आना सागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सं० ११३३ में उनके छोटे भाई मांडल जी ने मांडल में तालाव का निर्माण करवाया, वह मांडल तालाव के नाम से प्रसिद्ध है।

मांडल की मीनार कब बनी ? यह अन्वेषण का विषय है। स्थानीय लोगों के अनुसार प्राचीन समय में वहां फौज रहती थी। उनके मार्गदर्शन की दृष्टि से मीनार का निर्माण करवाया गया था।

दलकट की छतरियां वहां दल अर्थात फौज के कटने से उसकी स्मृति में बनवाई गई थीं, ऐसी मान्यता है। इसी प्रकार यह भी माना जाता है कि सं० १५६० के आस-पास महाराज भीमसिंह जी युद्ध में काम आ गए थे। उनकी यादगार में बत्तीस खंभों वाली छतरी बनाई गई।

किसी समय मांडल में उच्च कोटि के विद्वान रहते थे और वहां उनके पास पढ़ने के लिए दूर-दूर के विद्यार्थी आते थे। उस समय मांडल को 'ल्होड़ी काशी' कहा जाता था। पंडित कंवरलालजी पाराशर के अनुसार उपर्युक्त बातें मांडल की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने वाली हैं।

बीस हजार की आबादी वाले मांडल में कुल पन्द्रह जैन परिवार हैं। उनमें एक परिवार तेरापंथी है। इस परिवार की शृंखला आचार्य भिक्षु के युग से जुड़ी हुई है, किन्तु पूर्ववर्ती आठ आचार्यों में से कोई भी आचार्य मांडल नहीं पधारे। आचार्यश्री सं० २०१२ में वहां पहली बार पधारे थे। अब तीस वर्ष बाद आचार्यश्री का दूसरी बार आगमन हुआ। स्थानीय लोगों ने पूरे उत्साह के साथ आपका स्वागत किया। आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—'यहां जैन परिवार कम हैं और अन्य वर्गों के लोग अधिक हैं। मैं इस बात को महत्त्व नहीं देता। मेरी दृष्टि में जैन कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति जन्मना जैन हो सकता है। पर कर्मणा जैन वह है, जो अपनी इन्द्रियों को, मन को जीतने के लिए प्रयत्नशील है, जिसकी वृत्तियां संयत हैं और जो विजेता बनना चाहता है। मैं जैन धर्म को किसी कौम में बांधना नहीं चाहता। जिन लोगों का पुरुषार्थ में विश्वास है, अच्छा जीवन जीने में विश्वास है, त्याग-तपस्या में विश्वास है, उन सबको मैं जैन मानता हूं।'

आचार्यश्री के उक्त विचारों को जनता ने बहुत उत्साहित होकर सुना। आज तक उन्होंने जैनत्व की इतनी व्यापक परिभाषा सुनी ही नहीं थी। कोई व्यक्ति जैन बने या नहीं, सच्चा मैन (इंसान) अवश्य बने। आचार्यश्री के इस कथन को लोगों ने हर्ष ध्वनि के साथ सुना। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के सम्बन्ध में भी उन्हें विस्तार से समझाया गया।

दो दिनों में दो बार आगमन

ढ़ाई हजार की आबादी वाला गांव लुहारिया चार सौ अठारह वर्ष पुराना है। स्थानीय लोगों के अनुसार वह गांव ठाकुर कानसिहजी को जागीर में प्राप्त

हुआ था। मांडल तहसील का गांव लुहारिया पहले किस नाम से प्रसिद्ध था, यह खोज का विषय है। वर्तमान नाम के बारे में यह कहा जाता है कि स्थानीय रावले की नींव खोदते समय वहां एक वछड़ा आकर गिर गया। वह ऊपर से गिरने पर भी मरा नहीं, जिन्दा बाहर निकल गया। इस घटना से सबको आश्चर्य हुआ। मेवाड़ की वोली में वछड़े को लुलारयो कहा जाता है। लुलारयो से लुहारयो और लुहारयो से लुहारिया नाम अस्तित्व में आ गया। वहां का चारभुजा मन्दिर चार सौ अठारह साल पुराना माना जाता है। इसी आधार पर गांव के बसने का समय निर्धारित किया गया है।

लुहारिया में अभ्रक की दो वड़ी खानें हैं, जिनमें लगभग १५० व्यक्ति काम करते हैं। वहां गेहूं, मक्की, कपास आदि की खेती काफी अच्छी होती है। वहां प्रति वर्ष आश्विन महीने में पशुओं का विशाल मेला लगता है। मेले में दूर-दूर से हजारों पशु लाये जाते हैं।

लुहारिया में ववासीर की चिकित्सा भी वहुत सहज और सफल होती है। लगभग उनतीस साध्वियों और नौ साधुओं ने वहां ववासीर की सफल चिकित्सा करवाई। उल्लेखनीय बात यह है कि ववासीर की चिकित्सा करने में चिकित्सक जितना कुशल है, उसकी पत्नी भी उतनी ही कुशल है। इस दृष्टि से वहां साध्वियों की चिकित्सा भी सुविधा से हो जाती है।

ढाई हजार की आवादी वाले गांव में केवल चौवीस परिवार तेरापंथी हैं। फिर भी वहां समाज का अपना सभा-भवन है। कभी-कभी वहां चातुर्मास भी होते रहे हैं। मघवागणी, डालगणी और कालूगणी के चरण स्पर्श से पावन लुहारिया की धरती आचार्यश्री की पदरज का तीसरी बार स्पर्श पाकर खिल उठी। सं० २०४२ से पहले आप सं० १९९३ और २०१९ में वहां पधारे थे।

४ जून को १६ कि० मी० चलकर आचार्यश्री लुहारिया पहुंचे। गर्मी की मौसम और सोलह कि० मी० लम्वा रास्ता। खेतों में काम करने वाले किसान भी थक जाते हैं। किन्तु आचार्यश्री अविश्रान्त भाव से मंजिल तय करते रहते हैं। राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रांगण में वना प्रवचन-पंडाल खचाखच भरा था। स्थानीय प्रधानाध्यापक श्री विजयपालजी, मांडल तहसील के सरपंच ठाकुर शंकरसिंहजी, विधायक श्री विहारीलालजी पारीक, कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री शंकरलाल दूगड़ आदि अनेक व्यक्तियों ने स्वागत-समारोह में अपने विचार रखे। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में अणुव्रत की व्याख्या की और व्यसन-मुक्त वनने की प्रेरणा दी। प्रवचन के वाद ठाकुर श्री शंकरसिंहजी ने आजीवन मद्य-मांस के सेवन का परित्याग कर दिया। उनको खड़े होकर त्याग करते देख अनेक भाइयों को मूक प्रेरणा मिली, उन्होंने भी शराव, तम्वाकू आदि व्यसनों को छोड़ दिया।

५ जून को प्रातः आचार्यश्री 'भगवानपुरा' पधारे। भगवानपुरा न तो यात्रा पथ के बीच में आता है और न ही वहां कोई श्रद्धा का घर है। पन्द्रह स्थानकवासी परिवारों और कुछ माहेश्वरी परिवारों ने पूरे गांव की ओर से आचार्यश्री से भगवानपुरा आने के लिए अनुरोध किया। स्थानीय प्रमुख श्रावक वंशीलालजी जैन आदि गंगापुर से ही भगवानपुरा आने के लिए अनुरोध कर रहे थे। गांव वालों की प्रबल भावना को टालना संभव नहीं हुआ। गांववासी भी अपने गांव भगवानपुरा में आचार्यश्री को साक्षात् भगवान के आगमन की तरह मान रहे थे। आचार्यवर ने वहां के जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा—'संसार में चार प्रकार की बुराइयां हैं, जो अन्य सब बुराइयों की जड़ें हैं। जैन आगमों में उन्हें क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप में विश्लेपित किया गया है। संसार का हर व्यक्ति कम-अधिक इनकी गिरफ्त में है। जैन श्रावकों का यह कर्तव्य है कि वे इन बुराइयों को हल्का करने का प्रयत्न करें। जब तक यह कषाय चतुष्टयी प्रबल रहेगी, आत्मा का विकास नहीं हो सकेगा।'

आचार्यश्री को उसी दिन भगवानपुरा से पुनः लुहारिया लौटना था। इसलिए जितने समय तक आप वहां रहे, स्थानीय लोगों से घिरे रहे। तेरापंथ धर्मसंघ की मर्यादाओं, संगठन, अनुशासन और सेवा आदि के सम्बन्ध में जानकारी पाकर स्थानीय लोगों को सुखद आश्चर्य हुआ। मध्याह्न में वहां से प्रस्थान कर आचार्यवर लुहारिया पधार गए। रात्रि में वहां के लोगों ने प्रवचन का लाभ लिया। साध्वियों का प्रवास तेरापंथ सभा-भवन में हुआ।

गंगा-स्नान हो गया

मांडल तहसील का डेढ़ हजार की आबादी वाला गांव है 'चांखेड़'। यह गांव सोलह सौ वर्ष पूर्व चूण्डावत वंश के वीर श्री चमनसिंह द्वारा बसाया गया, ऐसा माना जाता है। नियति का कुछ ऐसा योग था कि बसा हुआ गांव दो बार उजड़ गया। अब जो चांखेड़ गांव है, वह अपने मूल स्थान से दक्षिण की ओर लगभग एक फर्लांग की दूरी पर बसा हुआ है। पहले वाला चांखेड़ खण्डहरों में बदल गया है। उनमें पुराना गढ़ और पनघट की बावड़ी कुछ अंशों में अपने अस्तित्व की सूचना दे रहे हैं।

६ जून को पांच कि०मी० का विहार कर आचार्यश्री चांखेड़ पहुंचे। डेढ़ हजार की आबादी वाले चांखेड़ में ग्यारह परिवार तेरापंथी हैं। आचार्यश्री के आगमन से गांव के सभी लोग प्रसन्न और उत्साहित थे। लगभग एक हजार की जनसभा को आचार्यवर ने सम्बोधित किया। अनेक व्यक्ति व्यसनमुक्त बने और लोगों को व्यसनमुक्त होने की प्रेरणा मिली। व्यसनमुक्त होने वालों में स्थानीय

ठाकुर शंभूसिंहजी ने शराब और मांस दोनों का त्याग कर राजपूत भाइयों के लिए त्याग का रास्ता खोल दिया। महाजन लोगों ने मिलावट न करने का संकल्प स्वीकार किया। कुछ लोग अपनी दुर्बलता के कारण व्यसनमुक्त रहने का संकल्प तो नहीं ले पाए, किन्तु उनको आत्म-ग्लानि होने लगी। उस समय का माहौल देखते हुए ऐसा लग रहा था कि उन लोगों को दो-चार बार सन्त समागम का दुर्लभ अवसर मिल जाए तो उनके जीवन में नयी रोशनी की किरणें फूट पड़ें।

७ जून को चांखेड़ से लाधवास जाना था। चांखेड़ से दो कि० मी० दूर एक गांव है बांकली। मांडल क्षेत्र के विधायक श्री बिहारीलालजी पारीक का निवास स्थान है। बिहारीलाल पारीक के आग्रहपूर्ण अनुरोध पर आचार्यवर ने दो कि० मी० का चक्कर लेकर बांकली जाना स्वीकार किया। वहां बिहारीलालजी के मकान में ही स्थानीय लोग एकत्रित हो गए थे। आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए बांकली गांव को आदर्श गांव बनाने की प्रेरणा दी।

बिहारीलालजी ने आचार्यवर के स्वागत में बोलते हुए कहा—'मेरा एक संकल्प था कि मैं बांकली के लोगों को स्नान कराऊं। मैं सोच रहा था कि मैं अपने संकल्प को पूरा कैसे करूं ? इसी बीच मुझे आचार्यश्री के इधर आगमन की सूचना मिली। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। मैंने आपको निवेदन किया और आज घर बैठे गंगा आ गई। आचार्यश्री का वचनामृत गंगा-स्नान से भी अधिक मूल्यवान है। आपका उपदेश हमारे जीवन में उतर जाए तो हमारा कल्याण हो जाए। यदि आचार्यश्री रात भर यहां रुक जाते तो हमारे गांव का कायाकल्प हो जाता। अभी आपने अपने प्रवचन में इस गांव को आदर्श बनाने का संकेत दिया है, इसको हम लक्ष्य में रखेंगे। हम आपसे यही आशीर्वाद चाहते हैं कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में हमें कामयाबी हासिल हो।

बांकली से विनयपुरम्

भीलवाड़ा जिले का छोटा-सा देहात बांकली आचार्यश्री के चरण-स्पर्श से पावन होकर विनयपुरम् बन जाएगा, यह कल्पना उस समय किसी को नहीं थी। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन के बीच एक संकेत दिया। उस संकेत को विधायक श्री बिहारीलालजी ने पकड़ लिया। उधर आचार्यश्री ने भी अपने मुनि शिष्य सुखलालजी को उस जिले के कुछ क्षेत्रों में सघन काम करने का निर्देश दे दिया। मुनिजी के विशेष प्रयत्न से आमली और अड़सीपुरा पहले ही आदर्श गांव बन चुके थे। उन गांवों की पहचान अब आम्रावली और आदर्शपुरम् नामों से हो रही है। तीसरा गांव था बांकली। वहां भी मुनिजी गए और उन्होंने आचार्यश्री के लोक

कल्याणकारी मिशन से जन-जन को परिचित किया। ग्रामीण लोगों के मन में आस्था और विश्वास के दीप जल उठे। आचार्यश्री के प्रति उनके मन में पहले से ही बहुत ऊंची भावना थी। अब तो उनको यह महसूस हुआ कि आचार्यश्री ने उनके लिए अमृत संजीवनी भेजी है। उन्होंने अणुव्रत के छोटे-छोटे नियमों को गहराई से समझा और स्वीकार किया। भीलवाड़ा जिले के उस छोटे से गांव में आदर्श गांव की नींव लग गई। आदर्श गांव बनते ही गांव के नाम का संस्कार भी आवश्यक प्रतीत हुआ। अणुव्रत भावना से भावित होकर बांकली गांव ने विनयपुरम् के रूप में अपनी स्थायी पहचान बना ली। अमृत महोत्सव वर्ष की बड़ी उपलब्धियों में एक उपलब्धि यह भी है।

आचार्यवर के आगमन से वहां जो वातावरण निर्मित हुआ, वह गांववासियों के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ चुका था। इधर विधायक बिहारीलालजी के दिमाग को आचार्यवर का संकेत बराबर झंकृत कर रहा था। उन्होंने अपने साथियों से चर्चा की। सन्तों से मार्गदर्शन पाया और आचार्यश्री के जन्मदिन को निमित्त मानकर बांकली में अणुव्रत ग्राम भारती स्थापित करने का निर्णय ले लिया।

अणुव्रत 'ग्राम भारती' के लक्ष्य का निर्धारण करते समय उनके सामने निम्नलिखित बिन्दु थे—

- ग्रामों में अणुव्रत आदर्शों को प्रतिष्ठित करना।
- ग्रामीणों की समस्याओं का निराकरण अहिंसात्मक ढंग से करना।
- अज्ञानमूलक अन्धविश्वासों और कुप्रथाओं को मिटाकर स्वस्थ समाज की संरचना करना।
- स्वस्थ मन, स्वस्थ तन व स्वस्थ चिन्तन का प्रयोग व प्रसार करना।
- आधुनिक तथा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान में समन्वय कर सार्थक शिक्षा का प्रयोग करना।
- जीवन-विज्ञान व प्रेक्षाध्यान को ग्रामीण अंचलों तक फैलाना।

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय-समय पर पुरुषों, महिलाओं एवं विद्यार्थियों के शिविर लगाने, संगोष्ठियां आयोजित करने, लोकगीतों, लोक-कथाओं, चलचित्रों, साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों को माध्यम बनाने का चिन्तन भी उसी समय किया गया।

प्रारूप को देखते हुए उपर्युक्त योजना काफी कार्यकारी प्रतीत होती है। एक साथ अनेक स्थानों पर ऐसी योजनाओं का क्रियान्वयन हो तो संस्कार-निर्माण और मूल्य-प्रतिष्ठापन की दिशा में उल्लेखनीय काम हो सकता है।

भावी पीढ़ी के लिए

इसी वर्ष चातुर्मास में १४ नवम्बर १९८५ को आचार्यश्री का जन्मदिन था। संयोग से वह नेहरूजी का जन्मदिन भी था। आचार्यश्री का जन्मदिन पिछले कई वर्षों से 'अणुव्रत दिवस' के रूप में मनाया जाता रहा है। इस वर्ष वह 'अहिंसा सार्वभौम' दिवस' के रूप में वनाया गया। अहिंसा और अणुव्रत के माध्यम से लोक-चेतना जागरण का जो महत्त्वपूर्ण काम हुआ है और हो रहा है, वह अपने आपमें अनूठा है। जीवन में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए अणुव्रत की आचार संहिता एक सार्वभौम आचार संहिता है। युद्ध और परमाणु युद्ध की बढ़ती हुई विभीषिका में अहिंसा एक मात्र ऐसा कवच है, जो जनता को त्राण दे सकता है। इसी कारण अणुव्रत के प्रति आम आदमी के मन में निष्ठा और आकर्षण है। भीलवाड़ा में वर्षों से 'साधना सदन सेवा समिति' सार्वजनिक क्षेत्र में काम कर रही है। समिति के अधिकारियों को इसी वर्ष मई मास में आचार्यश्री का सान्निध्य मिला। उस सान्निध्य से उन्हें अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के वारे में बहुत कुछ जानने-समझने को मिला। उसके वाद चातुर्मास काल में मुनि सुखलालजी के सम्पर्क से अणुव्रत से विशेष लगाव हो गया। इसके फलस्वरूप उन्होंने ११ नवम्बर को सर्व सम्मति से निर्णय लेकर साधना सदन सेवा समिति द्वारा संचालित विद्यालय का नाम 'अणुव्रत साधना सदन' कर दिया। इस विद्यालय में प्रतिदिन एक कालांश अणुव्रत शिक्षण के लिए निर्धारित कर दिया गया। इसके साथ ही समिति ने यह भी सोचा है कि विद्यालय के प्रांगण में जीवन-विज्ञान संस्कार केन्द्र और अणुव्रत साधना छात्रावास का भी निर्माण हो, ताकि भावी पीढ़ी संस्कारवान, चरित्रवान और नैतिक बन सके।

लाधगया से लाधवास

ढाई हजार की आवादी वाला लाधवास अपने नामकरण के साथ भी कुछ किवदन्तियों से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि किसी समय उदयपुर दरवार तालाव की पाल वनवा रहे थे। दिन में पाल वनायी जाती है और रात्रि में वह ढह जाती। कई वार ऐसा घटित हो जाने पर दरवार का चिन्तित होना स्वाभाविक था। उन दिनों किसी भाई ने सूचना दी कि अपने शहर में एक नाथजी रहते हैं। वे सिद्ध योगी हैं। उनसे कोई उपाय जानना चाहिए। नाथजी की खोज की गयी। उन्होंने उपाय वता दिया। उनके अनुसार पाल वनवाई गयी। वह पाल ढही नहीं। दरवार ने ऐसे चामत्कारिक व्यक्ति को सम्मानित करना चाहा। उन्होंने नाथजी को दरवार में उपस्थित करने का निर्देश दिया। वह निर्देश लेकर

राजपुरुष नाथजी के आवास-स्थल पर पहुंचे, तव तक वे वहां से प्रस्थान कर शहर से दूर चले गये।

दरबार के पास यह संवाद पहुंचाया गया तो उन्होंने आदेश दिया—नाथजी की खोज करो। वे जहां भी मिलें, उन्हें ससम्मान लौटाकर ले आओ। उधर नाथजी चलते-चलते वर्तमान लाधवास गांव से बाहर एक बावड़ी के पास पहुंच गये। बावड़ी में उस समय शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी रहे थे। नाथजी थोड़ा आगे बढ़े। वहां एक केर का खूंटा था। उस खूंटे के निकट एक मूर्ति दिखाई दी। नाथजी को उस स्थान पर किसी विशेषता का एहसास हुआ। वे वहीं पर समाधि लगाकर बैठ गये। उधर नाथजी की खोज में निकले हुए राजपुरुष भी उन्हें खोजते-खोजते वहां पहुंच गये। नाथजी को देखते ही वे अपनी बोली में बोले—लाधग्या-लाधग्या (मिल गये, मिल गये)। उस दिन से गांव का नाम लाधवास हो गया, ऐसा माना जाता है।

की सुवधि, हो गयी दुविधा

चांखेड़ से लाधवास की दूरी मात्र चार कि०मी० की है, पर कहा जाता है कि 'संत सुरसरी परसराम चले भुजंगी चाल'—संतों और सरिताओं की गति सीधी नहीं होती। वे सांप की गति से टेढ़े-मेढ़े होकर चलते हैं। इस जनोक्ति के अनुसार आचार्यश्री बांकली एवं शिवपुर होकर लाधवास पहुंचे तो सात कि०मी० का रास्ता तय हो गया। लाधवास में नाथ सम्प्रदाय के संत मंगलनाथजी का प्रसिद्ध आसन है। आचार्यश्री का प्रवास वहीं हुआ। स्थानीय सरपंच तथा अन्य प्रमुख लोगों ने पूरे उत्साह के साथ आपका स्वागत किया। स्वागत-सभा को सम्बोधित करते हुए आचार्यश्री ने जीवन में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी।

प्रवचन सम्पन्न होने के बाद साध्वियां गांव के घरों में पानी लाने के लिए गयीं। मुनि चर्या के अनुसार पूरी पूछताछ कर वे पानी लायीं। वहां माहेश्वरी ब्राह्मण परिवारों में प्रायः हर घर में एक-दो घड़े प्रासुक पानी था। पानी क्यों बना है? इस प्रश्न के उत्तर में बहनों ने कहा—यह बर्तनों का धोवन है और सहज रूप में निष्पन्न है। साध्वियां पानी ले रही थीं तो एक घड़े के नीचे थोड़ा-सा चूना दिखाई दिया। चूने से पानी प्रासुक तो हो जाता है, पर साधु-साध्वियों के निमित्त चूने से पानी बनाने की विधि नहीं है। साध्वियों ने पानी के नीचे पड़े चूने के बारे में पूछा तो गृह स्वामिनी टालमटोल कर गयी। इससे थोड़ा संदेह उत्पन्न हुआ। साध्वियों ने पूरी शान्ति के साथ पुनः-पुनः पूछताछ की तो ज्ञात हुआ कि बेमाली का एक भाई सुबह-सुबह वहां आया था। उसने काफी घरों में जाकर एक-एक घड़े पानी में चूना घोल दिया और बहनों से कह दिया कि

महाराज पूछें तो राख का धोवन वताकर उन्हें पानी दे देना।

घर-घर में धोवन-पानी मिलने का रहस्य खुला तो उस भाई की खोज की गयी, जिसने ऐसा गलत काम किया था। थोड़ी-सी खोज में वह भाई मिल गया और सहमते-सहमते उसने अपनी भूल भी स्वीकार कर ली। छोटे गांव में साधु-साध्वियों के लिए पानी की कमी न रहे, यह सोचकर उसने घर-घर में प्रासुक पानी वना दिया। जिनके घरों में पानी वनाया गया वे साधुओं की भिक्षा विधि से परिचित नहीं थे। पानी वनाने वाला भाई कहीं भीड़ में खो गया था। साध्वियों ने पूरी जांच के वाद पानी लिया था। वह पानी जिन घड़ों में डाला गया, उसमें अन्य जैन परिवारों के घरों से लाया गया पानी भी मिला दिया गया। अव उस पानी को काम में लेना या नहीं? यह एक प्रश्न था। समाधान के लिए उस प्रश्न को आचार्यश्री के समक्ष उपस्थित किया गया।

आचार्यवर ने पूरी घटना को ध्यान से सुना और समाधान की भाषा में कहा—जिनके घर में पानी वना है, उनका कोई चिन्तन नहीं था। जिस भाई ने पानी वनाया, उसका भी कोई लक्ष्य नहीं था। वस एक विचार दिमाग में कौंधा और उसकी क्रिया रूप में परिणति हो गयी। उस पानी को आधाकर्मी माना जाए या नहीं? आधाकर्मी मानने पर पानी को काम में लेना ही नहीं है। उसे आधाकर्मी न भी माना जाये, फिर भी व्यवहार तो अशुद्ध है। व्यवहार भी एक तत्त्व है। इसका लोप नहीं होना चाहिए। जितना पानी उस पानी में मिश्रित हुआ है, उसे किसी भी काम में नहीं लेना है।

आचार्यवर के निर्देशानुसार पूरे भरे हुए तीन घड़ों का पानी परिष्ठापित किया गया। उन घड़ों में दूसरा पानी भी नहीं डालना था। अतः दूसरे घड़े लाये गये। अव नये सिरे से पानी लाना था। साध्वियों के विभाग में जो घर थे, अधिकांश घरों का पानी लाया जा चुका था। साधुओं के विभाग में जो गोचरी थी, उसमें पानी छूटा हुआ था। उस पानी को लाने के लिए आचार्यश्री से अनुज्ञा प्राप्त की गयी। तव तक साधुओं को सारी घटना की जानकारी हो गयी थी। उन्होंने साध्वियों का सहयोग करना अपना कर्त्तव्य समझा। संतों की गोचरी में जहां-जहां पानी प्राप्त होने की संभावना थी, संत स्वयं गये और पानी के पात्र भरकर साध्वियों को सौंप दिये। पारस्परिक सहयोग का वह मनभावन दृश्य जिसने भी देखा, वह तेरापंथ धर्मसंघ की एकता को सराहे विना नहीं रह सका। देखते-देखते कुछ ही समय में पानी की पूर्ति हो गयी।

उधर एक घड़े में कुछ यात्रियों के घरों से लाया हुआ पानी था। उसके वारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं था। इसलिए कहा गया कि उस पानी का ध्यान रखा जाए। इधर सव साध्वियां पानी लाने और पहले वाले पानी के परिष्ठापन में संलग्न हो गयीं। इस वीच एक कुत्ते ने अवसर देखा और उस शुद्ध पानी वाले घड़े

में मुंह लगा दिया। फलतः वह पानी भी काम का नहीं रहा। साध्वियों को पानी लाने और परिष्ठापन करने में पूरा श्रम करना पड़ा, पर उनका उत्साह इतना प्रवल था कि उन्हें थोड़ी भी थकान का अनुभव नहीं हुआ। यह तो एक संयोग था कि पानी फिर उपलब्ध हो गया। अन्यथा ऐसे प्रसंग में साधु-सध्वियों को कभी-कभी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। 'भोले सज्जन दुश्मन की गरज पालते हैं'—ऐसी कहावत ऐसे क्षणों में ही चरितार्थ होती है। भाई ने चाहा तो यह था कि साधु-साध्वियों को सुविधा मिले पर उससे जो काम बढ़ा, उसे देखकर वह भाई स्वयं भी वहुत दुःखी और शर्मिन्दा हो गया।

दूसरी वार पदार्पण

चांखेड से मध्याह्न में प्रस्थान कर आचार्यवर वहां से चार कि० मी० दूर गोविन्द पुरा में रात्रिकालीन प्रवास किया। गांव वहुत छोटा था। छोटे-छोटे गांवों में स्कूल वन जाने से प्रवास की सुविधा मिल जाती है। आचार्यवर तथा साधु स्कूल में रहे। साध्वियों को दो-तीन स्थानों में रहना पड़ा। छोटे से गांव के लोगों में उत्साह अच्छा था। रात्रिकालीन प्रवचन सभा में अच्छी उपस्थिति रही।

८ जून को गोविन्दपुरा से सात कि० मी० चलकर आचार्यश्री नाथड़ियास पहुंचे। दो हजार की आवादी वाले गांव में पन्द्रह जैन परिवार हैं। उनमें आठ परिवार तेरापंथी हैं। कहा जाता है कि शताव्दियों पहले वहां किसी भाई को वैल की एक नाथ प्राप्त हुई थी। उसी आधार पर गांव का नाम नाथड़ियास कर दिया गया। तेरापंथ की दृष्टि से नाथड़ियास कोई पुराना क्षेत्र नहीं है। आठवें आचार्य पूज्य कालूगणी के समय वहां तेरापंथ का वीज वपन हुआ। आचार्यश्री वहां दूसरी वार पधारे थे। इससे पहले सं० २०१९ में आचार्यश्री ने इस क्षेत्र का स्पर्श किया था।

एक प्रेरक प्रसंग

रायपुर का महाराणा उच्च माध्यमिक विद्यालय उस दिन विशेष प्रकार की चहल-पहल का केन्द्र वना हुआ था। पांच हजार की आवादी वाले गांव की सारी रौनक मानो विद्यालय में पिण्डीभूत हो गयी थी। रायपुर ही नहीं, आस-पास के गांवों से भी सैकड़ों-सैकड़ों यात्री वहां पहुंच रहे थे। कुछ लोगों ने उस चहल-पहल का कारण पूछा तो व्यवस्था करने वाले भाइयों ने आचार्यश्री तुलसी के आगमन की सूचना देकर उनको अधिक उत्सुक वना दिया।

रायपुर तेरापंथ का प्राचीन क्षेत्र है। वहां पहले, तीसरे, चौथे, पांचवें, सातवें,

आठवें और नौवें—इस प्रकार सात आचार्यों का पदार्पण हो चुका है। आचार्य भिक्षु वहां बारह वार पधारे थे, ऐसा माना जाता है। आचार्यश्री तुलसी ने भी सं० १९९३, २०१९ और २०४२ में तीसरी बार उस क्षेत्र का स्पर्श किया। पहले वहां कभी-कभी साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी होते थे। चातुर्मासों की शृंखला वि० सं० १९५६ से शुरू हुई, पर कोई क्रम नहीं बना। सं० १९९६, १९९८ और २००१ में तीन चातुर्मास बहुत जल्दी-जल्दी हो गये। उसके बाद वह शृंखला टूट गई। संख्या की दृष्टि से वहां तेरापंथ परिवार आठ ही हैं, फिर भी वहां के सिसोदिया परिवार का उस क्षेत्र में पूरा वर्चस्व है। नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियों में धार्मिक संस्कारों का जागरण है। शेषकाल में प्रतिवर्ष उन परिवारों को अच्छे ढंग से संभाल लिया जाये तो नयी पीढ़ी अधिक संस्कारी बन सकती है।

प्राचीन काल में मघराजजी सिसोदिया रायपुर के प्रतिष्ठित श्रावक थे। उनका एक चमार के साथ निकटता का सम्बन्ध था। वह चमार भी तेरापंथी था। इस दृष्टि से उनमें साधार्मिक प्रेम भी था। वे प्रतिदिन दुकान पर बैठकर घंटों तक धर्म-चर्चा किया करते थे। एक वार किसी वात को लेकर दोनों में अनवन हो गयी। अनवन हुई तो ऐसी कि धर्म-चर्चा तो दूर रही, वे दोनों एक-दूसरे से मिलते तक नहीं।

एक दिन चमार अपने खेत में जा रहा था। मार्ग में उसने मुनि हेमराजजी को उधर आते देखा। संतों के साथ किसी श्रावक को न देख चमार ने सोचा—लगता है कि सेठ को संतों के आगमन की सूचना नहीं मिली। अन्यथा ऐसी वात नहीं होती। चमार सेठ को सूचना देने जाये तो कैसे जाये? उनमें तो कई दिनों से अनवन चल रही थी। यह वात मन में रहने पर भी चमार ने सोचा—'हमारी व्यक्तिगत अनवन के कारण अपने संघ की प्रतिष्ठा पर आंच नहीं आने दूंगा।' इस चिन्तन के साथ वह तत्काल गांव की ओर मुड़ गया। सिसोदियाजी के घर पहुंचकर उसने वाहर से ही आवाज दी—सेठ! ओ सेठ! हेमराजजी स्वामी पधार रहे हैं। आओ, सामने चलें।' सेठ ने चमार की वोली पहचान ली। एक वार तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। वाहर आकर देखा तो चमार वहां खड़ा था। सेठजी अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे चमार तथा अन्य गांववासियों के साथ संतों की अगवानी में पहुंच गये।

संत गांव में पधारे। व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सम्पन्न होने के वाद सेठजी खड़े होकर बोले—'मुनिराज! इस चमार के साथ मेरा कई दिनों से वैमनस्य चल रहा था। तनाव यहां तक वढ़ चुका था कि कहीं रास्ते में भी मिलन हो जाता तो हम एक-दूसरे के सामने नहीं देखते। ऐसी स्थिति में भी इसने आज मेरी शान रख ली। यदि आपके आगमन की सूचना पहले मुझे मिली होती तो किसी भी

स्थिति में इसको जानकारी नहीं देता। ढेढ होने पर भी इसमें सेठ के लक्षण हैं और मेरे में ढेढ के लक्षण हैं। अब मैं पिछली सब बातों को भूलकर इसके साथ खमतखामणा करता हूं। अब आगे से हम भाई-भाई की तरह रहेंगे।'

श्रावक मघराजजी सिसोदिया का यह घटना-प्रसंग कितना ही पुराना हो जाये, इससे रायपुर के श्रावक समाज को बराबर पथदर्शन मिलता रहेगा। धर्म और संघ के सामने व्यक्तिगत विचार और आग्रह का कोई मूल्य नहीं रहता, यह बात उक्त घटना से सहज निष्पन्न होती है, जो वर्तमान पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है।

व्यवस्था के नाम पर अव्यवस्था

९ जून को प्रातः आचार्यवर को नाथड़ियास से रायपुर जाना था। आचार्यश्री सीधे जाते तो बहुत जल्दी रायपुर पहुंच जाते। किन्तु रास्ते में दो गांव—मोखमपुरा और संगरेर के लोग आपका रास्ता रोककर खड़े हो गये। उन भोले-भाले देहाती लोगों की श्रद्धासिक्त मनुहार को टालना भी संभव नहीं था। आसमान में सूरज चढ़ रहा था। धूप तेज हो रही थी। पर उन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी जन-भावना। आचार्यवर दोनों गांवों में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुके। गांववासी बिना किसी सूचना के वहां एकत्रित हो गये। आचार्यश्री ने उनको व्यसनमुक्त और रूढ़िमुक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी। आपकी प्रेरणा का इतना प्रभाव हुआ कि कुछ लोगों ने तत्काल बीड़ी के बंडल फेंक दिये, चिलमें तोड़ दीं और जीवन भर तम्बाकू और शराब को न छूने का संकल्प स्वीकार कर लिया।

रायपुर के उच्च माध्यमिक विद्यालय में आचार्यवर के प्रवास की व्यवस्था थी। विद्यालय में टेबल, बेंच और कुर्सियां बहुत थीं, पर काष्ठ-पट्ट नहीं थे। स्थानीय लोगों ने सोचा—काष्टपट्ट के बिना हमारे गांव की शोभा नहीं होगी। गंगापुर निकट ही है। वहां अनेक पट्ट पड़े हैं। वहां से कुछ पट्ट यहां मंगवा लिये जाएं तो काम हो जायेगा। यह चिन्तन कर उन्होंने दो बड़े काष्ठपट्ट मंगवा लिये। व्यवस्था की दृष्टि से आगे पहुंचने वाली साध्वियों ने स्थान देखा। उसकी सफाई की। पट्ट आदि की दृष्टि से उन्होंने पूछताछ की तो एक भाई ने कहा—'हमने अपनी व्यवस्था के लिए मंगवाए हैं।' व्यवस्था के लिए बहुत-सी चीजें मंगवानी पड़ती हैं, पर साधु-साध्वियों के काम आने वाली किसी भी वस्तु को कहीं से भी मंगवाने की परंपरा नहीं है। यदि जानकारी के अभाव में गृहस्थ मंगवा भी ले तो साधु उसे काम में नहीं लेते। काष्ठपट्टों के बारे में पूरी जांच करने पर ज्ञात हुआ कि वे गंगापुर से मंगवाये गये हैं। यद्यपि उतने सुविधाजनक पट्ट गांव में दूसरे नहीं थे। किन्तु विधि का अतिक्रमण करने वाली सुविधा किस काम की? साध्वियों ने

स्कूल की बेंचों को व्यवस्थित कर उन्हें पट्ट का रूप दे दिया, पर मंगवाये हुए पट्ट काम में नहीं लिये। साधु-चर्या की विधि से अपरिचित लोग कई गांवों में व्यवस्था के नाम पर ऐसी अव्यवस्था कर देते हैं। ऐसे प्रसंगों पर साधु-साध्वियों को अधिक जागरूकता और दृढ़ता से अपनी विधि का पालन करना चाहिए।

मैं मिनिस्टर नहीं, शिष्य हूं

रायपुर राजस्थान के शिक्षा मंत्री श्री रामपाल उपाध्याय का निर्वाचन क्षेत्र है। आचार्यवर के रायपुर पदार्पण के कार्यक्रम की सूचना रामपालजी को दिल्ली के एयरोड्रम पर मिली। उन्होंने उसी समय आचार्यप्रवर के स्वागत समारोह में उपस्थित होने की स्वीकृति दे दी। श्री रामपालजी इसी वर्ष ३ अप्रैल को आसीन्द में पहली वार आचार्यश्री से मिले थे। मिलने के वाद उन पर क्या जादू हुआ, कहना कठिन है। अव तो उन्हें सोते-जागते कभी भी आचार्यश्री के दर्शन होते रहते हैं। पिछले दिनों अस्वस्थ हो जाने के कारण उन्हें पांच दिन वम्बई के हॉस्पिटल में रहना पड़ा। उन दिनों उनको प्रतिदिन आचार्यश्री के दर्शन हुए। इससे उनका मनोवल वढ़ा और स्वास्थ्य भी वहुत जल्दी सुधर गया। इस घटना में मूलभूत निमित्त बना उपाध्यायजी के मन का विश्वास। विश्वास की प्रगाढ़ता से आचार्यवर के प्रति उनके मन में इतनी आस्था हो गयी, जितनी पीढ़ियों के श्रावक में होती है।

रायपुर के कार्यक्रम में रामपालजी के लिए मंच पर दरी और गद्दा विछाया हुआ था। वे आए। उन्होंने देखा कि उनके लिए वैठने की अतिरिक्त व्यवस्था की गई है। यह वात उन्हें वहुत अटपटी लगी। उन्होंने मंच से दरी और गद्दा हटाने का संकेत करते हुए कहा—मैं यहां मिनिस्टर नहीं, शिष्य वनकर आया हूं। मैं आचार्यश्री का भक्त हूं। मैं नीचे वैठूंगा। उपाध्यायजी की विनम्रता देखकर सव लोग मुग्ध हो गए।

ऐसा नौजवान कहीं नहीं देखा

मंगल गीत से स्वागत-सभा का कार्यक्रम शुरू हुआ। डॉ० सम्पतमल सिसोदिया के संयोजकीय वक्तव्य के वाद राजस्थान के शिक्षा मंत्री श्री रामपाल उपाध्याय ने आचार्यश्री के प्रति असीम आस्था व्यक्त करते हुए कहा—रायपुर की ऊवड़-खावड़ भूमि में आचार्य तुलसीजी के दर्शन पा मैं कितना आनन्दित और उल्लसित हूं, शब्दों में वता नहीं सकता। आज की इस जन-सभा में न जाने कितने गांवों के लोग आए हैं। मुझे ऐसा लगता है कि आज सवका भाग्योदय हो चुका है।

अन्यथा ऐसे महान सन्तों का सान्निध्य कहां मिलता है? मैं दिल्ली, हैदरावाद, सिकन्दरावाद, उदयपुर आदि क्षेत्रों में अनेक लोगों से मिला। उन सवके मुंह पर आचार्यश्री का नाम सुनने को मिला। उदयपुर में पंजाव के कुछ लोग मिले। उनके मन में भी आचार्यजी के प्रति वहुत ऊंची भावना है। सव लोग ऐसा महसूस करते हैं कि आने वाले युग की समस्याओं को किसी ने समझा है तो आचार्यश्री ने समझा है। आने वाले जमाने को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में किसी ने समझा है तो आचार्यश्री ने समझा है। आचार्यश्री देश की सव अपेक्षाओं को समझ कर उसकी पूर्ति कर रहे हैं। आज पंजाव की जो समस्या है, वह हिंसा और आतंकवाद की उलझी हुई समस्या है। समय का तकाजा है कि आचार्यश्री उस समस्या को निपटाने के लिए आगे आएं। आचार्यश्री के हाथ से वहुत अच्छे काम हुए हैं और वहुत अच्छे होने हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आत्मा देश और विदेश में सव जगह है। आपके नाम मात्र से लोगों को ताकत मिलती है। आपने अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का जो तत्त्व दिया है, वह युग की आवश्यकता है।

शिक्षा मंत्री आचार्यश्री के सम्वन्ध में वोलते-वोलते कुछ अधिक ही भावविभोर हो गए। भक्ति रस से भीगे हुए उनके वोल श्रोताओं को भी आह्लादित कर रहे थे। आचार्यश्री के अन्तरंग व्यक्तित्व का विश्लेपण करते-करते वे वाह्य व्यक्तित्व का स्पर्श किए बिना भी नहीं रहे। उन्होंने अपने वक्तव्य में आगे कहा—मुझे पता नहीं आचार्यश्री की उम्र क्या है? पर मैंने ऐसा नौजवान कहीं नहीं देखा। आपका दिल युवा है, दिमाग युवा है और चिन्तन भी युवा है। इसीलिए आप संसार को इतनी स्वस्थ परम्पराएं दे रहे हैं। इन परम्पराओं के माध्यम से आपने मानव संस्कृति का जो स्थायी निर्माण किया है, मैं तो उसके प्रति पूरी तरह से समर्पित हो गया हूं।

तेज का कारण त्यागमय जीवन

युवाचार्यश्री ने अपने मंगल प्रवचन में कहा—आचार्य भिक्षु ने धर्म की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा—त्याग धर्म है, भोग अधर्म है। यह संक्षिप्त परिभाषा धर्म की हजार परिभाषाओं के बीच शाश्वत सत्य को उजागर करने वाली है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने सत्य को अनावृत करते हुए त्याग को ही शाश्वत सत्य के रूप में निरूपित किया। आचार्यश्री आज उसी दर्शन को वैचारिक और प्रायोगिक रूप से जनता के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। आचार्यवर के जीवन में जो ओज, तेज, उत्साह तथा स्फूर्ति है, उन सबका एक मात्र कारण है आपका त्यागमय जीवन। विचारों का वार्धक्य, शरीर का बुढ़ापा, निराशा और निरुत्साह—ये सब भोगी के जीवन में बहुत जल्दी आते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि आज

धर्म के क्षेत्र में भी भोग को मूल्य दिया जा रहा है और त्याग का मूल्य कम हो रहा है। आचार्यश्री अपनी यात्राओं के बीच जिन-जिन गांवों और शहरों में जाते हैं, वहां की जनता को त्यागमयी संस्कृति से परिचित कराते हैं और त्यागमय जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

मेरा मन पसीज उठता है

आचार्यप्रवर ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—भीलवाड़ा से विहार करने के बाद हम छोटे-छोटे गांवों में घूम रहे हैं। ऐसे गांवों में जहां यातायात की पूरी सुविधा नहीं है। आधुनिक शहरी सुविधाओं के होने का प्रश्न ही नहीं है, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद आदि शहरों से आने वाले श्रावकों को यहां आना काफी असुविधाजनक लगता है पर हमें तो अभी गांवों में बहुत रहना है। जब मैं इन भोले-भाले, सहज, निश्छल और फटेहाल ग्रामीणों को देखता हूं तो मेरा मन पसीज उठता है। यह लोग सही मार्ग-दर्शक के अभाव में अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं। ये कड़ी मेहनत करके पैसा कमाते हैं, पर शराब धूम्रपान, ओसर-मोसर आदि में सब कुछ गंवा बैठते हैं। इन्हें जब व्यसनों और रूढ़ियों के दुष्परिणामों के प्रति सचेत किया जाता है तो ये बहुत जल्दी समझ जाते हैं। हमारे उद्देश्यों का इन पर आशातीत असर हो रहा है। हमारी इस मेवाड़ यात्रा में कई गांव अणुव्रती ग्राम बने हैं। अणुव्रत ग्राम की कुछ कसौटियां ये हैं—

- समूचे ग्राम में कम-से-कम पचहत्तर प्रतिशत व्यक्ति शराब के व्यसन से मुक्त हों।
- गांव का कोई भी विवाद कोर्ट-कचहरी में न जाए। पारस्परिक विचार-विमर्श से विवादों को निपटाया जाए।
- प्रत्येक व्यक्ति एक सीमा तक स्वावलम्बी हो।

रायपुर के लोग भी इस बात की ओर ध्यान केन्द्रित करें, हमारे स्वागत और अभिनन्दन में अपनी-अपनी बुराइयों की भेंट चाढ़ाएं तो उनका जीवन हल्का और आनन्दमय बन सकता है।

आचार्यश्री प्रवचन कर रहे थे और श्रोता लोग तन्मय होकर सुन रहे थे। वक्ता और श्रोताओं के बीच ऐसा तादात्म्य जुड़ा कि किसी को काल का बोध ही नहीं हुआ। वक्ता थके नहीं और श्रोता ऊबे नहीं। फिर भी समय काफी हो चुका था, इसलिए प्रवचन पूरा करना पड़ा। श्रोता लोग अतृप्त मन से उठे। वे अपने घरों को लौट रहे थे, पर मन प्रवचन-पंडाल में ही छूट रहा था। उस दिन मध्याह्न और रात्रिकालीन कार्यक्रमों में भी जनता ने विशेष उत्सुकता के साथ संतों और

आचार्यवर को सुना।

१० जून को प्रातः आचार्यश्री को 'बोराणा' जाना था। किन्तु रायपुरवासियों का अनुरोध बहुत प्रबल था। शिक्षा मंत्री ने भी बार-बार प्रार्थना की थी कि रायपुर को कुछ समय और मिलना चाहिए। आचार्यवर ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर उस दिन मध्याह्न तक रायपुर में रहने की स्वीकृति दे दी। युवाचार्यश्री प्रातःकाल ही वहां से प्रस्थान कर बोराणा पधार गए। वहां की जनता ने आपका भावभीना स्वागत किया और प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया। आचार्यश्री ने मध्याह्न में चार कि० मी० चलकर अपराह्न में बोराणा पहुंचे। राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में प्रवास की व्यवस्था थी। तीन हजार की आबादी वाले गांव में तेरापंथी परिवार बहुत कम हैं। फिर भी प्रवचन के समय जनता की उपस्थिति देखकर ऐसा लग रहा था मानो सभी गांववासियों के मन में श्रद्धा, जिज्ञासा और शुश्रूषा के भाव हैं। आचार्यवर के प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति व्यसन मुक्त बने।

एक दिन में तीन गांव

रायपुर तहसील का छोटा-सा गांव बागोलिया आचार्यश्री भारीमालजी के युग में तेरापंथ से प्रभावित हुआ। वह प्रभाव अब तक भी निरन्तर प्रवर्द्धमान है। यद्यपि वहां तेरापंथी परिवार पांच-सात से अधिक नहीं हैं, फिर भी पूरे गांव के लोगों ने श्रद्धासिक्त भावों से आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को तेरापंथ धर्म की गतिविधियों का परिचय दिया। एक आचार्य के नेतृत्व में संघ में चल रही बहुमुखी प्रवृत्तियों की जानकारी पाकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के कुछ सूत्र भी दिए। व्यसनमुक्ति की प्रेरणा पाकर कई लोगों ने मद्य-मांस खाने का परित्याग किया। स्थानीय सरपंच श्री लालूरामजी कुमावत और करेड़ा थाने के पुलिसकर्मी श्री अम्बालालजी ने भी शराब और मांस के त्याग किए।

बोराणा से बागोलिया आते समय मार्ग में आचार्यश्री ने धूलखेड़ा और बाड़ी नामक दो छोटे-छोटे गांवों का स्पर्श किया। बाड़ी के ठाकुर साहब ने आचार्यप्रवर को रावले में पधारने का अनुरोध किया। आचार्यश्री ने वहां पधारकर ठाकुर साहब के पूरे परिवार को धर्मोपदेश दिया। वहां से लौटते समय आपने ठाकुर साहब को एक संकल्प स्वीकार करने की प्रेरणा दी। ठाकुर साहब आचार्यश्री की कृपा से पहले ही द्रवित हो रहे थे। अब तो वे अभिभूत-से हो गए। एक क्षण सोचने के बाद उन्होंने जीवन भर शराब न पीने का संकल्प कर लिया। यह

प्रसंग ११ जून का है।

साध्वियों के लिए स्वर्णिम युग

११ जून को मध्याह्न में आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी हुई। आचार्यवर ने साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा—हमारे आगम साहित्य में पांच शब्द आते हैं—प्रतिक्रमण, आलोचना, निन्दा, गर्हा और संवर। प्रतिक्रमण का अर्थ है दोष से निवृत्त होना। आलोचना का अर्थ है गुरु को सही स्थिति निवेदन करना। अपनी भूल का आत्मसाक्षी से पश्चात्ताप करना निन्दा है। गुरु साक्षी से पश्चात्ताप करना गर्हा है और किए हुए प्रमाद को पुन: न करने का संकल्प स्वीकार करने का नाम संवर है। यहां संवर का जो अर्थ स्वीकार किया गया है, उसकी पुष्टि दशवैकालिक सूत्र से भी होती है—

से जाणमजाणं वा कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं वीयं तं न समायरे॥

—किसी मुनि ने जानवूझकर या अनजान में किसी प्रकार का अधर्माचरण कर लिया वह अविलम्ब उससे अपनी आत्मा को संवृत कर ले, दूसरी वार उस प्रमाद का आचरण न करे।

साध्वियां पूरे मनोयोग से आचार्यवर के शिक्षामय अमृत प्रवचनों का पान कर रही थीं। गुरुकुलवास में रहने वाले साधु-साध्वियों का सवसे वड़ा सौभाग्य तो यही है कि उन्हें वार-वार मार्गदर्शन उपलव्ध होता रहता है। आचार्यवर ने साधुत्व की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आगे कहा—हम साधु हैं, इस वात को सदा ध्यान में रखने की अपेक्षा है। साधुत्व की सतत् स्मृति रहने से ही उसमें नया निखार आ सकता है। गृहस्थ लोग सामायिक करते हैं। सामायिक का एक अतिचार है—'सामाइयस्स सई अकरणयाए' सामायिक की विस्मृति। इसी प्रकार साधुत्व की विस्मृति भी अतिचार है। साधु के लिए स्वाध्याय, ध्यान, जीप आदि करने का जो प्रावधान है, उसका उद्देश्य साधुत्व की अविस्मृति है। प्रत्येक साधु-साध्वी को आहार, विहार, गोचर, स्वाध्याय, विश्राम आदि प्रत्येक क्रिया में साधुत्व की स्मृति रहनी चाहिए। साधुत्व की स्मृति हो तो साधु की हर क्रिया धर्म है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लिखा है—'सव्वो वि धम्मवावारो मोक्खेण जोयणाओ जोगो' साधक को मोक्ष के साथ जोड़ने वाली हर प्रवृत्ति धर्म है।

साधु वनना ही जीवन के उद्देश्य की परिसमाप्ति नहीं है। साधु वनने के वाद साधुत्व के आनन्द का अनुभव होता रहे, कुछ-न-कुछ अपूर्व को प्राप्त करने का लक्ष्य सामने रहे और समय का पूरा उपयोग होता रहे तो साधुत्व की पूरी सार्थकता है।

उस दिन लगभग एक घंटा का पूरा समय आचार्यवर ने साध्वियों को दिया। कई साध्वियों को ध्यान, स्वाध्याय की विशेष प्रेरणा दी। कई साध्वियों से आगम पद्यों का अर्थ पूछा। उसी क्रम में दशवैकालिक चूलिका का पद्य—

अणुसोयपट्ठिए बहुजणंमि,
पडिसोयलद्धलक्खेणं।
पडिसोयमेवअप्पा,
दायव्वो होउकामेण ॥

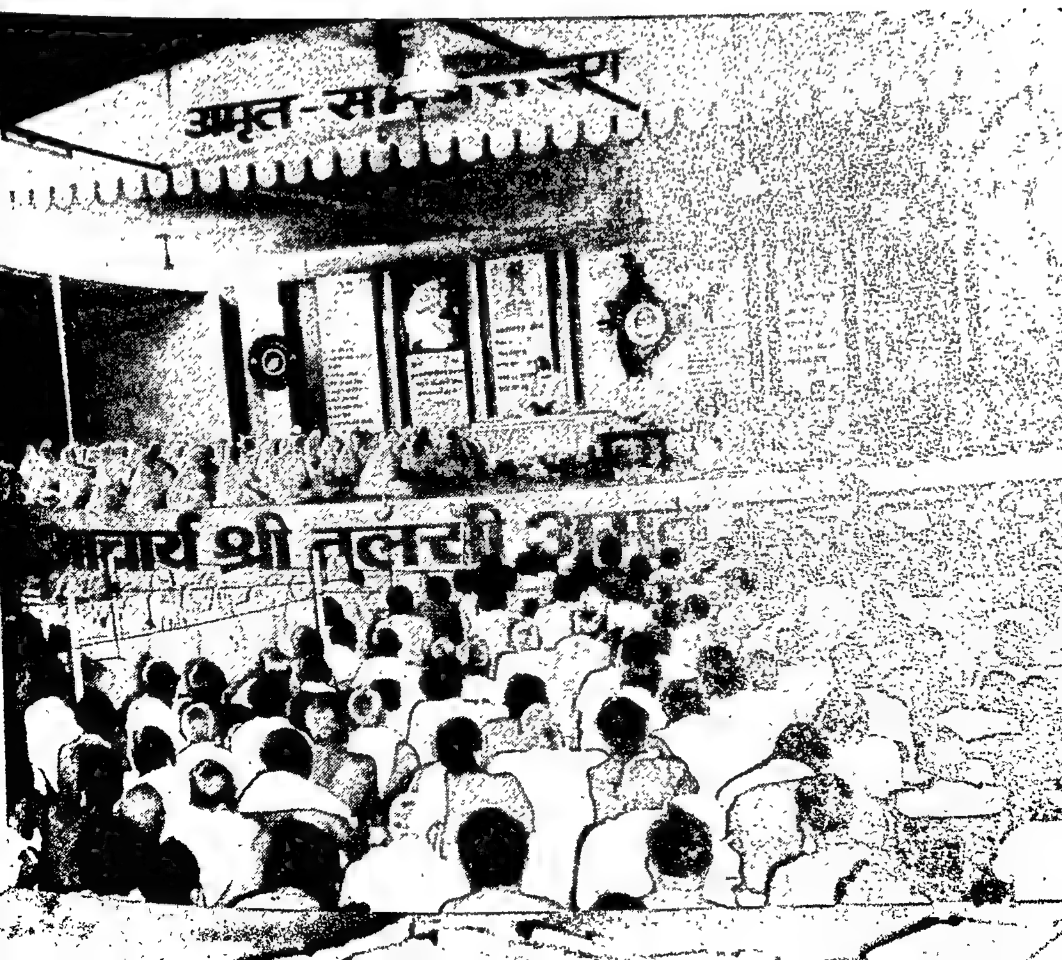
—संसार के अधिक लोग अनुश्रोत में प्रस्थान कर चुके हैं। लेकिन जो व्यक्ति कुछ होना चाहते हैं, उन्हें अपनी आत्मा को प्रतिश्रोत में ही नियोजित करना चाहिए। क्योंकि उन्हें प्रतिश्रोत में बहने का, इन्द्रिय विजय करने का लक्ष्य प्राप्त हो गया है।

आचार्यश्री ने अपने युग में साध्वियों के बहुमुखी विकास की दृष्टि से जितने प्रयोग किए हैं, वे सब अभूतपूर्व हैं। आपने साध्वियों की मानसिक और बौद्धिक क्षमता बढ़ाने के साथ-साथ उन्हें काम करने का पर्याप्त अवसर दिया है। एक ओर अध्ययन-अध्यापन का व्यवस्थित क्रम, दूसरी ओर सुदूर प्रदेशों की लम्बी यात्राएं। इधर साहित्य लेखन का वातावरण। उधर वक्तृत्व का विकास। कुल मिलाकर साध्वी समाज के रूप में उल्लेखनीय निखार आया है। यद्यपि विकास की मंजिल अब भी बहुत दूर है। साध्वी समाज के बारे में आचार्यश्री के जो नित नये सपने हैं, उन्हें आकार देने के लिए साध्वियों को क्षण-क्षण जागरूक भाव से अपने पुरुषार्थ का उपयोग करना है। आचार्यश्री का युग साध्वी समाज के लिए स्वर्णिम युग है। अपेक्षा है साध्वियां इस समय का लाभ उठाकर अपने बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व का अच्छे ढंग से निर्माण करें।

राजाजी का करेड़ा जनता का करेड़ा बन गया

१२ जून को प्रातः आचार्यश्री ने बागोलिया से राजाजी का करेड़ा के लिए प्रस्थान किया। रास्ता बहुत लम्बा नहीं था। जब-जब विहार छोटा होता है, आचार्यश्री की गति में मन्दता आ जाती है। वैसे आपकी गति में अब भी स्फुरणा है। अनेक युवक अनुभव करते हैं कि आपके साथ चलना मुश्किल है। पर जैसा कि आप प्रायः कहते रहते हैं— लक्ष्य बड़ा हो तो व्यक्ति का चिन्तन और क्रिया-कलाप भी व्यापक हो जाता है। जब कभी विहार लम्बा होता है, आप अनुमानित समय से पहले ही मंजिल तक पहुंच जाते हैं। छोटे विहारों में क्रम उलट जाता है। करेड़ा पधारने के दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। छह कि०मी० का रास्ता तय करने में दो घंटा समय लग गया। उधर गांव के सभी वर्गों के लोग उत्साहित मन से

आमेट में अमृत-समवसरण





आमेट में संत लोंगोवाल
और आचार्य तुलसी

आमेट में तत्कालीन गृहमंत्री
श्री शंकर राव चव्हाण आचार्यश्री के साथ





आमेट में संत लोंगोवाल संकल्प-
पत्र अमृत-कलश में डालते हुए



गंगापुर-प्रवेश

गंगापुर में अमृत-पद-यात्रा
के प्रस्थान का एक दृश्य



अमृत-कलश





साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक अमृत-कलश
का निरीक्षण करते हुए आचार्यश्री तुलसी

साध्वियों द्वारा निर्मित अमृत-कलश





अमृत-समवसरण में आचार्यश्री, युवाचार्यश्री

दूधालेश्वर महादेव में आचार्यश्री तुलसी



मेवाड़ की ओर बढ़ते कदम



महिला-सम्मेलन का एक दृश्य



उदयपुर के जिलाधीश श्री धर्मवीर से वार्तालाप





केश-लुंचन का एक दृश्य

श्री रामपाल उपाध्याय (शिक्षामंत्री)
आचार्यश्री तुलसी से बात करते हुए





टाडगढ़ पधारते समय रास्ते का एक दृश्य

दूधालेश्वर जाते हुए झालरा गांव का एक दृश्य



आसीन्द में आचार्यश्री तुलसी



आसीन्द में महावीर जयन्ती का एक दृश्य





'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' की भूतपूर्व संपादिका श्रीमती शीला झुनझुनवाला का स्वागत करते हुए अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल की अध्यक्ष श्रीमती सज्जनदेवी चौपड़ा



श्री जैन श्वे० तेरा० सभा, पुर द्वारा अभिनंदन-पत्र-समर्पण





उसी रास्ते से आगे बढ़ रहे थे, जिधर से आचार्यश्री आने वाले थे। गांव का एक मोची अपनी दुकान वन्द कर आचार्यश्री की अगवानी में जाने के लिए तैयार हो रहा था। तभी उसका कोई साथी वहां पहुंच गया। वह बोला—आज सुवह-सुवह धंधा छोड़कर कहां जा रहे हो? मोची ने उत्तर दिया—भाई! धंधा जिन्दगी भर करते रहेंगे। आज तो गांव में वहुत बड़े सन्त आ रहे हैं। सुना है कि उनके दर्शन करने मात्र से आदमी का दुःख दारिद्र्य दूर भाग जाता है। मैं तो आज उनके दर्शन करूंगा और उपदेश सुनूंगा।

करेड़ा में आचार्यश्री का प्रवास राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में हुआ। आचार्यश्री पधारे और स्कूल के प्रांगण में वना विशाल प्रवचन-पंडाल खचाखच भर गया। अठारह हजार की आवादी वाले करेड़ा के सारे लोग उपस्थित हो जाते तो भी पंडाल पूरा नहीं भर सकता था। तेरापंथी परिवार तो वहां मात्र इकतालीस हैं।

जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि आसपास के अनेक गांवों से सैकड़ों-सैकड़ों लोग आचार्यश्री का नाम सुनकर वहां आ गए थे। आने वाले सव जैनी या तेरापंथी ही थे, यह वात भी नहीं थी। आजकल आचार्यश्री के प्रवचन सभाओं में उनके अनुयायी, समर्थक या प्रशंसक ही नहीं आते, जनता जनार्दन की उपस्थिति होती है। आचार्यश्री भी अपने प्रवचनों में साम्प्रदायिक या वैयक्तिक वात न कह कर व्यापक रूप में धर्म की चर्चा करते हैं। विशाल जन-समूह की उपस्थिति का एक कारण यह भी है।

स्वागत कार्यक्रम का शुभारम्भ स्थानीय कन्या मण्डल की कन्याओं के भावपूर्ण गीत से हुआ। तेरापंथी सभा के मंत्री ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा, उसे सभा के अध्यक्ष ने आचार्यवर को भेंट किया। करेड़ा के सरपंच श्री भैरूंलाल मेरतवाल, स्थानीय कवि श्री मेहरचन्द पटवारी, विधायक श्री विहारीलालजी पारीक, स्थानीय स्कूल के प्रधानाध्यापक आदि अनेक लोगों ने आचार्यश्री का भाव-भीना स्वागत किया। आचार्यवर ने स्वागत के उत्तर में बोलते हुए कहा—यह करेड़ा राजाजी का करेड़ा कहलाता है। आज लगता है कि यह जनता का करेड़ा वन गया है। गत रविवार को रायपुर में वड़ी संख्या में लोगों का आगमन हुआ। आज तो उससे भी अधिक लोग आए हैं। इससे यह वात स्पष्ट होती है कि जनता के मन में धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। धर्म की चर्चा करते-करते हम आज यहां आए हैं। इस युग में धर्म और मजहव को आधुनिक सन्दर्भों में व्याख्यायित करने का अवसर हमें मिला है। धर्म और महजव एक नहीं, दो हैं। दोनों का अलग-अलग अस्तित्व है। मजहव संकीर्ण होता है, किन्तु धर्म निस्सीम होता है। मैं सदा सम्प्रदायातीत धर्म की वात कहता हूं, जिसे लोग बड़े ध्यान से सुनते हैं और उस पर मनन भी करते हैं। जनता की आस्था आज भी जीवित है,

आवश्यकता है कि उसको सही रास्ता दिखाया जाए।

आचार्यश्री ने अपने पूरे प्रवचन में धर्म की व्याख्या जिस शैली में की, लोग उसे सुनते-सुनते अघाए नहीं। पहली वार धर्म और मजहव को इतना अलग-अलग समझने का अवसर मिला था। वे चाहते थे कि आचार्यश्री वोलते रहें, पर समय को वांधकर रखना संभव नहीं था। फिर आचार्यवर वहां दो-तीन दिन ठहरने वाले थे। एक ही दिन में सब कुछ वताना संभव भी नहीं था। इसलिए लोगों की अतृप्त आकांक्षाओं को अगले सत्रों में तृप्त करने का आश्वासन देकर आचार्यवर ने मंगल मंत्र सुना दिया।

करेड़ा आने से पहले वहां दो ही दिन ठहरने का कार्यक्रम था। स्थानीय लोगों की श्रद्धा, भक्ति, जिज्ञासा और उत्सुकता ने आचार्यवर के मन को प्रभावित किया और वहां दो दिन के तीन दिन हो गए। तीनों ही दिन प्रातः, मध्याह्न और रात्रि के कार्यक्रमों से पूरे गांव में अच्छी चहल-पहल रही। उन दिनों कई व्यक्तियों की मनःस्थिति इतनी विचित्र हो गई थी कि घरों या दुकानों में रहना उनके लिए वहुत कठिन हो रहा था। आवश्यकतावश उन्हें सव कुछ करना पड़ता था, पर उनकी इच्छा रहती थी कि आचार्यश्री का सहज प्राप्त सान्निध्य छोड़कर वे इधर-उधर कहीं भी न जाएं। आचार्यप्रवर ने भी स्थानीय जनता की जिज्ञासाओं को देखते हुए उसे पूरा समय दिया।

दूसरे दिन रात्रिकालीन कार्यक्रम साध्वियों का रखा गया। साध्वियां गांव में कालूरामजी मेरतवाल के मकान में ठहरी हुई थीं। मकान के पीछे की ओर वाजार में काफी स्थान था। वहां कार्यक्रम था। कार्यक्रम की सूचना सुनकर स्थानीय थानेदार आदि ने कार्यकर्ताओं से कहा—आपको यहां कार्यक्रम रखना था तो पहले हमें सूचना देनी थी। कार्यकर्ताओं में वहां के युवा सरपंच श्री भैरूलाल भी थे। वे वोले—थानेदार साहव ! हमारा कार्यक्रम पन्द्रह दिन पहले से निर्धारित है। आज अचाकन कोई कार्यक्रम नहीं बना है। दूसरी वात, हमारे कार्यक्रमों पर कोई प्रतिवन्ध भी नहीं है। जिन पर प्रतिवन्ध है, उन्हें कहना चाहिए।

कुछ समय वाद सरपंच महोदय को डी० एस० पी० ने वुलाया तो वे वोले—मैं भी आठ हजार लोगों का प्रतिनिधि हूं। उन्हें कुछ कहना है तो वे स्वयं यहां आ जाएं। मैं इस रूप में कहीं नहीं जाऊंगा। स्थिति कुछ तनावपूर्ण-सी लग रही थी, फिर भी उन्होंने निर्णय ले लिया कि गांव में साध्वियों का कार्यक्रम होगा और सारी व्यवस्था युवक वन्धु संभालेंगे। समाज के सभी युवक पूरी तरह से जागरूक थे। दरियां विछाना, लोगों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था करना आदि सव कामों के सम्पादन में युवक संलग्न थे। स्थान वहां कुछ कम था फिर भी वहां ड्यूटी पर तैनात युवकों ने ग्यारह वजे तक खड़े रहकर लोगों के वैठने की व्यवस्था की। इन वर्षों में मेवाड़ में प्रायः युवक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो

गए हैं। कुछ युवकों ने शिक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति की है। पर शिक्षा और सम्पन्नता का अहं उनमें नहीं है। उनके खान-पान और रहन-सहन में तथाकथित रईसी भी परिलक्षित नहीं होती है। धर्म-संघ के प्रति तो उनमें अगाध श्रद्धा है। संघ के किसी भी काम के सामने आने पर प्रायः लोग आगे रहते हैं।

साध्वियों के कार्यक्रम में कविता, वक्तव्य, गीत, मुक्तक आदि सभी विधाओं की प्रस्तुति की गई। कार्यक्रम अच्छा जमा। तीसरे दिन का रात्रिकालीन कार्यक्रम भी वहीं रखा गया। तेरापंथ धर्म-संघ में साध्वियों की शैक्षणिक प्रगति देखकर वहां की जनता को सुखद आश्चर्य हुआ।

जिन : विजेता या ज्ञानी ?

राजाजी का करेड़ा के विद्यालय में आचार्यश्री के सान्निध्य में भगवती सूत्र का सामूहिक वाचन चल रहा था। उस दिन अध्ययन काल में एक शब्द आया 'जिन'। सामान्यतः जिन शब्द का अर्थ किया जाता है—जयतीति जिनः—जो राग और द्वेप के विजेता हैं, वे जिन हैं। पर पिछले कुछ वर्षों से आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री जिन का सम्वन्ध केवल ज्ञान से जोड़ रहे हैं। उस दिन इस शब्द के नये प्रयोग का आधार स्पष्ट करते हुए आपने कहा—हम लोग मंगल पाठ में वोलते हैं—केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।' इधर दर्शन आचार सन्दर्भ में आवश्यक सूत्र का पाठ है—-जिणपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। उपर्युक्त केवलिपण्णत्तं और यह जिणपण्णत्तं शब्द एक ही अर्थ के वोधक हैं। ज्ञान के प्रसंग में जिन शब्द का प्रयोग आगमों में कई स्थानों में मिलता है, जैसे—'तओ जिणा पण्णत्ता-ओहिणाण जिणा, मणपज्जवणाण जिणा, केवलणाण जिणा।'

एक शब्द प्राचीन काल से जिस अर्थ में प्रचलित होता रहा है, उस परम्परा से हटकर नये अर्थ को स्वीकार करने की वात ध्यान में कैसे आई ? साध्वियों के इस प्रश्न पर आचार्यश्री ने कहा—कलकत्ता की यात्रा के समय इलाहावाद में वहां के तत्कालीन मेयर विश्वंभरनाथ पांडे ने इस अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया था। श्री पांडेजी अच्छे विद्वान हैं। उनके वाद उड़ीसा के वर्तमान राज्यपाल एक वार हमसे मिले थे। उन्होंने वताया कि चीन में चिन शब्द का प्रयोग ज्ञानी के अर्थ में होता है। इससे श्रीपांडेजी की वात पुष्ट हो गई। उसके वाद आगमों का काम करते समय उस दृष्टि से ध्यान दिया गया तो हमें भी कुछ ऐसे प्रमाण मिल गए, जिनके आधार पर जिन शब्द का ज्ञान से सम्वन्ध जोड़ने में सुविधा हो गई।

सर्वाधिक आनन्द तब मिला

आचार्यप्रवर के मन में जैन आगमों के प्रति कितनी प्रगाढ़ आस्था है, शब्दों से बताना कठिन है। आगमों के किसी भी ग्रन्थ को आप जितनी बार पढ़ते हैं, उतनी ही बार उसमें अपूर्वता का एहसास होता है। कभी-कभी तो ऐसे रहस्यों का अनावरण हो जाता है, जो मन को अज्ञात पुलकन से भर देते हैं। आगमों के प्रति होने वाली प्रगाढ़ आस्था ने ही आपको आगम सम्पादन जैसे महत्त्वपूर्ण काम के लिए प्रेरित किया। आगम सम्पादन के क्षेत्र में आचार्यश्री ने जिस व्यापक, उदार और असाम्प्रदायिक दृष्टि से काम किया है, उसको सब विद्वानों ने मुक्त भाव से सराहा है। जैन विद्वान और प्रायः सभी सम्प्रदायों के प्रबुद्ध साधु-साध्वियां आप द्वारा सम्पादित आगम ग्रन्थों की सुदीर्घ प्रतीक्षा करते हैं। सन् १६६६ में आचार्यश्री का चातुर्मास बीदासर था। वहां आपकी सन्निधि में द्वादशांगी में प्रथम अंग आयारो का सामूहिक अध्ययन चला। चूर्णि और टीका के साथ मूल पाठ का तलस्पर्शी अध्ययन विद्यार्थी साधु-साध्वियों को भीतर और बाहर दोनों ओर से आलोकित करने वाला था। लगभग बीस-पचीस साधु-साध्वियों ने उस अध्ययन से पढ़ना-लिखना और न जाने क्या-क्या सीखा। साधु-साध्वियों के लिए वह उपक्रम एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में तो था ही, स्वयं आचार्यवर अनेक बार कह चुके हैं कि उनको आगम अध्ययन में सर्वाधिक आनन्द का अनुभव हुआ बीदासर में 'आयारो' पढ़ते समय।

आगमों की चूर्णि, टीका, टबा, भाष्य आदि का अध्ययन ज्ञानवर्धक है। आचार्यश्री स्वयं आगम के व्याख्या ग्रन्थों को पढ़ते हैं और अपने शिष्य-शिष्याओं को उन्हें पढ़ने की प्रेरणा देते हैं। पर आपको विशेष आनन्द मिलता है मूल पाठ के अध्ययन में। मूल पाठ को ठीक से न समझने और सही उच्चारण न करने से उसका अर्थ-बोध कितना दुरूह हो जाता है, इस सम्बन्ध में आचार्यवर ने अपना एक संस्मरण सुनाते हुए कहा—लाडनूं निवासिनी चुन्नीलालजी बैद की पत्नी तत्त्वज्ञ श्राविका थी। उसे अनेक थोकड़े कंठस्थ थे। वह साध्वियों को थोकड़े सिखाती और नये-नये बोल धराती थी। एक बार वह मेरे पास आकर बोली—गुरुदेव! एक बोल पूछना है। मेरी अनुमति पाकर उसने कहा—'धरा अरा जिण केवली'—इस पाठ का क्या अर्थ है? मैंने अपनी स्मृति पर काफी दबाव डाला पर उक्त पाठ का अर्थ समझ में नहीं आया। बहन से पूछा गया कि यह बोल किस थोकड़े में है? वह बोली—या तो गम्मा में है या संजया में और नेठा (नियंठा) में है। उस सन्दर्भ में मैंने भगवती का पाठ देखा। वहां लिखा था—'उप्पण्णणाणदंसणधरा अरहा जिणा केवली'—इस पाठ को देखते ही उस बहन का प्रश्न ध्यान में आ गया। उप्पण्णणाणदंसण... इतने पाठ को अलग करने के

वाद धरा शब्द का कोई अर्थ नहीं निकल सकता। इसी प्रकार अरहा शब्द के स्थान पर अरा शब्द का उच्चारण कोई अर्थ नहीं दे सकता। यह एक छोटा-सा प्रसंग है किन्तु इससे यह बात पूरी तरह स्पष्ट होती है कि आगमों के मूल पाठ को अच्छे ढंग से समझने पर ही उसका सही अर्थ-बोध हो सकता है।

तत्त्वज्ञान शिविर का समापन

तत्त्वज्ञान धार्मिक आस्था की रीढ़ है। तत्त्वज्ञान के अभाव में आस्था का निर्माण और स्थायित्व दोनों काम कठिन है। शिक्षा या व्यवसाय में उलझी हुई युवा-पीढ़ी तत्त्वज्ञान के लिए समय निकाल सके, इसकी संभावना बहुत कम है। जिन युवकों में सहज रुचि हो, वे अलबत्ता कुछ काम कर सकते हैं। किन्तु उस रुचि का जागरण बचपन में करना जरूरी है। अन्यथा अवस्था की परिपक्वता के बाद तत्त्वज्ञान जैसे विषय में अभिरुचि का जागना बहुत मुश्किल है। बच्चों में तत्त्वज्ञान के प्रति आकर्षण और अभिरुचि जागृत करने की दृष्टि से साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक शिविरों का आयोजन काफी उपयोगी हो सकता है। इस दिशा में कुछ अनुभूत प्रयोगों के बाद आचार्यवर ने साधु-साध्वियों को ग्रीष्मावकाश आदि अवसरों पर तत्त्वज्ञान या संस्कार-निर्माण शिवरों में बच्चों को विशेष प्रशिक्षण देने का निर्देश दे दिया। देश भर में अनेक स्थानों पर ऐसे आयोजन होने लगे हैं। आचार्यश्री के सान्निध्य में इस प्रकार के जो उपक्रम होते हैं, वे अधिक उपयोगी और प्रभावी प्रमाणित होते हैं। पिछले महीने पुर में मेवाड़ क्षेत्रीय शिविर आयोजित हुआ था। उसमें छब्बीस गांवों के लगभग एक सौ पैंतीस बच्चे सम्मिलित हुए थे। उस शिविर की सफलता से एक और शिविर लगाने का निर्णय लिया गया। उस निर्णय के अनुसार करेड़ा में ७ जून से बच्चों का सप्त दिवसीय शिविर मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं) के निर्देशन में रखा गया। शिविर संचालन में श्री हस्तीमलजी सेठिया एवं कल्याणमलजी और बच्चों को सिखाने-पढ़ाने में प्राध्यापक श्री माधोलालजी कोठारी ने अपना पूरा समय दिया।

१४ जून को प्रातःकालीन कार्यक्रम में तत्त्वज्ञान शिविर का समापन समारोह था। श्री माधोलालजी ने बच्चों के जीवन-निर्माण में शिविर की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताया। शिविर संचालक श्री हस्तीमलजी सेठिया ने सप्त दिवसीय शिविर का विवरण प्रस्तुत किया। कुछ शिविरार्थी बच्चों ने दहेज, अनुशासन-हीनता आदि ज्वलन्त विषयों पर रोचक परिसंवाद किए। कुछ बच्चों ने शिविर में सीखे गए योगासनों का सभा में प्रदर्शन किया। मुनि सुमेरमलजी ने शिविर कालीन उपलब्धियों की चर्चा करते हुए अभिभावकों से कहा कि वे ऐसे अवसरों से अपने बच्चों को वंचित न रखें। शिविर की परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त

करने वाले बच्चों को स्थानीय तेरापंथी सभा की ओर से पुरस्कृत किया गया।

आचार्यवर ने समापन समारोह में अपना सन्देश देते हुए कहा—जो व्यक्ति श्रुत की आराधना करते हैं, वे श्रुत देव की आराधना करते हैं। यह वाक्य इस तथ्य को प्रकट करता है कि ज्ञान की आराधना बहुत बड़ी बात है। आजकल स्कूलों और कॉलेजों में जो कुछ सिखाया जाता है, वह सन्तोषप्रद और लाभप्रद नहीं है, ऐसी धारणा बन चुकी है। वास्तव में शिक्षा वह है, जो जीवन में अनुशासन, पुरुषार्थ और अप्रमाद का अवतरण कर सके। यह तभी सम्भव है, जब प्रारम्भ से ही बच्चों को संस्कारी बनाने का प्रयत्न हो। स्थिति यह है कि आज बच्चों के निर्माण की चिन्ता स्वयं अभिभावकों को भी नहीं है। उन्हें अर्थपति और उद्योगपति बनने की चिन्ता है, सत्ता में घुसपैठ करने की चिन्ता है, पर बच्चों को संस्कारी बनाने की चिन्ता नहीं है। हमारे यहां अवकाश के दिनों में शिविरों का जो उपक्रम चलाया जा रहा है, उसका एक मात्र उद्देश्य है, भावी पीढ़ी का निर्माण। मैं बच्चों से कहना चाहूंगा कि उन्होंने शिविर में जो कुछ सीखा है, उसे संजोकर रखें और अपने जीवन को अच्छे संस्कारों में ढालें।

आचार्यप्रवर के अमियपगे प्रेरणाप्रद बोलों ने बच्चों के अन्तर्मन का स्पर्श कर लिया। वे वहां से लौटते समय उत्साह, उमंग और नये संकल्पों से भरे हुए थे। काश! उन्हें घर में भी स्वस्थ वातावरण मिले, जिससे वे साप्ताहिक प्रशिक्षण शिविर को जीवन का स्थायी शिविर बना सकें।

असली मेवाड़ घाटियों में

१५ जून को आचार्यश्री आठ कि०मी० चलकर निम्बाहेड़ा पधारे। दो हजार की आबादी वाले गांव में बीस जैन परिवार हैं। लगभग आधे परिवार तेरापंथी हैं और आधे स्थानकवासी हैं। पर किसी के मन में अपने पंथ या सम्प्रदाय का आग्रह नहीं है। आचार्यवर के आगमन से जैन परिवारों में ही नहीं, पूरे गांव में खुशी की लहर दौड़ गई। स्थानीय ठाकुर श्री शिवचरणजी ने गांव की ओर से स्वागत भाषण दिया। सरपंच श्री रामलालजी ने कहा—सन्तों के आगमन से हमारा गांव तीर्थ बन गया है। आचार्यवर ने उपस्थित जन-समूह को सात्विक और सही जीवन जीने की प्रेरणा दी।

मध्याह्न में निम्बाहेड़ा से चार कि०मी० का विहार कर आचार्यश्री चिलेश्वरम् पधारे। चिलेश्वर नाम पर टिप्पणी करते हुए वहां के बुजुर्ग भाइयों ने बताया—ढाई हजार की आबादी वाला यह गांव आठ सौ वर्ष पुराना है। कहा जाता है कि गोरखनाथजी के दो चेले थे। एक चेले ने इस गांव को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। तब से इसका नाम चिलेश्वर हो गया। पन्द्रह जैन परिवारों में चार परिवार

वहां तेरापंथी हैं।

चिलेश्वरम् से आचार्यप्रवर को सरेवड़ी जाना था। रास्ते में एक गांव है 'भीटा'। वहां तेरापंथी परिवार तो एक ही है, पर स्थानकवासी परिवार दस-बारह हैं। उन लोगों के विशेष अनुरोध पर आचार्यश्री वहां लगभग एक घंटा ठहरे। बिना किसी सूचना के लोग एकत्रित हो गए। उनके बीच आपने कुछ समय प्रवचन किया। अनेक व्यक्तियों ने प्रभावित होकर शराब, मांस, तम्बाकू आदि का परित्याग किया।

भीटा से सरेवड़ी जाने के दो रास्ते हैं। एक सड़क का घुमावदार रास्ता, दूसरा सीधा पथरीला रास्ता। आचार्यवर ने सीधे रास्ते से जाने की इच्छा व्यक्त की तो भाइयों ने कहा—गुरुदेव! वह रास्ते में पत्थर बहुत हैं। यह बात सुन आप बोले—असली मेवाड़ के दर्शन तो घाटियों में ही होते हैं। आज सहज रूप में ऐसा मौका मिल रहा है। इसे क्यों छोड़ा जाए? आचार्यश्री चले तो युवक और वृद्ध सभी उसी रास्ते से चलने लगे। सैंकड़ों कदमों की अनुगामिता के साथ पहाड़ी रास्ते पर बढ़ रहे दो चरणों ने वहां के पूरे वातावरण को जीवंत बना दिया।

तब और अब की मानसिकता

१६ जून को प्रातः आचार्यश्री सरेवड़ी पहुंचे। वहां पहुंचते ही पच्चीस वर्ष पहले की स्मृतियां ताजा हो गईं। उस समय की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा—सरेवड़ी ऐसा क्षेत्र है, जहां के लोग सीधे-सादे हैं। प्राचीन समय के लोग रेजा पहनते थे और जोखम (जौ) मोखम (मक्की) खाते थे। यहां की चट्टानें जितनी मजबूत हैं, इन लोगों की श्रद्धा भी उतनी ही मजबूत है। पिछली बार इन क्षेत्रों का स्पर्श करते समय यहां नहीं आकर सीधा कमेड़ी चला गया था। इससे श्रावकों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने आग्रह किया तो मैंने उनको समझाया कि अभी सरेवड़ी आऊंगा तो केवल एक रात ही मिलेगी। बाद में दो दिन का मौका मिल सकता है। यह बात सुन श्रावक बोले—गुरुदेव! क्या पता कौन जीए और कौन मरे? हम तो प्राप्त अवसर को खोना नहीं चाहते। उस समय के श्रावकों में अम्बालालजी आदि प्रमुख थे। हमने उनको जैसे-तैसे समझाकर वहां सध्वीप्रमुखा लाडांजी को भेजा। लाडांजी के सामने श्रावकों ने जो कुछ कहा, उससे उनका दिल द्रवित हो गया। उन्होंने मध्याह्न में दो साध्वियों को कमेड़ी भेजकर सरेवड़ी की सारी स्थिति मेरे सामने रखी। मानसिकता न होने पर भी श्रावकों के अत्यन्त आग्रह के कारण हमें अपराह्न यहां आना पड़ा। आए तब मन में अन्यमनस्कता थी, पर लोगों की भावना, भक्ति और उत्साह को देखकर तबीयत खुश हो गई।

पचीस वर्ष पहले आचार्यश्री सरेवड़ी पधारे थे, उस समय गांव में न तो स्कूल

था और न कोई हुक्का मकान ही। खपरैल की छत और गोबर से लीपे हुए एक छोटे से ओरे में आपका प्रवास हुआ था। अब तो वह स्थान एक दृष्टि से इतिहास का दर्शनीय सामग्री मात्र बनकर रह गया है। इस समय वहां एक से एक बढ़कर पक्की हवेलियां बन गई हैं। साधारण स्थिति के लोग आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न हो गए। गांव से बाहर ऊंची पहाड़ी पर काफी बड़ा स्कूल बन गया है। आचार्यश्री का प्रवास इसी स्कूल में हुआ। स्कूल का स्थान इतना रमणीय है कि वहां जाने के बाद दार्जिलिंग जैसा दृश्य सामने आ जाता है। आचार्यवर के एक दिवसीय प्रवास का स्थानीय लोगों ने पूरा लाभ उठाया। वहां से प्रस्थान करते समय आचार्यश्री ने एक सोरठा कहा—

सरेवड़ी रो सीन, तजतां दिल दोरो हुवै।
ऊंचे गिरि आसीन, सुख स्यूं समय बिताइयो॥

जिस क्षेत्र को छोड़ते समय आचार्यश्री के मन में ऐसी प्रतिक्रिया हो, वह क्षेत्र कितना सौभाग्यशाली है, यह तो कल्पना का ही विषय है।

कीर्तिमान और चमत्कार

हजार-आठ सौ की आबादी वाले सरेवड़ी गांव में तीस परिवार तेरापंथी हैं। सवा दो सौ वर्षों के इतिहास में प्रथम सात आचार्यों का आगमन इस गांव में नहीं हो सका। पूज्य कालूगणी ने वि० सं० १९७२ में पहली बार सरेवड़ी का स्पर्श किया। उसके बाद सं० २०१९ में आचार्यवर के आगमन से क्षेत्र का भाग्य खिल उठा। सं० २०४२ में आचार्यश्री के दूसरी बार आगमन पर गांव का रूप पूरी तरह से बदला हुआ लगा। सरेवड़ी में साधु-साध्वियों का चातुर्मास अभी तक नहीं हो पाया है। जयाचार्य के समय वहां से एक बहन की दीक्षा हुई थी, जिसकी पहचान साध्वी झूमांजी के नाम से हुई। साध्वी झूमांजी वहां के देदोजी चावत की वंशज थीं। उन्होंने छः बार छहमासी तपस्या कर तेरापंथ धर्मसंघ में पहला कीर्तिमान स्थापित किया था।

स्थानीय श्रावकों के अनुसार इस चावत वंश में रूपचन्दजी नाम के श्रावक हुए थे। वे एक दिन सन्तों के स्थान पर सामायिक कर रहे थे। सन्तों ने व्याख्यान शुरू कर दिया। उस समय वहां कोई सर्प प्रकट हुआ। सर्प को देखकर व्याख्यान सुनने वाले लोग उठ गए। सन्त भी खड़े हो गए। रूपचन्दजी अविचल होकर बैठे रहे। कहा जाता है कि वह सर्प जाकर उनकी गोद में बैठ गया। रूपचन्दजी घबराए नहीं। वे शान्त भाव से बोले—कोई भाई-बहन डरे नहीं। सन्त मुनिराज अपना व्याख्यान देते रहें। जो कुछ है, मेरी गोद में है। यह बात सुन सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। सन्तों ने व्याख्यान दिया। व्याख्यान का समय

पूरा हुआ। तब तक रूपचन्दजी का सामायिक का समय भी पूरा हो गया। वे सावधानी से उठे। सर्प उनकी गोद से नीचे उतरकर एक ओर चला गया। वहां उपस्थित लोगों ने एक ऐसा दृश्य देखा, जिसे साक्षात् देखने पर भी उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो पाया।

सिरेकार से सरेवड़ी

सरेवड़ी वारह खेड़ों का गांव है। इस गांव के नामकरण का भी एक इतिहास है। कहा जाता है कि एक वार मेवाड़ के राणा सरूपसिंहजी की पीठ में दीठवण हो गया। किसी अनुभवी वृद्ध व्यक्ति ने वताया कि चौहान वंश का कोई सरदार इसे अपने मुंह से चूसे तो वीमारी दूर हो सकती है। राणा के भानेज ने उसे चूसा तो राणा ठीक हो गए। राणा खुश होकर वोले—कुछ मांगो। उसने यह वारह खेड़ों वाला रावतों का स्थान मांगा। राणा ने उसकी मांग स्वीकार कर ली। वह घूमता-घूमता इस स्थान पर आया। उस समय यहां रावत परिवार की एक वुढ़िया थी। उसने वुढ़िया से कहा—मैं यहां वसना चाहता हूं। कोई स्थान वता। वुढ़िया ने वेटे से कहा—इसे श्मशान में ले जाकर स्थान वता दे। वुढ़िया का वेटा उसे श्मशान में ले गया। एक स्थान पर पैर की ठोकर लगाते हुए वोला—तू अपनी झोंपड़ी यहां वांध ले। उसने वहां भाला गाड़ दिया। धीरे-धीरे उसने अपना मकान वनाया, पास में एक मन्दिर वनाया और नयी आवादी वसा ली। वहां से दो कोस की दूरी पर कालोर गांव से देदोजी चावत को वुलाकर गांव का प्रधान वना दिया। उसके वाद वहां से रावत लोगों के पांव उखड़ गए।

उधर राणा के भानेज चौहान ने राणा के पास पहुंचकर पूरे घटनावृत्त से राणा को अवगत करा दिया। राणा पूरी वात सुनकर वोले—तेरा काम तो सिरेकार हुआ। तव से गांव का नाम सिरेवड़ी हुआ, जो आगे जाकर सरेवड़ी रह गया।

जगदीश मन्दिर

सरेवड़ी से थोड़ी दूर एक देहात है 'रामाजी का खेड़ा'। किसी समय वहां चिलेश्वरम् का एक कुमावत भाई रहता था। वह एक तीर्थयात्रा के लिए निकला। कलकत्ता के पास जगदीश धाम की यात्रा से लौटते समय वह अपने साथ एक मूर्ति उठा लाया। रामाजी का खेड़ा पहुंचकर उसने वृक्ष के नीचे विश्राम किया। सुवह वह मूर्ति वाले छावड़े को उठाने लगा तो छावड़ा उठा नहीं। आखिर उस मूर्ति की वहीं प्रतिष्ठा करवा दी गई। मूर्ति जगदीश से लायी गई थी, इस कारण

उस स्थान का नाम भी जगदीश हो गया।

जगदीश मन्दिर के निर्माण हेतु पत्थर के खम्भे राजनगर से मंगवाए गए। उन खंभों में से एक खम्भे के कोने से एक हीर कणी निकली। कहा जाता है कि वह हीर कणी खंभे से निकलकर उस मूर्ति की ठुड्डी में स्थापित हो गई। खम्भे से कुछ निकला या नहीं, पर वहां लगाए गए एक खम्भे में छेद अवश्य है। वहां का पुजारी उसी छेद से हीरकणी निकलने की बात कहता है। वर्तमान में भी आसपास के गांवों में रहने वाले लोग वहां आते रहते हैं। इसका कारण माना जाता है, वहां घटित होने वाले चमत्कार।

एक किंवदन्ती के अनुसार वहां भोग चढ़ाने के लिए प्रतिदिन चावल पकाए जाते थे। चावल पकाने के बाद हांड़ी टूटकर चार टुकड़ों में बिखर जाती, पर चावल का एक भी दाना नीचे नहीं गिरता था। देवगढ़ निवासी एक मुस्लिम भाई नियाजअली ने यह बात सुनकर अविश्वास प्रकट करते हुए कहा—ऐसा कभी हो नहीं सकता। मेरे सामने तांबे की तपेली में चावल पकाओ। यदि वह भी टूट जाएगी तो मैं मान लूंगा कि यह मन्दिर चामत्कारिक है। तांबे की तपेली भी चार टुकड़ों में बिखर गई, तब कहीं उस भाई को विश्वास हुआ। पर उस दिन के बाद वह चमत्कार ही समाप्त हो गया। वर्तमान में भी वहां प्रति वर्ष श्रावणी अमावस्या के दिन बड़ा मेला लगता है।

कमेरी के लोग भी ऊंचे उठे

१७ जून को आचार्यप्रवर सरेवड़ी से प्रस्थान कर कमेरी पहुंचे। ढाई हजार की आबादी वाले गांव में ग्यारह परिवार तेरापंथी हैं। भिक्षु स्वामी आदि सात आचार्यों का आगमन इस इलाके में नहीं हो सका। सन् १९७१ में कालूगणी के आगमन से पहली बार कमेरी में नया रंग छाया। उसके बाद आचार्यश्री ने छोटे से गांव पर विशेष कृपा की और इन पांच दशकों में गांववासियों को तीसरी बार आचार्यवर के स्वागत का सौभाग्य उपलब्ध हुआ। सभी वर्गों के लोग आपके स्वागत में उपस्थित थे। आपने स्वागत-सभा को सम्बोधित करते हुए कहा—'इस गांव का नाम है कमेरी। इस नाम वाला एक पक्षी भी होता है। जो आकाश में उड़ना जानता है। कमेरी गांव के लोग भी सोचें कि क्या उनमें ऊंचा उठने की क्षमता है? कुछ कर गुजरने का उत्साह है? केवल पंखों या विमान के बल पर ऊंचा उठने से काम नहीं होगा। महत्त्वपूर्ण बात है जीवन को ऊंचा उठाने की। मनुष्य के पास बुद्धि है, सोचने की शक्ति है और काम करने की शक्ति भी है। वह अपने विवेक को जागृत कर विकृतियों से ऊपर उठ जाए, यही उसका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।' आचार्यवर का उद्बोधन सुनकर अनेक लोगों ने अपने जीवन की

एक-दो विकृतियों से ऊपर उठने का संकल्प स्वीकार किया।

कमेरी की जनता चाहती थी कि उसे आचार्यवर का अधिक से अधिक सान्निध्य मिले। कम से कम एक रात्रि का प्रवास वहां आवश्यक भी था। किन्तु पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मध्याह्न में दो कि० मी० चलकर आचार्यवर 'ऊमरी' पहुंच गए। राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में ऊमरी की जनता ने आचार्यवर का भव्य स्वागत किया। दो हजार की आबादी वाले छोटे से गांव में सैंतीस परिवार तेरापंथी हैं। उनकी तथा अन्य स्थानीय लोगों की विशेष प्रार्थना पर आचार्यवर ने दूसरे दिन का प्रातःकालीन प्रवचन भी करना स्वीकार कर लिया।

जैन मुनि वणियों के नहीं, सवके गुरु हैं

१८ जून को मध्याह्न में साढ़े पांच कि० मी० का विहार कर आचार्यश्री कून्दवा पहुंचे। ढाई हजार की आवादी वाला यह गांव किसी समय राठौरी के अधीन था। वाद में चूंड़ावतों के अधिकार में आ गया। कहा जाता है कि रतनसिंहजी चूड़ावत युद्ध में काम आ गए थे। उनकी वीरता से खुश होकर मेवाड़ के राणा ने रतनसिंहजी के पुत्र को यह गांव जागीर में दे दिया।

कून्दवा में आचार्यवर का प्रवास राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में हुआ। रात्रिकालीन कार्यक्रम के वाद स्थानीय लोगों के विशेष अनुरोध पर दूसरे दिन का प्रातःकालीन प्रवचन भी वहीं करने का निर्णय ले लिया गया। इस निर्णय से गांव के सभी लोग वहुत खुश हुए। प्राचीन समय में ग्रामीण लोगों में एक धारणा थी कि जैन संत ओसवालों या वणियों के गुरु हैं। किन्तु आचार्यश्री की व्यापक विचारधारा से संकीर्णता की ऊंची-ऊंची दीवारें ढहकर भूमिसात हो गई हैं। आचार्यवर इस सन्दर्भ में जनता का बार-बार पथदर्शन करते रहते हैं। आप जनता की भाषा में वोलते हैं और जन समस्याओं को ध्यान में रखकर वोलते हैं। इसलिए जन-जन के मन में आपको सुनने की विशेष ललक रहती है। कून्दवा में तेरापंथी परिवार पचीस ही हैं, पर आचार्यवर के प्रवास का लाभ पूरे गांव को मिला।

१९ जून को प्रातः आचार्यवर ने कून्दवा प्रवचन करने की स्वीकृति दे दी। उधर पारड़ीवासी चाहते थे कि उनके गांव में पूरे दिन का कार्यक्रम रहे। दोनों क्षेत्रों के वीच सामंजस्य विठाने के लिए आचार्यवर ने युवाचार्यश्री को १९ जून की सुवह ही पारड़ी पहुंचने का निर्देश दे दिया। युवाचार्यश्री के वहां पहुंच जाने पर प्रातः और मध्याह्न के कार्यक्रम सहज रूप से समायोजित हो गए। आचार्यवर ने मध्याह्न में कून्दवा से चार किलोमीटर का विहार किया। युवाचार्यश्री

की अगवानी में आप पारड़ी पहुंच गए। वहां पहुंचते ही लोगों की सभा जुड़ गई थी। समय कम था, फिर भी लोग जमकर बैठ गए। उन्हें संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने संयमप्रधान जीवन जीने की प्रेरणा दी। आपने यह भी बताया कि आज पारड़ी में एक दिन में चार कार्यक्रम संभव हो सकेंगे, यह गांव के इतिहास में गौरवपूर्ण बात होगी।

रात्रिकालीन कार्यक्रम में गांव वालों का पूरा मजमा लगा। आसपास के गांवों से काफी लोग आचार्यवर को सुनने के लिए आए। सभा में किसान बन्धुओं की उपस्थिति उल्लेखनीय थी। किसानों की उपस्थिति से वहां गांवों का गंवईपन पूरे गौरव के साथ उजागर हो रहा था। उन भोले-भाले और सीधे-सादे किसानों के बीच में बैठकर उनकी बोली में उनके लिए बोलना आचार्यश्री को भी बहुत अच्छा लगा। किसान बन्धु तो आचार्यवर को सुनकर इतने मुग्ध हो गए कि उनके जीवन में वर्षों से डेरा डाले बैठी एक-एक बुराई वहां से निर्वासित होने लगी। दारू और मांस के तो वहां पांव ही नहीं टिके। तम्बाकू छोड़ने वाले भाई भी काफी बड़ी संख्या में थे।

पारड़ी में आचार्यश्री का प्रवास श्री मोहनलालजी इंटोलिया के मकान में था। मोहनलालजी पिछले पांच-सात वर्षों से अफीम खाने लगे थे। उनको बहुत व्यक्तियों ने समझाया, पर वे अफीम नहीं छोड़ सके। आचार्यवर ने इंटोलियाजी को विशेष प्रेरणा दी। उससे उनका मानसिक परिवर्तन हुआ और उन्होंने जीवन भर अफीम खाने का परित्याग कर दिया। रात्रि में प्रवचन के बाद आचार्यवर ने वहां रहने वाले श्रद्धा के चारों परिवारों को विशेष उपासना का अवसर दिया। इससे उन सबके मन पुलक उठे। प्रायः सभी लोगों ने सामायिक, माला, मौन, साहित्यपठन आदि अनेक प्रकार के संकल्प स्वीकार किए।

यात्रा की जटिलता समाप्त

सरेवड़ी, कमेरी, ऊमरी, कून्दवा और पारड़ी—ये पांचों गांव बहुत निकट-निकट बसे हुए हैं। ये गांव देवगढ़मदारिया के चोखले में आते हैं। पचीस वर्ष पहले ये क्षेत्र सब दृष्टियों से साधारण थे। इनकी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक चेतना सुषुप्त-सी थी। इन गांवों तक जाने के लिए सड़कें नहीं थीं। रहने के लिए पक्के मकान तो दूर, खपरैल के झोंपड़े भी पूरे नहीं थे। उस समय का खानपान और रहन-सहन भी मोटा था। इन गांवों में पहुंचना और दीर्घकाल तक रहना इतना अनुकूल नहीं था, फिर भी हमारे आचार्य वहां बराबर साधु-साध्वियों को भेजते थे और हर क्षेत्र की धार्मिक संभाल रखते थे।

इन पांचों गांवों में श्रद्धा के घर हैं। हर गांव में तेरापंथ का वर्चस्व है। कोई

चार-पांच दशक पहले तक यहां रहने वाले अधिकांश लोग खेती करते थे। किसी परिवार का कोई युवक बाहर (सूरत, बम्बई आदि नगरों में) जाकर व्यापार आदि करने की बात भी कर लेता तो वह परिवार आलोचना का पात्र बन जाता था। आस-पड़ोस के लोग उस परिवार पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहते—लगता है कि घर में भुखमरी आ गई, इसलिए लड़के को घर से बाहर भेज रहे हैं। उस समय सामाजिक मानदण्डों का अतिरिक्त मूल्य था। समाज में कोई व्यक्ति किसी के विरोध में मुंह खोल दे, यह उसके लिए जीते-जी मरण होने जैसी बात थी। उस समय तक सामाजिक आलोचना के भय से सामान्यतः बाहर जाकर व्यापार करने की बात पैदा ही नहीं होती थी।

सन् १९६६ में आचार्यश्री ने दक्षिण भारत की यात्रा शुरू की। उस यात्रा में चार वर्ष का समय लगा। उन चार वर्षों में मेवाड़ के अनेक क्षेत्रों से अनेक युवक आचार्यश्री के दर्शन कर दक्षिण के छोटे-बड़े गांवों-शहरों में पहुंचे। वहां व्यवसाय के विकास की संभावनाएं देखकर वे आकृष्ट हुए और हिम्मत करके छोटे-मोटे काम में लग गए। देश और काल की अनुकूलता के कारण उन्हें कल्पना से अधिक सफलता मिली। इससे काम करने वालों का हौंसला बढ़ा और उनके मित्रों-स्वजनों एवं परिचितों में आकर्षण बढ़ा। कुछ ही वर्षों में दृष्टिकोण बदला। मूल्यांकन बदला और युवापीढ़ी के अधिक सदस्य सूरत, बम्बई, पालघर आदि शहरों में जाकर रहने लगे। व्यावसायिक लाभ प्राप्त करके भी अपनी जन्मभूमि से उन सबका गहरा लगाव है। इसलिए प्रायः युवक सुविधा के अनुसार प्रतिवर्ष दो-चार बार मेवाड़ आते हैं और यहां की गतिविधियों, प्रवृत्तियों से भी पूरी तरह जुड़कर रहते हैं।

इधर कुछ वर्षों से मेवाड़ में बाहर और भीतर सब ओर से बदलाव आ गया है। कच्चे झोंपड़ों के स्थान पर बंगलेनुमा मकान बन गए हैं। जौ, मक्की आदि का स्थान गेहूं और चावल ने ले लिया है। शाक-सब्जियों में घी, तेल एवं मिरच-मसालों की प्रभुसत्ता अब टूटती जा रही है। मेवाड़ के विशेष खाद्यपदार्थों—जाझरिया, काली रोटियां, झकोलवा पूड़ियां, डलां की राव, पलेव, मक्की के ढोकले आदि के प्रति भी अब आकर्षण घटता जा रहा है। केवल दालबाटी का भोजन अब भी काफी लोकप्रिय बना हुआ है। घर में मेहमान आए या स्वयं किसी पिकनिक में जाए, दालबाटी तैयार रहती है। वैसे मेवाड़ में दालबाटी बनाने का तरीका भी कोई विलक्षण ही है। देश भर में कहीं भी मेवाड़ जैसी दालबाटी बनती हो, सुनने में नहीं आया। मेवाड़ के लोग जहां-जहां पहुंचे हैं, वहां मेवाड़ की दालबाटी जरूर पहुंच गई। इन वर्षों में शहरों में रहने वाले लोगों ने सुविधा की दृष्टि से बाटी पकाने की परम्परागत शैली को छोड़कर कूकर का उपयोग करना शुरू कर दिया है। पर लोगों का अनुभव है कि कण्डों से पकाई हुई बाटी जैसी बन

पाती है, वैसी कूकर से पकाई हुई नहीं होती। रूप-रंग और स्वाद का अन्तर भी आधुनिक सुविधादायक उपकरणों पर रोक लगाने में समर्थ नहीं है। क्योंकि लोगों की सुविधावादी मानसिकता प्राकृतिक जीवन की अपेक्षा कृत्रिमता से अधिक जुड़ती जा रही है।

लोगों के खान-पान के साथ रहन-सहन में भी काफी परिवर्तन आ गया है। सामाजिक परंपराओं में भी बहुत बदलाव आया है। मृत्यु के उपलक्ष्य में प्रथारूप में वर्षों तक रोना, काले वस्त्र पहनना, घर से बाहर न निकलना आदि रूढ़ियां चरमराकर टूट रही हैं। शादी-विवाह आदि प्रसंगों पर सादगी या जैन संस्कार विधि के प्रयोग की विधि को सार्वजनिक रूप देने में अभी समय लगेगा, फिर भी इन पचीस वर्षों में जो परिवर्तन हुआ है, वह उल्लेखनीय है। परिवर्तन युग की अपेक्षा है। इसे समझकर चलने वाले लोग ही युग के साथ आगे बढ़ सकते हैं।

ठाकुर साहब का सपना साकार हुआ

पारड़ी से एक किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा-सा गांव है डीडवाना। वहां के ठाकुर श्री हरिदानजी किसी समय कुख्यात डाकू थे। ये ब्यावर के पास खरवा रावजी के साथियों में से एक थे। खरवा के रावजी इस रूप में प्रसिद्ध थे कि उनका नाम सुनने मात्र से गर्भवती महिलाओं के गर्भपात हो जाता था, ऐसा कहा जाता है। हरिदानजी वर्षों तक उनके साथी रहे। एक बार उनको देवगढ़ की जेल में बन्द कर दिया गया। वे जेल के सींखचों को हाथ से मोड़-तोड़कर बाहर निकल आए और एक घण्टे में गांव पहुंच गए।

लगभग पचीस वर्ष पहले साध्वी चूनांजी का इस इलाके में विहरण हो रहा था। एक दिन आकस्मिक रूप से हरिदानजी साध्वियों के संपर्क में आ गए। साध्वी पानकुमारी (लाडनूं) के साथ थोड़ी-सी देर बातचीत कर वे प्रभावित हो गए। साध्वियों ने उनको ईमानदारी पूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा दी। ठाकुर साहब का चिन्तन बदला, मन बदला और जीवन बदल गया। वे डकैती छोड़कर सही अर्थ में मनुष्य बन गए। तेरापंथ धर्म-संघ और आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं मिशन के बारे में भी उन्हें विस्तार से समझाया गया। तत्त्व को समझकर उन्होंने सम्यक्त्व दीक्षा स्वीकार कर ली। तब से अब तक वे कई बार साधु-साध्वियों के सान्निध्य से लाभन्वित हो चुके हैं।

पिछले दिनों ठाकुर हरिदानजी को आचार्यप्रवर की मेवाड़ यात्रा की जानकारी मिली। आचार्यश्री उनके गांव के परिसर में बसे गांवों में आएंगे, यह जानकर उन्हें बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने आचार्यवर के दर्शन कर डीडवाना पधारने के लिए अनुरोध किया। एक-दो दिन तक अनुरोध का

दुर्व्यसनों से मुक्त होने का संकल्प स्वीकार किया।

डेढ़ हजार की आवादी वाले वागड़ में तेरह परिवार तेरापंथी हैं। गांव की वसावट चार सौ वर्ष पुरानी मानी जाती है। वहां पहले वागड़ी गूजर रहते थे। मेवाड़ के राणाजी ने ठाकुर मनोहरसिंहजी को वह स्थान वख्सीस में दे दिया। ठाकुर साहव गूजरों की वाड़ी में अपना 'रावला' वनवा लिया। वागड़ी गूजरों की वह वस्ती तव से वागड़ नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

मन की चाह फल गयी

वागड़ निवासी मोहनलालजी ओस्तवाल वम्बई में व्यवसाय करते हैं। निकट के रिश्तेदार भी व्यापार में उनके पार्टनर थे। वारह वर्षों से एक व्यवस्था चल रही थी। दो-तीन वर्षों से उन्होंने काम देखा नहीं। इस अवधि में कुछ अव्यवस्था हो गयी। स्थिति की जानकारी पाकर उन्होंने निपटारा करना चाहा। समय वीतता रहा, पर कोई फैसला नहीं हुआ। आखिर १६ मार्च १९८५ को एक निर्णय हुआ। उसके अनुसार दुकान मोहनलालजी के हिस्से में रही और उन्हें अपने पार्टनर को १६ अप्रैल १९८५ तक ७३ हजार रुपये देने थे। उन्होंने १५ अप्रैल को तीसरे व्यक्ति के माध्यम से उनके पास रुपये भिजवाये। वे रुपये लेने से इनकार हो गये। १७ अप्रैल को जव वे दुकान गये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि ५ अप्रैल को उन पर केस कर दिया गया है। किसी झमेले में उलझने की इच्छा न होने पर भी उन्हें केस में उलझना पड़ा। दिन वीते, महीने वीते, केस का फैसला नहीं हुआ। इधर जून के तीसरे सप्ताह में आचार्यश्री का वागड़ पधारने का कार्यक्रम वना। उस अवसर पर वे वागड़ में रहना चाहते थे। अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु वे वार-वार भिक्षु स्वामी और आचार्यश्री का स्मरण करते हुए सोचते—गुरुदेव मेरे गांव में पधार रहे हैं और मैं यहां वैठा हूं। क्या करूं? कैसे जाऊं? इसी चिन्तन में समय वीतता रहा और उनके मन में एक प्रकार से निराशा-सी छा गई।

१४ जून को रात के वारह-एक वजे के समय मोहनलालजी के विचारों में उथल-पुथल-सी मच गयी। उन्होंने भिक्षु स्वामी और आचार्यप्रवर का स्मरण कर प्रार्थना की—गुरुदेव! मैं आपके दर्शन कव कर पाऊंगा? शोभजी श्रावक ने स्वामीजी का नाम लिया और स्वामीजी ने उनको दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। इतना ही नहीं, उनकी तो वेड़ियां भी टूट गयीं। मैं भी आपका भक्त हूं और आपको सच्चे मन से याद करता हूं। यदि मैं सही हूं तो मेरे गांव में गुरुदेव के दर्शन होने ही चाहिए—इस प्रकार सोचते-सोचते वे सो गये।

१५ जून तक वे वम्वई में अकेले थे। व्यापार और केस—दो-दो जिम्मेवारियां उनके सामने थीं। उन्होंने सोच लिया कि अव वागड़ जाना नहीं होगा। १६ जून

ठाकुर साहब : ओह ! अब मैं समझ गया। गृहस्थ को बेगुनाह जीव को नहीं मारना चाहिए।

आचार्यश्री : गुनहगार को भी नहीं मारें तो बहुत अच्छा है। पर उसका मुकाबला करने में गृहस्थ के व्रत का भंग नहीं होता है।

आभामण्डल का प्रभाव

डीडवाना गांव में आचार्यप्रवर कुछ समय के लिए रुके। गांववासी पहले से ही एकत्रित हो गये थे। आचार्यवर ने उनको प्रतिबोध दिया। स्थानीय लोगों ने पहली बार जीवन निर्माण के लिए उपयोगी बातें सुनीं। उन्हें बहुत अच्छा लगा। अनेक व्यक्तियों ने दारू एवं तम्बाकू का परित्याग किया। ठाकुर हरिदानजी के भाई भी प्रवचन सुनने आये थे। उनके मन पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि उन्होंने बीड़ी का बण्डल तोड़कर फेंक दिया। वे सभा में खड़े होकर बोले—आज से मैं कभी बीड़ी नहीं पीऊंगा और हत्या नहीं करूंगा। ठाकुर साहब के ऐसा कहने पर आचार्यवर ने पूछ लिया—और दारू भी नहीं पीएंगे ? यह सुनकर वे बोले—आचार्यजी ! हत्या छोड़ दी तो दारू किस पर पीएंगे। वह तो अपने आप छूट जाएगी। राजपूतों के लिए बीड़ी-सिगरेट छोड़ना सरल है, पर दारू छोड़ना कठिन है। आचार्यश्री का आभामण्डल ही कुछ इतना उज्ज्वल है कि उसकी परिधि में पहुंचते ही व्यक्ति का मन आन्दोलित हो जाता है। और वह किसी न किसी रूप में अपने जीवन की दिशा को मोड़ देने की बात सोचने लगता है।

डीडवाना के लोगों को प्रतिबोध देकर आचार्यवर बागड़ पहुंचे। समय अधिक होने से धूप काफी चढ़ गयी थी पर वे महापुरुष धूप-छांव को कब देखते हैं, जिनका पूरा जीवन ही मानवता की सेवा के लिए समर्पित होता है। बागड़ में आचार्यवर का प्रवासस्थल विद्यालय था। वहां के ठाकुर मूलसिंहजी के विशेष अनुरोध पर स्वागत का कार्यक्रम रावले में रखा गया। ठाकुर साहब ने स्वागत-सभा में अपने विचार भी रखे। श्री मोहनलालजी ओस्तवाल ने गांव की ओर से आचार्यवर का अभिनन्दन किया।

अभिनन्दन का उत्तर देते हुए आचार्यवर ने कहा—आज से लगभग पचीस वर्ष पहले हम बागड़ आये थे। उस समय हमने एक दिन में चार गांवों का स्पर्श किया था। इसलिए यहां रात को नहीं रह पाये थे। इस बार हमें रात को भी यहीं रहना है।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में समय का मूल्यांकन करने की प्रेरणा दी। समय की सार्थकता के लिए जीवन को व्यसनमुक्त बनाना भी जरूरी है, यह बात सुनकर अनेक व्यक्तियों ने शराब, मांस, बीड़ी, सिगरेट, अफीम आदि

दुर्व्यसनों से मुक्त होने का संकल्प स्वीकार किया।

डेढ़ हजार की आवादी वाले वागड़ में तेरह परिवार तेरापंथी हैं। गांव की वसावट चार सौ वर्ष पुरानी मानी जाती है। वहां पहले वागड़ी गूजर रहते थे। मेवाड़ के राणाजी ने ठाकुर मनोहरसिंहजी को वह स्थान वख्सीस में दे दिया। ठाकुर साहव गूजरों की वाड़ी में अपना 'रावला' वनवा लिया। वागड़ी गूजरों की वह वस्ती तव से वागड़ नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

मन की चाह फल गयी

वागड़ निवासी मोहनलालजी ओस्तवाल वम्वई में व्यवसाय करते हैं। निकट के रिश्तेदार भी व्यापार में उनके पार्टनर थे। वारह वर्षों से एक व्यवस्था चल रही थी। दो-तीन वर्षों से उन्होंने काम देखा नहीं। इस अवधि में कुछ अव्यवस्था हो गयी। स्थिति की जानकारी पाकर उन्होंने निपटारा करना चाहा। समय वीतता रहा, पर कोई फैसला नहीं हुआ। आखिर १६ मार्च १९८५ को एक निर्णय हुआ। उसके अनुसार दुकान मोहनलालजी के हिस्से में रही और उन्हें अपने पार्टनर को १६ अप्रैल १९८५ तक ७३ हजार रुपये देने थे। उन्होंने १५ अप्रैल को तीसरे व्यक्ति के माध्यम से उनके पास रुपये भिजवाये। वे रुपये लेने से इनकार हो गये। १७ अप्रैल को जव वे दुकान गये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि ५ अप्रैल को उन पर केस कर दिया गया है। किसी झमेले में उलझने की इच्छा न होने पर भी उन्हें केस में उलझना पड़ा। दिन वीते, महीने वीते, केस का फैसला नहीं हुआ। इधर जून के तीसरे सप्ताह में आचार्यश्री का वागड़ पधारने का कार्यक्रम बना। उस अवसर पर वे वागड़ में रहना चाहते थे। अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु वे वार-वार भिक्षु स्वामी और आचार्यश्री का स्मरण करते हुए सोचते—गुरुदेव मेरे गांव में पधार रहे हैं और मैं यहां वैठा हूं। क्या करूं? कैसे जाऊं? इसी चिन्तन में समय वीतता रहा और उनके मन में एक प्रकार से निराशा-सी छा गई।

१४ जून को रात के वारह-एक वजे के समय मोहनलालजी के विचारों में उथल-पुथल-सी मच गयी। उन्होंने भिक्षु स्वामी और आचार्यप्रवर का स्मरण कर प्रार्थना की—गुरुदेव! मैं आपके दर्शन कव कर पाऊंगा? शोभजी श्रावक ने स्वामीजी का नाम लिया और स्वामीजी ने उनको दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। इतना ही नहीं, उनकी तो वेड़ियां भी टूट गयीं। मैं भी आपका भक्त हूं और आपको सच्चे मन से याद करता हूं। यदि मैं सही हूं तो मेरे गांव में गुरुदेव के दर्शन होने ही चाहिए—इस प्रकार सोचते-सोचते वे सो गये।

१५ जून तक वे वम्वई में अकेले थे। व्यापार और केस—दो-दो जिम्मेवारियां उनके सामने थीं। उन्होंने सोच लिया कि अव वागड़ जाना नहीं होगा। १६ जून

को अचानक उनका दूसरा लड़का बम्बई पहुंच गया। लड़के के पहुंचने से उनकी आशा का बुझता हुआ दीया फिर से जल उठा। १७ जून को कोर्ट में उनकी पेशी थी। उस पर वे स्वयं उपस्थित हुए। सारा काम लड़के को संभलाया और बम्बई से रवाना होकर १६ जून को वागड़ पहुंच गये। उसी दिन रात्रि के समय पारड़ी जाकर उन्होंने आचार्यश्री के दर्शन किये। उस समय उनको जो प्रसन्नता हुई उसे शब्दों में अभिव्यक्ति देना कठिन है। उन्होंने सच्चे मन और आन्तरिक लगन से जो चाहा, वह उन्हें मिल गया।

किसानों की सभा में

२१ जून को प्रातः आचार्यवर ने वागड़ से प्रस्थान किया। उस दिन का प्रवास-स्थल था साकरड़ा। साकरड़ा के रास्ते से डेढ़ किलोमीटर भीतर एक गांव है माकरड़ा। वहां भी पांच तेरापंथी परिवार रहते हैं। उन्होंने माकरड़ा पधारने का अनुरोध करते हुए कहा—अभी हमारा क्षेत्र छूट जायेगा तो फिर हमें मौका कब मिलेगा? आचार्यवर ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। गांव में श्रावकों के अतिरिक्त राजपूतों और किसानों में भी अच्छी भक्ति-भावना है। लगभग आधा घण्टा वहां प्रवचन कर आचार्यवर साकरड़ा पधार गये।

साकरड़ा में प्रवचन का दृश्य बहुत ही सुन्दर था। हजारों किसान भाई-बहनें सफेद साफों और देहाती ओढ़नियों में सभा की अग्रिम पंक्तियों में व्यवस्थित रूप से बैठे थे। सब लोगों की आंखें आचार्यश्री की ओर केन्द्रित थीं। वे सब अपने जीवन-निर्माण के लिए आचार्यवर का उपदेश सुनने को उत्सुक हो रहे थे। उस दिन का पूरा प्रवचन किसान बन्धुओं को लक्षित कर हुआ। आचार्यवर जब कभी किसानों के बीच में होते हैं तो उन्हीं के लिए कुछ बोलते हैं, वे भीतर और बाहर से आन्दोलित हो उठते हैं। उस दिन भी किसानों के मन में ऐसी हलचल मची कि सैकड़ों भाई-बहनों ने तम्बाकू, दारू और चाय छोड़कर आचार्यवर के आह्वान का सकारात्मक उत्तर दिया।

डेढ़ सौ परिवारों की आबादी वाले गांव में तेरह परिवार तेरापंथी हैं। पांच सौ वर्ष पहले बसे हुए उस गांव के बारे में यह कहा जाता है। वहां गड़रिये भेड़-बकरियां चराने के लिए जाया करते थे। एक बार वहां भूल से एक बकरी रात को रह गयी। संयोगवश उसने उसी रात को दो बच्चों को जन्म दिया। कुछ समय बाद वहां वरू नामक शिकारी पशु आ गये। पशुओं ने बच्चों पर हमला करना चाहा, पर बकरी ने उनका मुकाबला किया। और अपने बच्चों पर आंच नहीं आने दी। पशु उसके आसपास मंडराते रहे। प्रातःकाल चरवाहे आये। बकरी और उसके बच्चों को सही-सलामत देखकर वे चकित रह गये। चरवाहों को देख

वे जंगली पशु भी भाग गए। उस सारी स्थिति का आकलन कर चरवाहों ने सोचा—यह स्थान तो बहुत साऊ (अच्छा) है। यहां एक गांव बसना चाहिए। अपने चिन्तन को उन्होंने आसपास रहने वाले लोगों के सामने रखा। जिन लोगों ने उस बात को सुना, उन्हें चमत्कार लगा। उन्होंने वहां गांव बसाया और वह 'साकरड़ा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

परम्परा का आधार

मध्याह्न में भगवती सूत्र का वाचन चल रहा था। प्रसंग चल पड़ा परंपरा के प्रामाणिक स्रोत का। आचार्यवर ने स्रोत को ध्यान में रखने की प्रेरणा देते हुए कहा—सं० १९९४ में हमारा चातुर्मास बीकानेर में था। उस समय अगरचन्दजी नाहटा ने पूछ लिया—आप लोग खुले मुंह नहीं बोलते, इसका आधार क्या है? भगवती के सोलहवें शतक में इस विषय की चर्चा है। यह बात मेरे ध्यान में थी। मैंने नाहटाजी को उसकी जानकारी दे दी। उनके मन पर इसका बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा। परम्परा आगमिक हो या संघीय हो, जहां तक बन सके, उसके आधार को ध्यान में रखना चाहिए।

एक दिन में कई काम

२२ जून को आचार्यवर साकरड़ा से जिलोला पधारे। गेरीलालजी चौधरी के मकान में आचार्यश्री का प्रवास हुआ। लगभग दो हजार की आबादी वाले गांव में तेरापंथी सत्रह हैं। कई परिवार व्यापार आदि की दृष्टि से बाहर रहने लगे हैं। फिर भी जमीन और मकान वहां होने के कारण प्रतिवर्ष दो-चार बार गांव में आने का लक्ष्य बनाकर रखते हैं। आचार्यवर के आगमन का संवाद पाकर तो प्रायः सभी लोग जिलोला पहुंच गये। गांव के अन्य लोग भी राष्ट्र संत के आगमन से खुश थे। प्रवचन में भी सभी धर्मों और जातियों के लोग उपस्थित थे। आचार्य-प्रवर ने जातिवाद, वर्गवाद आदि की जड़ों पर प्रहार किया और उपस्थित जनसमूह को हल्का और सादा जीवन जीने का मार्गदर्शन दिया।

जिलोला निवासी श्री रोशनलालजी बाफणा और मूलचन्दजी बाफणा के आपस में कई दिनों से एक विवाद चल रहा था। विवाद का विषय था उनके मकान के सामने वाला चौक, मकान की दीवार, दरवाजा और पानी के निकाल का रास्ता आदि। बात बहुत बड़ी नहीं थी पर विवाद के क्षणों में साधारण-सी बात भी उग्र रूप धारण कर लेती है। आचार्यप्रवर के जिलोला आगमन का मंगल प्रसंग पूरे गांव के सौभाग्य का प्रतीक था। उस सौभाग्य से वे दोनों भी वंचित

कैसे रह सकते थे। उनके मन की भावना वदली, गांव के प्रमुख लोगों ने अनुकूल वातावरण वनाया और सारी स्थिति आचार्यवर के ध्यान में ला दी गयी। आचार्यवर की मंगलमयी प्रेरणा से आंतरिक वैमनस्य धुल गया। व्यावहारिक समझौते की दृष्टि से वणोल निवासी अम्वालालजी डांगी और आशाहोली निवासी सोहनलालजी सिंघवी को दायित्व दिया गया। उक्त दोनों सज्जनों ने जो निर्णय दिया, उसकी क्रियान्विति कर दी गयी। समाज के दो परिवारों की दूरी समाप्त हो गयी।

इसी प्रकार श्री शोभालालजी वाफणा और सोहनलालजी के वीच में भी लेन-देन का थोड़ा-सा विवाद था। उस विवाद को भी प्रेममय वातावरण से निपटा दिया गया। टाडगढ़ से आमेट तक की इस यात्रा में आचार्यश्री के अमृतमय सान्निध्य और उपदेशों से ऐसे-ऐसे विवाद सुलझ गये, जिनके सुलझने का कोई आसार ही नहीं था। मेवाड़ के छोटे-छोटे गांवों में आचार्यश्री के एक दिवसीय प्रवास में कितने काम होते हैं और कितने लोग लाभान्वित होते हैं, इसका सही-सही आकलन करना कठिन है। दिन में दो-तीन बार प्रवचन, पारिवारिक उपासना, व्यक्तिगत वार्तालाप, महिलाओं-युवकों आदि की अलग-अलग गोष्ठियां, स्थानीय विवादों का समाधान आदि ऐसे काम हैं, जो आचार्यश्री के आगमन और प्रवास के दीखते रचनात्मक पहलू हैं। परोक्ष रूप में वहां क्या-क्या घटित हो जाता है, यह तो वही व्यक्ति अनुभव करता है, जिसके जीवन में कुछ रूपान्तरण परिलक्षित होने लगता है। कुल मिलाकर यही माना जा सकता है कि आचार्यश्री का कुछ क्षणों का सान्निध्य भी अपूर्व होता है, लम्वे समय की तो वात ही क्या?

सपने : कुछ पूरे कुछ अधूरे

२३ जून को आचार्यवर जिलोला से प्रस्थान कर चारभुजा रोड (आमेट) पधारे। शहर में पदार्पण, चातुर्मासिक प्रवेश और स्वागत समारोह का कार्यक्रम २४ जून का निर्धारित था। इसलिए यह एक दिन का समय स्टेशन रोड पर रहने वाले परिवारों को वरदान रूप में मिल गया। कच्छारा परिवार के विशेष अनुरोध पर उस दिन का प्रवास 'हैपी हाउस' में हुआ। कच्छारा परिवार अपने गुरु के इस विशेष अनुग्रह से अभिभूत हो उठा। यह परिवार मूलतः रीछेड़ का रहने वाला है। आमेट, उदयपुर और वम्वई में भी इस परिवार के कई मकान हैं। परिवार के मुखिया मोतीलालजी कच्छारा अत्यन्त श्रद्धालु श्रावक थे। उनके पुत्र-पौत्रों में भी गुरु और धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। सवके पारिवारिक सम्वन्ध मधुर हैं। कच्छारा परिवार आर्थिक दृष्टि से जितना सम्पन्न है, सामाजिक दृष्टि से अर्थ के उपयोग में भी अनुदार नहीं है। धार्मिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में इस

परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है। इस परिवार के युवक भी पूरे श्रद्धाशील और उत्साही हैं। आचार्यवर के आमेट आगमन की कल्पना से ही उनके हृदय की उमंग मुखर हो उठी। अपने आराध्यदेव का स्वागत, अभिनन्दन और वर्धापन करने के लिए वे नये-नये सपने देखने लगे और नयी-नयी योजनाएं बनाने लगे। उनकी एक योजना थी हेलीकोप्टर से पुष्प-वर्षा की। उन्होंने हेलीकोप्टर वालों तथा प्लास्टिक की फैक्ट्री वालों से मिलकर सारी बात निश्चित कर ली। उधर आचार्यप्रवर को इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी सूचना मिली। अपने परिवार के प्रमुख सदस्यों को यादकर इस प्रदर्शन को रोकने का निर्देश दे दिया। एक ओर आचार्यश्री का निर्देश, दूसरी ओर मन में संजोया हुआ सपना। एक प्रकार से अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति पैदा हो गयी। बहुत मुश्किल से उन्होंने अपने मन को मोड़ा। गुरु-दृष्टि की आराधना करने में ही अपना हित समझकर उन्होंने उस योजना को छोड़ दिया।

उस दिन कच्छारा परिवार के मकान पर एक बड़ा-सा गुब्बारा जरूर उड़ रहा था। उस गुब्बारे पर अमृत महोत्सव और आचार्यश्री तुलसी के नाम अंकित थे। पूरे कस्बे में आचार्यवर के आगमन का संवाद पहुंच जाए, इस उद्देश्य से परिवार के उत्साही युवकों ने बड़े-बुजुर्गों से परामर्श किए बिना ही अपना एक छोटा-सा सपना पूरा कर लिया।

जीवन को सुवासित करने आई हूं

स्टेशन रोड के पास बने विशाल प्रवचन-पंडाल में स्वागत-समारोह का कार्यक्रम था। उस दिन कार्यक्रम में बम्बई से कुछ विशेष व्यक्ति उपस्थित हुए थे। उनमें जयवंती बहन मेहता (प्रमुख समाज सेविका), अरुण कुमार जैन (विदेश व्यापार के परामर्शक), नन्दकिशोर नौटियाल (साप्ताहिक हिन्दी ब्लिट्ज के संपादक) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

कार्यक्रम का प्रारंभ महिलाओं के मंगल-गीत से हुआ। जयन्ती बहन आचार्यश्री के दर्शन करने एवं आपको सुनने के उद्देश्य से आई थी। पर नयी ताजगी भरे वातावरण ने उसको भी कुछ कहने के लिए प्रेरित किया। उसने अपने मंजे हुए विचार व्यक्त करते हुए कहा—आज की इस सभा को देखकर मैं मुग्ध हो रही हूं। मेरे मन में कई बार एक प्रश्न उठा करता है कि भारत को धर्म-भूमि क्यों कहा जाता है? आज मुझे अनायास ही इस प्रश्न का समाधान मिल गया है। जिस धरती पर ऐसे संत महापुरुष घूमते हों, वह धर्मभूमि क्यों नहीं होगी? मुझे तो ऐसा अनुभव होता है कि आचार्यजी के दर्शन करने एवं प्रवचन सुनने से मेरे जीवन को नयी दिशा मिलेगी तथा समाज-सेवा के लिए विशेष ताकत

मिलेगी।

आचार्यश्री के एक ओर बैठी हुई साध्वियों की ओर इंगित करते हुए श्रीमती मेहता ने आगे कहा—इतनी साध्वियों को एक साथ देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। महिलाओं में काम करने वाली इतनी साध्वियां दूसरे धर्मों में कम हैं।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की चर्चा करते हुए जयवंती बहन ने कहा—वर्तमान में आचार्यश्री जो काम कर रहे हैं, उसकी किसी से तुलना नहीं कर सकते। हमारे देश में अनेक धर्म हैं, अनेक सम्प्रदाय हैं और अनेक आचार्य हैं, पर आचार्यश्री जैसी सक्रियता देखने में नहीं आई। आपका अणुव्रत पूरे भारत में समाज की दशा को उन्नत कर सकता है।

आचार्यश्री के नाम की गरिमा गाती हुई जयवन्ती बहन बोलती जा रही थी—किसी भी पदार्थ को पवित्र रखने के लिए उस पर तुलसी पत्र रखा जाता है। तुलसी पत्र रखने मात्र से वह पदार्थ भगवान् को भोग चढ़ाने योग्य हो जाता है। मैं अपने जीवन को तुलसी पत्र से सुवासित करने आई हूं। इस तुलसी नाम को मैं अपने सिर पर धारण करूंगी, ताकि समाज के लिए अधिक उपयोगी बन सकूं। आचार्यश्री दीर्घजीवी हों और तेरापंथ धर्मसंघ युगों-युगों तक फूलता-फलता रहे, यही मेरी शुभकामना है।

अणुव्रत ही बचा सकता है

श्री नन्द किशोर नौटियाल कार्यक्रम शुरू होने के बाद प्रवचन-पण्डाल में पहुंचे थे। देरी से पहुंचने के कारण पर टिप्पणी करते हुए वे बोले—आज मैं योजनाबद्ध रूप से देर से इसलिए आया कि कभी तो मुझे केवल सुनने का ही अवसर मिले। मैं आचार्यवर के चरणों में बैठकर आप द्वारा प्रदत्त ज्ञान से भरपूर लाभ उठाऊं और अपने क्षुद्र अस्तित्व का प्रदर्शन न करूं, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है। लगभग एक वर्ष बाद आचार्यश्री के सान्निध्य में उपस्थित होते हुए मैं स्वयं को अपराधी महसूस कर रहा हूं। क्योंकि मुझे यहां जल्दी आना चाहिए था। वैसे जब भी अवसर मिलता है, मैं आचार्यश्री के चरणों में पहुंच जाता हूं। मैं यहां कुछ सीखने आया हूं, भाषण देने नहीं आया हूं। मेरी यह मान्यता है कि जहां आचार्यश्री उपस्थित हों, वहां केवल उन्हीं को बोलना चाहिए।

विश्व की नाजुक स्थिति का साफ-सुथरा चित्र खींचते हुए श्री नौटियाल ने आगे कहा—आज विश्व की महाशक्तियों में शस्त्रों की होड़ लगी हुई है। संसार विनाश के कगार पर खड़ा है। उसे कोई बचा सकता है तो अणुव्रत ही बचा सकता है। इस समय विश्व के कुछ बड़े देशों के पास इतने अस्त्र-शस्त्र हो

चुके हैं कि वे एक, दो वार नहीं, तीन वार पूरे संसार का विनाश कर सकते हैं। इससे सारा संसार भयाक्रान्त है। विनाश की काली छाया उसके सिर पर मंडरा रही है। इस काली छाया से बचने के लिए ही आचार्यश्री ने अणुव्रत चलाया है। इसलिए इसका अधिक से अधिक प्रचार करना चाहिए। मुझे आचार्यप्रवर से जो आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होगी, उसको मैं जनता के वीच पहुंचाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करूंगा।

हिंसा का मुख्य कारण परिग्रह है

युवाचार्यश्री ने युगीन समस्याओं की चर्चा करते हुए कहा—आज सवसे बड़ी समस्या है अपने आपको नहीं पहचानना। जो व्यक्ति स्वयं को नहीं पहचानता, वह दूसरों को क्या जानेगा? क्या पहचानेगा? हमें उस दर्पण के सामने खड़ा होना चाहिए, जिसमें अपना प्रतिबिम्ब ही नहीं, बिम्ब भी देखा जा सके। इस युग की अनेक समस्याओं का जन्मदाता मनुष्य स्वयं है। परिग्रह और हिंसा की समस्या अलग-अलग नहीं है। हिंसा का मुख्य कारण परिग्रह है। परिग्रह हो और हिंसा न हो, यह कभी हो नहीं सकता। परिग्रह के साथ यदि विसर्जन का सूत्र जुड़ जाए तो अनेक समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाएगा। आमेट के लोग परिग्रह के साथ विसर्जन का उदाहरण प्रस्तुत करें तो समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित हो सकता है।

पत्रकारों के वीच

कच्छारा परिवार के आमंत्रण पर उस दिन कई पत्रों के सम्पादक और संवाददाता 'हैपी होम' आए थे। उनमें कुछ आचार्यश्री से परिचित थे और कुछ अपरिचित। सभी पत्रकार आचार्यवर का निकट सान्निध्य पाने और अपने मन की जिज्ञासाओं के पंख खोलने के लिए उत्सुक थे। प्रवचन के वाद लगभग एक घण्टा का समय उन्हें दिया गया। पत्रकार वन्धुओं ने मुक्तभाव से प्रश्न उपस्थित किए। उनके प्रश्न नयी शिक्षा नीति, अणुव्रत, धर्म और समाज, धर्म गुरुओं का दायित्व, पंजाव समस्या, अमृत महोत्सव, अमृत कलश पदयात्रा आदि अनेक विन्दुओं से जुड़े हुए थे। आचार्यवर ने एक-एक वात को पूरे विस्तार के साथ समझाया। पत्रकारों के मन पर इसकी वहुत अनुकूल प्रतिक्रिया रही। इस वातचीत में सम्मिलित होने वाले पत्रकार थे—

श्री वृजमोहन गोयल : व्यूरो इन्चार्ज, दैनिक नवज्योति
श्री वी० एन० हरलालका : टाइम्स आफ इंडिया

श्री अजय गुप्ता : यूनी वार्ता
श्री नन्दकिशोर नौटियाल : संपादक साप्ताहिक हिन्दी ब्लिट्ज
सुभाष गादिया, प्रकाश व्यास : न्याय

पत्रकार और भी कुछ जानना-समझना चाहते थे, पर सीमित समय में जितना काम होने का था, उतना ही हो पाया। वैसे कुछ पत्रकार इससे पहले भी बहुत कुछ पूछ चुके थे। किन्तु जिज्ञासु व्यक्तियों के प्रश्न कभी पूरे नहीं होते। आचार्यश्री भी कभी किसी को समझाते हुए थकते नहीं, यदि व्यक्ति पूर्वाग्रहों की गिरफ्त से मुक्त हो। सहज तादात्म्य भाव-सा जुड़ जाता है प्रश्नकार और उत्तरदाता के बीच में। आत्मीयता के अमृत से अनुप्राणित वे क्षण 'हैपी होम' के लिए या पत्रकारों के लिए ही नहीं, सब श्रोताओं के लिए अविस्मरणीय थे।

व्यक्ति-सुधार बिना राष्ट्र-सुधार कैसे होगा

आचार्यप्रवर ने स्वागत सभा को सम्बोधित करते हुए कहा—आज न तो चातुर्मास का प्रवेश है, न आमेट का प्रवेश। आज तो आमेट के परिसर में प्रवेश हुआ है। प्राचीनकाल में नगर-बाहिरिका हुआ करती थी। जैसे—राजगृह की बाहिरिका नालन्दा कहलाती थी। इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि आमेट की बाहिरिका यह चारभुजा रोड है। आज हम आमेट की बाहिरिका में पहुंचकर एक प्रकार से अपनी मंजिल तक पहुंच गए हैं।

राजा भोज और महाकवि कालिदास का एक मार्मिक प्रसंग सुनाते हुए आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में आगे कहा—राजा भोज के चले जाने से धारा नगरी निराधार हुई या नहीं, पर एक तत्त्व के चले जाने से, मानवीय मूल्यों के मूर्च्छित हो जाने से भारत की धरा अवश्य ही निराधार होती जा रही है। जब तक मानवीय मूल्यों को पुनरुज्जीवित नहीं किया जाएगा, तब तक देश में फैली अराजकता, हिंसा, मारकाट और भ्रष्टाचार को नहीं मिटाया जा सकता। इसके लिए व्यक्ति सुधार पर ध्यान केन्द्रित करने की अपेक्षा है। आज कुछ उलटा हो रहा है। समाज, राष्ट्र और संसार को सुधारने की बात की जा रही है। किन्तु व्यक्ति-सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जब तक ईंट, चूना, सीमेंट, लोहा, पत्थर आदि ठीक नहीं हैं, तब तक पांच मंजिल की इमारत कैसे बन पाएगी? जब तक व्यक्ति का सुधार नहीं होगा, समाज और राष्ट्र को सुधारने की बात भी कल्पना से अधिक मूल्य नहीं पा सकती। व्यक्ति को सुधारे बिना गरीबी, अन्याय और भ्रष्टाचार मिटाने का प्रयत्न सफल कैसे होगा? हमारी यात्रा में मानव-निर्माण का काम हो रहा है। आमेट में हमें पांच महीनों तक रहना है। इस अवधि में, हम व्यवस्थित रूप से अपने काम को आगे बढ़ाना

चाहते हैं। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवनविज्ञान हमारे कार्यक्रम के प्रमुख अंग हैं। इनके द्वारा मानवता की थोड़ी भी सेवा हो सकी तो हमारे अभियान की सफलता है।

२३ जून को दिन भर आचार्यप्रवर का प्रवास 'हैपी होम' में रहा। उस दिन मध्याह्न तक धूप चिलचिलाहट पैदा कर रही थी। मध्याह्न के वाद अचानक आसमान में वादल घिरे और धारासम्पात वर्षा हुई। एक ओर आचार्यश्री के आगमन पर आध्यात्मिक प्रवचन की वर्षा, दूसरी ओर प्रकृति की उदारता से हुई जल-वर्षा से आमेट और उसके आसपास गांवों में रहने वाले लोग अतिरिक्त पुलकन से पुलक उठे। किसान वन्धुओं ने उस वर्षा के साथ आचार्यश्री की कृपा का सीधा संवंध जोड़ लिया। पिछले कई वर्षों से वहां पानी की कमी थी। अनायास उस कमी की पूर्ति होने से उन सवके मन में आचार्यश्री के प्रति आस्था के नये अंकुर प्रस्फुटित हो उठे।

चौंकाने वाले आंकड़े

गंगापुर से आमेट तक की इस यात्रा में आचार्यश्री ने कई गांवों-कस्वों में प्रवास किया। इन गांवों में हुए त्याग-प्रत्याख्यानों के आंकड़े वनाने का एक छोटा-सा प्रयत्न किया गया। यद्यपि पूरे आंकड़ों को प्रस्तुत करना वहुत ही कठिन है। क्योंकि आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में दिन में, रात में जव-तव लोक प्रशिक्षण का क्रम चलता ही रहता है। सामूहिक सभाओं के अतिरिक्त व्यक्तिशः जो संकल्प स्वीकार किए जाते हैं, उनका विवरण ही नहीं मिल पाता। सामूहिक प्रेरणा के फलस्वरूप जो संकल्प स्वीकार किए गए, उनकी सूची इस प्रकार है—

व्यसन-मुक्ति	:	२५२० व्यक्ति
व्रह्मचर्य व्रत	:	५२ दंपति
जैनदीक्षा	:	४०५ व्यक्ति
सम्यक्त्व-दीक्षा	:	६२५ व्यक्ति
तेला (तीन दिन का उवास)	:	६३३ व्यक्ति
प्रतिमास दो आयंविल	:	१२७५४ व्यक्ति।

त्याग-प्रत्याख्यान के ये आंकड़े चौंकाने वाले हो सकते हैं। पर ये तो केवल दो महीनों से भी कम समय की यात्रा के आंकड़े हैं। पूरे वर्ष भर का सर्वे किया जाए तव काम का यथार्थ आकलन हो सकता है। वैसे प्रायः प्रतिदिन तीन वार आम सभाएं हो जाती हैं। छोटी संगोष्ठियों और सभाओं का तो कोई क्रम निश्चित है ही नहीं। विशेप रूप से ज्ञातव्य वात यह है कि वड़े शहरों की सभाओं में श्रोताओं की उपस्थिति दस-पन्द्रह हजार तक भी हो जाती है। पर त्याग-

प्रत्याख्यान का जैसा समा गांवों में बंधता है, शहरों में नहीं बंधता। शराब, तम्बाकू आदि व्यसन छोड़ने में देहाती लोग जितना साहस करते हैं, शहरी संस्कृति से प्रभावित लोग कम कर पाते हैं। इस यात्रा में गांव-गांव में सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर हुए विग्रह-शमन की घटनाएं भी अत्यन्त रोमांचक हैं। न जाने कितने परिवार टूटते-टूटते जुड़ गए और सामाजिक बिखराव की स्थिति में नया मोड़ आ गया। परिवर्तन के अनेक पड़ावों पर रुकती-ठहरती यह यात्रा वास्तव में ही रचनात्मकता का विरल उदाहरण है।

गांवों की श्रद्धा, सहजता और भोलापन भारत की मूलभूत संस्कृति है। गांवों की अनपढ़ बहनें आचार्यवर की अगवानी में जाते समय अपने श्रद्धा पगे गीतों की मधुर धुनों से राह चलते लोगों को सहज ही आकृष्ट कर लेती हैं। एक गीत का नमूना यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

जिणजी ! पहला ऋषभनाथ वांदस्या,
जिणजी दूजा अजितनाथ देव।
कुंकु रा पगल्या ओ म्हारासा पधारिया,
केसर रा पगल्या ओ म्हारासा पधारिया।
जिणजी ! ऊंची चढ़ी नैं नीची ऊतरी,
जिणजी ! जोऊं म्हारासा री बाट ॥
जिणजी ! आप सरीखा गुरुवर ओलख्या,
जिणजी ! और नहि आवे म्हारे दाय ॥
जिणजी ! हरियो तो पूठो आपरे हाथ में।
जिणजी ! वांचो नी सरस वखाण ॥

इस प्रकार अनेक गीत, जिनकी भावना और बहनों के हृदय की आस्था में प्रतिस्पर्धा-सी प्रतीत होती है, कभी-कभी कदम रोककर सुनने की इच्छा होती है। मेवाड़ के गांवों में शिक्षा की दृष्टि से भले ही पिछड़ापन हो, श्रद्धा में इनका कोई मुकाबला नहीं है। ऐसी श्रद्धा शहरी जीवन में भी संक्रान्त होती रहे तो भारतीय संस्कृति अपनी विरासत को बचाकर रख सकती है।

आमेट की पहचान

आमेट का इतिहास सात सौ वर्षों से भी अधिक प्राचीन माना गया है। प्रचलित मान्यता के अनुसार चन्द्रभागा नदी के किनारे ढेलाणा गांव के पास पहाड़ की तलहटी में एक शहर बसा हुआ था। वह पाटण शहर के नाम से प्रसिद्ध था। कालान्तर में वह शहर वीरान हो गया। वहां के मकान खण्डहर बन गए। उन खण्डहरों में जैन मंदिर, शिव मंदिर, काजल बावड़ी आदि के अवशेष पाटण शहर

के अस्तित्व के साक्षी बने हुए हैं। कहा जाता है कि उस पाटण शहर के अम्बाजी नामक ब्राह्मण ने वहां से चार किलोमीटर दूर आकर ब्राह्मणों की पोल का निर्माण किया। इससे वह स्थान अम्बाखेड़ा के रूप में पहचाना जाने लगा। धीरे-धीरे वहां जाटों की पोल और अहीरों की पोल भी बन गई। जनसंख्या बढ़ने से पानी की अपेक्षा हुई। अपेक्षापूर्ति के लिए वहां एक कुआं खोदा गया, जो आज भैरू बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। पानी की सुविधा होने से उस क्षेत्र में घरों की संख्या बढ़ती गई। बस्ती बड़ी होने से अम्बाखेड़ा अम्मापुरी बन गया। वर्तमान में उसकी पहचान आमेट नाम से होती है।

आमेट में तेरापंथ

आमेट में तेरापंथ का प्रभाव आचार्य भिक्षु के समय से ही है। आचार्य भिक्षु का विहार क्षेत्र मारवाड़ (कांठा) और मेवाड़ था। कांठा से केलवा, राजसमन्द आदि गांवों में पधारते समय आमेट के लोग भी आपके संपर्क में आते थे। उन दिनों वहां रहने वाले सभी जैन स्थानकवासी सम्प्रदाय की श्रद्धा रखते थे। आचार्य भिक्षु के विचारों और सिद्धान्तों को सुनने-समझने से कई बार उनके प्रति आकृष्ट हो गए। वहां सबसे पहले तेरापंथ की श्रद्धा किसने स्वीकार की, इस सम्बन्ध में कोई लिखित जानकारी तो नहीं मिलती। कुछ लोगों को ज्ञात है कि वहां के अमराजी डाणी सर्वप्रथम तेरापंथी बने। श्रावक दृष्टान्त के अनुसार श्री अमराजी चन्दभाण जी के बहकावे में आकर एक बार अस्थिर हो गए। वे पुनः स्थिर कब और कैसे हुए? यह शोध का विषय है। पर उनका परिवार आज भी तेरापंथी है। डाणी परिवार द्वारा श्रद्धा स्वीकार करने के बाद थोड़े समय में ही लगभग आधे जैन तेरापंथी बन गए। इससे वहां तेरापंथ का वर्चस्व बढ़ने लगा।

उसी समय गौरीदासजी कोठारी के पुत्र प्रेमजी कोठारी ने तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार की। वे उस समय स्थानीय राज्य के प्रधान थे। चन्दू बाई उन्हीं की बहन थी। जिनका नाम तेरापंथ की श्राविकाओं में प्रमुख रूप से गिना जाता है। आमेट के नगर सेठ आदि प्रमुख लोग भी धीरे-धीरे तेरापंथी बनते गए। वि० सं० १८३५ में आचार्य भिक्षु ने वहां चातुर्मासिक प्रवास किया। उस चातुर्मास में भी अनेक लोग तेरापंथ के श्रद्धा-आचार से प्रभावित हुए। द्वितीय आचार्यश्री भारीमालजी ने सं० १८६६ में आमेट में चातुर्मास किया। उसके बाद छठे आचार्यश्री माणकलालजी, जिनका शासनकाल मात्र चार वर्ष का था। इसी कारण से वे मेवाड़ आ ही नहीं सके, को छोड़कर शेष सभी आचार्यों ने अपने पावन चरण-स्पर्श से आमेट की धरती को कृतार्थ किया। किन्तु सं० १८६७ से १९४१ तक यानी एक सौ पचहत्तर वर्षों तक आचार्यों के पावस-प्रवास का सौभाग्य

आमेट को नहीं मिला।

आचार्यश्री रायचन्दजी तीन वार आमेट पधारे। सं० १८७६, १८८१ और १८८३ में दो-दो वर्ष के अन्तराल से आचार्यों द्वारा क्षेत्र की संभाल अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने सं० १९०६ एवं १९११ में आमेट का स्पर्श किया। मघवागणी ने सं० १९४२ में और डालगणी ने सं० १९५६ में केवल एक-एक वार आमेट क्षेत्र में प्रवास किया। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी ने दो वार मेवाड़ की यात्रा की। आपने दोनों ही बार सं० १९७२ एवं १९९२ में आमेट को पावन किया। आमेट पर सर्वाधिक कृपा रही युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी की। आचार्यश्री सं० १९९३ से सं० १९४२-४३ तक सात वार मेवाड़ की यात्रा कर चुके हैं। सं० १९९३, २०१०, २०१२, २०१७, २०१६, २०२०, २०३६, २०४० एवं २०४२-४३। इन सात यात्राओं में सं० २०१७, २०२०, २०३६ एवं २०४२ में चार वार आमेट में आचार्यवर का ऐतिहासिक प्रवास हुआ। वैसे तो चारों ही प्रवास काल उल्लेखनीय रहे। पर उनमें भी सं० २०१७ का मर्यादा महोत्सव और सं० २०४२ में अमृत-महोत्सव वर्ष का चातुर्मास सब दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा।

जिस आमेट क्षेत्र को आचार्यों द्वारा इतना सिंचन मिला है, उसके सौभाग्य को जितना सराहा जाए, कम है। सुदूर अतीत में वहां साधु-साध्वियों के चातुर्मास कभी-कभी होते थे। सं० १९६६ के बाद प्रायः प्रति वर्ष आमेट में चातुर्मास होते हैं। वर्तमान में वहां तीन सौ से अधिक परिवार तेरापंथी हैं। आमेट का श्रावक समाज श्रद्धाशील, समर्पित और कर्तव्यपरायण है। कुछ श्रावक तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में भी अच्छे जानकार हैं। नयी पीढ़ी का तत्त्वज्ञान वहुत अधिक पुष्ट नहीं है। फिर भी सलक्ष्य प्रयत्न किया जाए तो वहां कुछ युवक अच्छे तैयार हो सकते हैं।

आचार्य भिक्षु के युग में आमेट की कोई दीक्षा नहीं हुई। आचार्यश्री भारीमालजी के युग में सवसे पहले सं० १८६६ में मुनि वेणीरामजी के हाथ से मुनि गुमानमलजी की दीक्षा हुई। अव तक सारी २२ दीक्षाएं हो चुकी हैं। उनमें मुनि श्री भीमराजजी, हीरालालजी आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आमेट क्षेत्र का श्रावक-समाज पूरी तरह से संगठित है। धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से यहां का संगठन मजबूत है। समाज के वुजुर्ग, अनुभवी एवं सेवाभावी व्यक्तियों के नेतृत्व में सुनियोजित रूप में प्रवृत्तियों का संचालन होता है। कुछ वर्षों पहले साधु-साध्वियों के चातुर्मास शहर में होते थे। इन वर्षों में वहां काफी वड़ा तेरापंथ सभा-भवन वनकर तैयार हो गया। भवन लक्ष्मी वाजार में वना है। एक ओर शहर, दूसरी ओर स्टेशन, वीच में लक्ष्मी वाजार स्थित सभा-भवन। सामाजिक एवं धार्मिक वृत्तियों का संचालन तथा साधु-

साध्वियों के चातुर्मास अव इसी भवन में होते हैं। सभा-भवन के वाहर एक विशाल प्रांगण है, जहां पन्द्रह हजार लोगों के वैठने की व्यवस्था हो सकती है। सभा-भवन के दो हाल भी वहुत बड़े हैं। आचार्यवर के चातुर्मास हेतु यही स्थान उपयुक्त समझा गया।

आमेट में श्रावक समाज का संगठन अच्छा है। धार्मिक दृष्टि से प्रायः सभी लोग एक नेतृत्व में विश्वास करते हैं और संघीय हितों को ध्यान में रखकर काम करते हैं। उनके पारस्परिक संवंध भी काफी अच्छे हैं।

वहां बुजुर्ग और युवक सभी उत्साही हैं। जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, तेरापंथ युवक परिषद, तेरापंथ महिला मण्डल, तेरापंथ कन्या मण्डल और आमेट मित्र मण्डल (वम्वई) प्रमुख रूप से ये पांच संस्थाएं वहां कार्यरत हैं। हर संस्था अपने दायित्व के प्रति सजग है। इस वर्ष उन संस्थाओं के सामने एक वड़ा काम था आचार्यवर का चातुर्मास। जिस क्षेत्र में आचार्यश्री का चातुर्मास होता है, वह क्षेत्र पूरे देश और विदेश में रहने वाले श्रद्धालु लोगों के गमनागमन का केन्द्र वन जाता है। प्रतिदिन यात्रियों का आना-जाना होता रहता है। पूरे चातुर्मास काल में कितने यात्री वहां पहुंचते हैं, संख्या का सही आकलन करना कठिन है। कभी-कभी तो एक अवसर पर ही पन्द्रह-वीस हजार यात्री आ जाते हैं। उन सवके लिए आवास की व्यवस्था वहुत कठिन और श्रमसाध्य काम है। और भी अनेक सामयिक काम होते रहते हैं। उन सवके सम्यक् सम्पादन हेतु चातुर्मास व्यवस्था समिति और स्वागत समिति जैसी समितियों का गठन होता है, जो पूरे समाज की प्रतिनिधि संस्थाएं वन जाती हैं।

आमेट में स्वागत समिति और व्यवस्था समिति का गठन करते समय पूरी सतर्कता रखने के वावजूद थोड़ा तनाव हो गया। तनाव का कारण कोई वहुत वड़ा नहीं था। पर उलझने के लिए छोटी वात भी कम नहीं होती। तनाव कुछ व्यक्तियों के मनों में था, पर उसका प्रभाव तो अधिकांश लोगों पर होना था। कुछ लोगों ने आमेट में ही स्थिति को सामान्य वनाने का प्रयास किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। उस समय वात को ढीला छोड़ दिया। आचार्यवर के आगमन से कुछ दिन पूर्व वहां की स्थिति आपके ध्यान में आ गई। आपने दोनों पक्षों के संवंधित व्यक्तियों को याद किया। उनकी वात सुनी और ऐसा मंत्र फूंका कि सारा तनाव समाप्त हो गया। विवाद का अंकुर फूटने से पहले ही जलकर राख हो गया। आमेट की छवि धूमिल होने से पहले ही साफ-सुथरी हो गई, इस वात की सवको प्रसन्नता थी।

आचार्यश्री की यह मेवाड़-यात्रा अमृत महोत्सव वर्ष की यात्रा है, अमृत-यात्रा है। अमृत-यात्रा में सव लोगों को अमृत ही अमृत पाने की लालसा है। ऐसी स्थिति में कोई भी गांव, शहर, परिवार या व्यक्ति विष भावित कैसे रह सकता

अभिनन्दन कार्यक्रम का प्रारम्भ कन्या मण्डल की किशोरियों के मंगलगीत से हुआ। मंगलगीत की धुनों से सारा वातावरण मुखरित हो उठा। उस समय सभा में उपस्थित हजारों-हजारों व्यक्ति अपने भीतर कसमसाते हुए भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए आतुर हो उठे। लगभग पौने दो सौ वर्षों के बाद आमेट-वासी अपनी नगरी में अपने धर्माचार्य के पावस-प्रवास का सपना पूरा कर रहे थे। इस खुशी में वे सब अनिर्वचनीय आह्लाद का अनुभव कर रहे थे। उस आह्लाद को प्रकट करने के लिए न तो उनके पास शब्द थे और न मंच संचालक के पास इतना समय था। इसलिए समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं के एक-एक प्रतिनिधि ने आचार्यवर की अभ्यर्थना कर अपनी भावना को साकार किया। महन्त श्री जयरामदासजी, पत्रकार श्री नन्दकिशोर नौटियाल आदि अनेक जनों ने इस अवसर पर अपने विचार प्रकट किए।

आचार्यश्री का हर निर्णय सही होता है

राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल देवपुरा ने राजस्थान की ओर से, मेवाड़ की ओर से तथा अपनी ओर से आचार्यश्री का अभिनन्दन करते हुए कहा—आमेट के लोग बहुत वर्षों से आचार्यप्रवर के चातुर्मास की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन वर्ष पहले जब ये लोग चातुर्मास की मांग लेकर राणावास उपस्थित हुए थे, मैं भी इनके साथ था। उस समय आचार्यश्री ने चातुर्मास की घोषणा नहीं की। हमें बहुत अटपटा लगा। पर अब सोचते हैं कि जो हुआ सो अच्छा हुआ। यदि उस वर्ष यहां चातुर्मास मिल जाता तो यह अमृत-महोत्सव वर्ष का चातुर्मास कैसे मिलता। मैं मानता हूं कि आचार्यश्री का प्रत्येक निर्णय सही होता है और वह कसौटी पर खरा उतरता है।

श्री देवपुरा ने आगे कहा—आज संसार को सबसे अधिक आवश्यकता है शान्ति की। शान्ति का आधार शस्त्र नहीं हो सकते। इस समय विश्व की बड़ी शक्तियां एक से एक घातक हथियारों के निर्माण और संग्रह में लगी हुई हैं। इससे संसार की स्थिति दयनीय होती जा रही है। इस स्थिति का समाधान किसी के पास है तो अध्यात्म के पास है। यही कारण है कि आज सबकी दृष्टि आचार्यश्री पर टिकी हुई है। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के द्वारा आप बेजोड़ काम कर रहे हैं। आपके विचारों से हमें नयी शक्ति मिलती है। आमेट का सौभाग्य है कि यहां आचार्यश्री पूरे पांच महीने रहेंगे। स्थानीय जनता को इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए।

आचार्यश्री नयी बात लेकर आए हैं

युवाचार्यश्री ने अपने मंगल संदेश में कहा—आचार्यप्रवर आज आमेट आए हैं। यह कोई नयी बात नहीं है। पर इस बार वे एक नयी बात लेकर आए हैं। एक नया अवसर, नयी संभावना, नयी बात और नया काम, इसलिए इस आगमन का महत्त्व है। आज हिंसा के लिए इतनी सामग्री जुटाई जा रही है तो अहिंसा के जगत में भी किसी ऐसे सशक्त अस्त्र की जरूरत है, जिसके द्वारा अणुबम का मुकाबला किया जा सके। आचार्यश्री जैसे सक्षम आचार्य के नेतृत्व में भी अहिंसा तेजस्वी और शक्तिशाली नहीं बन पायी तो भविष्य की संभावनाओं का रास्ता भी प्रशस्त होना कठिन है। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह के द्वारा अहिंसा को नयी तेजस्विता दी थी। आज युग बदल गया है। अब तो अहिंसा के क्षेत्र में कुछ ऐसे प्रयोगों की जरूरत है, जिनके द्वारा हिंसक अस्त्रों की विभीषिका को कम किया जा सके।

अच्छा काम कभी निष्फल नहीं होता

आमंत्रित वक्ता और अभिनन्दनकर्ता बोलते जा रहे थे। आचार्यश्री सबको तटस्थ भाव से सुन रहे थे। घड़ी की सूई तेजी के साथ आगे बढ़ रही थी। बढ़ती हुई सूई के साथ श्रोताओं के धैर्य की शिखा प्रकंम्पित होने लगी। अब वे अविलम्ब आचार्यश्री को सुनना चाहते थे। उनकी उत्कट आकांक्षा को देखकर मंच संचालक ने आचार्यश्री से मंगल प्रवचन करने के लिए विनम्र अनुरोध किया। आचार्यप्रवर ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा—आमेट में हम नये-नये नहीं आए हैं। फिर भी हम शहर की जिस गली या राजपथ से होकर गुजरे, सैकड़ों हजारों लोग हमारी ओर उत्सुकता से देख रहे थे। मैंने सोचा—लोगों को क्या हो गया है? हमारे प्रति इनके मन में अनायास ही यह प्रेम क्यों उमड़ रहा है? हम तो आज भी वही हैं, जो पचास वर्ष पहले थे। शायद कुछ बदलाव हमारे में भी आया है। कारण कुछ भी हो, लगता ऐसा है कि आमेट में सब कुछ नया हो रहा है। आमेट का यह चातुर्मास भी एक दृष्टि से बिल्कुल नया है। ऐसा चातुर्मास 'न भूतो'—अतीत में कभी नहीं हुआ और 'न भविष्यति'—भविष्य में ऐसा नहीं होगा, यह मैं कहना नहीं चाहता। इतना जरूर कह सकता हूं कि पचास वर्ष का अनुशासन काल हमारे धर्मसंघ के पूर्ववर्ती किन्हीं आचार्यों का नहीं रहा। उन सबकी कृपा से यह अवसर मुझे मिल रहा है। मैं उन सब पूर्वाचार्यों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं।

आचार्यश्री की मेवाड़ यात्रा में प्रकृति पूरी तरह से अनुकूल रही। इस संदर्भ

में बोलते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—आज मैं सबसे पहले प्रकृति को सौ-सौ साधुवाद देना चाहता हूं, जिसने हमारा जी भरकर सहयोग किया। दूधालेश्वर महादेव से लेकर आज तक यात्रा में कहीं कोई विघ्न उपस्थित नहीं हुआ। सामान्यतः मौसम में गर्मी का उत्ताप अधिक नहीं बढ़ा। एक दिन भी ऊष्मा बढ़ी और दूसरे दिन वर्षा हो गई। कल भी हमारा पूरा कार्यक्रम निर्विघ्न संपन्न हो गया। उसके बाद अहराह्न में वर्षा हो गई। इससे मौसम भी नम हो गया। मैं बार-बार कहा करता हूं कि दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े शहरों में भारत की सही तस्वीर नहीं है। भारत का सही रूप गांवों में देखने को मिलता है। इन भोली-भाली सूरतों में देखने को मिलता है। उसको हमने बहुत निकटता से देखा है। गांवों में काम करते समय इस बार हमें इतना आनन्द मिला है, जितना कम बार मिलता है।

मनुष्य के जीवन में चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल देते हुए आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में आगे कहा—बन्धुओ ! सच्चे मन से और सच्चे श्रम से काम करने वाला व्यक्ति कभी निराश नहीं होता। गीता में निष्काम कर्म का जो दर्शन है, उसे समझना चाहिए। महात्मा गांधी ने लिखा है कि अच्छा काम एक दिन में संपन्न नहीं होता। जो काम एक दिन में संपन्न हो जाए उसकी कद्र भी नहीं होती। सूर्य रोजाना उगता है। आज उगा है। कल भी उगेगा। यह क्रम निश्चित है। एक दिन ऐसा आ सकता है, जब सूरज न भी उगे। पर अच्छे काम का फल निश्चित है। वह कभी बन्ध्य नहीं होता। हमें आमेट में पांच महीनों तक रहना है। हमारा यह प्रवास आप सबको संयम और त्याग की प्रेरणा देने वाला है, यह मंगल भावना है।

स्वागत सभा का कार्यक्रम पूरी शालीनता, शान्ति और भव्यता के साथ चला। कार्यक्रम का संयोजन श्री सोहनलालजी बम्ब ने किया। वहां उपस्थित सभी भाई-बहन अपने सुखद भविष्य का सपना संजोते हुए आचार्यप्रवर से मंगल-मंत्र सुनकर विदा हो गए।

अमृत कलश पदयात्रा

२८ अप्रैल १९८५ को प्रातः नौ बजे गंगापुर में 'आचार्यश्री तुलसी अमृत महोत्सव' का मंगल शुभारंभ हुआ। अमृत समवसरण में अमृत मंच पर आचार्यवर अपनी सहज सौम्यता के साथ पट्टासीन थे। आचार्यश्री की दाईं ओर एक छोटे काष्ठ-पट्ट पर ताम्रवर्णी कलश रखा हुआ था। वह कलश अमृतकलश के रूप में अमृत महोत्सव का प्रतीक बनकर दर्शकों के लिए आह्लादक बन रहा था। कार्यक्रम के मध्य में कुछ भाइयों ने उस अमृत-कलश में संकल्पपत्र भरकर निक्षिप्त किए।

अमृत-कलश अभियान का प्रारम्भ मात्र था वह। उस अभियान को आगे बढ़ाना था। मेवाड़ में ही नहीं, मारवाड़ और राजस्थान में ही नहीं, पूरे देश में उस अभियान को चलाने का निर्णय लिया गया। राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनाने के लिए एक न्यूनतम कार्यक्रम के रूप में अमृत कलश में समर्पित करने के लिए पांच संकल्प निर्धारित किए गए—

- मद्य निषेध।
- दहेज उन्मूलन।
- मिलावट निरोध।
- अस्पृश्यता निवारण।
- भावात्मक एकता।

अमृत कलश की योजना को दूसरे शब्दों में संकल्पकलश की योजना भी कहा जा सकता है। मनुष्य संकल्प करे बुराइयों से मुक्त होने का और आचारशुद्धि का। वह स्वयं उन संकल्पों के अनुसार अपने जीवन को मोड़ दे और जन-जन को प्रेरित कर जीवनशुद्धि या आचारशुद्धि का वातावरण बनाए। वह स्वयं संकल्प पत्र भरे और दूसरों को प्रेरणा देकर भरवाए। केवल प्रदर्शन के लिए नहीं, संकल्पों के पालन में दृढ़ता लाने के लिए जनता के बीच में ऐसे कार्यक्रम चलाने की बात सोची गई।

आचार्यश्री ने 'अणुव्रत आन्दोलन' के माध्यम से चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में राष्ट्रव्यापी स्तर पर जो काम किया है, उसी को अग्रसर करने के लिए 'अमृत-कलश पदयात्रा' की परिकल्पना की गई। इस यात्रा में जीप या किसी अन्य वाहन पर अमृत-कलश के आरोहण तथा साप्ताहिक यात्रादल के क्रम से सात सप्ताह की यात्रा करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय के अनुसार २९ अप्रैल १९८५ को गंगापुर में प्रातः सूर्योदय के समय 'अमृत-कलश पदयात्रा' का प्रारंभ हुआ। उस अवसर पर उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए आचार्यवर ने अपने मंगल संदेश में कहा—वातावरण विषैला है। आदमी को अमृत की खोज है। अमृत-कलश पदयात्रा द्वारा यह खोज पूरी हो सकेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। आज सब लोग कहते हैं—कुछ होना चाहिए। यह परस्मैपदी भाषा का चिन्तन है। पहल तुम करो—इस प्रकार सोचना और कहना कठिन भी नहीं है। किसी भी कठिन काम की पहल मैं करूं—इस भाषा में सोचने वाले, आत्मनेपदी भाषा में बोलने वाले कितने व्यक्ति हैं? अमृत-कलश पदयात्रा के पदयात्रियों ने पहले स्वयं संकल्प स्वीकार किए हैं। अब वे दूसरों को भी बुराइयों से मुक्त होने की प्रेरणा दे सकेंगे। वर्षों से चल रहे अणुव्रत-अभियान में आज से एक नया प्रयोग प्रारम्भ हो रहा है। इससे राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में भी योग मिल सकेगा। मेरी समस्त शुभ कामनाएं पदयात्रियों के साथ हैं।

आचार्यवर के मंगल आशीर्वचन से पदयात्रियों का उत्साह वहुगुणित हो गया। जो लोग पदयात्रा में कठिनाई महसूस कर रहे थे, उनकी भी मानसिकता वदलने लगी। देखते-देखते कई नये पदयात्री तैयार हो गए। पता नहीं आचार्यश्री की वाणी में क्या जादू है, जिस विषय में आप कुछ कह देते हैं, उस काम को करने के लिए भीतर से प्रेरणा जाग जाती है और उससे होने वाले लाभ का स्पष्ट आभास होने लगता है।

अमृत महोत्सव की परिकल्पना के मुख्य सूत्रधार युवाचार्यजी महाप्रज्ञजी रहे हैं। अमृत-कलश पदयात्रा के प्रारंभ में उन्होंने भी अपनी ओर से दिशादर्शन देते हुए कहा—अमृत-कलश पदयात्रा एक रचनात्मक अभियान है। इससे वर्तमान की बुराइयों को मिटाने का एक नया संकल्प जागा है। अमृत पुरुष आचार्यश्री तुलसी ने वर्तमान की समस्याओं को समझा है और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया है। साधारणतया हर समस्या का समाधान वाहर से खोजा जाता है। वाहर समाधान नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानता, किन्तु उनका समाधान हमारे भीतर वहुत ज्यादा है। समस्याओं का समाधान हम भीतर और वाहर दोनों में खोजें। इस अभियान के संचालन में समणियां और कार्यकर्ता पूर्ण समर्पण भाव से कार्य करेंगे, इसलिए अमृत-कलश पदयात्रा में उज्ज्वल संभावनाएं निहित हैं।

अमृत-कलश पदयात्रा अभियान में प्रथम दल के संयोजक थे श्री पूर्णचन्दजी वड़ाला और सहसंयोजक थे श्री रामनारायण चेचाणी। समणी कुसुमप्रज्ञाजी आदि चार समणियां इस दल के साथ थीं। श्री मानव मुनि, जो सर्वोदयी कार्यकर्ता होने के साथ-साथ अणुव्रत से भी पूरी तरह जुड़े हैं, अमृत कलश पदयात्रा अभियान के अध्यक्ष थे। पदयात्रा के प्रथम दिन वे भी साथ रहे। इनके अतिरिक्त प्रथम यात्रा दल के अन्य सभी सदस्यों को गंगापुरवासियों ने तिलक लगाकर वर्धापित किया। यात्रा की पूरी तैयारी के साथ वे सव परमाराध्य आचार्यप्रवर से मंगल पाठ सुनने की प्रतीक्षा में बद्धांजलि खड़े थे। आचार्यप्रवर उन्हें मंगल पाठ सुनाने से पहले पट्ट से नीचे उतरे, युवाचार्यश्री और साधु-साध्वियों के साथ आप विद्यालय के मुख्य द्वार तक पधारे। अमृत-कलश पदयात्रा अभियान का सहज रूप से मंगल प्रारम्भ हो गया। उसके वाद आचार्यवर ने पदयात्रियों को मंगल पाठ सुनाकर अपने गंतव्य की दिशा में प्रस्थान कर दिया।

पदयात्रा का पहला पड़ाव आमली (आम्रावली) में हुआ। इस यात्रा को सात चरणों में विभक्त किया गया। प्रथम चरण की यात्रा गंगापुर से भीलवाड़ा तक थी। इसमें ३३५६ संकल्पपत्र भरे गए। संकल्पपत्र भरने वालों में जैन, सनातनी मुसलमान, हरिजन, किसान आदि सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। संकल्पपत्र भरवाने में इस बात का भी लक्ष्य रखा गया था कि संकल्प स्वीकार करने वाले सभी लोग वयस्क हों और संकल्पों को समझपूर्वक स्वीकार करने वाले हों।

दूसरे चरण में भीलवाड़ा से आसीन्द तक का यात्रापथ तय कर लिया गया। इसमें ४४१८ संकल्पपत्र प्राप्त हुए। तीसरे चरण में आसींद से देवगढ़ तक ५६१३ पत्र भरे गए। चतुर्थ चरण देवगढ़ से रीछेड़ तक पूरा हुआ। इसमें ३२४२ संकल्पपत्र भरे गए। पांचवां चरण रीछेड़ से गोगुन्दा तक था। इसमें केवल १७११ संकल्पपत्र प्राप्त हुए। छठे चरण में गोगुन्दा से राजसमन्द तक ४०६२ संकल्पपत्र भरे गये। मेवाड़ में हुई इस यात्रा के सातवें चरण में राजसमन्द से आमेट तक के क्षेत्रों को लिया गया। इसमें २६३४ संपल्पपत्र प्राप्त हुए।

२९ अप्रैल १९८५ से प्रारम्भ की गई इस अमृत-कलश पदयात्रा का समापन १७ जून १९८६ को ऊमरी गांव में आचार्यप्रवर के सान्निध्य में हुआ। समापन दल के संयोजक श्री पूर्णचन्द वड़ाला ने पदयात्रा का संक्षिप्त किन्तु व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया। उस अवसर पर आचार्यवर ने श्री वड़ालाजी को उनकी अणुव्रत सम्वन्धी सेवाओं के लिए अणुव्रतसेवी सम्वोधन से सम्वोधित किया। श्री वड़ालाजी ने आचार्यवर की इस कृपा के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करते हुए भविष्य में भी अणुव्रत के क्षेत्र में जागरूक भाव से काम करने के लिए आशीर्वाद मांगा।

पचास दिनों में ५९० किलोमीटर की इस यात्रा में भीलवाड़ा एवं उदयपुर के छिहत्तर ग्रामों तथा शहरों में अमृत-कलश जन सभाओं का समायोजन हुआ। इस अभिक्रम में कुल मिलाकर ३५,४६० (पैंतीस हजार चार सौ साठ) संकल्पपत्र भरे गए। इस यात्रा में कुल ११९ पदयात्री सम्मिलित हुए। प्रत्येक यात्रा दल के साथ चार-चार समणियों का एक वर्ग भी साथ रहा। इससे एक ओर यात्रा के प्रति आकर्षण बढ़ा तथा दूसरी ओर जनसभाओं को सम्वोधित करने में भी समणी वर्ग का अच्छा उपयोग हुआ।

अमृत-कलश पदयात्रा के मध्य संकल्पपत्र सम्पूर्ति अभियान भी चलाए गए। इन अभियानों के द्वारा कुछ कार्यकर्ताओं ने संकल्पपत्र भरवाने में कीर्तिमान स्थापित कर दिए।

अमृत-कलश पदयात्रा में जितने लोग सम्मिलित हुए उन सबका नामोल्लेख करने से एक लम्बी सूची तैयार हो सकती है, जो यहां प्रासंगिक नहीं है। फिर भी कुछ व्यक्तियों का नामोल्लेख करना अपेक्षित है, जिनके सहयोग से यात्रा दल में नयी स्फुरणा का संचार हुआ तथा जो यात्रा में सात दिनों से अधिक रहे।

- दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री सीताशरण शर्मा, लगभग दो सप्ताह की यात्रा में साथ रहे। अस्वस्थता के कारण ये वरावर पदयात्रा नहीं कर पाए। फिर भी यात्रा-दल के साथ इनका वरावर संपर्क रहा। और इन्होंने राष्ट्रीय समिति को भी अपने मूल्यवान सुझाव दिए।

- श्री मानव मुनि (इन्दौर) ८ दिन की पदयात्रा।
- श्री पूर्णचन्द बड़ाला, ३१ दिन यात्रा में साथ रहे।
- श्री मानवमित्रजी ३६ दिनों की यात्रा की।
- श्री जीतमल जैन, सायरा, २१ दिनों की यात्रा।
- श्री देवीलाल सिरोहिया (बावलास) ११ दिनों की यात्रा।
- श्री चन्दनमल सिंघवी, पुर, १४ दिनों की यात्रा।
- श्री रिछपाल जैन, कांटाभाजी ६ दिन की यात्रा।
- श्री जसराज मेहता, सायरा, ६ दिन की यात्रा।
- श्री भीमराज कच्छारा, रीछेड़, ८ दिन की यात्रा।
- श्री मोतीलाल एच० रांका बगड़ी, कुछ दिन यात्रा।

अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के संयोजक डॉ० महेन्द्र कर्णावट ने अमृत कलश पदयात्रा के रथ को गतिमान रखने में अपने कार्यालय से जो सेवाएं दीं, वे उल्लेखनीय हैं। यहां यह बात भी ज्ञातव्य है कि अमृतकलश पदयात्रा का व्यवस्था पक्ष अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति द्वारा नियोजित रहा।

संकल्प स्वीकार करने वाले व्यक्ति मेरे पास पहुंच गए

अमृत कलश पदयात्रा अमृत महोत्सव का एक क्रान्तिकारी रचनात्मक अभियान था। चरित्र निर्माण मूलक कार्यक्रमों में वह एक नया प्रयोग था, जो कल्पना से अधिक सफल रहा। पचास दिन की उत्साहवर्धक यात्रा १६ जून को ही संपन्न हो चुकी थी। पर उसके विधिवत समापन अथवा अमृत संकल्पपत्रों के समर्पण का आयोजन २४ जून को मध्याह्न में परमाराध्य आचार्यप्रवर के सान्निध्य में रखा गया। मुमुक्षु बहनों के मंगल गीत से कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। डॉ० महेन्द्र कर्णावट ने अपने संयोजकीय वक्तव्य में आचार्यवर के पचास वर्षों के आचार्यकाल पर संक्षेप में प्रकाश डाला। श्री कन्हैयालालजी कच्छारा ने अमृत कलश पदयात्रा में सम्मिलित होने वाले पदयात्रियों को आमेट की ओर से बधाई दी। अमृत-कलश पदयात्रा के संयोजकों ने अपनी-अपनी पदयात्रा में प्राप्त पंचसूत्री संकल्पपत्रों के बड़े-बड़े बण्डल आचार्यश्री को भेंट किए। आचार्यवर एक-एक बण्डल ले रहे थे और सामने पट्ट पर रखते जा रहे थे। देखते-देखते पट्ट पर बण्डलों का ढेर लग गया। बड़ा ही मनोहारी दृश्य था वह। पदयात्री अपने विशेष थैलों को कंधे पर लटकाए जनसभा की अग्रिम पंक्तियों में बैठे अपनी अलग ही पहचान बना रहे थे।

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने विशेष वक्तव्य में कहा—यह अमृतकलश हमारे सामने है। पचास दिनों तक इसकी यात्रा चली। आज इसकी परिसंपन्नता

का दिन है। यह एक नया उपक्रम था। क्योंकि कलश में रुपये-पैसों का संग्रह नहीं करना था, मानवीय और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था के संकल्पों का संग्रह होना था। राष्ट्र की चेतना को जगाने वाला यह प्रयत्न और प्रयोग देशव्यापी हो, यह अपेक्षा है। इस अवसर पर मैं सभी संयोजकों और पदयात्रियों की प्रशंसा करता हूं, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण काम में अपनी भूमिका निभाई। मैं मंगल कामना करता हूं कि पाशविक वृत्तियों के उन्मूलन की दिशा में छेड़ा गया यह अभियान प्रभावी बने, जिससे भारत में ही नहीं, संपूर्ण विश्व की प्राची में नया सूर्योदय हो सके।

अमृत-कलश पदयात्रा का विवरण पदयात्रा के उपसंयोजक श्री राजेन्द्र कावड़िया ने प्रस्तुत किया। पदयात्रा के सभी संयोजकों को श्री हीरालालजी देवपुरा ने प्रशस्तिपत्र प्रदान किये। उस अवसर पर लगभग सत्तर भाई-बहनों ने खड़े होकर आगामी पदयात्रा में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। पदयात्रा अभियान में सहयोगी बनने वाली तेरापंथी सभाओं, सामाजिक संस्थानों, कार्यकर्त्ताओं तथा स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति आभार ज्ञापित किया गया।

इन सब औपचारिकताओं के संपन्न होने पर भी जनता शान्त और समुत्सुक थी। आचार्यप्रवर का मंगल प्रवचन सुनने की उसकी घनीभूत इच्छा को सफल करने के लिए मंच संचालक डॉ० महेन्द्र कर्णावट ने आचार्यवर से मंगल आशीर्वचन कहने के लिए अनुरोध किया। आचार्यवर ने अपने संक्षिप्त मंगल प्रवचन में कहा—अमृत-कलश पदयात्रा के पदयात्रियो! गंगापुर से आपने जो अभियान चलाया था, उसे सानन्द संपन्न कर आप प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। पर इतने मात्र से आपका काम पूरा नहीं हुआ है। आगे की योजना में भी आपको सक्रिय रहना है। आज जो हजारों-हजारों संकल्पपत्र मेरे पास पहुंचे हैं, इनके माध्यम से संकल्प स्वीकार करने वाले वे सभी व्यक्ति मेरे पास पहुंच गये हैं। यह एक रचनात्मक अभियान है। आशा है भविष्य में भी आप लोग ऐसा प्रयत्न करते रहेंगे।

कर्नाटक में अमृत-कलश पदयात्रा

अमृत-कलश पदयात्रा समापन समारोह के अवसर पर यह सुझाव रखा गया कि देश के किसी भी अंचल में पदयात्रा का ऐसा अभियान चलाया जा सकता है। उस समय का माहौल देखते हुए यह कल्पना की गयी कि अन्य अनेक स्थानों पर ऐसे अभिक्रम चलेंगे। किन्तु व्यवस्थित रूप में अमृत-कलश पदयात्रा का अभियान चला कर्नाटक में। वहां आचार्यश्री तुलसी अमृत महोत्सव समिति (बैंगलोर), कर्नाटक राज्य अणुव्रत समिति (बैंगलोर), कर्नाटक सर्वोदय मंडल (बैंगलोर), सर्वोदय हिन्दी विद्यावर्धक संघ (कोरटगेरे), जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा (बैंगलोर) और

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी युवक परिषद (बैंगलोर) आदि संस्थाओं के संयुक्त सहयोग से दस दिन की यात्रा की गयी। उस यात्रा में पन्द्रह व्यक्ति सम्मिलित हुए। यात्रा-दल के नायक थे श्री नारायण अप्पा और सहनायक थे श्री सीताशरण शर्मा। श्री नारायण पचहत्तर वर्ष के थे, फिर भी अत्यन्त उत्साह के साथ उन्होंने पूरे दस दिन तक पदयात्रा की। अमृत महोत्सव की सील से युक्त पीली चादर और थैला यात्रियों की वेशभूषा में काफी आकर्षक प्रतीत हो रहा था। कर्नाटक राज्य के तुमकूर जिले के कोरटगेरे तहसील में हुई इस यात्रा के पड़ाव मुख्य रूप से निम्नांकित क्षेत्रों में हुए—कोरटगेरे, वडुगेरे, अक्कीरामनुर, सोमपुर, होलवनहल्ली, तीना, डुनडुनहल्ली, पातंगानहल्ली, चिन्नहल्ली, कोलाल एवं टिपटूर।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो उनके विश्व-वत्सल स्वरूप को अभिव्यक्ति देने वाले हैं। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान जैसे कार्यक्रम विश्वमानव के हितों को ध्यान में रखकर ही चलाये गये हैं। इन कार्यक्रमों के साथ तेरापंथी और जैन लोगों से भी अधिक जैनेतर लोग जुड़े हुए हैं। जाति, वर्ग, वर्ण, रंग, लिंग आदि भेदभावों से मुक्त मानव जाति के चारित्रिक स्तर को उन्नत बनाने के लिए आचार्यश्री ने जितना पुरुषार्थ किया है, उसका आकलन होना संभव नहीं है। अमृत-कलश में समर्पित करने की पंचसूत्री योजना भी मानव यात्रा को लक्ष्य में रखकर ही तैयार की गयी थी। यही कारण है कि इस योजना में सब प्रकार के लोग सहभागी बने। कर्नाटक में हुई पदयात्रा के पदयात्रियों की सूची इस तथ्य को पूरी तरह से पुष्ट करती है—

श्री नारायण अप्पा : वेलगुम्वा
श्री सीताशरण शर्मा : साम्हो (विहार)
श्री शामपुर गुरु : दोड्डवल्लापुर शहर
श्री एच० आर० संपत कुमारन : मागड़ी शहर
श्री सिद्धवसप्पा : सोमपुर
श्री वी० सी० सिद्धनन्जप्पा : कोरटगेरे शहर
श्री नागभूपणराव
श्रीमती सुमित्राम्मा : वैंगलोर
श्री नन्जप्पा : मरूड, नागसंदरा
श्री टी० ए० दासप्पा : टिपटूर
श्रीमती महादेवी ताई : दोड्डमने
श्री लक्ष्मी नरसिंहय्या : कोलाल
श्रीमती गिरिजा हेगड़े : दोड्डमने
श्री मिश्रीलाल संचेती : वैंगलोर

इस यात्रा में हजारों संकल्प भरे गये, जो अपने आप में एक उल्लेखनीय घटना है।

विमान-दुर्घटना

२३ जून १९८५ को एयर इण्डिया का बोइंग ७४७ जम्बो विमान कनिष्क आयरलैंड के आसपास एटलांटिक महासागर पर दुर्घटनाग्रस्त हो गया। विमान में चालक दल के अतिरिक्त तीन सौ उनतीस यात्री यात्रा कर रहे थे। यह विमान दुर्घटना विश्व की भीषणतम दुर्घटनाओं में तीसरी दुर्घटना है। सन् १९७४ में पेरिस के निकट तुर्की एयर लाइंस की विमान दुर्घटना में तीन सौ अड़तालीस व्यक्ति मारे गये। उसके बाद सन् १९७७ में स्पेन में दो जम्बो विमान दुर्घटनाग्रस्त हुए। उनमें पांच सौ बयासी लोगों की मृत्यु हो गयी।

पचपन करोड़ की लागत से बना यह विमान न्यूयार्क के मोंट्रियाल हवाई अड्डे से रवाना हुआ, उस समय विस्फोटक सामग्री से भरे तीन सूटकेस उसमें होने का पता चला। फौजी कुत्तों की सहायता से वे सभी सूटकेस नीचे उतार लिये गये। उसके बावजूद वह विमान इकतीस हजार फीट की ऊंचाई पर दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इसमें बम विस्फोट की संभावना की गयी। समाचारपत्रों में प्रकाशित संवादों के अनुसार वह विमान एटलांटिक महासागर में गिरा। पनामा के किसी व्यापारिक जहाज ने उसका मलवा देखा। मलवे को बाहर निकालने का काम तत्परता से शुरू किया गया। विमान विशेषज्ञों को यह आशा थी कि विमान के ब्लैक बाक्स (फ्लाइट रिकार्डर) सही-सलामत उपलब्ध हो जाएं तो दुर्घटना के कारणों की जानकारी मिल सकती है। विमान में दो ब्लैक बाक्स होते हैं—फ्लाइट डाटा रिकार्डर और काकपिट वायस रिकार्डर। इनमें विमान की उड़ान संबंधी तथा विमान के भीतर घटित हो रही संपूर्ण सूचनाएं रिकार्ड हो जाती हैं। कनिष्क विमान के ब्लैक बाक्स भी अच्छी स्थिति में उपलब्ध हो गये। उनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर दुर्घटना के कारणों का पता लग भी गया तो क्या उससे भावी विमान दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग में विशेष सतर्कता बरतने का निर्देश देता है।

सन् १९८५ में १५ से २३ जून, नौ दिनों की छोटी-सी अवधि में विमान सेवाओं के क्षेत्र में अपहरण, बमबारी और बम विस्फोट की पांच बड़ी दुर्घटनाएं घटित हो गयीं। इन दुर्घटनाओं के आधार पर विमान सेवाएं स्थगित हो जाएंगी, ऐसा सोचना तो संभव नहीं है। पर इतना जरूर सोचा जा सकता है कि मनुष्य का जीवन कितना नश्वर है? वह अपने भविष्य को बनाने और संवारने के लिए

कितने सपने देखता है। किन्तु उन सपनों की जलसमाधि होने में एक पल का समय भी तो नहीं लगता। एयर इंडिया के उस विमान में कितने किशोर, युवा और प्रौढ़ सपने आसमान में उड़ान भर रहे थे। उन स्वर्णिम सपनों से जुड़े हुए कितने लोग उन स्वप्नद्रष्टाओं से मिलने की आशा में धरती पर प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन लोगों ने ऐसी खबर सुनी होगी तो उनके सारे अरमान चूर-चूर हो गये होंगे। आकांक्षाओं और सपनों की राख के ढेर ने पीछे रहे लोगों के मासूम सपनों को भी कितनी बेरहमी से कुचल दिया होगा। जीवन की नश्वरता का बोध देने वाले शास्त्रों का एक-एक वचन उस समय कितना सार्थक और सही प्रमाणित होता होगा। आखिरी सांस लेते समय उन लोगों की क्या मानसिकता रही होगी, इस बात की कल्पनामात्र से मन में कंपन हो सकता है।

विगत दो-ढाई दशकों में भारतवर्ष में दस विमान दुर्घटनाएं ऐसी हो गयीं, जो विमान-यात्रा में संभावित खतरों के प्रति सचेत करने के लिए पर्याप्त हैं। वे दुर्घटनाएं कब और कहां हुई, उनका विवरण इस प्रकार है—

डकोटा	इंडियन एयर लाइंस	३-६-१९६३	पठानकोट
बोइंग ७०७	एयर इंडिया	२४-१-१९६६	माण्ट लेक
फोकर फ्रेंडशिप	इंडियन एयर लाइंस	७-२-१९६६	कलिहान दर्रा
फोकर फ्रेंडशिप	,, ,, ,,	२१-४-१९६९	खुलना के पास
फोकर फ्रेंडशिप	,, ,, ,,	२९-८-१९७०	सिल्चर के पास
बोइंग ७३७	,, ,, ,,	३१-५-१९७३	दिल्ली
कैरावेल	,, ,, ,,	१२-१०-१९७६	बम्बई
बोइंग ७४७	एयर इंडिया	१-१-१९७८	बम्बई
ए० एम० १२	भारतीय वायु सेना	२०-११-१९७८	लेह
बोइंग ७४७	एयर इंडिया	२३-६-१९८५	आयरलैंड के निकट

आचार्यश्री ने २४ जून को विमान दुर्घटना का संवाद सुना। कुछ लोगों ने बताया कि इसमें उग्रवादियों का हाथ होने का संदेह है। उन दिनों देश भर में उग्रवादियों का जो आतंक छाया हुआ था, उसे देखते हुए कहीं कुछ भी घटित हो सकता था। भारत जैसी धर्मप्राण धरती पर आतंकवाद का बीज किसने बोया और क्यों बोया, कुछ समझ में नहीं आता। भारत का कोई भी प्रांत अखंड भारत का अपना हिस्सा है। उसका विकास-ह्रास और सुख-दुःख समूचे भारत का सुख-दुःख है। एक-एक प्रांत को भारत से तोड़ने की कोई भी योजना न राष्ट्र के हित में हो सकती है और न किसी प्रांत के हित में। भारतीयता या राष्ट्रीयता के एक धागे से बंधे हुए सभी लोग, फिर चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, ईसाई आदि कोई भी क्यों न हों, भारतीय हैं। देश की अखंडता और एकता के विघटित होने से उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी गतिविधियां

विघटित हो सकती हैं ।

विमान दुर्घटना का संवाद सुनकर आचार्यवर ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—आज संसार में हिंसा का जो खुला ताण्डव हो रहा है, वह भयावह है । इससे पहले ऐसा कभी हुआ या नहीं ? इस प्रकार विचार करने मात्र से समस्या का समाधान नहीं हो सकता । संसार भर के अहिंसक और अहिंसा में निष्ठा रखने वाले लोग इस जघन्य कृत्य की भर्त्सना करें । ऐसे जघन्य काम से किसी उद्देश्य की पूर्ति होती है, मैं नहीं मानता । यह तो एक प्रकार का पागलपन है, जो मानवीन मूल्यों को ताक पर रख देने से आदमी के सिर पर सवार हो जाता है । आज अपेक्षा इस बात की है कि हिंसा के लिए आमादा ऐसे अपराधियों को अहिंसक बनाने का प्रयत्न किया जाए । इसके लिए अहिंसक शक्तियां संगठित होकर दीर्घकाल तक काम करें तो कोई निष्पत्ति हो सकती है। इस दुर्घटना में एक साथ जितने व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, मैं उन सबके आध्यात्मिक विकास की कामना करता हूं तथा चाहता हूं कि उनके पारिवारिकजनों का मनोबल इतना पुष्ट हो, जिससे वे इस सदमे को समभाव से सहन कर सकें ।

प्रेरक प्रसंग

आचार्यश्री का सान्निध्य हर पल प्रेरक और उद्बोधक होता है। प्रशासन और लोकप्रबोधन—इन दो महत्त्वपूर्ण दायित्वों का जागरूकता से वहन करते हुए आप जिन-जिन कामों का संपादन करते हैं, प्रथम बार सम्पर्क में आने वालों को अभिभूत कर देते हैं। निरन्तर आपके आस-पास रहने वाले लोग तो आपके पुरुषार्थी जीवन से अवगत रहते हैं। इसलिए उन्हें कुछ भी अटपटा नहीं लगता । उन दिनों आपके सान्निध्य में भगवती सूत्र का सामूहिक अध्ययन चल रहा था । बीसों साधु-साध्वियां उस अध्ययन में सम्मिलित थे। २८ जून को मध्याह्न में अध्ययनकाल के बीच कुछ प्रेरक प्रसंग उपस्थित हो गए। यहां दो प्रसंगों का उल्लेख किया जा रहा है ।

व्यक्ति की मनोवृत्ति सुविधावादी होती है। उसे जितनी सुविधा मिलती है, कठोर जीवन जीने का अभ्यास कम हो जाता है। इस तथ्य को उजागर करते हुए आचार्यवर ने कहा—पचास वर्ष पहले यहां किसी घर में पंखा देखने को भी नहीं मिलता था । छोटे-बड़े सभी परिवारों के लोग विद्युतरहित मकानों में रहते थे । गर्मी, उमस सब कुछ सहन करते थे। आज स्थिति बदल गई है। अब तो छोटे से छोटे घर में भी पंखे और बिजली की सुविधा रहती है। हमारे साधु-साध्वियों की मनःस्थिति भी सुविधावाद की ओर झुक रही प्रतीत होती है। प्राचीनकाल में साधु वस्त्र नहीं धोते थे, पारणा के अतिरिक्त प्रातः गोचरी नहीं करते और संध्या

के समय गर्म भोजन नहीं लेते थे। इन सब चीजों को लेकर किसी के मन में कोई आकर्षण नहीं था। पर अब जबकि ये प्रवृत्तियां शुरू हो गई हैं, इनसे छुटकारा पाना बहुत मुश्किल प्रतीत होता है। साधु-जीवन में इस प्रकार की परवशता नहीं होनी चाहिए।

दूसरा प्रसंग

किसी भी योजना की क्रियान्विति के लिए चार बातें जरूरी हैं—आस्था, संकल्प, निश्चय और उपाय। आस्था वह संजीवनी है, जो निराश व्यक्ति के मन में आशा के दीप संजो देती है। आस्थापूर्वक उपाय खोजने की मनोवृत्ति सफलता का सिंहद्वार है। साधना के क्षेत्र में भी परंपरागत जीवनशैली ही पर्याप्त नहीं है। उसमें कुछ नया जुड़ना चाहिए और समय के अनुरूप उपायों की खोज होनी चाहिए।

आचार्यप्रवर द्वारा प्रदत्त इस दिशा-दर्शन के साथ एक बात जोड़ते हुए युवाचार्य श्री ने कहा—आज सबसे बड़ी कमी हुई है प्रशिक्षण की। जब तक ट्रेनिंग का क्रम व्यवस्थित नहीं रहता, प्रयोग और परिणाम की बात गौण हो जाती हैं।

आचार्यश्री उस समय पूरी तरह से आत्मकेन्द्रित हो गए। भारत की सीमाओं से बाहर अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान को सक्रिय करने के अपने स्वप्न को मोड़ देते हुए आपने कहा—कभी-कभी मेरी यह प्रबल इच्छा होती है कि मैं बाहर के कार्यों को छोड़ एक बार अपने धर्मसंघ को ट्रेनिंग देने का काम करूं। सात सौ साधु-साध्वियां और लाखों श्रावक-श्राविकाएं हैं। इनमें प्रयोग के प्रति आस्था का जागरण करना बहुत आवश्यक प्रतीत हो रहा है। यह काम तभी हो सकता है, जब हम व्यापक से सीमित बनें, एक बार पीछे मुड़कर देखें और पीछे हटें। रणनीति में मोर्चे से डटकर पीछे हटना भी जरूरी समझा गया है। क्योंकि यह भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही किया जाता है।

हिटलर ने योरोप पर आक्रमण किया। उस समय हालैण्ड-पोलैण्ड आदि देश समाप्त हो गए। उसने इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया। पहले वहां चंबरलेन प्रधानमंत्री था, वह सफल नहीं हो सका। फिर उसके स्थान पर चर्चिल प्रधानमंत्री बना। चर्चिल कुशल कूटनीतिज्ञ था। वह रणनीति में पूरा माहिर था। उसने मोर्चे से पीछे हटना शुरू किया, पर अपनी सेना को एक ही निर्देश दिया कि वे सफलतापूर्वक पीछे हट रहे हैं। पीछे हटते समय भी उसके सामने एक आदर्श था। विक्ट्री का प्रतीक उसके लक्ष्य का ध्रुवीकरण था। इस क्रम से आखिर उसे विजय मिली और वह सफल हो गया।

उक्त तथ्य को दूसरी ऐतिहासिक घटना के साथ योजित कर आचार्यवर ने आगे कहा—हमारे देश में कुछ शताब्दियों पहले मुसलमान शासक राणा प्रताप से लड़े। राणा की सेना में भील थे। वे मगरे (हाड़) के ऊपर से लड़ रहे थे और मुसलमान सैनिक नीचे मैदान में थे। ऊपर से हुई पत्थरों और तीरों की मार के आगे वे टिक नहीं सके। हार सामने देखकर वे पीछे हटने लगे। भील भी उनके पीछे मगरे से नीचे उतरते गए। जब भील मुस्लिम सेना को पीछे ढकेलते-ढकेलते समतल मैदान में आ गए तब मुसलमानों ने फिर से उन पर वार करना शुरू कर दिया। उस समय वे पीछे हटकर मगरे पर चढ़ जाते तो राणा की हार नहीं होती। किन्तु उन्होंने सोचा—हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय के लिए पीछे हटना सबसे बड़ा अपमान है। पीछे हटने की रणनीति का आलम्बन न लेने के कारण राणा प्रताप की सेना अपनी ही धरती पर मात खा गई।

इस समूची चर्चा का उपसंहार करते हुए आचार्यश्री ने कहा—अणुव्रत की दृष्टि से हम व्यापक बने। इससे हमारे धर्मसंघ को लाभ हुआ, पर लाभ के साथ कई दृष्टियों से कुछ कमियां भी आ गईं। अणुव्रत के काम में हमें अच्छी सफलता मिली है। इस सफलता के साथ एक बार हम पीछे भी हटें ताकि फिर दुगुने वेग से आगे बढ़ सकें।

आचार्यश्री द्वारा किया हुआ यह विश्लेपण कितना सटीक और सजीव है। कोई जागरूक धर्मनेता ही इतनी ईमानदारी के साथ अपनी गतिविधियों का विश्लेषण कर सकता है। आचार्यश्री के मन में समग्र विश्व की मानव जाति के लिए काम करने की धुन है। पर उस धुन में वे उस धरती को कमजोर देखना नहीं चाहते, जिस पर वे खड़े हैं। अपने धर्मसंघ को दुर्बल और निस्तेज बनाकर संसार का भला करने की बात किसी भी स्थिति में वांछनीय नहीं हो सकती। क्योंकि अक्षम और निस्तेज धर्मसंघ के सदस्य न तो अपना हित साध सकते हैं और न संसार को ही कुछ दे सकते हैं। इस दृष्टि से धर्मसंघ के आन्तरिक पक्ष को पुष्ट करने के लिए प्रयोगधर्मिता की बात सामयिक और उपयोगी ही नहीं, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आस्था के सामने पदार्थ तुच्छ

भारतीय संस्कृति में देव, गुरु एवं धर्म श्रद्धा के मूलभूत केन्द्र माने जाते रहे हैं। सुख के समय कोई व्यक्ति इनका स्मरण करे या नहीं, दुःख के क्षण उपस्थित होने पर तो मन अनायास ही इन्हीं पर जाकर टिकता है। कुछ व्यक्ति तो इतने आस्थाशील होते हैं कि किसी भी अवांछित घटना को वे गुरु के नाम पर सहजता से सहन कर लेते हैं। इस क्षेत्र में स्त्री और पुरुष—दोनों के अनुभव एक जैसे

होते हैं। फिर भी महिलाओं की श्रद्धा कुछ अधिक ही प्रभावी प्रतीत होती है। इस सन्दर्भ में उनके जीवन प्रसंग संकलित किए जाएं तो बहुत चामत्कारिक सामग्री प्राप्त हो सकती है। यात्रा-विवरण में उस सामग्री-संकलन की प्रासंगिकता नहीं है। किन्तु यात्रा से संबद्ध घटनाओं के आकलन का लोभ संवरण करना भी कठिन है। इसलिए यहां एक-दो प्रसंग उल्लिखित किए जाते हैं।

श्रीमती शान्ता बहन खाटू निवासी श्री घीसूलाल जी मेहता की धर्मपत्नी हैं। जोधपुर के भण्डारी परिवार में जन्मी बहन शान्ता प्रारंभ से ही धार्मिक संस्कारों से समृद्ध रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से वह किशनगंज (बिहार) में रह रही हैं। सन् १९८५ के आमेट चातुर्मास में वह अपने पति के साथ आचार्यवर के दर्शन करने आ रही थी। बीच में वह दो दिन खाटू ठहरी। वहां किशनगंज से दिया हुआ एक पत्र उसे मिला। पत्र में लिखा था कि उसके विदा होने के बाद मकान के ताले टूट गए हैं। क्या गया और क्या रहा, कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। संभव हो तो एक बार लौटकर आ जाओ।

पत्र पढ़कर भी शान्ता बहन का चित्त चंचल नहीं हुआ। वह बोली—मैं गुरुदेव की उपासना करने जा रही हूं। मेरे मन में गहरा विश्वास है कि मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ है। कुछ रिश्तेदारों ने उसको सुझाव दिया कि दर्शन बाद में हो जाएंगे। अभी एक बार मकान को संभाल लेना चाहिए। यह बात सुनकर उसने कहा—देखिए, मैं प्रतिवर्ष दर्शन करने आती हूं। उस समय हाथों की चूड़ियां और गले की चैन भी छोड़कर आती हूं। इस बार मैं किसी भी निमित्त से चूड़ियां और चैन पहनकर आई हूं। इसका मतलब यह है कि मेरी नियति स्वयं सजग है। वहां जो कुछ है, उसमें से कुछ चला भी गया है तो मैं सोचती हूं कि वह मेरा नहीं था। यदि मेरा होता तो उसे कोई कैसे ले जा सकता था। दूसरी बात यह है कि इस समय मैं वहां होती तो आर्तध्यान होता। यहां मेरा मन उस घटना से पूरी तरह अप्रभावित है। इसे मैं गुरुकृपा का अवदान मानती हूं।

इस प्रकार स्वस्थ चिन्तन से अपने मन को आश्वस्त कर वह आमेट पहुंच गई और अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उसने वहां रहकर उपासना का लाभ लिया। आचार्यश्री को जब इस घटना की जानकारी मिली तो आपने कहा—आस्था जीवन का अमर धन है। उसके सामने पदार्थ तुच्छ लगने लगते हैं।

तप और जप का चमत्कार

मोमासर निवासी चैनराजजी संचेती का स्वर्गवास होने पर उनका पूरा परिवार आध्यात्मिक सम्बल प्राप्त करने के लिए जून को कून्दवा में आचार्यवर के दर्शन

करने आया । चैनराजजी की पत्नी रतनी बहन ने अपने आध्यात्मिक प्रयोग और उससे घटित चमत्कार की चर्चा की । उसका सारांश इस प्रकार है— चैनराजजी काफी समय से अस्वस्थ थे। २७ नवम्बर १९८४ को उन्हें कलकत्ता ले जाया गया । वहां उनकी डाक्टरी जांच हुई । डॉक्टर की रिपोर्ट में कैंसर का होना बताया गया । डॉक्टर ने यह बात संचेतीजी के नाती राजेन्द्रकुमार को बताई, जो स्वयं मेडिकल साइंस पढ़ रहा था । उसने चैनराजजी के साले माणकचन्दजी पटावरी को बीमारी का संकेत दे दिया । कुछ समय बात गुप्त रखी गई । आखिर उन्होंने बीमारी बढ़ने की आशंका से सारी बात अपनी बहन रतनी बाई को बता दी । रतनी बहन बहुत श्रद्धालु श्राविका है । उसने दृढ़ता के साथ कहा—भाई साहब ! डॉक्टर अपना काम कर रहा है। हमें भी कुछ करना चाहिए। देव, गुरु और धर्म का सहारा बड़ा संबल होता है । हमें इस संबल का उपयोग करना चाहिए । आप उचित समझें तो मैं आज से तेला (तीन दिन की तपस्या) करूं और आप सब आचार्य भिक्षु के नाम का जप करें। इस वार्तालाप के बाद उन्होंने तत्काल चौविहार तेले की तपस्या शुरू कर दी। जप का क्रम भी चलने लगा।

एक ओर डॉक्टरी उपचार हो रहा था । दूसरी ओर आध्यात्मिक उपचार शुरू हो गया । कुछ समय बाद उनके बाकी टेस्ट करवाए गए। उनकी रिपोर्ट आश्चर्यजनक थी। उसमें कैंसर का कोई लक्षण नहीं था । डॉक्टर और परिजन सब विस्मित हो गए । सबने महसूस किया कि यह तप और जप का चमत्कार है। अन्यथा कैंसर जैसी असाध्य बीमारी सुसाध्य कैसे बन गई। इस घटना के कई महीनों बाद संचेतीजी का स्वर्गवास हो गया । जन्म लेने वाले व्यक्ति को एक दिन जाना ही होता है । वे गए, यह एक नियति थी। पर उनके परिवार में तप और जप के प्रति आस्था और अधिक गहरी हो गई।

चिन्तन के क्षण ताजगी देते हैं

जून का आखिरी दिन । रात को ग्यारह बजे का समय । आचार्यश्री अपने कक्ष में पट्ट पर आसीन थे। उनके सान्निध्य में कुछ साधु और दो-चार भाई बैठे हुए थे । उसी समय सीताशरण शर्मा और मोतीलाल एच० रांका भी वहां पहुंच गए । शर्माजी ने आते ही कहा—आचार्यश्री ! आज तो आपके पास आने की इच्छा नहीं थी । क्यों ? आचार्यवर के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा— आप दिन भर लोगों से घिरे रहते हैं । रात को भी अवकाश नहीं मिलता । ग्यारह बज गए हैं । इतना विलम्ब होने के बाद अब आपके पास कैसे बैठें ? आचार्यवर ने अपनी सहज मुस्कान बिखेरते हुए कहा—मैं इसे स्वयं पर गुरुओं की कृपा मानता

हूं। मैं कितना ही श्रम करूं, मन या दिमाग पर कोई भार नहीं होता। दिन भर कठोर श्रम से बाद आप जैसे लोगों के साथ ये हल्के-फुल्के चिन्तन के क्षण मुझे नयी ताजगी देते हैं। आचार्यवर के इस छोटे से वाक्य में जीवन का कितना गहरा दर्शन छिपा हुआ है, इसे सुविज्ञ लोग ही जान सकते हैं।

तपोयज्ञ का प्रारम्भ

जुलाई का प्रथम दिन चातुर्मासिक चतुर्दशी का दिन था। जैन समाज के लिए इस दिन से धर्माराधना का विशेष क्रम शुरू हो जाता है। सामान्यत: धर्म जीवन के हर क्षण में जीने का तत्त्व है। पर अप्रमाद की स्थिति तक पहुंचे बिना पल-पल जागरूकता की बात संभव नहीं है। इसलिए कुछ विशेष प्रसंगों पर धर्माराधना के रथ को गति देने का प्रयत्न किया जाता है। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी का दिन इस दृष्टि से अतिरिक्त महत्त्व का दिन है। क्योंकि सावन और भाद्रपद मास में त्याग-तपस्या का जो रंग चढ़ता है, उसका प्रारंभ चतुर्दशी से हो जाता है। मास खमण तप, पाक्षिक तप, अठाई तप, एकान्तर तप, बेला, तेला, पंचोला आदि व्यक्तिगत तपस्याओं के साथ पचरंगी, सतरंगी, नौरंगी आदि सामूहिक तप:साधना का उपक्रम भी व्यक्ति को भीतर और बाहर—दोनों ओर से आन्दोलित करने वाला होता है। पूरे जैन समाज में देश भर में हुई वार्षिक तपस्याओं का व्यवस्थित आकलन किया जाए तो वह विश्व इतिहास की विशेष उल्लेखनीय घटना हो सकती है। जैन लोगों में तेरापंथ समाज बहुत छोटा समाज है। फिर भी तपस्या की दृष्टि से इसने जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं, चौंकाने वाले हैं। सदा की भांति इस वर्ष भी चातुर्मास के प्रारंभ के साथ ही लम्बी तपस्या का दौर शुरू हो गया।

दीर्घ तपस्विनी साध्वीश्री पन्नांजी को आमेट चातुर्मास में आचार्यवर की सेवा में रहने का सौभाग्य मिला था। इस अवसर का लाभ उठाकर वे लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की चौथी परिपाटी करना चाहती थीं। उन्होंने अपने अन्त:करण की भावना गुरुदेव के सामने प्रस्तुत की। तपस्या की स्वीकृति पाने के लिए आग्रह भरा अनुरोध किया। किन्तु आचार्यवर ने उस कठोर तप की अनुज्ञा नहीं दी। आखिर उन्होंने आछ के आगार पर लम्बी तपस्या प्रारंभ कर दी।

साध्वी स्वयंप्रभाजी एक युवा साध्वी हैं। कुछ वर्षों से उनके मन में भी लम्बी तपस्या करने की भावना बल पकड़ रही थी। अमृत महोत्सव के मंगल अवसर पर वे आछ के आगार पर चातुर्मासिक तप करना चाहती थीं। उनके विशेष अनुरोध पर आचार्यवर ने उनको ५१ दिनों की तपस्या का संकल्प करवा दिया। साध्वी सुमतिश्रीजी ने भी आछ के आगार से लम्बी तपस्या शुरू कर दी।

साध्वियों की तपस्या का यह क्रम कहां तक चला, इसका विवरण यथास्थान आगे किया जाएगा।

आचार्यवर के सान्निध्य में कुछ सन्त भी तपस्या करने के लिए तत्पर थे। वयोवृद्ध मुनिश्री अर्जुनलालजी ने एक साथ तीस दिनों की तिविहार तपस्या स्वीकार कर दृढ़ मनोवल का परिचय दिया। मुनि लाभरुचिजी ने आठ के आगार पर पन्द्रह दिन की तपस्या स्वीकार की और मुनि श्रेयांस कुमारजी ने तिविहार अठाई तप किया। एकान्तर तपस्या करने वाले साधु-साध्वियों के नामों की सूची तो काफी लम्वी है। आयम्विल और अन्य स्फुट तपस्याओं के आंकड़े भी उत्सासवर्धक हैं।

दो सौ छब्बीसवां स्थापना दिवस

२ जुलाई, आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा का दिन। तेरापंथ स्थापना दिवस का कार्यक्रम। २२५ वर्ष पहले मेवाड़ की धरती पर, पथरीली चट्टानों के बीच केलवा की अंधेरी ओरी में तेरापंथ धर्मसंघ की नींव लगी थी। उस दिन आचार्य भिक्षु को जो आलोक मिला, वह आज लाखों लोगों के लिए आलोकदीप वना हुआ है। प्रारंभकाल में जो रास्ता ऊवड़खावड़, कंटकाकीर्ण और आशंकाओं से भरा हुआ था, वह अव सम, प्रशस्त और निरापद राजपथ वन गया है। इस पथ पर चलने वाले व्यक्ति अपनी मंजिल की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। आज तेरापंथ तैजस की आराधना का सशक्त केन्द्र बन रहा है। इसका कारण है उसका असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण। इसी वात को ध्यान में रखकर आमेट में तेरापंथ स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में मेवाड़क्षेत्रीय विद्वानों की एक गोष्ठी बुलाई गई। गोष्ठी में चर्चा के विन्दु थे—तेरापंथ एक असाम्प्रदायिक धर्म।

भारतीय धर्म और संस्कृति में तेरापंथ का योगदान गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए उदयपुर एवं चित्तौड़ से अनेक विद्वान आए। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री मीठालालजी मेहता ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—मैं समय-समय पर आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के वारे में सुनता आ रहा हूं। पर दर्शनों का सौभाग्य प्रथम वार ही मिला है। इसलिए मैं यहां के आयोजकों का आभारी हूं। मैंने धर्म के वारे में आचार्यश्री के विचारों को पढ़ा है। उसके आधार पर मैं यह समझ पाया हूं कि धर्म कोई लवादा नहीं है, जिसे जन्म के साथ ओढ़ लिया जाए। यह तो अन्तः विचारों की अभिव्यक्ति है। मेरा सम्प्रदाय से कोई विरोध नहीं है। सम्प्रदाय एक सशक्त आलम्वन है। सम्प्रदाय से जुड़कर भी धर्म अपनी व्यापकता सकती। नौका की सीमा स्वीकार करनी ही होगी। धर्म की आराधना के लिए सीमा को मैं आवश्यक मानता हूं। नदी पार करनी है तो छलांग नहीं लगाई जा

न खोए तो कोई कठिनाई नहीं होती। कठिनाई वहां होती है, जहां वैचारिक स्वतंत्रता से परे हटकर धर्म को जन्म के साथ ओढ़ लिया जाता है।

डॉ० कमलचन्द सोगानी, डॉ० कुन्दनलाल कोठारी, साध्वी कनकश्रीजी आदि अनेक वक्ताओं ने निर्धारित विषयों पर अपने वक्तव्य दिए। मुमुक्षु बहनों, समणियों एवं साध्वियों ने श्रद्धा से ओत-प्रोत गीतों के द्वारा आचार्य भिक्षु के प्रति अपनी आंतरिक आस्था प्रकट की।

धर्म किसी की बपौती नहीं

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने विचार रखते हुए कहा—हम यह आरोपित कर देते हैं कि तेरापंथ की स्थापना आचार्य भिक्षु ने की। पर वास्तविकता यह है कि उन्होंने स्थापना की नहीं, स्वतः हो गई। तीर्थंकर तीर्थ का प्रवर्तन करते नहीं, होता है। तीर्थंकर जब कैवल्य की भूमिका पर पहुंचते हैं, उनके पीछे समाज खड़ा हो जाता है। आचार्य भिक्षु त्याग की भूमिका पर खड़े हुए और उनके साथ समाज जुड़ गया। उन्होंने मुख्य रूप से त्याग और अनुशासन—इन दो बातों पर बल दिया। धर्म और अधर्म को उन्होंने दो शब्दों में परिभाषित किया—त्याग धर्म है, भोग अधर्म है। यह उनके अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है। आचार्य भिक्षु के विचारों को किसी भी कोण से पढ़ा जाए, उसके आगे-पीछे, दाएं-बाएं त्याग के ही दर्शन होंगे।

संघ की सुव्यवस्था के लिए आचार्य भिक्षु ने अनुशासन को महत्त्व दिया। अनुशासनहीन परम्परा उन्हें किसी भी स्थिति में मान्य नहीं थी। उन्होंने अपने संघ का संविधान आचारनिष्ठा और अनुशासननिष्ठा को केन्द्र में रखकर निर्मित किया। उन्होंने धर्म को सम्प्रदाय में कैद नहीं किया। इसका प्रमाण है उनकी कृति 'मिथ्यादृष्टि की चौपई।' सम्यक् दर्शन के बिना कोई भी व्यक्ति मोक्षमार्ग का आराधक नहीं हो सकता। इस प्रचलित धारणा की उन्होंने तीखी आलोचना की। वे धर्म को किसी की बपौती नहीं मानते थे। उनका अभिमत था कि कोई व्यक्ति किसी धर्म को माने या नहीं, यदि उसका आचरण ऊंचा और पवित्र है तो वह निश्चित रूप से मोक्ष धर्म का अधिकारी है। उनकी इस व्याख्या के आधार पर यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है कि धर्म किसी भी सम्प्रदाय की सीमा में आबद्ध नहीं है।

तेरापंथ : असाम्प्रदायिक धर्म का उदाहरण

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में तेरापंथ धर्मसंघ की असाम्प्रदायिक नीतियों

का विश्लेषण करते हुए कहा—तेरापंथ की परम्परा विष पीने की परंपरा रही है, विष-वमन की नहीं। स्वयं विषपान कर दूसरों को अमृत पिलाने वाला धर्मसंघ ही कोई बड़ी क्रान्ति कर सकता है। तेरापंथ का इतिहास धर्मक्रान्ति का इतिहास है, असाम्प्रदायिक धर्म की स्थापना का इतिहास है। धर्मसंघ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु की यह नीति हमारे लिए सबसे बड़ा आलम्बन है।

आचार्य भिक्षु के नाम में निहित चामत्कारिक शक्ति की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा—हमारे सामने जब भी कोई कठिनाई आती है, इनकी स्मृति करते ही वह समाप्त हो जाती है। ऐसी सैकड़ों घटनाएं, जिन्हें सुनने मात्र से विस्मय होता है, भिक्षु स्वामी के नाम से घटित हुई हैं। उन्होंने जिस रूप में धर्म संघ का प्रवर्तन किया, वह इतिहास की एक विरल घटना है। हमें इस बात का गौरव है कि तेरापंथ के दो सौ पचीस वर्षों का पूरा इतिहास सुरक्षित है। ऐसे गौरवशाली धर्मसंघ के प्रति हम पूरे मन से आस्थाशील बने रहें। इसके साथ हमारा प्रयत्न भी वैसा हो, जो धर्मसंघ को अधिक गतिशील बना सके। आज के इस ऐतिहासिक प्रसंग पर मैं आचार्य भिक्षु के प्रति प्रगाढ़ आस्था व्यक्त करता हूं और चाहता हूं कि तेरापंथ निरन्तर असाम्प्रदायिक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित रहे।

स्वागताध्यक्ष श्री कन्हैयालाल कच्छारा ने तेरापंथ स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में दो सौ छप्पन संकल्प-पत्र समर्पित किए। श्री भीमराजजी कच्छारा ने आगन्तुक अतिथियों को साहित्य उपहृत किया। कार्यक्रम का संचालन श्री शान्तिलाल डांगी ने किया।

मध्याह्न में आचार्यश्री के सान्निध्य में साधु-साध्वियों और आगन्तुक विद्वानों की एक महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी आयोजित थी। संगोष्ठी का विषय था—जैन धर्म का प्रचार कैसे हो? इस विषय पर कई विद्वानों ने मुक्तभाव से अपने विचार प्रस्तुत किए। विचार-चर्चा में उभरी हुई जिज्ञासाओं का समाधान युवाचार्यश्री ने किया।

उक्त संगोष्ठी के समानान्तर 'मंत्र-दीक्षा' का कार्यक्रम था। पांच से नौ वर्ष तक की उम्र के सैकड़ों बच्चे प्रवचन-पण्डाल में व्यवस्थित रूप में बैठे थे। आचार्यवर ने उनको मंत्र-दीक्षा के संस्कार से संस्कारित किया। चातुर्मास व्यवस्था समिति की ओर से प्रत्येक बच्चे को मंत्र दीक्षा की पुस्तक एवं माला दी गई। आचार्यवर ने बच्चों को संस्कारी बनाने तथा उनकी ज्ञानवृद्धि के लिए निरन्तर 'ज्ञानशाला' के संचालन पर बल दिया। क्योंकि संस्कारों को पुष्ट करने के लिए केवल मंत्र दीक्षा ही पर्याप्त नहीं है, उनके ज्ञान का विकास होना भी जरूरी है।

संस्कार-निर्माण का उपक्रम

अमरीका संसार का समृद्ध देश है। समृद्धि ने वहां के आदमी को आत्मनिर्भर

तो बनाया है, पर पारिवारिक रिश्तों को चरमरा दिया है। वहां सम्बन्धों में न आत्मीयता है और न स्थायित्व है। और क्या, उस देश में मासूम बच्चों का पालन-पोषण भी आत्मीय सम्बन्ध की भूमिका पर नहीं होता। कुछ विचारकों की दृष्टि में अमरीकी समाज स्वपरक होता है। मैं, मेरी जिन्दगी, मेरी खुशी और मेरी इच्छा—इसी में व्यक्ति का सब कुछ सिमटा हुआ है। वहां का बच्चा भी इस मेरेपन की घुट्टी पीकर आंख खोलता है। उस देश में बच्चे को संभालने के लिए उसकी मां के पास समय नहीं होता। वह 'डे केयर सेण्टर' और 'बेबी सिटर' में बड़ा होता है। इन शिशु देखभाल केन्द्रों में न तो अपनत्व के रस का स्रोत बहता है और न ही उचित अनुशासन होता है। फलतः बच्चों का विकास सही ढंग से नहीं हो पाता। सच तो यह है कि उन बच्चों से उनका बचपन छिन जाता है। बचपन का जो सौंदर्य उनके मासूम चेहरों पर होना चाहिए, वह दुर्लभ हो जाता है। क्योंकि बच्चों को समझ विकसित होने के साथ ही अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चिन्ता सताने लगती है। यौवन की दहलीज पर पांव रखने से पहले ही वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन जाते हैं। यह एक प्रकार का स्वावलम्बन उन्हें हर दृष्टि से आत्मकेन्द्रित बना देता है। ऐसी स्थिति में पारम्परिक संस्कार और घर का वातावरण उनके लिए अकिंचित्कर होकर रह जाता है।

भारत में भी पश्चिम का अनुकरण होने लगा है। आधुनिक बननें या कहलाने की यह ललक पारिवारिक सम्बन्धों में दरार पैदा कर रही है। विघटित परिवारों में नानी-दादी की कहानियों से सीधे संक्रान्त होने वाले संस्कार कहां से पुष्ट होंगे। इसीलिए आज संस्कार निर्माण के लिए कुछ नयी प्रक्रिया सोची जा रही है। संस्कार केन्द्र और शिविर—ये दो ऐसे माध्यम हैं जो शिशुओं, किशोरों और वयस्कों को जीवन की नयी दिशा दे सकते हैं। तेरापंथ धर्मसंघ में पिछले दो-तीन दशकों से अनेक प्रकार के शिविरों का समायोजन हो रहा है। उनमें एक शिविर होता है पारमार्थिक शिक्षण संस्था की मुमुक्षु बहनों, उपासिकाओं, समणियों और अध्यापकों का। इस शिविर में संस्कार-निर्माण और व्यक्तित्व-निर्माण की दृष्टि से अनेक प्रयोग करवाए जाते हैं। यह शिविर युवाचार्यश्री के निर्देशन में चलता है।

चुपड़े को क्या चुपड़ा जाए

आमेट में आचार्यवर के पदार्पण के साथ ही शिविर प्रारंभ हो गया। २९ जून को आचार्यश्री शिविर स्थल पर पधारे। आचार्यवर ने शिविरार्थी बहनों को सम्बोधित करते हुए कहा—चुपड़े को क्या चुपड़ा जाए? साधिकाओं की क्या साधना? तुम लोगों का समूचा जीवन ही शिविर के रूप में होना चाहिए। युवाचार्यश्री ने आचार्यवर के अन्तर्मन को पढ़ते हुए साधना का एक प्रारूप निश्चित

किया। उन्होंने वताया—कल मध्याह्न गोष्ठी में साधना की तीन भूमिकाएं निर्धारित की गईं—

१. अनुशासन की भूमिका
२. संयम की भूमिका
३. संवर की भूमिका।

प्रथम श्रेणी में ऊपर का अनुशासन जरूरी होगा। दूसरी भूमिका में आत्मानुशासन या आत्मनियंत्रण का प्रयोग होगा और तीसरी भूमिका जिसकी ओर अभी आचार्यश्री ने संकेत किया, वह है संवर की भूमिका। भीतर और वाहर से अनुशासित रहने वाले व्यक्ति के जीवन में संवर फलित होता है। उसके लिए अतिरिक्त रूप से किसी प्रकार की साधना नहीं करनी होती।

उपदेश नहीं, प्रयोग

३ जुलाई को शिविर का समापन समारोह था। मुनि किशनलालजी ने शिविर की चर्या और गतिविधियों के वारे में जानकारी दी। युवाचार्यश्री ने शिविर की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा—शिविर का मूलभूत उद्देश्य है स्वभाव-परिवर्तन और नयी आदतों का निर्माण। आज के युग की वड़ी समस्या है आत्म-निरीक्षण का अभाव। आदमी दूसरों को वहुत देखता है, पर स्वयं को नहीं देखता। वह जानवूझकर स्वयं को नहीं देखता, ऐसी वात नहीं है। उसका स्वभाव ही ऐसा वन गया। ऐसी स्थिति में आत्मनिरीक्षण की शक्ति को जगाने के लिए उपदेश की नहीं, प्रयोग की अपेक्षा है। भगवान् महावीर ने कहा नहीं, स्वयं प्रायोगिक जीवन जीया। आचार्यश्री भी अपने जीवन में नये-नये प्रयोग करते रहते हैं। आचार्यवर की पावन सन्निधि प्रयोग रूप को विकीर्ण कर रही है। मैं आशा करता हूं कि इन अभ्यास पद्धतियों से हमारा धर्मसंघ अधिक तेजस्वी और यशस्वी वनेगा।

आचार्यप्रवर ने शिविर का मूल्यांकन करते हुए कहा—संस्था परिवार के लिए यह शिविर अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुआ है। हमें समय-समय पर ऐसे शिविरों का समायोजन करना चाहिए। मुमुक्षु वहनें उपासिकाएं और समणियां संपूर्ण श्रद्धा और समर्पण का भाव लेकर हमारे पास आती हैं। वे अगर अपने स्वभाव को नहीं वदल पाती हैं अथवा उनमें वैराग्य की वृद्धि नहीं होती है, उसमें प्रशिक्षण कीं कमी भी एक कारण है। इस कमी की पूर्ति के लिए हमें विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

हर व्यक्ति के लिए ध्यान की ट्रेनिंग जरूरी

३० मार्च १९८५ को आचार्यप्रवर आसीन्द ग्राम में पंचायत समिति के भवन में विराज रहे थे। प्रेक्षाध्यान के प्रवक्ता, अध्येता और विशिष्ट साधक श्री मोहनलालजी कठौतिया अचानक दिल्ली से वहां आये। उनके आने का उद्देश्य था विदेश यात्रा से पूर्व आचार्यप्रवर से मंगल आशीर्वाद प्राप्त करना। उनकी वह यात्रा आमोद-प्रमोद या भ्रमण की दृष्टि से नहीं, अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान से विदेशी लोगों को परिचित कराने के उद्देश्य से हो रही थी। श्री कठौतियाजी ने प्रेक्षाध्यान को विदेशों में पहुंचाने का एक सपना संजोया था। उनका वह सपना साकार होने जा रहा था, इस बात की उन्हें अतिरिक्त प्रसन्नता थी। तुलसी अध्यात्म नीडम् के निदेशक श्री धर्मानन्दजी भी विदेशयात्रा में श्री कठौतियाजी के साथ जाने वाले थे। वे भी दिल्ली से आसीन्द आये थे। उन्होंने अपनी यात्रा की पूर्व तैयारी की जानकारी दी। प्रेक्षाध्यान संबंधी साहित्य और फोल्डर आदि दिखाये तथा आचार्यवर से अनुरोध किया कि वे उन्हें ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे वे अपने लक्ष्य में पूरी तरह सफल हो सकें। आसीन्द के लोगों ने उनकी यात्रा के प्रति मंगल कामना व्यक्त करते हुए उनका स्वागत किया।

आचार्यप्रवर ने श्री कठौतियाजी को लक्षित कर कहा—आज हमारे सामने एक सत्तासी वर्ष के तरुण और उत्साही व्यक्ति बैठे हैं। इन्होंने प्रेक्षाध्यान के प्रयोग से अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन किया है। इनके अतीत और वर्तमान जीवन की कोई तुलना नहीं हो सकती। पर यह निश्चित है कि इन्होंने अपने भीतर और बाहर को पूरी तरह से बदल डाला है। गहरी निष्ठा, लगन और उत्साह से ये ध्यान-साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर गति कर रहे हैं। इनकी यह यात्रा पश्चिम जगत् में प्रेक्षाध्यान व अणुव्रत के मिशन को व्यापक बनाने वाली होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

गुरुदेव का मंगल आशीर्वाद प्राप्त कर श्री कठौतियाजी और धर्मानन्दजी पुनः दिल्ली लौट गये। अप्रैल के चौथे सप्ताह में उन्होंने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। मई और जून तक उन्होंने लगभग सवा दो माह का समय पश्चिम की धरती पर बिताया। उस काल में उन्होंने सामूहिक और व्यक्तिगत रूप में अनेक विदेशी लोगों को प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करवाया। अपनी विदेशयात्रा में कल्पना से अधिक सफलता प्राप्त कर वे स्वदेश लौट आये। भारत आते ही उन्होंने ४ जुलाई को आमेट में आचार्यश्री के दर्शन किये। ५ जुलाई को प्रातःकालीन कार्यक्रम में दोनों महानुभावों ने अपनी विदेश-यात्रा के अनुभव और संस्मरण सुनाये।

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा—जैन धर्म के सिद्धान्त इतने

महान और उपयोगी हैं, जिनकी समूचे विश्व को जरूरत है। जैन मुनि अपनी सीमाओं, मर्यादाओं के कारण सब जगह जा नहीं सकते। गृहस्थ श्रावक जाते हैं, उन्हें अपने व्यवसाय से समय नहीं मिलता। किसी के पास समय हो भी तो उन्हें जैन दर्शन का पूरा ज्ञान नहीं होता। ऐसी स्थिति में महावीर के सार्वभौम चिन्तन को विश्व मानव तक कौन पहुंचाए ?

आचार्यवर ने विदेशयात्रा कर लौटे दोनों महानुभावों से यह अपेक्षा की कि वे अपने समय, श्रम और शक्ति का उपयोग अधिक से अधिक लोगों को प्रेक्षाध्यान की दिशा में प्रेरित करने में करें। आपने श्रावक समाज को भी आह्वान किया कि जो भाई-बहन घर की जिम्मेदारी से मुक्त हो चुके हैं, वे वर्ष में कम से कम एक बार एक माह तक प्रेक्षाध्यान साधना की ट्रेनिंग अवश्य लें।

संतों के मिलन का निर्णय

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य हैं, पर वे इस सीमा से अनुबंधित नहीं हैं। उनका चिन्तन, कार्य और विहारक्षेत्र मानवीय हितों के साथ जुड़ा हुआ है। एक ओर भारत विदेशी दासता से मुक्त हुआ, दूसरी ओर आचार्यश्री ने भारतीय जनों को वृत्तियों की दासता से मुक्त होने का आह्वान किया। हिंसा, शोषण, भ्रष्टाचार, दुर्व्यसन, सामाजिक कुरूढ़ियां आदि के खिलाफ आपने एक अभियान चलाया, जो अणुव्रत आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। संसार में कहीं भी हिंसा की घटना होती है, उसका प्रभाव समूचे विश्व पर होता है। यह इकोलॉजी का सिद्धान्त है। किसी वृक्ष का एक भी पत्ता टूटकर गिरता है, उससे भी अव्यक्त रूप में विश्व की चेतना प्रभावित होती है। ऐसी स्थिति में महापुरुषों का मन सहज ही अनुकंपित हो जाता है।

पिछले दो वर्षों से पंजाब प्रदेश हिंसा और आतंक के दौर से गुजर रहा था। वहां रहने वाले लोग भयभीत थे, अशान्त थे, उद्वेलित थे। स्थिति को सुधारने के लिए कई प्रयत्न हुए, पर कामयाबी नहीं मिली। आचार्यवर उन सब घटनाओं से अवगत थे। हिंसा की जलती आग में अहिंसा का जल छिड़कने की चाह जगी। वहां के अशान्त वातावरण को शान्ति की दिशा देने के लिए आप स्वयं वहां जाना चाहते थे, पर अग्रिम कार्यक्रम घोषित होने के कारण वैसा नहीं हो सका। आपके अनेक शिष्य-शिष्याएं उन दिनों पंजाब में प्रवास कर रही थीं। कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि ऐसी परिस्थिति में साधु-साध्वियों को वहां नहीं रखना चाहिए। इस सन्दर्भ में आपने गंभीरता से विचार-विमर्श कर यही निर्णय लिया कि ऐसी स्थिति में वहां साधु-साध्वियों की उपयोगिता है। इसलिए उन्हें पंजाब में ही रखना चाहिए।

आचार्यवर पंजाब नहीं जा सके, किन्तु आपकी दृष्टि पंजाब पर लगी हुई थी। आपने समय-समय पर देश में हो रही हिंसा पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उसे सर्वथा अवांछनीय बताया। पंजाब में शान्ति, सौहार्द और सद्भावना का वातावरण निर्मित करने के लिए आप निरंतर प्रयत्नशील रहे। आपने समय-समय पर अपने मौलिक समाधानपरक चिन्तन से भारत सरकार और अकालीदल को भी अवगत कराया। दोनों पक्षों ने आपके विचारों का स्वागत किया।

इस सन्दर्भ में समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री शुभकरण दसाणी अकालीदल के अध्यक्ष श्री हरचन्दसिंह लोंगोवाल से मिले। उन्होंने आचार्यवर का संदेश लोंगोवाल तक पहुंचाया। वे आचार्यश्री के विचारों से प्रभावित हुए। उन्होंने उन विचारों के प्रति अपनी ओर से पूरा विश्वास व्यक्त किया। प्रासंगिक समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिए दोनों संतों के मिलन का कार्यक्रम निश्चित हो गया। इस बात से भारत सरकार को भी अवगत करा दिया गया।

द्वन्द्वात्मक सन्दर्भ की निर्द्वन्द्व बातचीत

९ जुलाई १९८५, अपराह्न चार बजे का समय। उदयपुर जिले का आमेट कस्बा। आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मासिक प्रवास। लक्ष्मी बाजार में स्थित तेरापंथ सभा का विशाल भवन। भवन के बाहर पन्द्रह हजार लोगों के बैठने का पक्का पण्डाल, अमृत-समवसरण। समवसरण में प्रवचन सम्पन्न होने के बाद की खामोशी, कुछ कार्यकर्ता इधर-उधर घूम रहे थे। सभा-भवन के भीतर कुछ पत्रकार किसी नयी घटना की प्रतीक्षा में खड़े थे। कुछ स्थानीय जिम्मेवार लोग, कुछ चेहरे आगन्तुक यात्रियों के। डबल स्टोरी भवन के ऊपर वाले हॉल में आचार्यश्री चहलकदमी कर रहे थे। उनके एक ओर युवाचार्यश्री और कुछ साधु खड़े, दूसरी ओर साध्वियां थीं। ढलती दुपहरी में भी सबके चेहरों पर ताजगी बिछी थी। सहसा सीढ़ियों पर धीमी पदचाप हुई और अकाली दल के अध्यक्ष संत श्री हरचन्दसिंह लोंगोवाल अपने साथी पूर्व केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री सुरजीतसिंह बरनाला के साथ ऊपर आये। राष्ट्रसंत आचार्यश्री तुलसी और अकाली दल के अध्यक्ष संत लोंगोवाल का मिलन अनेक आशंकाओं, जिज्ञासाओं, और संभावनाओं के बीच हुआ। दोनों ही संतों की आंखों में आत्मीयता और गहरे विश्वास की झलक साफ-साफ दिखाई दे रही थी।

इससे पहले आमेट पहुंचते ही लगभग एक बजे श्री लोंगोवाल और श्री बरनाला दसाणीजी के साथ आचार्यश्री से मिल चुके थे। उन्हें यहां तक लाने में श्री दसाणीजी ने ही प्रयत्न किया था। साक्षात्कार के उन नाजुक क्षणों में श्री

दसाणीजी ने कहा—संतजी पांच वजे दिल्ली से प्लेन में चले, उदयपुर पहुंचे। वहां से कार द्वारा यहां आये और आते ही सबसे पहले आपके पास पहुंच गये। इन दिनों इनकी खूब यात्रा हो रही है। आपसे मिलने का मौका आज ही मिला है।

आचार्यश्री ने स्निग्ध मुस्कान भरी आंखों से संतजी को देखा और बोले—आपसे हम पहली बार मिल रहे हैं, पर शायद वरनालाजी से पहले भी मिले हैं? श्री वरनालाजी ने अपने अतीत की यादों में उतरकर कहा—मैंने कई बार आपसे मिलने की कोशिश की थी, पर कामयावी नहीं मिली। चण्डीगढ़ की विधानसभा में एक बार आपको सुना अवश्य था, पर ऐसी नजदीकी से मिलने का सौभाग्य आज ही मिला है।

संत लोंगोवाल भोजन और विश्राम किये विना ही आचार्यश्री के पास आ गये थे। उन कुछ क्षणों के मिलन से पारस्परिक अपरिचय परिचय में और सन्देह विश्वास में परिणत हो गया। लम्बी वार्ता के लिए चार वजे से पहली बैठक करने को सोचा गया। उसके वाद रात्रि में आठ वजे के वाद सार्वजनिक सभा को संवोधित करने और फिर एक बैठक करने का निर्णय लिया गया।

उक्त निर्णय के अनुसार ठीक चार वजे वे ऊपर पहुंचे और अन्तर्मन की सहज विनम्रता से बद्धांजलि हो गए। आचार्यश्री ने उनको अपने धर्म-परिवार से मिलाया और व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र में पनप रही द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों के सन्दर्भ में निर्द्वन्द्व काल यापन के लिए हाल के भीतरी कक्ष में पहुंच गए।

कक्ष में पहले से ही एक चौकोर काष्ठ-पट्ट रखा हुआ था। आचार्यश्री उस पर बैठे। सन्तजी ने कुर्सी पर बैठने से पहले इनकार कर दिया था। इसलिए जमीन पर बिछे हुए गद्दे पर वे सहजता से बैठ गए। आचार्यश्री के पास युवाचार्यश्री थे और श्री लोंगोवाल के पास श्री वरनालाजी। उनके बीच की दूरी को भर रहे थे श्री शुभकरणजी दसाणी। इस ओर दो साध्वियों की उपस्थिति थी। सीमा में बंधा हुआ स्थान; सीमित व्यक्तियों का अस्तित्व, सीमित समय और विचार के असीम विन्दु। बाहर हॉल में खड़ी भीड़ एक निर्देश मिलते ही छंट गई। खिड़की के सामने दो पुलिसमैन अपनी वर्दी में हथियार लिये खड़े थे। सन्तों के मिलन में पुलिस की उपस्थिति का अर्थ समझ में नहीं आया। श्री वरनाला ने उठकर उनको समझा दिया। वे भी निश्चिन्त होकर नीचे चले गए। अब कहीं कोई दुराव नहीं था। मनुष्य पर मनुष्य के विश्वास की प्रतीक वह वार्ता औपचारिकता से हटकर आत्मिक संबंध की आधारशिला पर ही शुरू होने जा रही थी। विचार और शब्द भीतर से बाहर आने के लिए कुलवुला रहे थे, किन्तु पहले से निश्चिन्त कोई मुद्दा सामने नहीं था, जिस पर यांत्रिक रूप में वार्तालाप का प्रवाह वह सके।

नयी धरती, नया आसमान, नया परिवेश और नया वातावरण, शायद संत लोंगोवाल कुछ सोच रहे थे। उनके सोच की दिशा बदलते हुए पहले-पहल आचार्यश्री ने ही पूछा—राजस्थान में यह आपकी पहली यात्रा होगी?

एक सकारात्मक उत्तर के साथ सन्त के चेहरे पर बिछी हुई शान्ति गंभीर सौम्यता में बदल गई। जीवन की खुरदरी जमीन पर उन्होंने कुछ मुलायम क्षणों को जीने का अहसास किया। आचार्यश्री ने लोंगोवाल के मन की थाह पायी और लोंगोवाल ने आचार्यश्री के भीतर टीसती मानवता की झलक देखी। उन्होंने परस्पर एक-दूसरे को गहरे तक समझ लिया। शब्दों के चुम्बक ने विचारों को बाहर खींचने का छोटा-सा प्रयत्न किया। बहुत कुछ बाहर आने पर भी सब कुछ अनकहा छूट गया। विचारों के स्वच्छन्द अश्वों ने संवेदना की पगडण्डी पर जो पदचिह्न छोड़े, उनको साफ-साफ देखा और पहचाना जा सकता है।

संत लोंगोवाल के लिए राजस्थान और आमेट कुछ नया-नया था। वे हर चीज को सूक्ष्मता से देख रहे थे। उनकी दृष्टि के साथ कान भी जानकारी के धरातल को ठोस कर रहे थे। यह जानकर आचार्यश्री ने कहा—मेरे मन में सिख सन्तों के प्रति सदा से एक आत्मीय भाव रहा है। जब कभी कोई प्रसंग आया उनके साथ मिलन की मधुरता बढ़ती गई। आपसे मिलने की इच्छा बहुत दिनों से थी। आज हम आपस में मिल रहे हैं। हमारा यह मिलन नितान्त वैयक्तिक है। न हमें सरकार से कुछ लेना-देना है और न औरों से। हम तटस्थ हैं, चूंकि हम सन्त हैं। (युवाचार्यश्री की ओर इंगित करते हुए कहा—ये हमारे उत्तराधिकारी हैं महाप्रज्ञजी) विद्वान और दार्शनिक होने के साथ-साथ इस युग की ज्वलंत समस्या के समाधान में जुटे हुए हैं। आज तनाव की जो समस्या है, उसका इलाज किसी डॉक्टर के पास नहीं है। हमने इनसे कहा कि कोई रास्ता खोजो। पन्द्रह वर्ष की तपस्या के बाद एक रास्ता हमें मिला? वह है प्रेक्षाध्यान। प्रेक्षा का अभिप्राय है देखना। अपने आपको देखो, देखते-देखते रीलेक्स हो जाओ, तनाव समाप्त हो जाएगा। हजारों व्यक्तियों पर यह प्रयोग हुआ है और तनाव से छुटकारा मिला है। अभी भी यहां शिक्षकों का एक कैम्प लगा हुआ है। राजस्थान सरकार के निर्देश से चालीस स्कूलों के अध्यापक और शिक्षाधिकारी इस कैम्प में प्रशिक्षण ले रहे हैं।

आचार्यवर द्वारा युवाचार्यश्री के बारे में यह सब कहने पर श्री दसाणीजी ने कहा—इनकी सारी शिक्षा आचार्यश्री के पास ही हुई है। ये दस वर्ष की उम्र में मुनि बने। इनके प्रशिक्षण और निर्माण का दायित्व आपको सौंपा गया। आपकी व्यक्ति-निर्माण की क्षमता का यह एक जीवंत साक्ष्य है।

आचार्यश्री के साथ संत लोंगोवाल का वह प्रथम साक्षात्कार था। इस दृष्टि से अपने धर्मसंघ का प्राथमिक परिचय देते हुए आपने कहा—हमारे धर्मसंघ का

नाम है तेरापंथ। गुरु नानक ने जो कहा—तेरा-तेरा। वही बात आचार्य भिक्षु की वाणी से प्रकट हुई। उन्होंने भी कहा—प्रभो ! यह मेरा नहीं, तेरापंथ है। गुरु नानक और आचार्य भिक्षु की वाणी का यह मेल भी हमारी आत्मीयता का एक घटक है। हमारे संघ में एक आचार्य का नेतृत्व है। धर्मसंघ की प्रत्येक गतिविधि का संचालन आचार्य करते हैं। हमारे साधु-साध्वियां पूरे देश में घूमते हैं और उन मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हैं, जिनमें इंसानियत पनप सके।

पिछले वर्ष जब पंजाब में वारदात हुई, हम राजस्थान में थे। वहां के हालात सुनकर मेरी इच्छा हुई कि एक बार मैं स्वयं वहां जाऊं। पर हम ठहरे पदयात्री। जाना संभव नहीं हुआ। तब हमने साधुओं के एक वर्ग (मुनि विनयकुमार) को वहां भेजा। शायद आप भी उनसे मिले होंगे ?

सन्त लोंगोवाल अपने अतीत में लौटकर बोले—हां, मुझे याद है। वे आए थे। मैं भी उनसे मिला था। आपने तकलीफ की और चेष्टा करके संतों को वहां भेजा। हमारे मन में आपके प्रति श्रद्धा है, विनय है। हम चाहते थे कि कभी आपसे साक्षात मिलें। आज आपसे साक्षात्कार करने के बाद मैं अनुभव करता हूं कि आपके विचार सुन्दर हैं, पवित्र हैं। वैसे भी हर महापुरुष देश में शान्ति चाहते हैं और देश की शान्ति के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं। आप इतनी दूर बैठे वहां शान्ति पैदा करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, तो वहां शान्ति अवश्य होनी चाहिए। मेरे मन में भी ऐसे ही विचार हैं, इसीलिए मैं आपके पास आया हूं।

श्री लोंगोवाल ने पंजाब की विशेष स्थिति में आचार्यप्रवर द्वारा किए गए प्रयत्न के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की तो आचार्यश्री बोले—पंजाब हो या राजस्थान हमारे लिए सब समान हैं। उस समय पंजाब में हमारे साधु-साध्वियों के कई दल थे। वहां की स्थिति जब हिंसात्मक मोड़ लेने लगी तो अनेक व्यक्तियों ने मुझे परामर्श दिया कि मैं पंजाब में विहार करने वाले साधु-साध्वियों को इधर बुला लूं और नये सिरे से किसी को वहां नहीं भेजूं। मैंने कहा—हिंसा का यह वातावरण अहिंसक व्यक्तियों के लिए कसौटी का समय है। वहां लाखों लोग बस रहे हैं। वे कहां जाएंगे ? अभी पंजाब में जो साधु-साध्वियां हैं, उनको तो वहां रखूंगा ही। जरूरत हुई तो कुछ और दलों को भेजूंगा। इस निर्णय के अनुसार मैंने सभी साधु-साध्वियों को वहीं रहकर काम करने का निर्देश दिया। उन्होंने भी पूरे साहस के साथ काम किया।

इस प्रसंग में आचार्यवर ने श्री लोंगोवाल को साध्वियों और समणश्रेणी के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी कराई।

वार्तालाप का एक पहलू जब देश की शान्ति से जुड़ गया तो आचार्यश्री ने सहज भाव से पूछ लिया—इस समय जो अशान्ति फैल रही है, आपकी दृष्टि में उसका कारण क्या है ?

अब तक सन्तजी सुन अधिक रहे थे और बोलते कम थे। इस प्रश्न ने उनके मन में बसी हुई पीड़ा को कुरेद दिया। फिर भी वे उसी शान्ति और सौम्यता के साथ बोले—देश में शान्ति और अशान्ति होती है, उसमें सरकारी नीति का भी पूरा योग रहता है। सरकार पूरे मुल्क को अपना समझकर काम करे तो अशान्ति नहीं हो सकती। देश की अशान्ति का कारण है सरकारी नीति।

अशान्ति का दूसरा बड़ा कारण है परमेश्वर की विस्मृति। आदमी जब परमेश्वर को भूल जाता है, तभी वह अशान्ति फैलाने वाले काम करता है।

इस अशान्ति को दूर करने का भी तो कोई उपाय होगा? आचार्यश्री द्वारा पूछे गए इस प्रश्न के उत्तर में श्री लोंगोवाल बोले—अशान्ति को दूर करने के दो साधन हैं। पहला साधन है परमेश्वर की भक्ति, प्रार्थना, पूजा और आराधना। अशान्ति से मुकाबला करने का अथवा शान्ति पैदा करने का यह सबसे बड़ा हथियार है। दूसरी बात भी इसी के साथ जुड़ी हुई है। सब लोग मिलकर परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वह सरकार को सन्मति दे। इसके अतिरिक्त अशान्ति तोड़ने के लिए आप जो उद्यम कर रहे हैं, वह भी बड़ी बात है। आप जैसे सन्तों का प्रयत्न चालू रहा तो देश में शान्ति अवश्य आएगी।

श्री लोंगोवाल शुद्ध पंजाबी में बोल रहे थे। बहुत कुछ समझ में आने पर भी कहीं-कहीं अस्पष्टता रह रही थी, उसे दूर करने के लिए श्री बरनाला माध्यम बने। वे भाषान्तर करने के साथ-साथ हर बात की पृष्ठभूमि को भी स्पष्ट कर रहे थे। आचार्यवर ने उक्त सन्दर्भ में और अधिक सुनना चाहा तो श्री लोंगोवाल बोले—पारस्परिक प्रेम और सौहार्द शान्ति पैदा करने में सबसे अधिक कारगर तत्त्व है। इसके लिए जनता को प्रेरणा मिलनी चाहिए कि वह सद्भावना के साथ माहौल को सुधारने की कोशिश करे। पारस्परिक प्रेम के आधार पर ही दोनों पक्ष नजदीक आ सकते हैं।

इस विचार पर अपनी ओर से टिप्पणी करते हुए आचार्यश्री ने कहा—हमने सुना और पढ़ा भी कि आपके प्रयास से वातावरण में दूसरा मोड़ आ रहा है। यह निहायत खुशी की बात है। ऐसा होना ही चाहिए। पर इनके साथ एक बात यह है कि वातावरण को जल्दी ठीक कर लिया जाए तो देश को ज्यादा फायदा होगा। इसके लिए एक तीव्र प्रयत्न की जरूरत है, जो माहौल को स्थायी रूप में अच्छा कर सके।

सन्त लोंगोवाल आचार्यवर के विचारों से सहमत होते हुए बोले—जल्दी, स्थायी और बहुत मजबूत समाधान हो सकता है, बशर्ते कि सरकार भी अपनी नीतियों में परिवर्तन करे। सरकार की कौन-सी नीति परिवर्तनीय है और कौन अपरिवर्तनीय है, इस विवाद में न जाएं तो भी एक प्रश्न सीधा ही पैदा होता है कि सभी सिख परस्पर भाई हैं। फिर सिखों में फूट पड़ने का क्या कारण है?

श्री लोंगोवाल ने इस प्रश्न के पीछे रही भावना को स्पष्ट रूप से जानना चाहा तो आचार्यश्री ने उग्रपंथियों, आतंकवादियों की ओर संकेत किया। इस पर वे वोले—कोई भी सिख उग्रपंथी वनते हैं, उनकी स्थिति अलग है, कारण अलग है। हमारा उनके साथ कोई संवंध नहीं है। अकाली दल हमारी पुरानी पार्टी है। हम अंग्रेजों के समय से संघर्ष करते आए हैं। हमारे संघर्ष सदा शान्तिपूर्ण रहे हैं। हमें पीटा गया, मारा गया, पर हमने हिंसा को वढ़ावा नहीं दिया। हमारी पार्टी के तौर तरीके देखकर गांधीजी ने भी कहा था कि पंजाव में पीसफुल आन्दोलन चल रहा है। हमारा अभी का आन्दोलन भी शान्तिपूर्ण है। इस आन्दोलन में हमारे लाखों लोग (दो लाख पचीस हजार) गिरफ्तार हुए। फिर भी हम शान्त रहे। हमने हिंसा का सहारा नहीं लिया।

श्री लोंगोवाल की अहिंसानिष्ठ नीति ने आचार्यश्री को प्रभावित किया। आपने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—हिंसा से कभी किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। जहां कहीं हिंसा का सहारा लिया जाता है, समस्या वढ़ती है। आप और हम सव हिंसा के खिलाफ हैं। किसी भी व्यक्ति या वर्ग द्वारा हिंसा हो, उसकी खुले-आम भर्त्सना होनी चाहिए। हम खुलकर हिंसा की खिलाफत करेंगे, तभी आम जनता में एक अच्छी धारणा जन्म ले सकेगी। दूसरी वात—आपकी शान्तिपूर्ण और अहिंसानिष्ठ नीति के सामने अलग राज्य की मांग की कोई संगति है क्या?

यह वात सुनकर श्री लोंगोवाल के चेहरे पर पीड़ा की हल्की-सी परत उभरी, उन्होंने कहा—यह वात विलकुल गलत है। जिसका भी दिमाग थोड़ा-सा ठीक है, वह देश में रहते हुए अलग राज्य की मांग कर ही नहीं सकता। हम पंजाव को भारत के मानचित्र में ही देखना चाहते हैं। अलगाववाद हमारा लक्ष्य नहीं है। खालिस्तान का नारा सिखों को वदनाम करने के लिए है। हां, हमारी कुछ मांगें जरूर हैं, पर उनमें ऐसी कोई भी वात नहीं है। हमने अपनी सात मांगें सरकार के सामने रखी हैं, किन्तु अभी तक उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

खालिस्तान या अलग के वारे में समाचार पत्रों में आ रहे संवादों की ओर ध्यान आकृष्ट करने पर श्री लोंगोवाल ने कहा—ये सारी वातें वाहर से आती हैं। हिन्दुस्तान हमारा है। इसकी अखण्डता को सुरक्षित रखना हम सवका दायित्व है।

यह वात सुनकर आचार्यश्री वोले—ऐसा लगता है कि गलतफहमियों से आपस में दूरी वढ़ी है। सरकार और सिखों में परस्पर प्रेम वढ़ाने का प्रयत्न हो और गलतफहमियों का निरसन हो तो वातावरण में परिवर्तन आ सकता है। राजनैतिक दृष्टि से हमें इस विवाद में कोई रस नहीं है। न हम मध्यस्थता करना चाहते हैं। हमारा तो एक ही उद्देश्य है कि देश में शान्ति और प्रेम का वातावरण

बने। सब एक-दूसरे को समझें तथा एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनें। हमारा मंच भी राजनैतिक नहीं है। धार्मिक मंच पर हम राजनीति को लाना नहीं चाहते। शान्ति, सद्भावना और भाई-चारे की दृष्टि से हम किसी भी पक्ष से बात कर सकते हैं। पर हिंसा और विघटन की नीति से हमारी सहमति नहीं हो सकती। पंजाब में शान्ति और सद्भावना की दृष्टि से हमारे विचार आपसे कतई भिन्न नहीं हैं।

शान्ति और सद्भावना के लिए कारगर प्रयत्नों की बात चली तो युवाचार्यश्री ने कहा—आचार्यश्री के पास साधु-साध्वियों की बड़ी फौज है। आप निवेदन करेंगे तो आचार्यश्री इस फौज का वहां जरूर उपयोग करेंगे।

युवाचार्यश्री की यह बात सुनकर श्री लोंगोवाल बोले—वह तो मैं जानता हूं। मैं निवेदन नहीं करूंगा, तो भी आप वहां सन्तों को भेजेंगे।

श्री लोंगोवाल के इन शब्दों में पारस्परिक विश्वास और एकत्व का भाव स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। उन्होंने अन्य कई विषयों पर खुलकर चर्चा की। आचार्यवर के साथ मिलने के बाद अपने मन पर हुई प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने कहा—यहां आने से मुझे जो शान्ति मिली है, वह अपूर्व है। आचार्यजी के साथ हमारा मिलन इतना मधुर हुआ है कि मुझे लगता है कि हमारा यह मिलन पहला मिलन नहीं है, अनेक जन्मों तक हम साथ रहे हैं और उस समय के संस्कार आपको देखने से जागृत हो गए। दसाणीजी ने हमें यहां तक पहुंचाया, इसके लिए मैं इन्हें धन्यवाद देता हूं। मेरी इच्छा है कि मैं अवसर आने पर फिर आपसे मिलूं।

आचार्यप्रवर और श्री लोंगोवाल के बीच वार्तालाप का क्रम चार बजे शुरू हुआ। पौने छह बजे तक एक धारा से चलता रहा। कहीं कोई अवरोध नहीं। प्रेममय वातावरण और शान्ति एवं सद्भावना की बात। श्री लोंगोवाल की उठने की इच्छा नहीं हो रही थी, पर साधुचर्या की दृष्टि से उस उपनिषद में आचार्यश्री की उपस्थिति अधिक समय तक संभव नहीं थी। इसलिए रात्रिकालीन पब्लिक मीटिंग के बाद पुनः दूसरी बैठक की संभावना को निर्णय का रूप देते हुए आचार्यवर बाहर हाल में प्रतीक्षारत पत्रकारों के बीच पहुंच गए।

दोनों सन्तों को उनके प्रश्नों का सामना करना ही था। चूंकि सन्तजी के मन में आचार्यश्री के प्रति आदर का भाव था। और वे जानते थे कि आचार्यश्री जो कुछ कहेंगे, तटस्थ रूप से कहेंगे, इसलिए वे स्वयं मौन रहे और बोलने का काम आचार्यश्री के हिस्से में आया। आचार्यवर ने पत्रकारों को दो-टूक उत्तर देते हुए कहा—हमारी वार्ता का कोई राजनैतिक मुद्दा नहीं था। देश में प्रेम के माध्यम से शान्ति की स्थापना हो, यही मुद्दा था हमारी बातचीत का। देश के सभी धर्मगुरुओं का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वे देश के अशान्त वातावरण में शान्ति

के लिए प्रयत्न करें। हमें आशा करनी चाहिए कि हमारी वार्ता सफल रही है। हम किसी बड़ी उपलब्धि के लिए नहीं मिले, हमारा मिलन ही अपने आप में उपलब्धि है। सन्तजी से बात करने के बाद हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

देश की एकता और अखण्डता में विश्वास

रात्रि में लगभग आठ बजे सार्वजनिक सभा का आयोजन था। पन्द्रह हजार की कैंपेसिटी वाला प्रवचन-पण्डाल खचाखच भरा था। मुनि विजयकुमार के मंगल गीत से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष महंत श्री जयरामदासजी ने श्री लोंगोवाल तथा श्री बरनाला को शाल ओढ़ाकर स्वागत किया। चातुर्मास व्यवस्था समिति कीओर से आगन्तुक अतिथियों को माल्यार्पण किया गया। श्री शुभकरणजी दसाणी ने संत लोंगोवाल और बरनाला से अनुरोध किया कि वे अमृत महोत्सव की पंचसूत्री योजना को क्रियान्वित करें। दोनों अतिथियों ने पांचों संकल्प स्वीकार किए। उन्होंने संकल्पपत्र भरकर अमृतकलश में डाले तो उपस्थित जनसमूह ने व्यापक हर्षध्वनि के साथ उन्हें प्रोत्साहित किया।

सन्त हरचन्दसिंह लोंगोवाल ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त करते हुए कहा—महाराणा प्रताप की इस धरती पर मुझे आज महान सन्तों से मिलने का अवसर मिला। इसकी हम जितनी तारीफ करें, उतनी ही कम है। सन्तों की महिला को उनके पास बैठने से, उनकी संगत से ही जाना जा सकता है। मुझे बहुत खुशी है कि मैं इन महान् सन्तों के पास आया। इनके पास बैठने और बातचीत करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसके लिए मैं गर्व का अनुभव करता हूं।

श्री लोंगोवाल ने सिख समाज के प्रति पनप रही भ्रान्तियों की चर्चा करते हुए आगे कहा—इस समय सिखों के सम्बन्ध में मुख्य रूप से तीन बातें फैलाई जा रही हैं—

- सिख आतंकवादी हैं।
- सिख अलगाववादी हैं। वे देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं।
- सिख हिन्दुओं के दुश्मन हैं।

इस सन्दर्भ में मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि सिख आतंकवादी हैं तो इसकी जांच करा ली जाए। सुप्रीम कोर्ट के किसी जज से यह जांच कराई जाए। उस जांच में हम कसूरवार साबित हो जाएं तो हमें सजा मिलनी चाहिए। सिख हिन्दुओं का नुकसान करना चाहते हैं, यह बात भी प्रमाणित हो जाए तो हमें सजा मिलनी चाहिए। किन्तु सिखों के बारे में निराधार भ्रम नहीं फैलाना चाहिए।

सिखों ने उस बादशाह से टक्कर ली, जो दिल्ली के तख्त पर बैठकर सोचता था कि यहां एक ही धर्म रहे। इस विचारधारा का विरोध करने के लिए गुरु

तेजगहादुर आनन्दपुर साहव से चलकर दिल्ली पहुंचे। उन्होंने औरंगजेव को चैलेंज देते हुए कहा कि मैं मन्दिरों को गिराने, हिन्दुओं को तिलक न लगाने देने, उनके जनेऊ उतरवाने आदि कार्यों के पक्ष में नहीं हूं। हिन्दुओं और मंदिरों की रक्षा के लिए मैं वलिदान होने के लिए तैयार हूं। इतिहास साक्षी है कि हिन्दुओं के मनों वजन जनेऊ उतारे गए। लेकिन गुरु तेगवहादुर की दिल्ली में शहादत के वाद यह कहानी समाप्त हो गई। फिर एक समय ऐसा आया कि जिस रास्ते से वाहरी लोग आते और देश पर आक्रमण करते, वह रास्ता ही वन्द कर दिया गया। इस काम में सिखों और सिख गुरुओं ने वहुत वड़ी कुर्वानी की है।

एक समय वह भी आया जव देश के वंटवारे की वात चली। उस समय दो-आवे (दो-आवा—जालंधर के आसपास व्यास और सतलज नदियों के वीच का इलाका) में एक कान्फ्रेंस हुई। उसमें कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से प्रस्ताव आया कि देश के तीन विभाग होने चाहिए—हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और सिख देश। किन्तु अकाली दल ने इसका विरोध किया। अकाली दल के प्रधान मास्टर तारासिंह ने पंजाव असेंवली भवन पर लगे पाकिस्तानी झण्डे को उतारकर नष्ट कर दिया और पाकिस्तान के अस्तित्व को चैलेंज दिया था। उस समय अकाली दल में वहुत कम लोग थे। उनकी वात मान्य नहीं हुई। देश को दो भागों में वांट दिया गया।

देश के वंटवारे पर दस्तखत करने वाले लोग हम लोगों पर देश को तोड़ने का इल्जाम लगा रहे हैं। जवकि हम लोग देश की एकता के लिए, मर-मिटने के लिए तैयार हैं। हमारी पार्टी अकाली दल ने न कभी खालिस्तान की मांग की, न कभी वात की और न कभी इसका नारा ही लगाया।

हम वार-वार इस वात को दोहरा रहे हैं कि खालिस्तान से अकाली दल का कोई वास्ता नहीं है। शिरोमणि अकाली दल वार-वार देश की एकता और अखण्डता को दोहराता है। हमारा विश्वास देश की एकता और अखण्डता में है। इसके लिए हमने भारी कुर्वानी दी है और भविष्य में भी हम कुर्वानी देने में पीछे नहीं रहेंगे।

आज देश के सामने सवसे वड़ी समस्या उनकी एकता और अखण्डता की है। आचार्यश्री तुलसी जैसे सन्त और उनकी शिष्य मण्डली शान्ति और अमन के लिए काम कर रही है। आचार्यजी के प्रयास से देश की एकता और अखण्डता को पूरा वल मिलेगा। हम भी इसके लिए पूरा-पूरा सहयोग करेंगे।

अपने विस्तृत वक्तव्य को समेटते हुए श्री लोंगोवाल ने आखिरी वात कही—मुझे प्रेस वालों ने पूछा कि आप दोनों के मिलने में पहल किसने की? मैंने उनसे कहा—हम दोनों के प्यार ने हमको एक-दूसरे से मिलाया है। मुझे तो ऐसा महसूस हो रहा है कि हम एक जन्म से नहीं, दो जन्म से नहीं, वल्कि कई जन्मों से आपस में मिलते रहे हैं।

श्री लोंगोवाल के पूरे भाषण को तालियों की भारी गड़वड़ाहट के साथ सुना गया। वार-वार सावधान करने पर भी लोग मर्यादा की वात भूलकर चाहे-अनचाहे अपना उत्साह प्रदर्शित करते रहे।

सिखों ने देश के लिए कुर्वानी की

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने सामयिक और महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट करते हुए कहा—महाराणा प्रताप की चट्टानी वीर भूमि का यह कस्वा आमेट आज एक ऐतिहासिक क्षेत्र वन गया है। मानव धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाले अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी और हिन्दुस्तान के महान धर्म सिख धर्म के सन्त श्री लोंगोवाल का यह मिलन विशेष परिस्थितियों में हुआ है। इससे एक सुखद वातावरण वना है। आवश्यकता इस वात की है कि पूरे भारत में ऐसा ही सुखद वातावरण वने। दो सम्प्रदायों के वीच में जो थोड़ी-सी खरोंच आई है, वह मिट जाए। शान्ति, सद्भावना और मैत्री का ऐसा वातावरण वने, जिससे वर्तमान की सारी समस्याएं सुलझ जाएं।

इस वात को मानकर चलें कि प्रत्येक जाति, धर्म और सम्प्रदाय की जो अस्मिता है, उसका किसी भी तरह असम्मान न हो कहीं से अलगाव की वात ही नहीं उठ सकती। जव किसी ओर से अहंकार जागता है, तव विलगाव की स्थिति पैदा होती है। चाहे कोई अल्पमत में हो, वहुमत में हो, छोटा हो या वड़ा हो, अहंकार हमेशा आदमी को तोड़ता है, उत्तेजित करता है। हिन्दुस्तान में वहुत उदारता रही है। यहां अनेक जातियां, वर्ण, सम्प्रदाय और विचार होने पर भी आपस में सव मिलजुलकर रहे हैं। ऊपर की वातों को कभी महत्त्व नहीं मिला। कौन हिन्दू है, कौन सिख है, कौन जैन है? सव एक ही मूल की शाखाएं हैं। जड़ एक है। शाखाओं को कभी वांटा नहीं जा सकता है। एक खून का रिश्ता है, उसे कभी अलग नहीं किया जा सकता।

सिखों ने हिन्दुस्तान के लिए जो त्याग और वलिदान किया है, जो सेवाएं दी हैं, उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। पांच सौ वर्षों का एक लम्वा इतिहास है। जव-जव जरूरत पड़ी, सिखों ने देश के लिए वहुत वड़ी कुर्वानी दी है। आज भी मैंने देखा कि संत लोंगोवाल के मन में देश के प्रति कितनी तड़प है, कितनी भावना है। आज के इस प्रसंग को मैं ऐतिहासिक मानता हूं। आचार्यश्री तुलसी और सन्त लोंगोवाल का यह मिलन एक भव्य मिलन है। इसे सदा याद किया जाएगा। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि ऐसा क्षण आए, जव देश की सारी शक्तियां मिलकर एकजुट होकर राष्ट्र के निर्माण में लगें।

पंजाव की समस्या : आचार्यश्री तुलसी के सुझाव

रात्रि का समय, अमृत समवसरण का विशाल प्रांगण, पन्द्रह हजार लोगों की उपस्थिति, वातावरण पूरी तरह शान्त। सन्त लोंगोवाल वोले, युवाचार्यश्री का वक्तव्य हुआ। काफी कुछ जानने-समझने को मिला, फिर भी उपस्थित जनसमूह अतृप्त था। आचार्यप्रवर की अमृतवाणी का पान कर वह अपनी अतृप्ति को दूर करने के लिए उतावला हो रहा था। मंच संचालक श्री अर्जुन वाफणा ने जनता की उत्सुक भावना का अंकन किया। उन्होंने आचार्यवर से मंगल प्रवचन करने का विनम्र अनुरोध किया। आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन में कहा—हमारा देश धर्मप्राण देश है। देश की जनता धर्म के प्रति और धर्म के संवाहक सन्तजनों के प्रति आस्थाशील हैं। देश के आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों को संरक्षण और विस्तार देने का काम सन्तों का है। देश में जहां कहीं अशान्ति हो, गलतफहमी हो, दूरी हो, आतंक हो, हिंसा हो, वहां-वहां शान्ति और सद्भावना स्थापित करने का प्रयत्न सन्तों का पहला काम है। फिर चाहे वे सन्त सनातनी हों, जैन हों, सिख हों या और कोई भी हों। हिंसा को मिटाना तथा अहिंसा का वातावरण निर्मित करना आज की सवसे वड़ी अपेक्षा है। पंजाव में हिंसा भड़कने के वाद हमने यह निर्णय लिया था कि अणुव्रतियों का एक दल पंजाव जाए और वहां गांव-गांव में घूमकर व्यक्ति-व्यक्ति से मिलकर शान्ति, सौहार्द और समन्वय का वातावरण निर्मित करे। उस दल का सन्त लोंगोवाल से मिलने का कार्यक्रम भी था। किन्तु उसी समय देश के एक प्रसिद्ध पत्रकार हमारे पास आए थे। उन्होंने सुझाव दिया कि पंजाव की स्थिति में परिवर्तन होने वाला है, इसलिए अभी आप कोई दल वहां न भेजें। अणुव्रती दल के जाने का कार्यक्रम स्थगित हो गया। पर हमने अपने साधु-साध्वियों को वहां भेजा। वे पूरी निष्ठा और लगन से काम कर रहे हैं।

संत लोंगोवाल के साथ हुई अपनी अन्तरंग वातचीत की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में आगे कहा—आज संतजी के साथ पौने दो घण्टे तक मेरी वात हुई। वैसे हमारा यह प्रथम मिलन है। मुझे लगा कि हम दोनों के विचारों में वहुत समानता है। संतजी ने मुझे वताया—'देश की एकता और अखण्डता का मैं पूरा पक्षपाती हूं। खालिस्तान की वात कोई पागल दिमाग का आदमी ही कर सकता है। हिन्दुस्तान में रहने वाला भारतीय आदमी खालिस्तान की वात सोच भी कैसे सकता है?'

उक्त वात सुनकर श्रोताओं ने विशेष हर्ष ध्वनि के साथ अपने मन का उत्साह प्रदर्शित किया। आचार्यवर ने संत लोंगोवाल के साथ हुई वार्तालाप पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए कहा—संत लोंगोवाल की वातों से मैं वहुत प्रभावित हुआ। देश की अखण्डता के प्रति उनके मन में अटूट विश्वास है। हिंसा

के प्रति उनके मन में उतनी ही पीड़ा है, जितनी किसी दूसरे के मन में होगी। आतंकवाद के प्रति उनके मन में उतनी ही घृणा है, जितनी किसी अन्य के मन में होगी। आतंकवादी कोई भी हो सकता है। उसे किसी विशेष जाति या वर्ग के साथ नहीं जोड़ना चाहिए। आतंकवादियों और हिंसकों की कोई जाति नहीं होती। ये किसी भी जाति या वर्ग में हो सकते हैं।

आचार्यवर के प्रवचन का एक-एक शब्द पूरे ध्यान से सुना जा रहा था। प्रवचन-सभा में उत्सुकता-पूर्ण खामोशी व्याप्त थी। अब आगे क्या कहेंगे? आगे क्या कहेंगे? इस प्रकार सोचने वाला मन कुलांचें भर रहा था। अधीरता के उन क्षणों में आपने पंजाब समस्या के सन्दर्भ में से कुछ सुझाव देते हुए कहा—

- पंजाव की समस्या का समाधान पारस्परिक वातचीत द्वारा होन चाहिए। इसमें हिंसा को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए।
- वातचीत के लिए वातावरण की स्वस्थता अत्यन्त अपेक्षित है। अस्वस्थ वातावरण में वातचीत संभव नहीं होगी और होगी तो वह सफल नहीं होगी। स्वस्थ वातावरण के निर्माण में जनता और सरकार दोनों को सहयोग करना चाहिए।
- जहां कहीं किसी भी व्यक्ति या वर्ग द्वारा हिंसा होती है, उसकी खुले शब्दों में भर्त्सना होनी चाहिए। यह किसी व्यक्ति या वर्ग की भर्त्सना नहीं, हिंसा और हिंसक मनोवृत्ति की भर्त्सना है।
- अन्तिम वात—कोई व्यक्ति खराव हो सकता है, पर उसे लेकर पूरी कौम को खराव वताना, वदनाम करना कभी भी उचित नहीं होगा। सिख कौम एक वहादुर कौम है। वह राष्ट्र भक्त है। उसकी देशभक्ति के प्रति किसी के मन में सन्देह नहीं होना चाहिए। कुछ व्यक्तियों के कारण सारे सिखों के प्रति अविश्वास करना क्रूरता होगी। जख्म जहां कहीं भी हुआ है, उसे मरहमपट्टी करके ठीक करना चाहिए।

मैं संत लोंगोवाल के प्रति अपनी ओर से सद्भावना व्यक्त करता हूं। मैंने अनुभव किया कि ये वड़े ही धैर्यवान, मिलनसार और अहिंसा में विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं। ऐसे मिलन की मैं पुनः-पुनः कामना करता हूं और विश्वास करता हूं कि देश में शान्ति का वातावरण वनेगा।

स्वर्ग देखना हो तो आमेट जाओ

और एक कार्यक्रम की सम्पन्नता के वाद साढ़े दस वजे से साढ़े ग्यारह वजे तक संत लोंगोवाल ने फिर आचार्यश्री के साथ वार्तालाप किया। दो वातचीतों और एक सार्वजनिक सभा के वाद आचार्यप्रवर संतुष्ट थे, संत लोंगोवाल खुश थे और श्रोता

लोग उत्सुक थे। पंजाव में धधकती हुई आग की लपटों का ताप किसी-न-किसी रूप में सब देशवासियों को संत्रस्त कर रहा था। हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन कोई भी उस संताप के अनुभव से शून्य नहीं रहा था। सब लोगों के मन में एक ही तमन्ना थी कि जैसे-तैसे पंजाब में शान्ति हो।

भय, आतंक, सन्देह और हिंसा के उस दौर में आचार्यश्री और संतजी का मिलन नयी संभावनाओं के द्वार खोलने वाला था। संतजी की मानसिकता सरकार के साथ वातचीत करने की नहीं थी। पर आचार्यश्री की प्रेरणा से उनका मन वहुत वदल गया और उन्होंने वात करने का निर्णय ले लिया। आमेट प्रस्थान करने से पूर्व संतजी एक वार फिर आचार्यवर से मिले। उसके वाद वे जहां-जहां गये, उन्होंने आमेट में आचार्यश्री के साथ हुए सफल वार्तालाप की मुक्तभाव से चर्चा की। संगरूर और धुरी की सभाओं में तो उन्होंने यहां तक कहा—इस धरती पर किसी को स्वर्ग देखना है तो आमेट जाओ। वहां आचार्यश्री तुलसी के रूप में स्वयं भगवान् विराजमान हैं। देश में हुई हिंसा से चिन्तित हैं। समूचे विश्व की मानव जाति को वे शान्ति का संदेश दे रहे हैं। मैं अभी आमेट जाकर आया हूं और वहां मुझे सच्ची शान्ति का अनुभव हुआ है।

आचार्यश्री और गृहमंत्री

संत लोंगोवाल के साथ खुलकर वात करने के वाद आचार्यश्री का पक्का विश्वास हो गया कि संतजी देश की एकता चाहते हैं। उनकी जो समस्याएं थीं, उनका समाधान होना जरूरी था। पूरी स्थिति का सम्यक् आकलन करने के वाद आपने पंजाव समस्या से जुड़ी हुई अनेक महत्त्वपूर्ण वातें गृहमंत्री श्री शंकरराव चव्हाण तक पहुंचा दीं। गृहमंत्री ने प्रधानमंत्री को सारी सूचनाएं भेज दीं। वात को विखेरने से या उसमें विलम्व करने से समाधान का रास्ता अधिक लम्वा या घुमावदार हो सकता था। यह सोचकर श्री राजीव गांधी ने अविलम्व काम करने का निर्णय लिया। उन्होंने संत लोंगोवाल और कुछ चुने हुए व्यक्तियों को वातचीत के लिए दिल्ली वुलाया। लोंगोवालजी इस अवसर को खोना नहीं चाहते थे। वे अपनी पूरी तैयारी के साथ दिल्ली पहुंचे। सव प्रकार की पूर्व धारणाओं और पूर्वाग्रहों को छोड़कर उन्होंने समझौता करने की भावना से वात की। सरकार ने भी उनकी उचित मांगों को स्वीकार करते हुए पंजाव और केन्द्रीय सरकार के मध्य लिखित समझौता कर लिया। देश के प्रधानमंत्री राजीव गांधी और अकाली दल के अध्यक्ष संत हरचन्दसिंह लोंगोवाल के हस्ताक्षरों से वह समझौता वार्ता सफल हो गयी। २४ जुलाई १९८५ की वह रात भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण रात्रि बन गयी। लगभग चार वर्षों की कशमकश और तनाव एक

वारगी अपनी गति से शान्त हो गया।

पंजाव समझौते की वात हवा की भांति पूरे देश में फैल गयी। जिस किसी ने समझौते की पृष्ठभूमि में आचार्यश्री द्वारा किये गये प्रयास को जाना, वह आपकी सूझबूझ राष्ट्रहितकारी कदम की सराहना किये विना नहीं रह सका। गांव-गांव और घर-घर में पंजाव-समझौता चर्चा का विषय वन गया। इस समझौते के तत्काल वाद भारत के गृहमंत्री श्री शंकरराव चव्हाण ने आचार्यवर के दर्शन का निर्णय लिया। इस निर्णय के अनुसार वे २७ जुलाई १९८५ को मध्याह्न में आमेट पहुंच गये। लगभग आधा घन्टा तक उन्होंने आचार्यवर के साथ वार्तालाप किया। उसका कुछ अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है—

चव्हाण : प्रणाम आचार्यजी ! वधाई है आपको।

आचार्यश्री : इतनी व्यस्तता में भी आप यहां पहुंच गये ?

चव्हाण : आपने वुलाया और हम आ गये। पंजाव की समस्या को सुलझाने में आपका जो योगदान रहा है, उसके लिए हम आपका जितना आभार मानें, कम है।

आचार्यश्री : आपका सुझाव भी अच्छा रहा। आपने कहा था कि वात करनी हो तो संत लोंगोवालजी से ही की जाये। यहां आने के वाद संतजी के मन पर भी वहुत अनुकूल असर रहा है। उन्होंने कहा—मुझे ऐसा लगता है जैसे कि मैं स्वर्ग में आ गया हूं। यहां आने से ही मुझे शान्ति का अनुभव हो रहा है।

चव्हाण : संतजी ने जो काम किया है, वह सराहनीय है। उन्होंने हिम्मत से काम लिया है। अव आतंकवादी उनके पीछे पड़ सकते हैं। हमने अपनी ओर से पूरा संरक्षण उनको दिया है, फिर भी थोड़ा भय तो है ही। दूसरी वात यह है कि इनके आपस में मतभेद नहीं होने चाहिए। इनमें नेता कौन वने, इस वात में हमें कोई दिलचस्पी नहीं है। पर इस समय इनका कमजोर होना ठीक नहीं है। आतंकवादी उवल गये तो देश का वातावरण फिर विगड़ सकता है। इनको समझाकर नजदीक करना चाहिए। थोड़ी ताकत वे दोनों (वादल और टोहरा) भी रखते हैं। संतजी स्वयं समझदार हैं। इन्हें अलग रखने से काम चल सके, यह संभव नहीं लगता।

आचार्यश्री : हम पंजाव में गये थे, उस समय वादल मुख्यमंत्री थे। उन्होंने विधानसभा में हमारा स्वागत किया और वहां भाषण करवाया था। क्योंकि हमारा सम्वन्ध देश की किसी एक पार्टी से नहीं है। सव लोग हमारे यहां आते हैं और हम भी सबके साथ खुलकर वातें करते हैं।

चव्हाण : आचार्यजी ! एक प्रार्थना और है। अव गुजरात की समस्या पर भी आप ध्यान दीजिये। वहां अव तक आरक्षण के विरोध में आन्दोलन चल रहा था। अव उसने हिन्दू-मुस्लिम दंगे का रूप ले लिया है।

आचार्यश्री : उस सम्बन्ध में हमारा भी चिन्तन था। किन्तु हमने सोचा कि पहले एक काम हो जाये, वाद में दूसरे पर ध्यान दें।

चव्हाण : मुझे डर है कि वाहरी ताकतें अलग-अलग प्रश्न खड़े कर हमारे देश में विघटन करना चाहती हैं। जवकि आसाम, नागालैण्ड, पंजाव, गुजरात आदि सव राज्यों में स्थिरता की जरूरत है।

आचार्यश्री : पंजाव के मसले में आपको सफलता मिली है, उसका भी प्रभाव दूसरे राज्यों पर पड़ेगा। इस दृष्टि से इस स्थिति को भी संभाला जाये।

चव्हाण : आपकी वात पी० एम० तक जायेगी। इंटरनेशनल पीस वाली वात भी उनके कानों तक जल्दी पहुंच जायेगी। उसके लिए एक-दो व्यक्तियों का मिलना भी ठीक रहेगा।

आचार्यश्री : अभी तो राजीवजी वाहर गये होंगे ?

चव्हाण : अभी वे उड़ीसा गये हैं।

आचार्यश्री : इस काम से राजीवजी और आपकी छवि उज्ज्वल हुई है। मेरी धारणा सही सावित हुई है। मेरा विश्वास था कि पंजाव की समस्या अव अधिक समय तक नहीं टिकेगी।

चव्हाण : हमारी नैतिक ताकत कम नहीं है। फिर भी दुश्मनों को कमजोर समझना भूल है।

आचार्यश्री : यह वात ठीक है। दुश्मन को कमजोर समझने से मन में कमजोरी आती है। खरगोश की भी ताकत होती है। वह सिंह को भी पराजित कर सकता है। हम साधु हैं। राजनीति से हमारा कोई सरोकार नहीं है। फिर भी अपने धर्मसंघ का प्रशासन हमें देखना पड़ता है। लाखों व्यक्तियों का संघ है। इसे चलाने के लिए न सेना है, न पुलिस है और न दण्ड है। फिर भी इसे चलाते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि जैनों-अजैनों में ऐसा कोई संघ नहीं है, जो इतना वड़ा होकर एक नेतृत्व में चल रहा हो। हमारे दिल्ली प्रवास में आपके श्री यशवंतराव चव्हाण जो उस समय गृहमंत्री थे, अणुव्रत भवन आये। उस वर्ष हमने महाप्रज्ञजी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। इस सन्दर्भ में उन्होंने पूछा—आचार्यजी ! एक वात वताइये, आप सत्ता का हस्तान्तरण कैसे करते हैं ? इतना वड़ा काम, सात सौ साधु-साध्वियों में से एक का चयन और किसी ने विरोध में आवाज

नहीं उठाई। हमारे यहां तो एक सीट के लिए भी बड़ी परेशानी हो जाती है। यह कला हमें भी तो सिखाइए। खैर ! यह तो प्रासंगिक बात हुई और कुछ कहिए।

चव्हाण : अभी तो गुजरात की वजह से चिन्ता है।

आचार्यश्री : गुजरात एक बौद्धिक प्रदेश है। उसका शान्त होना नितान्त जरूरी है। वहां के शासक स्थिति को संभाल नहीं सके और आप उसे किसी प्रकार चलाते रहे।

चव्हाण : करें क्या ? हमें वहां की स्थिति को संभालने वाला उपयुक्त व्यक्ति ही नहीं मिला।

आचार्यश्री : देश में अच्छे व्यक्तियों की कमी नहीं है। उनके आने की कमी है।

युवाचार्यश्री : इस वर्ष हम आचार्यश्री का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। अमृत महोत्सव के कार्यक्रमों में चरित्र निर्माण की दृष्टि से एक पंचसूत्री कार्यक्रम है। यहां संत लोंगोवाल और बरनालाजी ने उन संकल्प पत्रों पर अपने हस्ताक्षर कर अमृत कलश में डाले। भावात्मक एकता के उनके संकल्प ग्रहण कर लोगों ने भारी हर्षध्वनि से स्वागत किया था।

आचार्यश्री : आपके आगमन को लेकर भी लोगों में चर्चा है। कई लोगों ने पूछा—गृहमंत्री भी क्यों आ रहे हैं ? हमने कहा—गृहमंत्री क्यों नहीं आएंगे ? उनके मन में श्रद्धा है, इसलिए आ रहे हैं।

चव्हाण : मैं यहां से जाते-जाते फिर गुजरात की बात याद दिला रहा हूं।

आचार्यश्री : हम ध्यान देंगे।

गृहमंत्री द्वारा बार-बार गुजरात समस्या की चर्चा सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके मन में समस्याओं से निपटकर देश के ठोस निर्माण की चिन्ता है। वास्तव में गृहमंत्री का दायित्व राष्ट्र की शान्ति और समृद्धि की सुरक्षा एवं वृद्धि से जुड़ा हुआ है। इधर आचार्यश्री अपने संघीय और राष्ट्रीय जीवन में इतने उथल-पुथल देख चुके हैं कि छोटी-मोटी समस्या कभी आपको विचलित ही नहीं कर पाती। पंजाब की समस्या सुलझने के बाद आपका आत्मविश्वास भी अधिक पुष्ट हो गया। इसलिए आपने गुजरात के बारे में सोचना स्वीकार कर लिया। आश्चर्य की बात यह है कि आचार्यश्री और गृहमंत्री के बीच हुए इस वार्तालाप के तीन दिन बाद ही आरक्षण को लेकर गुजरात में चलने वाला आन्दोलन समाप्त हो गया।

गुजरात में हिंसा, हत्या, आगजनी बन्द आदि की जो वारदातें हुईं, उनमें लगभग दो सौ व्यक्ति मारे गए। करोड़ों की संपत्ति स्वाहा हो गई। वर्ग, जाति एवं साम्प्रदायिकता की आग भड़कने से जो क्षति हुई, वह तो बहुत बड़ी है। इस

सन्दर्भ में कुछ विचारशील लोगों ने प्रश्न उपस्थित किया है कि चुनावी जीत और विधानसभा में भारी बहुमत के बावजूद गुजरात के मुख्यमंत्री माधवसिंह सोलंकी की सरकार क्यों बदली ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा है कि लोकशक्ति जीत और बहुमत से भी ऊपर है । चुनावों के बाद भी जनमत उखड़ जाए तो पूरे देश में हलचल मच सकती है । विधानसभा की अवधि पांच वर्ष की मानी जाती है, पर जनमत समय के बन्धन में कैद नहीं रह सकता । इससे यह बात स्पष्ट होती है कि लोकतंत्र में जनता के हितों की अवहेलना करने वाला शासक दीर्घकाल तक टिक नहीं पाता । जनता की आशाओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को समझकर काम करने वाला और उसकी सहानुभूति प्राप्त करने वाला ही अपने काम को आगे बढ़ा सकता है ।

पंजाब समस्या के समाधान में आचार्यश्री का सहयोग

बातचीत के पश्चात् गृहमंत्री आचार्यवर के साथ प्रवचन-पण्डाल में आए । जहां उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—बहुत दिनों से यह बात मेरे मन में थी कि मैं आचार्यश्री के दर्शन करूं । आप जब दिल्ली पधारे थे, तब मैं अनेक बार आपसे मिला था और विभिन्न विषयों पर हमारी चर्चा हुई थी । आचार्यश्री के विचारों से मुझे कई मामलों में बहुत प्रेरणा मिली । मुझे यह कहते हुए परम हर्ष का अनुभव हो रहा है कि पंजाब की समस्या को सुलझाने में जिन लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनमें आचार्यश्री का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जा सकता है । इसके लिए हम सब आपके आभारी हैं, कृतज्ञ हैं ।

भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में त्याग और भोग की चर्चा के बीच श्री चव्हाण ने कहा—देश में त्याग के संस्कार भरने में आचार्यश्री का महत्त्वपूर्ण योगदान है । मैं आचार्यश्री के नजदीक आया हूं । इसका कारण त्याग ही है । आपकी त्यागवृत्ति से मैं बहुत प्रभावित हूं ।

भारत अध्यात्म और विज्ञान दोनों क्षेत्रों में तरक्की करे, यह इच्छा जाहिर करते हुए श्री चव्हाण ने कहा—बाहर के कुछ लोग हमारे देश में अशान्ति और अस्थिरता लाना चाहते हैं । हमारा समाज छोटे-छोटे झगड़ों में फंसकर बिखर जाए, यह उन्हें अभीष्ट है । यदि हमारे देश की जनता एकता और अखण्डता में विश्वास रखती है और वह चाहती है कि देश में खुशहाली बढ़े तो उसे जाति, धर्म, प्रान्त और भाषा के नाम पर भड़काने वालों से सावधान रहना होगा । इस संबंध में आचार्यश्री के द्वारा हमें महत्त्वपूर्ण शिक्षा मिल रही है । हमें आपकी शिक्षाओं को हृदयंगम करना चाहिए । हम एक गौरवशाली राष्ट्र के नागरिक हैं । हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गौरव है । हम सब एक रहेंगे तो दुनिया

की कोई भी ताकत हमारा मुकाबला नहीं कर सकेगी। मैं आचार्यश्री के प्रति एक बार फिर आभार प्रकट करता हूं।

नये जीवन-दर्शन के साथ

युवाचार्यश्री ने अपने प्रासंगिक प्रवचन में कहा—आचार्य तुलसी अपने आचार्यकाल के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस वर्ष को अमृत महोत्सव वर्ष का नाम दिया गया है। हमें अमृत की जरूरत है। नये जीवन-दर्शन की जरूरत है। राजीवजी कई बार कह चुके हैं कि हमें इक्कीसवीं सदी में प्रवेश नये युग के साथ करना है। नया जीवन-दर्शन होगा तो नये युग के साथ प्रवेश होगा। जीवन का दर्शन पुराना होगा, धारणाएं पुरानी होंगी, संस्कार पुराने होंगे तो हमारे लिए इक्कसवीं सदी सोलहवीं सदी से भिन्न नहीं होगी।

नये जीवन-दर्शन के लिए अमृत चाहिए। वैदिक ऋषियों ने गाया था—मृत्योर्मा अमृतं गमय—मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो। अमरत्व मनुष्य की चिर कामना है। अमरत्व के लिए वह अमृत की खोज में है। हमारे इस नये जीवन-दर्शन का निष्कर्ष होगा—अमृत।

मनुष्य के मौलिक अधिकारों की चर्चा करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—मौलिक अधिकारों की सुरक्षा आवश्यक है। पर इसके साथ नये दर्शन को समझना भी जरूरी है। आज मनुष्य ने हिंसा को एक बहुत बड़ा समाधान मान लिया जबकि हिंसा स्वयं एक समस्या है। समस्या को समाधान मान लिया। इस जीवन दर्शन को बदलना जरूरी है। जहां अधिकारों की सुरक्षा के लिए हिंसा की बात आती है, वहां नये जीवन-दर्शन में संयम की बात जुड़नी चाहिए, त्याग की बात जुड़नी चाहिए। अधिकारों की मांग हो सकती है, पर उस मांग के साथ संयम और त्याग बहुत जरूरी है। इनका योग होते ही जीवन दर्शन पूरी तरह बदल जाएगा।

मेवाड़ की इस यात्रा में आचार्यश्री जितने गांवों में गए, वहां शान्ति की वर्षा हुई, अमृत की वर्षा हुई। यह वर्षा कारगर हो, इसलिए संयम और त्याग की पौध उगाना जरूरी है। अमृत महोत्सव के अवसर पर हमें जिस नये दर्शन की खोज करनी है, वह है संयम और त्याग की शक्ति का विकास। यदि ऐसा होगा तो मनुष्य को न यंत्र मानव सताएगा और न कम्प्यूटर सताएगा। त्याग का आसन ऊंचा और भोग का आसन नीचा रहेगा तो सारी दुनिया को समाधान मिलेगा। मैं कामना करता हूं कि इस अमृत महोत्सव वर्ष में अपने धर्म-शासन के पचासवें वर्ष में प्रवेश करते-करते आचार्यश्री हिन्दुस्तान में त्याग की चेतना को जगाएंगे।

उन सबकी सफलता

आचार्यप्रवर ने उपस्थित जनसमूह को सम्वोधित करते हुए कहा—दिल्ली से केन्द्रीय मंत्री श्री शंकरराव चव्हाण यहां आए और उन्होंने आते ही मुझे बधाई दी। मेरे मन में आया कि मैं बधाई दूं राजीव को और लोंगोवाल को, जिन्होंने वर्षों से चली आ रही अशान्ति को एक झटके से समाप्त कर दिया। लोगों को कल्पना नहीं थी कि यह मसला इतनी शान्ति से, इतनी जल्दी हल हो जाएगा।

इसी महीने की ६ तारीख को श्री लोंगोवाल यहां आए थे। उनके साथ हमने विस्तार से बातचीत की। उसी समय हमें यह आभास हो गया था कि पंजाब का झमेला अब अधिक दिनों तक नहीं टिकेगा। सन्त लोंगोवाल ने हमारी बात पर बहुत अधिक ध्यान दिया, यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। यहां से जाने के बाद उनके भाषणों में, बयानों में काफी अन्तर आ गया। हमारा यह दायित्व है कि किसी भी परिवार, समाज या राष्ट्र में जहां भी समस्याएं हैं, अशान्ति है, वैमनस्य है, वहां हम शान्ति एवं सौहार्द स्थापित करने का प्रयत्न करें। जो लोग इस प्रकार का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें अपनी ओर से पूरा-पूरा समर्थन और सहयोग दें।

पंजाब समस्या के समाधान और उसके निमित्तों की चर्चा करते हुए आचार्यप्रवर ने आगे कहा—एक समस्या का समाधान हुआ है। किन्तु अब भी हमारे सामने अनेक समस्याएं हैं। गुजरात की समस्या है, असम की समस्या है और भी न जाने कितनी समस्याएं हैं। सिरफिरे लोग सुलझती हुई समस्याओं को फिर से उलझाने का प्रयत्न करते हैं, इसलिए अधिक सावधान रहने की अपेक्षा है। मैं देश के सब लोगों से यह कहना चाहता हूं कि वे आग को बुझा न सकें तो कम से कम उसमें घासलेट तो न डालें।

जहां व्यक्ति और समाज है वहां समस्या भी रहेगी। इस सन्दर्भ को विस्तार से समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा—समस्याओं को देखकर हताश होने की जरूरत नहीं है। बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान खोजा जा सकता है। आज संसार के सामने ज्वलन्त समस्या है हिंसा की। इससे भी एक बड़ी समस्या है भ्रष्टाचार की। हिंसा और भ्रष्टाचार समाप्त हो जाए तो अन्य सभी समस्याओं का अन्त अपने आप हो जाएगा। समस्याओं को मिटाने का काम सरकार का है, साधु-संतों का है। वे अपने ढंग से अपना काम करें। सत्य, अहिंसा, प्रेम और मैत्री को प्रतिष्ठापित करने में अपना योगदान दें, यह आवश्यक है।

सन्त लोंगोवाल का प्रसंग उपस्थित करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—सन्त जी ने अपनी एक-एक समस्या हमारे सामने रखी। हमने उनसे कहा कि एक, दो, दस नहीं, सौ समस्याएं भी हों तो उनका समाधान खोजा जा सकता

है। वर्तमान में आपके सामने जो समस्या है, उसके लिए आपको सरकार के साथ बैठकर बात करनी चाहिए। पहले तो वे बात करने के लिए तैयार नहीं हुए, किन्तु जब हमने इस बिन्दु पर पूरा बल दिया तो सहमत हो गए। उनकी वह सहमति औपचारिक नहीं, आन्तरिक थी। उसका परिणाम भी आज सबके सामने है। इसको मैं अपनी सफलता नहीं मानता, राष्ट्र की सफलता मानता हूं—और उन सबकी सफलता मानता हूं, जो भीतर से इस समस्या का समाधान चाहते थे।

एक भक्त की व्यथा-कथा

आचार्यश्री राष्ट्र संत के रूप में प्रसिद्ध हैं। देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ आपने राष्ट्रीय चरित्र को ऊंचा उठाने के लिए जो आन्दोलन चलाया, वह आज बहुचर्चित हो चुका है। सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याओं के सन्दर्भ में आपकी अपनी सोच है। आपके चिन्तन और कार्यक्रमों में इन समस्याओं का समाधान निहित है। किसी भी व्यक्ति, वर्ग या राजनैतिक दल के साथ आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। आप अपनी सीमा में सबके लिए सोचते हैं और जो चाहते हैं, उन्हें मार्ग-दर्शन भी देते हैं। समाज के अन्य लोगों की भांति राजनीति से जुड़े हुए व्यक्ति भी आपके पास आते हैं। यह कोई नयी बात नहीं है। प्राचीनकाल में भी राजे-महाराजे त्यागी सन्तों के सान्निध्य में बराबर जाते रहे हैं। फिर भी विगत कुछ वर्षों से इस प्रसंग को बहुत उछाला जा रहा है। कुछ पत्रिकाओं में भी इस सम्बन्ध में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। आचार्यश्री की सभाओं में राजनेताओं की उपस्थिति को लेकर कुछ लोगों ने अपनी नाराजगी भी प्रकट की। बहुत सोचने पर भी यह बात समझ में नहीं आई कि आचार्यश्री को राजनेताओं से क्या लेना है और राजनेता भी उनके सान्निध्य से कौन-सा राजनैतिक लाभ उठा पाएंगे। सन्तों के प्रति सहज आस्था अथवा किसी परिचित व्यक्ति की प्रेरणा से यदि कोई राजनेता आ भी जाए तो इसमें अपराध वाली क्या बात है? राजनीति इतनी अस्पृश्य है कि कोई धर्माचार्य उससे संपृक्त व्यक्ति की छाया भी अपने पर न गिरने दे।

कारण कुछ भी हो, आचार्यश्री के कर्तृत्व पर प्रश्नचिह्न लगाने की दृष्टि से राजनीति वाला मसला बार-बार उठाया जाता है। पर यह निश्चित है कि ऐसी बातों से किसी भी महापुरुष की छवि धूमिल नहीं हो सकती। आलोचना करने वालों का उद्देश्य कितना ही स्वार्थपूर्ण क्यों न हो, आलोचनाओं से महापुरुषों का व्यक्तित्व निखरता है। आचार्यवर के साथ भी ऐसा ही हुआ है। आपकी जितनी आलोचनाएं हुईं, आपका व्यक्तित्व आकाश की ऊंचाई का स्पर्श करने लगा। किन्तु आपके कुछ भक्त ऐसे हैं, जो ऐसी आलोचनाएं, पढ़कर, सुनकर मानसिक

रूप में व्यथित हो जाते हैं। वे जानते हैं कि आचार्यश्री जो कुछ कर रहे हैं, सोच-समझकर कर रहे हैं। फिर भी भावुकता में आकर कभी-कभी वे आचार्यश्री से कोई अनुरोध भी कर बैठते हैं।

पंजाब समस्या को लेकर आचार्यश्री एवं सन्त लोंगोवाल के मिलन का प्रसंग समाचारपत्रों में छपा। कुछ लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इस पर अपनी प्रतिक्रियाएं प्रकट कीं। उन प्रतिक्रियाओं ने आचार्यश्री से बहुत निकटता से परिचित और दिन-दिन आचार्यश्री की बढ़ती हुई ख्याति सुनने के इच्छुक कुछ लोगों को आन्दोलित कर दिया। कांकरोली निवासी शंभूदादा भी उनमें एक थे। शंभू दादा न तेरापंथी हैं, न जैन हैं, किन्तु आचार्यश्री के प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था है। उन्होंने इस सन्दर्भ में अपने विचारों को पद्यबद्ध करके लिखित रूप में आचार्यश्री के पास भेजा। वे पद्य इस प्रकार हैं—

धन वैभव बल संगठन और राजबल पाय।
तुलसी सन्त समाज से राजनीति में जाय॥ १
नराधिपति थे जन्म से महावीर महाराज।
धर्म सिखाने पालने को छोड़ा था राज॥ २
ऐसा यदि है बन गया तुलसी आप स्वभाव।
बनो राष्ट्रपति प्रेम से ढको न मन की चाव॥ ३
दो घोड़ों पर बैठकर पा न सकोगे ध्येय।
ज्ञानी हो अरु सन्त हो करो वही जो श्रेय॥ ४
ऐसी बातें लिख रहा एक पुराना भक्त।
मत मानो, मानो करो जिसमें मन अनुरक्त॥ ५
सम्प्रदाय छोड़ो तुरत करो राज के काज।
राजी हो राजीव से मिलो राज के काज॥ ६
धर्मनिष्ठ होवे सभी राजनीति के संग।
धर्म प्रबल जंह-जंह हुए राज्य हो गए भंग॥ ७

आचार्यप्रवर ने उक्त पद्यों को पढ़कर कहा—'इधर-उधर की बातें सुनकर कोई भी व्यक्ति एक बार विचलित हो सकता है। शंभू दादा मिलेंगे, तब उनसे इस सम्बन्ध में खुलकर बात करेंगे।'

उदयपुर मर्यादा महोत्सव के बाद राजसमन्द में आचार्यश्री का प्रवास हुआ भी, किन्तु शंभू दादा आपसे मिल नहीं सके। यदि एक बार मिलन हो जाता तो उन्हें पूरा समाधान मिल जाता।

प्रश्न है समाचारपत्रों की नीति का

समाचारपत्र का उद्देश्य होता है जनता की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक चेतना का जागरण। चेतना जागरण की पहली शर्त है ज्ञान। ज्ञान के संवाहक हैं पत्र-पत्रिकाएं। जो पत्रकार इस उद्देश्य से प्रतिबद्ध रहते हैं, वे ऐसे संवादों और वृत्तों को महत्त्व नहीं दे सकते जो हिंसा, तोड़फोड़, विघटन और अपराधी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले हों। इस कसौटी को सामने रखकर देखा जाए तो कोई विरल पत्र ही ऐसा मिलेगा, जो जनहित की विशुद्ध भावना से प्रेरित हो। फिर भी कुछ पत्र ऐसे हैं, जिनकी देश में ही नहीं विदेशों में भी अच्छी साख है। उन पत्रों में भी जब बे-सिर-पैर की अनर्गल बातें छपने लगती हैं तो पाठकों को सहज ही यह भ्रम हो जाता है कि अमुक 'पत्र' की रीति-नीति पर आर्थिक लाभ के शिकंजे की पकड़ गहरी हो रही है।

नयी दिल्ली से प्रकाशित दैनिक हिन्दुस्तान एक राष्ट्रीय स्तर का पत्र है। लाखों-लाखों पाठक उसे बड़े विश्वास के साथ पढ़ते हैं। पर ६ जुलाई १९८५ को उस पत्र में एक विज्ञापन छपा। विज्ञापन क्या था, आचार्यश्री तुलसी और तेरापंथ धर्मसंघ पर सीधा आक्षेप था। कोई भी प्रतिष्ठित संस्थान प्रामाणिकता की जांच किये बिना वैसे विज्ञापन को छापना नहीं चाहेगा। पर वह हिन्दुस्तान में छपा। उस विज्ञापन को पढ़ते ही लाखों लोगों का मन आक्रोश से भर गया। विज्ञापन-दाता व्यक्ति ने वैसी ओछी हरकत पहली बार नहीं की थी। उसका तो काम ही तेरापंथ धर्मसंघ और आचार्यश्री तुलसी की छवि को धूमिल बनाना है। किन्तु बिल्ली के चाहने मात्र से कोई छींका टूटकर नहीं गिर जाता। एक व्यक्ति के गलत इरादे किसी धर्मसंघ की नींव को नहीं हिला सकते। उस विज्ञापन को पढ़ते ही अनेक लोगों ने हिन्दुस्तान के संपादक के नाम अपनी प्रतिक्रियाएं लिखकर भेजीं। प्रतिक्रियाएं पढ़ते ही संपादक ने जागरूकता के साथ स्थिति का अध्ययन किया। उन्हें अनुभव हो गया कि जो कुछ हुआ है, वह बहुत गलत हुआ है। उनके निर्देशानुसार पत्र के विज्ञापन विभाग के प्रबन्धक ने उन सब लोगों को पत्र लिखकर अपनी नैतिक जिम्मेदारी का निर्वाह किया। दिनांक १ अगस्त १९८५ के अपने पत्र में दी हिन्दुस्तान टाइम्स के विज्ञापन महाप्रबन्धक ने लिखा—अत्यन्त खेद है कि हमारे पत्र में यह चर्चित विज्ञापन छपा। हमारे पत्र की अपनी आचार-संहिता है और हमारा पत्र इसकी पालना में सदा से विश्रुत रहा है।

हमने इस विषय में छानबीन की और तब हमें यह ज्ञात हुआ कि यह विज्ञापन एक ऐसे विज्ञापन संस्थान से दिया गया है जो सर्व-सम्मत है और उस संस्थान से दिए जाने वाले विज्ञापन हम विश्वासपूर्वक सदा स्वीकार करते रहे हैं। हम प्रेस में छपने के लिए देने वाले विषय के प्रति यथासंभव जागरूक रहते हैं, जिससे

कि विरोधाभास न पनपे और अवांछनीय विषय सामने न आए। किन्तु खेद है कि यह विषय सामने आ गया। यद्यपि हमने ८-७-८५ को उस विज्ञापन-संस्थान को उपयुक्त निर्देश दे दिए थे फिर भी वह संस्थान पूरे विषय का ब्लाक लेकर सायंकाल बहुत विलंब से हमारे यहां पहुंचा। उस समय यह संभव नहीं था कि हम ब्लाक का पूरा निरीक्षण कर पाते और पूरा ब्लाक होने के कारण उसे पढ़ पाना असंभव ही था। इस परिस्थिति में हमने उस ब्लाक को छापने के लिए प्रेस में दे दिया। हमारे मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। हम ऐसा सोच भी नहीं सकते थे। क्योंकि यह सारा मैटर एक ऐसे विज्ञापन-संस्थान से प्राप्त हो रहा था, जो इस क्षेत्र में अग्रगण्य है। किन्तु यह दुर्भावना पैदा करने वाला प्रमाणित हुआ।

जब दूसरे दिन हमें यह ज्ञात हुआ तब हमने उस विज्ञापन-संस्थान को कड़े शब्दों में लिखा और भविष्य में इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति न करने की चेतावनी दी।

हमें आशा है कि आप उस स्थिति का अंकन करेंगे, जिसमें यह अवांछनीय विषय छपा। इसमें न हमारी भावना ही ऐसी थी और यह हमारी जानकारी में भी नहीं थी।

प्रतिक्रियाएं : समीक्षाएं

आचार्यश्री से मिलने के बाद संत हरचन्दसिंह लोंगोवाल का दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। उन्होंने आमेट से आने के बाद जनसभाओं और पत्रकारों के बीच प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में बार-बार आचार्यश्री के प्रयत्नों की सराहना की और देश की एकता एवं अखण्डता में अपना विश्वास व्यक्त किया। उन दिनों समाचार पत्रों में प्रकाशित संवादों के कुछ अंश यहां उद्धृत करने जैसे हैं :

१६ जुलाई ८५ के राष्ट्रदूत में हरचन्दसिंह लोंगोवाल ने कहा—खालिस्तान की मांग पागलपन जैसी है। आज के वातावरण को देखते हुए देश की अखण्डता पहली आवश्यकता है। यह तभी संभव है, जब आचार्यश्री तुलसी जैसे संत आगे आकर गांव-गांव, घर-घर एकता और प्रेम की अलख जगाएं।

'समाधान आतंकवाद नहीं' २० जुलाई ८५ के ब्लिट्ज साप्ताहिक में संतजी के विचार इस प्रकार हैं—देश की एकता और अखण्डता तभी कायम रह सकती है, जब संत गांव-गांव में व्यापक प्रचार-प्रसार करें।

१४ जुलाई १९८५ को प्रकाशित रविवासरीय नव ज्योति, दैनिक नव ज्योति, पंजाब केसरी आदि पत्रों में तथा १५ जुलाई को प्रकाशित दैनिक हिन्दुस्तान, साप्ताहिक सूर्य बाजार पत्रिका, दैनिक अणिमा आदि पत्रों में देश की एकता और अखण्डता को पहली आवश्यकता बताया गया। इसके साथ यह भी कहा कि इस

आवश्यकता की पूर्ति में आचार्यश्री तुलसी जैसे अपना पूरा सहयोग दें।

१७ जुलाई ८५ को प्रकाशित जैन समाज, सुजला एक्सप्रेस आदि पत्रों में संत लोंगोवाल के विचार उद्धृत करते हुए लिखा गया—देश में प्रेम और सौहार्द की गंगा लाने वाले संत ही हैं।

मराठी भाषा के मासिक पत्र तीर्थंकर, जिसके सम्पादक हैं श्रेणिक अन्नदाते, का अगस्त ८५ का पूरा सम्पादकीय आचार्यश्री तुलसी और संत लोंगोवाल के मिलन की चर्चा से सम्बन्धित है। यह पत्र डोंबिवली से प्रकाशित होता है।

२५ अगस्त को प्रकाशित धर्मयुग में—'पंजाब : अब सद्भाव का युग' शीर्षक लेख में लेखक गोविन्द तलवलकर ने पंजाब समस्या के समाधान में किए प्रयत्नों की चर्चा करते हुए आचार्यश्री के सहयोग का उल्लेख किया।

देश के प्रबुद्ध लोगों में आचार्यश्री का नाम बहुचर्चित रहा है। देश की जनता के लिए आप ने व्यापक पैमाने पर जो काम शुरु किए, उनसे आपको जितनी लोकप्रियता मिली, उतनी ही आलोचना सुनने को मिली। प्रशंसा और आलोचना तराजू के दो पलड़े बन गए। कभी वह ऊपर तो कभी वह ऊपर। इस प्रकार दोनों स्थितियों में बराबर संतुलन रहा। इस प्रक्रिया में समाचार पत्रों ने भी महत्त्व-पूर्ण भूमिका निभाई। कुछ समाचार पत्रों में कालम के कालम आचार्यश्री के कर्तृत्व को उजागर करने वाले होते हैं तो कुछ पत्र-पत्रिकाएं स्तरहीन आलोचना में भी उलझ गईं। प्रशंसा हुई या आलोचना, उससे आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कहीं कोई अन्तर नहीं आया। लाखों-लाखों लोगों के मन में आपके प्रति जो प्रगाढ़ आस्था है, उस पर आलोचनाओं का थोड़ा भी असर नहीं आया। कुछ नये लोग तो आलोचना को ही व्यक्तित्व की कसौटी मानकर आचार्यश्री के अधिक निकट हो गए। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि समाचार पत्रों ने भी आचार्यश्री और उनके मिशन को व्यापकता दी है।

सन्तों के शब्दों की ताकत

महाराष्ट्र के कड़ा गांव से सोहनलाल रूपचन्द जैन ने पंजाब समझौते की बात सुनी। उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने आचार्यश्री तक अपनी भावना पहुंचाते हुए लिखा—आपके एक साधारण उपदेश से संत लोंगोवाल मान गये और हजारों नहीं, लाखों लोगों से न छूटने वाला प्रश्न एक दिन में छूट गया और सारा भारत एक मोटे एवं अघटित संकट से बच गया। आप धन्य हैं। आपने (नारद मुनि) वाल्या कोठी को एक क्षण में वाल्मीकि ऋषि बना डाला। देश एक महान संकट से बचा और खास देश की एकता बची और सबसे ज्यादा बची जैन धर्म की इज्जत, जिसने जगत को बता दिया कि संतों के शब्दों में एटम बम और

हाईड्रोजन बम से भी ज्यादा ताकत है। आज हिंसा की हार और अहिंसा की जीत हो गई है। भगवान् आपको शतायु दे और भाग्यवान् आपका उपदेश सुनता रहे। आपका यह कार्य (उपदेश) भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

त्याग को वन्दना

महाराष्ट्र, नासिक जिला के कलवण गांव से अचलदास भींवराज संचेती ने भी एक पत्र लिखकर पंजाब समझौते पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उनके पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है—भारत में दो साल से पंजाब प्रश्न के कारण हजारों लोग बिना कारण मारे गए। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या इसी सिलसिले में हुई। इस हत्या से भारतीय जनता पूरी चिन्ता में थी। इस बीच पाकिस्तान, अमेरिका, चीन आदि भी द्वेष भाव से रस लेते थे। भारत को खतरा उत्पन्न हो गया। नेतागण इस प्रश्न को समेटने में असमर्थ रहे। ऐसी स्थिति में आचार्य तुलसी ने संत लोंगोवाल को आमंत्रित किया। संत लोंगोवाल उदयपुर आये। उदयपुर से आमेट आए। आचार्यदेव ने उनको उपदेश दिया। उन पर उपदेश का असर हुआ। उन्होंने आपका सुझाव स्वीकार किया। फलतः पंजाब की समस्या सुलझ गई। पूरे भारत में खुशी का पार नहीं रहा। धन्य जैन धर्म, धन्य आचार्य तुलसीजी! आपके त्याग को मैं पूरे भाव से वन्दन करता हूं।

अखिल भारतीय जैन संस्कृति संरक्षण परिषद दिल्ली के मंत्री सुमतप्रसाद जैन ने अपने १७ मई १९८५ के पत्र में लिखा है—

पंजाब समस्या के संदर्भ में आपके प्रेरक मार्गदर्शन से विशेष प्रसन्नता हुई है। एक धर्माचार्य के रूप में आपने अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ते हुए भारत की सामाजिक संस्कृति को सदा से महत्त्व दिया है। इस अवसर पर भी आपने एक जैनाचार्य के रूप में वास्तविकताओं का सही मूल्यांकन करते हुए पंजाब में हो रहे हिंसा के नग्न तांडव के विरुद्ध अहिंसा का महामंत्र दिया है।

गुरुनानकदेवजी से गुरु गोविन्दसिंहजी की ऐतिहासिक परम्परा पर हर किसी को नाज है। महान गुरुओं ने अपनी आध्यात्मिक, धार्मिक एवं बलिदानी परम्परा से भारत वर्ष के इतिहास को विशेष गरिमा प्रदान की है। अतः गौरव-मयी परम्परा से उद्भूत सिखों के प्रति हार्दिक समादर भाव रखते हुए ही पंजाब समस्या के समुचित समाधान के लिए आज रचनात्मक प्रयासों की आवश्यकता है।

इस दिशा में पंजाब प्रान्तीय तेरापंथ आपकी प्रेरणा से लुधियाना में सौहार्द स्थापित करने की भावना से एक अहिंसात्मक प्रयोग करने जा रहा है। वास्तव में

समस्या के समाधान के लिए आज पंजाब में सभी धर्मों के अनुयायियों का एक ही स्थान पर सौहार्दपूर्ण मिलन अथवा सम्मेलन सामयिक आवश्यकता है।

इस प्रकार के सम्मेलनों में सभी पक्षों को अपनी पूर्ण मान्यताओं की जटिल ग्रन्थियों को तिलांजलि देते हुए पंजाब एवं देश को समुन्नत बनाने का हृदय से प्रयास करना चाहिए।

एक विनम्र निवेदन यह है कि किन्हीं कारणों से प्रेरित होकर जैन समाज के कुछ दिग्भ्रमित नेता भारतीय संविधान के अनुच्छेद पच्चीस में संशोधन कराकर जैनियों के पृथक अस्तित्व के लिए राष्ट्रव्यापी प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार की आत्मघाती मांग के विरुद्ध आपके तेजस्वी स्वरों की, समाज को आज अपेक्षा बनी हुई है। आशा है आपके अनुभवी मार्ग निर्देशन एवं व्यावहारिक कदमों से पंजाब की समस्या का शीघ्र ही समाधान हो जाएगा।

इलाहाबाद बैंक, नानदेव से श्री एम० डागा ने अपने ३० अगस्त १९८५ के पत्र में लिखा है—हाल ही में जो आचार्यश्री तुलसी एवं अकाली दल के अध्यक्ष श्री लोंगोवाल के मध्य सफल बातचीत हुई है, वह बात अवश्य ही भारतवासियों को स्मरणीय रहेगी। क्योंकि इसी चर्चा का फल पंजाब जैसी राष्ट्रीय जटिल समस्या के छूटने में हुआ। आचार्यश्री के शुभ वचनों और आशीर्वाद से ऐसा ही राष्ट्रीय कार्य हो, यही भगवान् महावीर से प्रार्थना है।

जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर

जीवन की समग्र शिक्षा का नाम है जीवन-विज्ञान। यह शिक्षा जगत में एक नया प्रयोग है। पुस्तकीय ज्ञान से दिमाग भर देना मात्र ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास। यह तभी संभव है, जब बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का असंतुलन दूर हो। हमारा मस्तिष्क दो भागों में विभक्त है, दायां पटल और बायां पटल। बायां पटल विकसित होगा तो भाषा, तर्क, गणित, साहित्य आदि व्यावहारिक एवं लौकिक ज्ञान का विकास होगा। दाएं पटल का विकास होने से अनुशासन, धृति, सहअस्तित्व, प्रामाणिकता आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का विकास होगा। जीवन विज्ञान के संदर्भ में शिक्षा के तीन काम हैं—

जिज्ञासा—जानने की इच्छा।

बुभूषा—होने की इच्छा।

चिकीर्षा—करने की इच्छा।

जिस शिक्षा से जानने की इच्छा जागृत नहीं होती, कुछ होने की इच्छा पुष्ट नहीं होती और कुछ करने की इच्छा प्रबल नहीं होती, वह शिक्षा संपूर्ण व्यक्तित्व

का निर्माण कैसे कर सकती है?

शिक्षा के क्षेत्र में पैदा होने वाली नयी-नयी उलझनों को ध्यान में रखकर नयी शिक्षानीति निर्धारित करने की चर्चा चली। इस संदर्भ में आचार्यप्रवर के सान्निध्य में भी गंभीर चिन्तन हुआ। चिन्तन की निष्पत्ति स्वरूप 'जीवन-विज्ञान' का प्रारूप सामने आया। प्राथमिक रूप से कुछ स्कूलों में प्रयोग किया गया। उसका आशा से अधिक परिणाम आया। उस उत्साहवर्धक परिणाम को देखकर जीवन-विज्ञान को व्यापक रूप देने का निर्णय लिया गया। जैन विश्व भारती के अन्तर्गत 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' के तत्वावधान में कई प्रशिक्षण शिविरों का समायोजन हुआ। उसी शृंखला में ८ जुलाई १९८५ से १७ जुलाई १९८५ तक दस दिवसीय जीवन-विज्ञान प्रशिक्षिण शिविर का आयोजन हुआ। यह शिविर राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर तथा तुलसी अध्यात्म नीडम् के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित था। उस शिविर में १०८ शिविरार्थी थे। उनमें अस्सी अध्यापकों के अतिरिक्त संस्थाओं के प्रधान एवं उपजिला निर्देशक भी थे।

आमेट के विद्या-निकेतन में आयोजित शिविर अपनी कोटि का पहला शिविर था। उसके लिए राजस्थान सरकार ने स्वेच्छा से चालीस स्कूलों का चयन किया। प्रत्येक स्कूल से दो-दो अध्यापक आमंत्रित किए गए। शिविर के आखिरी तीन दिनों में स्कूलों के प्रधानाध्यापक एवं जिला शिक्षाधिकारी स्वयं उपस्थित थे। शिविर में युवाचार्यश्री का सतत सान्निध्य और मार्ग-दर्शन मिलता ही था, संतों एवं जैन विश्व भारती के कार्यकर्ताओं का भी पूरा सहयोग प्राप्त था। स्थानीय चातुर्मास व्यवस्था समिति ने व्यवस्थापक्ष को संभालने में पूरी जागरूकता का परिचय दिया।

१६ जुलाई को आचार्यश्री शिविर-स्थल विद्या-निकेतन में पधारे। उस दिन आप दिन भर वहीं रहे। वहां आपके सान्निध्य में एक गोष्ठी अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षाशास्त्रियों की हुई। उस गोष्ठी में जीवन-विज्ञान के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक पक्षों पर चिन्तन चला। दूसरी गोष्ठी में शिविरार्थियों के अतिरिक्त आम जनता भी उपस्थित थी। उसमें जीवन-विज्ञान पर खुली चर्चा हुई। अन्त में आचार्यश्री ने उपस्थित जन-समूह को संवोधित किया।

१७ जुलाई को शिविर समापन का कार्यक्रम था। वह कार्यक्रम अमृत समवसरण में था। उसमें राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान के अधिकारी भी सम्मिलित थे। समारोह के प्रारम्भ में मुनि किशनलालजी ने शिविर की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। शिविरार्थी अध्यापकों ने शिविर काल के अपने अनुभव सुनाए। अनुसंधान अधिकारी श्री लक्ष्मीनारायण जोशी, राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान के संयुक्त निदेशक श्री चतरसिंह

मेहता, प्रान्तीय शिक्षक संघ के अध्यक्ष वासुदेव शास्त्री आदि वक्ताओं ने जीवन विज्ञान की सार्थकता को प्रमाणित करते हुए विश्वास प्रकट किया कि इससे वच्चों का सर्वांगीण विकास हो सकता है। मंच का संचालन श्री शंकरलाल मेहता ने किया।

जीवन-विज्ञान का उद्देश्य

युवाचार्यश्री ने अपने उद्वोधक प्रवचन में कहा—हमारी जीवनधारा दो तटों के वीच वह रही है। एक तट है समस्या का, दूसरा तट है अपेक्षा का। हिंसा की समस्या है, तनाव की समस्या है, अशान्ति की समस्या है, अनैतिकता की समस्या है और सबसे वड़ी समस्या है मिथ्या दृष्टिकोण की। समस्या चाहे हिंसा की हो या दूसरी, दृष्टिकोण सही होने पर उसका समाधान खोजा जा सकता है।

जीवन-विज्ञान का विश्लेषण करते हुए उन्होंने आगे कहा—जीवन-विज्ञान से प्रासंगिक रूप में शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य मिलता है, पर इसका मूल उद्देश्य है भावात्मक परिवर्तन। सम्यक् दृष्टिकोण का निर्माण इसी परिवर्तन से संभव है। पहले हमारी यह आस्था पुष्ट हुई कि जीवन-विज्ञान की प्रक्रिया से व्यक्ति वदल सकता है। उसके वाद हमने कुछ प्रयोगों का निर्धारण किया। जन सामान्य पर उनका प्रयोग किया। परिणाम सामने आया। सफलता मिली। हमने सोचा क्यों न शैक्षिक जगत में यह प्रयोग किया जाए। सबसे पहले इस सम्वन्ध में शिक्षामंत्री चौहान के साथ हमारी वात हुई। राजस्थान के शिक्षामंत्री चन्दनमलजी वैद से पूरे शिक्षा विभाग के साथ हमने विचार-विमर्श किया। सिलसिला आगे चलता रहा। इस वार का यह प्रयोग दूसरी वार होने जा रहा है। मैं सोचता हूं कि चरित्र-निर्माण एवं भावात्मक परिवर्तन की दिशा में यह प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस प्रयोग के साथ शिक्षा सचिव, शिक्षाशास्त्री, शिक्षामंत्री, प्रधान अध्यापक, अध्यापक सव आत्मविश्वास के साथ जुड़े हैं और एक शक्तिशाली वातावरण वना है।

आत्मानुशासन की जरूरत

आज धर्म का बौद्धिक वर्ग के लिए कोई आकर्षण नहीं रहा है। अवश्य ही कहीं भूल है। शास्त्रों में धर्म के चार द्वार वतलाए गए हैं—क्षमा, मुक्ति, आर्जव और मार्जव। दूसरे शब्दों में सहनशीलता, अनासक्ति, ऋजुता और मृदुता। इन्हें भुलाकर धर्म को केवल उपासना में सीमित कर दिया गया। जप करो, सन्तों के चरण स्पर्श करो, मंदिर में पूजा करो, तीर्थयात्रा करो इत्यादि वातें सिखाई गईं।

हमने इस विषय में बहुत ही गंभीर और सूक्ष्म विचार-विमर्श किया। हमें लगा कि धर्म तो केवल उपासना का तत्त्व बन गया। जीवन यदि वासना से भरा है तो उपासना क्या करेगी? इसी चिन्तन की निष्पत्ति के रूप में अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान जैसे विशिष्ट तत्त्व हमारे हाथ लगे। इनके आधार पर हमने इस बात पर बल दिया कि धर्म को जीवन का अंग बनाकर उसे आचरण में उतारा जाए। धर्म को आत्मसात करने के लिए अथवा कुछ बनने के लिए आत्मानुशासन को सीखना बहुत आवश्यक है। शिक्षकों को तो यह विशेष रूप से सीखना है। स्वयं आत्मानुशासित बनकर ही वे बच्चों के भविष्य को संवार सकेंगे। इस दिशा में जीवन-विज्ञान आपको नयी दृष्टि दे सकता है।

जीवन-विज्ञान समापन समारोह में उपस्थित शिक्षकों और शिक्षाधिकारियों को संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने उक्त विचार कहे। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री की प्रेरणा से शिक्षकों के मन में जीवन-विज्ञान को जानने, समझने और उसका प्रयोग करने की भावना बलवती हो उठी।

राहत मिली

जुलाई का दूसरा सप्ताह चल रहा था। लोग मानसून की प्रतीक्षा में थे। राजस्थान ऐसा प्रदेश है, जिसके कुछ इलाकों में लगातार कई-कई वर्षों तक पानी की समस्या विकट रूप धारण कर लेती है। पशुओं की तो बात ही क्या, मनुष्यों को भी पेय जल उपलब्ध नहीं होता। शायद ऐसी परिस्थिति से संवेदित होकर ही किसी कवि ने लिखा होगा—

खाने को कोरी उबासियां, पीने को आंखों का पानी।
जैसे दुख ने दुख से कह दी, मेरी सारी राम कहानी॥

आमेट में तब तक दो बार वर्षा हो गई थी। फिर भी मानसूनी वर्षा न होने से वर्षा जैसा वातावरण नहीं बना था। लोग सुबह-शाम आसमान की ओर देखते। जब कभी बादल की छोटी-बड़ी टुकड़ियों को बनते-बिगड़ते देखते, उनके मन में नयी आशा का संचार होता, किन्तु हवा के दो-चार झोंके ही उन्हें उठाकर ले जाते, आसमान साफ हो जाता और जनता की आंखों में प्यास का सागर लहराने लगता। प्रतीक्षा की उन घड़ियों में ११ से १३ जुलाई तक मानसून की अच्छी वर्षा हुई। लोगों ने राहत का अनुभव किया। खेतों में उगी हुई फसलें तीन दिन के सिंचन से ही लहलहा उठीं।

प्रवचन में संस्कृत काव्य

१८ जुलाई का मध्याह्न। आचार्यवर के सान्निध्य में भगवती सूत्र का वाचन चल रहा था। प्रसंग चल पड़ा संस्कृत काव्यों के अध्ययन का। तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों को पढ़ने-पढ़ाने की परंपरा है। जैन आगम प्राकृत में है। उसका वाचन व्याख्यान के समय भी होता है। मूल आगमवाणी किसी की समझ में आए या नहीं, पर उसके प्रति श्रद्धालु लोगों में सहज आकर्षण है। किन्तु संस्कृत भाषा में लिखे गए काव्य, स्तोत्र आदि का व्याख्यान में वाचन कम होता है। आचार्यप्रवर ने आचार्य-पद पर आसीन होते ही कई महत्त्वपूर्ण काव्यों का प्रवचन के समय वाचन किया। इसकी प्रेरणा आपको कैसे मिली ? इस सन्दर्भ में आपने मंत्री मुनि मगनलालजी का नामोल्लेख करते हुए कहा—मंत्री मुनि सुनने के वहुत रसिक थे। उन्होंने पूज्य कालूगणी से जय-जश, पांडवचरित्र, हरिवंश आदि व्याख्यान सुने। पूज्य कालूगणी से संस्कृत गद्य 'पांडु चरित्र' सुना। उसके वाद संस्कृत के पद्य काव्य सुनने की इच्छा मेरे सामने रखी। संस्कृत भाषा मुझे सहज रूप में प्रिय थी। मंत्री मुनि का अनुरोध भी था। वि० सं० १९९४ के वीकानेर चातुर्मास में मैंने शान्तिनाथ चरित्र का व्याख्यान के समय वाचन किया। मंत्री मुनि की इच्छा पूरी हुई। जनता ने भी उसमें पूरा रस लिया। इससे मुझे भी प्रोत्साहन मिला। मैंने पद्मानन्द महाकाव्य, भरत वाहुवलि महाकाव्य आदि भी व्याख्यान में सुनाए। पद्मानन्द महाकाव्य का वाचन सरदार शहर में किया था। वहां के श्रावक सुमेरमलजी दूगड़, कन्हैयालालजी दूगड़ आदि साथ में गाते थे। श्रोता लोग भी पूरा रस लेकर सुनते। इससे मेरी धारणा वन गई कि कोई भी आगम, ग्रन्थ या काव्य परिषद में सुनाया जा सकता है और उसे सुरुचिपूर्ण वनाया जा सकता है।

प्राचीन राजस्थानी व्याख्यानों में चन्द का व्याख्यान आचार्यवर को अच्छा लगता था। शेष आख्यानों में आपकी रुचि नहीं थी। आचार्यवर स्वयं हिन्दी, संस्कृत, राजस्थानी में लिखते हैं। राजस्थानी में आपने आचार्यों के जीवन-चरित्र जिस कौशल से लिखे हैं, अद्‌भुत हैं। कालूयशोविलास की रचना तो इतनी विलक्षण है कि उसके वारे में लिखना ही उसकी गरिमा को सीमित करना है। अन्य छोटे-वड़े आख्यान भी अपनी अनूठी ही शैली में लिखे हुए हैं। उन आख्यानों में सरलता और सरसता एक दूसरी की प्रतिस्पर्धा में आगे वढ़ती हुई प्रतीत होती हैं। आचार्यश्री के आख्यानों की सवसे वड़ी विशेषता है—छन्द, लय आदि में मात्रा एवं अक्षर का कहीं भी नहीं अखरना। काव्यरसिक लोग आचार्यश्री के पद्य साहित्य को पढ़ते-पढ़ते ही मुग्ध हो जाते हैं।

काश ! कोई क्रान्ति घटित होती

२० जुलाई को बड़ी सादड़ी से बोरा (मुस्लिम) परिवार के पचीस-तीस सदस्य आचार्यप्रवर के दर्शन करने आए। उनमें महिला कांग्रेस, सादड़ी की संयोजिका सईदा बहन भी थी। आमेट का बोरा समाज आचार्यश्री को निकटता से जानता है। जब कभी किसी भी परिवार में बाहर से कोई रिश्तेदार आता तो उसे आचार्यश्री के दर्शन करने की प्रेरणा अवश्य दी जाती। उस दिन तो वे सामूहिक रूप में आए थे। उन्होंने प्रेमपूर्ण वातावरण में मुक्त मन से बातचीत की। आचार्यवर ने उनको अमृत महोत्सव पर प्रसारित पांच संकल्पों के बारे में बताया। दहेज उन्मूलन की बात सुनकर उन्होंने कहा—मुस्लिम समाज में दहेज की परंपरा नहीं है। पिता अपनी खुशी से लड़की को कुछ देना चाहे तो अधिक से अधिक एक हजार रुपये का सामान दे सकता है।

हिन्दू समाज में बढ़ रही दहेज की समस्या को देखते हुए उक्त परम्परा बहुत अच्छी लगी। काश ! हिन्दुओं में भी ऐसी ही कोई क्रान्ति घटित होती तो समाज का यह अभिशाप दूर हो सकता था।

तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशासन, संगठन आदि की जानकारी से उनकी उत्सुकता आगे से आगे बढ़ती गई। साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं ने तो उनको मुग्ध कर दिया। श्रद्धासिक्त भाव से वन्दन कर प्रसन्न मन होकर वे वहां से लौटे।

समूचा दिन सार्थक

२३ जुलाई को नाथद्वारा से कुछ विशेष व्यक्तियों ने आचार्यश्री के दर्शन किए। उनमें न्यायाधीश श्री शरच्चन्द्र शास्त्री, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गीता शास्त्री, उपजिलाधीश श्री डूंगरदासजी चारण आदि प्रमुख थे। आचार्यश्री, युवाचार्यश्री एवं साधु, साध्वियों से मिलकर वे बहुत खुश हुए। उन्होंने वह पूरा दिन वहीं बिताया। जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर की जानकारी पाकर वे शिविर में गए। वहां का सारा क्रम उन्हें काफी अच्छा लगा। उपजिलाधीश महोदय आचार्यश्री के बहुमुखी कर्तृत्व से प्रभावित होकर बोले—आचार्यजी ! आप हमारे देश के युगप्रवर्तक हैं। शताब्दियों, सहस्राब्दियों के अन्तराल से ऐसे महापुरुष धरती पर आते हैं। आपने नैतिकता की जो मशाल जलाई है, वह युग-युग तक आलोक देती रहेगी।

न्यायाधीश महोदय प्रेक्षाध्यान के साहित्य को देखकर उसी में डूब गए। एक ही दिन में उन्हें इतनी प्रेरणा मिली कि वे ध्यान करने के लिए उतावले हो

उठे। उन्होंने संतों के पास बैठकर ध्यान का प्रयोग किया और उस समूचे दिन को सार्थक अनुभव किया।

कुछ अंतरंग : कुछ बहिरंग

११ बजे का समय। आचार्यश्री प्रवचन संपन्न कर सभा-भवन के कक्ष में लौट आए थे। नाथद्वारा से समागत न्यायाधीश, उपजिलाधीश आदि कुछ व्यक्ति आपके सामने बैठे थे। आप उन्हें वैज्ञानिक सन्दर्भ में धर्म की व्याख्या समझा रहे थे। उसी समय स्थानकवासी समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्ति—स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मुणोत, महामंत्री श्री फकीरचन्दजी मेहता, गोविन्दरामजी सेक्सरिया, चेरिटी ट्रस्ट के मंत्री व वर्किंग ट्रस्टी श्री शिरोमणिचन्द जैन आदि वहां पहुंचे। वे लोग आचार्यश्री का प्रवचन सुनने की तमन्ना से चले थे, पर मार्ग में कुछ विलम्ब हो गया। उन्हें प्रवचन सुनने का लाभ नहीं मिला। सब लोग जिज्ञासु और ग्रहणशील थे। वे वहीं बैठ गए। आचार्यश्री ने न्यायाधीश आदि को जो बातें समझाईं, उन्हें सुनकर श्री मुणोत बोले—पूरा नहीं पर थोड़ा व्याख्यान तो हमने सुन ही लिया। न्यायाधीश और उपजिलाधीश महोदय आचार्यश्री की तत्त्व समझाने की शैली पर इतने मुग्ध थे कि वे वहां से उठना ही नहीं चाहते थे। दूसरे लोगों की असुविधा को ध्यान में रखकर उन्होंने अपनी जिज्ञासाओं को अभिव्यक्ति देने का लोभ संवरण किया। उनसे अवकाश पाकर आचार्यश्री आगन्तुक श्रावकों की ओर अभिमुख हुए। आचार्यवर के साथ उनके वार्तालाप का कुछ अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

आचार्यश्री : अभी आप कैसे आ गये ? क्या युवाचार्य का मसला लेकर घूम रहे हैं ?

श्रावक : आपको मालूम ही है, आचार्यश्री ! अभी हम इसी संदर्भ में यात्रा कर रहे हैं। हम संघ के प्रमुख संतों और आचार्यों से मिलकर उनके विचार ले रहे हैं। निष्कर्ष रूप में सारी बात आचार्य आनन्द ऋषि तक पहुंचा देंगे। उनकी अवस्था पिचासी वर्ष की हो गयी है। आपने मधुकर मुनि को अपना युवाचार्य घोषित कर दिया था, पर गत वर्ष उनका स्वर्गवास हो जाने से यह समस्या फिर खड़ी हो गयी। पांच-छह मुनियों को लेकर चिन्तन चल रहा है। दो मुनियों ने तो स्पष्ट रूप से अपनी उम्मीदवारी जाहिर कर दी। देखते हैं, अब क्या होता है ?

आचार्यश्री : इस संबंध में हमारे यहां कोई झमेला नहीं है। आचार्य जिसे चाहे, अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दे। श्रावकों से क्या, साधुओं से

भी परामर्श करने की जरूरत नहीं रहती। सात वर्ष पहले हमने महाप्रज्ञजी का नाम घोषित कर दिया। समूचे संघ ने प्रसन्नता के साथ हमारे निर्णय को स्वीकार कर लिया।

श्रावक : तेरापंथ संघ खरबूजे के समान है। इस पर कहीं से चाकू चलाया जाए, कटने का डर नहीं है। श्रमण संघ संतरा है। ऊपर से सब एक दिखाई देते हैं, पर भीतर से सब अलग-अलग हैं। हर समय भय बना रहता है कि कहीं से कोई कट न जाए। आपका संगठन मजबूत है। इसकी व्यवस्थाएं बहुत सुन्दर हैं। मैं तो जब भी प्रसंग आता है, इस बात का स्पष्ट उल्लेख करता हूं। अवसर मिलता है तो लाभ भी उठाता हूं। कुछ लोग मेरे लिए कहते हैं—ये आधे तेरापंथी हैं। मैं कहता हूं—आधे क्यों, पूरे कहें। पूरे स्थानकवासी, पूरे तेरापंथी। हम लोग और कहीं भी जाते हैं तो पूरा समय इधर-उधर की बातों में पूरा हो जाता है। दस मिनट भी स्वाध्याय नहीं होता, सामायिक नहीं होती। मैं अपने साथियों से कहता हूं—आचार्यश्री तुलसी के पास चलो। वहां धर्मध्यान की बात सुनेंगे।

वार्तालाप के प्रसंग में आचार्यप्रवर ने उनको तेरापंथ की दीक्षा-पद्धति के बारे में विस्तार से बताया। संवत्सरी की एकता के संदर्भ में बात चली तो श्रावकजी बोले—मुंहपत्ती वाले, मुंहपत्ती वाले एक हो जाएं तो भी बहुत हैं। दिगम्बर तो साथ होने के नहीं हैं।

आचार्यश्री : नहीं क्यों, वे तो पूरी तरह से साथ हो सकते हैं। दस लाक्षणिक पर्व के प्रारम्भ के दिन को वे महत्त्व दें और अनन्त चतुर्दशी को हम सब महत्त्व दें तो सहज रूप में सामंजस्य बैठ सकता है। किन्तु पहले स्थानकवासी और तेरापंथी तो एकमत होकर दिखाएं। हमारे सामने बड़ी समस्या जो है, वह है अधिक मास की। इसका सीधा समाधान यह है कि अधिक मास को मान्यता ही न दी जाए। सावन दो हों तो दूसरा सावन न गिना जाए और भाद्रपद मास दो हों तो दूसरे भाद्रपद को मत मानो। संवत्सरी जहां है, वहीं रहेगी।

इसी प्रकार अन्य कई विषयों पर अत्यन्त आत्मीयता के साथ बड़ी मधुर चर्चा चली। चर्चा करने वाले ही नहीं, आसपास बैठकर सुनने वाले लोगों को भी अतिरिक्त आनन्द का अनुभव हुआ।

आगन्तुक श्रावकों के सामने जो समस्या थी, उसके संबंध में आचार्यश्री ने अपने सुझाव देते हुए कहा—

- जो मुनि आचार्यपद के लिए उम्मीदवार बने हैं, उन्हें समझाया जाए कि वे

अपना नाम वापस ले लें। भावी आचार्य की नियुक्ति का सारा दायित्व आचार्य को सौंप दिया जाए। वे जैसा उचित समझें, करें।

- जो लोग आचार्यपद के लिए उम्मीदवार खड़ा करते हैं, उन्हें समझाना चाहिए कि यह काम जैन शासन की गरिमा के अनुरूप नहीं है।
- चार-पांच आचार्यों और मनीषी संतों की एक उपसमिति बना दी जाए। वे निष्पक्ष होकर चिन्तन करें। संघहित और शासन-प्रभावना की दृष्टि से निर्णय लें।

आचार्यवर द्वारा प्रदत्त सुझावों को श्रावकों ने उसी समय 'टेप' कर लिया। उन्होंने कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा—काश ! हम आपके विचारों की क्रियान्विति कर पाएं।

अमृत पीने जैसा आनन्द

आचार्यश्री का निकट सान्निध्य प्राप्त कर श्रावक काफी प्रसन्न थे। वे लोग आचार्यश्री से पहली बार ही नहीं मिले थे। कुछ व्यक्ति तो बहुत ही निकटता से परिचित हो गये थे। वे जिज्ञासु और ग्रहणशील भी थे। आस्था और कुल परंपरा से सम्प्रदाय विशेष से संबंधित होने पर भी उनमें दुराग्रह जैसा कुछ नहीं था। वे प्रेक्षाध्यान शिविर में गये। साध्वियों के स्थान पर गये और आचार्यश्री के सान्निध्य में चल रहे भगवती सूत्र के सामूहिक अध्ययन में भी उपस्थित रहे। श्री हस्तीमलजी मुणोत ने उसमें पूरा रस लिया। वे बोले—आचार्यजी ! आज भगवती का जो पाठ सुना एवं उस पर चर्चा सुनी, कई नयी धारणाएं हो गयीं। लम्बे समय तक ऐसा सौभाग्य उपलब्ध हो जाए तो हम भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। वैसे अध्ययन-अध्यापन का यह क्रम कुछ अन्य सम्प्रदायों में भी शुरू हो गया है, पर वहां रिसर्च का दृष्टिकोण नहीं है। जब तक अनेक कोणों से काम करने का प्रशिक्षण नहीं मिलता, सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।

आचार्यश्री : श्रावकजी ! अभी इतने साधु-साध्वी यहां पढ़ते हैं। यह क्रम केवल चातुर्मास में ही नहीं चलता है, बारह महीने यही वातावरण रहता है। आप जैसे ग्रहणशील व्यक्ति एक वर्ष तक अध्ययन कर लें तो कई दृष्टियां मिल सकती हैं।

श्रावक : यहां अमृत पीने जैसा आनन्द मिल रहा है। आचार्यश्री के पास बैठना ही उपयोगी है।

आचार्यश्री : आज के हमारे पाठ में श्वासोच्छ्वास का प्रसंग चला। श्वास के पुद्गल वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवान् होते हैं। वर्णवान् पुद्गल काले, पीले, नीले आदि सभी रंगों के हो सकते हैं।

युवाचार्यश्री : प्रेक्षाध्यान में श्वासप्रेक्षा का प्रयोग करवाया जाता है। उसमें नीले, पीले, काले आदि रंगों का ध्यान होता है। अब तक हम अपनी धारणा के आधार पर यह प्रयोग करवाते थे। उसका मूल आधार यह है। इसके अनुसार एक साथ एक रंग की अथवा अनेक रंगों की प्रेक्षा भी की जा सकती है। श्वासप्रेक्षा पुस्तिका प्रकाशित होकर आ गयी। अगले संस्करण में भगवती का यह प्रसंग उसमें जोड़ना है।

आचार्यश्री : देखो, भगवती का वाचन तुम्हारे लिए भी कितना उपयोगी हो रहा है।

युवाचार्यश्री : हमारे लिए तो आचार्यश्री के पास बैठना ही बहुत उपयोगी है।

कोई भी संकल्प दें

२६ जुलाई को मालवा का एक बड़ा संघ सामूहिक रूप में आमेट में उपस्थित हुआ। इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, पेटलावद, जावद, नीमच आदि अनेक क्षेत्रों के श्रावक-श्राविकाएं उस संघ में सम्मिलित थे। उनके आने का उद्देश्य था—आचार्यप्रवर से मालवा की यात्रा और चातुर्मास के लिए निवेदन करना। इस निवेदन के साथ उनका तर्क यह था कि अमृत महोत्सव वर्ष में पूरा मेवाड़ अमृत वर्षा से अनुप्राणित हो रहा है। हम मेवाड़ के पड़ोसी हैं। हमें इस ऐतिहासिक अवसर से वंचित नहीं रखना चाहिए। मालवा के युवकों का उत्साह बहुगुणित होकर प्रकट हो रहा था। उन्होंने संकल्प स्वीकार किया कि आचार्यश्री के प्रवास-काल में कम-से-कम पचास युवक अपना व्यवसाय छोड़कर व्यवस्था संभालेंगे और उपासना का निरंतर लाभ लेंगे।

जावद निवासी वंशीलालजी वैद अपनी धर्मपत्नी के साथ उस संघ में आये थे। उन्होंने अनुरोध किया कि आचार्यप्रवर मालवा पधारकर उन्हें अपनी इच्छा से कोई भी संकल्प स्वीकार कराएंगे, उसके लिए पति-पत्नी दोनों सहर्ष तैयार हैं। वहां बैठे एक मुनि ने उनसे पूछ लिया—आचार्यश्री ने आपको दीक्षा को स्वीकार करने के लिए कह दिया तो ? बिना एक क्षण सोचे उन्होंने कहा—इसके लिए भी हमारी तैयारी है। पर पहले आचार्यवर मालवा पधारें।

मंत्र का चामत्कारिक प्रभाव

इन्दौर में वर्षों से हरियाणा का एक परिवार रहता है। परिवार के उत्साही युवा पारसदासजी ने सन् १९७६ में वहां अपनी कोठी बनवायी। पहले वे किराये के

मकान में रहते थे। कोठी बनने के बाद वहां रहना शुरू कर दिया। छह महीने बीते होंगे, उनके पास कोठी खाली करने के लिए सरकारी नोटिस आ गया। किसी न्यायाधीश के लिए उस कोठी की जरूरत थी। उन्होंने उस एरिया में कई मकान देखे, पर एक भी पसंद नहीं आया। पारसदास की कोठी देखते ही उन्होंने पसंद कर ली। इमरजेंसी का समय था। कोई कुछ बोले या सरकार का प्रतिवाद करे, ऐसी स्थिति नहीं थी। पूरा परिवार इस घटना से चिन्तित हो गया।

शहर में साध्वियों का आगमन हुआ। पारसदास का परिवार साध्वियों के दर्शन करने गया, पर कुछ विलम्ब से गया। साध्वियों ने विलम्ब का कारण पूछा। बहनों ने अपने मन की परेशानी खोलकर रख दी। साध्वियों ने कहा—बहनो! मकान रहे या जाए, आपके मन की शांति सुरक्षित रहनी चाहिए। इसके लिए परिवार के सभी सदस्य एक मंत्र का जप करना शुरू कर दें। हम किस मंत्र का जप करें? बहनों द्वारा पूछने पर साध्वियों ने बताया—'ॐ अ मी रा शि को नमः'। यह एक अमोघ मंत्र है। आप मन को शांत और एकाग्र बनाकर जप का प्रयोग करें।

परिवार के सब सदस्यों ने मंत्र का जप करना शुरू कर दिया। इससे उनके मन की बेचैनी कम हुई। उनका विश्वास बढ़ा और उन्होंने अपनी कोठी की दीवारों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उस मंत्र का आलेखन कर दिया। कमरे, रसोईघर, स्नानघर, भंडार सब स्थानों पर मंत्र ही मंत्र।

जिन न्यायाधीश महोदय ने उस कोठी को पसंद किया था, वे एक महीने बाद फिर कोठी देखने आए। इस बार उन्हें अंतिम निर्णय देना था कि वह कोठी में रहने के लिए कब आ रहे हैं और कोठी के मालिक किस समय तक उसे खाली करें। न्यायाधीश के आने का संवाद सुनते ही कोठी में सन्नाटा छा गया। अब क्या होगा? चिन्तन के इसी बिन्दु पर सबका ध्यान अटका हुआ था।

न्यायाधीश अपने कुछ साथियों के साथ इस ढंग से कोठी में प्रविष्ट हुए मानो वह उनका ही घर हो। कुछ ही कदम आगे बढ़ने के बाद वे एकदम रुक गये। उनके भीतर रूपांतरण की कोई प्रक्रिया घटित हुई। वे अपने साथियों के अभिमुख होकर बोले—एक पूरे परिवार को निर्वासित कर मैं यहां रहूं, यह अच्छा नहीं होगा। इससे मेरी प्रतिष्ठा पर भी आंच आएगी। तो फिर आप यहां आए क्यों? एक व्यक्ति के ऐसा कहने पर वे बोले—मैं यहां किसी भी मकसद से आया होऊंगा, पर अब मैं इस कोठी में नहीं रहूंगा। इस कथन के साथ ही उन्होंने परिवार के सदस्यों से कहा—आप अपनी कोठी में निश्चिन्त होकर रहें। मैं यहां नहीं आऊंगा।

परिवार के लोगों ने पूरी शालीनता के साथ आगन्तुक लोगों का स्वागत-सत्कार किया। उन्हें यह अहसास तक नहीं होने दिया कि कोठी खाली कराने

की बात से उन्हें कितना आघात पहुंचा है। परिवार के छोटे-बड़े हर सदस्य के मन में उस मंत्र के प्रति गहरी आस्था हो गयी। उन्होंने जिस चमत्कार को साक्षात् देखा था, उसके प्रभाव से उनका मन अप्रभावित कैसे रह सकता था !

जीवन-विज्ञान पर चर्चा

३ अगस्त को प्रातः राजस्थान हाई कोर्ट के जज श्री जसराजजी चोपड़ा ने आचार्यवर के दर्शन किए। श्री चोपड़ा परम्परा से तेरापंथी नहीं हैं, पर तेरापंथ धर्मसंघ के प्रति उनके मन में आकर्षण है। तेरापंथ की गतिविधियों में उन्हें पूरा रस है। आचार्यवर के प्रति उनके मन में सहज श्रद्धा है। पिछले कुछ वर्षों से उनका सम्पर्क बढ़ा है। अब वे अवसर मिलते ही आचार्यश्री के दर्शन करने पहुंच जाते हैं। आचार्यश्री के सान्निध्य में बैठने मात्र से उन्हें आत्मतोष मिलता है।

४ अगस्त को माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ मेहता आमेट आए। नयी शिक्षा नीति के सन्दर्भ में जीवन-विज्ञान के बारे में उनके साथ खुलकर चर्चा हुई। इससे पहले भी अनेक बार इस विषय की चर्चा हो चुकी है।

७ अगस्त को राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल देवपुरा ने आचार्यवर के दर्शन किए। जीवन-विज्ञान के बारे में पुस्तक लेखन संबंधी एक गोष्ठी का समायोजन होना था। इसी सिलसिले में बात करने के लिए वे आए थे। उन्होंने कहा—जीवन-विज्ञान की चार पुस्तकें तैयार करनी थीं। कुछ पुस्तकें तैयार हो गई हैं। उनका पुनर्निरीक्षण और संशोधन करना है। जीवन-विज्ञान के कार्य को विस्तार देने के लिए अजमेर में एक कार्यालय होना जरूरी है। सरकार ने प्राथमिक रूप से चालीस स्कूलों को चुना है। उन सबको संवाद देना होगा। यह दायित्व श्री मांगीलाल जैन संभाल सकते हैं। मेहताजी भी वहीं हैं। वहां कार्यालय होने से सुविधा रहेगी।

श्री देवपुरा ने बताया कि अभी उदयपुर में प्रान्त भर के प्रधान अध्यापकों का पंचदिवसीय सेमिनार होने वाला है। मैं यहां से वहीं जा रहा हूं। उस सेमिनार में जीवन-विज्ञान पर भी चर्चा होगी। उस अवसर पर समणियां वहां पहुंच जाएं तो अच्छी चर्चा हो सकेगी। सैकड़ों शिक्षकों को उससे लाभ मिलेगा।

श्री जगन्नाथजी मेहता जीवन-विज्ञान कार्यक्रम के पूरे पृष्ठपोषक हैं। उनकी इच्छा है कि अध्यापकों और विद्यार्थियों में यह पद्धति प्रचलित हो जाए तो देश में शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी शुरुआत हो सकती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर जैन विश्व भारती, लाडनूं से दो समणियां—समणी स्थितप्रज्ञा और समणी कुसुमप्रज्ञा, डॉ० नथमल टाटिया, श्री शंकरलाल मेहता आदि कुछ व्यक्ति सेमिनार में भाग लेने उदयपुर पहुंचे। डेढ़ घंटा तक उनका वक्तव्य हुआ। आधा घण्टा

का प्रयोग करवाया गया। कुल मिलाकर शिक्षकों के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव रहा।

हमें कोई कहता ही नहीं है

१० अगस्त को मध्याह्न में आचार्यवर के मंगल सान्निध्य में साधु-साध्वियां अध्ययन कर रही थीं। साहित्य-निर्माण और सम्पादन का प्रसंग चला तो आपने कहा—निरन्तर यात्राओं में साहित्य का काम होता है। यदि हम एक-दो वर्ष जमकर रहें तो साहित्य का विशेष काम हो सकता है। जीवन के सात दशक पूरे करने पर भी हम निरंतर यात्रा कर रहे हैं। कालूगणी के युग में जो साध्वियां सत्तर वर्ष के बाद भी मेवाड़ आतीं, उनके लिए आप कहा करते थे—साध्वियां ७० पार करके भी मेवाड़ के घाटे चढ़ती हैं। आज हमें कोई कहता ही नहीं है। हम ऐसी अपेक्षा भी नहीं रखते। क्योंकि पहले शरीर पर बुढ़ापे का प्रभाव जल्दी पड़ता था। उस समय रास्ते भी विकट होते थे। अब इन दोनों स्थितियों में अन्तर आ गया। अतः यात्रा लम्बे समय तक हो सकती है।

हलचल अर्थहीन हो गई

११ अगस्त को मध्याह्न में जैन विद्या ८५ का साप्ताहिक अध्ययन प्रारंभ हुआ। मेवाड़ के कई क्षेत्रों से अध्ययन करने वाले भाई-बहन आए। राणावास में जैन विद्या के शिक्षण का जो क्रम चला, वह बराबर चल रहा है। स्थानीय युवक-युवतियां पूरी रुचि के साथ उसमें उपस्थित रहते हैं।

इसी समय अमृत समवसरण में सामूहिक सामायिक का अभिनव प्रयोग हुआ। एक साथ हजारों भाई-बहनों ने सामायिक की। बड़ा भव्य और आकर्षक दृश्य था। सामायिक प्रयोग के समय वर्षा होने लगी। बाहर कोलाहल हो रहा था, पर भीतर में शान्ति थी। भीतरी शान्ति बाहरी हलचल को अर्थहीन बना देती है।

शान्ति का अनुभव

१३ जुलाई को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद जत्थेदार गुरुदेवसिंह ने आचार्यवर के दर्शन किए। पंजाब के कपूरथला जिले में दयालपुर गांववासी श्री गुरुदेवसिंह पिछले एक दशक से जे० के० फैक्ट्री में काम कर रहे हैं। उन्होंने दर्शन करते ही कहा—आचार्यजी ! बधाई है आपको। आपकी मेहरबानी से पंजाब का मसला

हल हो गया। मैं उस दिन भी यहां आया था। आपके दर्शन करने के बाद मैं सन्तजी से मिला था। आपके पास आने से मुझे शान्ति का अनुभव होता है। हमारा पंजाब तो ठीक हो गया। अब हमें गुजरात की चिन्ता है। वहां हिन्दुओं का ज्यादा नुकसान हो रहा है। उसका हल भी आपको निकालना होगा।

श्री गुरुदेवसिंह बोलते-बोलते सन्तों की महिमा गाने लगे। उन्होंने अनेक पद्यों का उच्चारण किया। उनमें से एक पद्य यह है—

सारी धरती सक्कर होवै, समुद्र दूध हो जावै ।
पर्वत सोना रूपा होवै, फेर भी कीमत नां पावै ।

आखिरी सौभाग्य

१५ अगस्त को मध्याह्न में लगभग एक बजकर पन्द्रह मिनट पर साध्वी केसरजी (लाडनूं) का स्वर्गवास हो गया। १३ वर्ष की उम्र में दीक्षित साध्वी केसरजी तब तक सत्तावनवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी थी। चवालीस वर्षों की संयम-यात्रा में उन्हें लम्बे समय तक आचार्यवर के मंगल सान्निध्य में रहकर साधना करने का सौभाग्य मिला। वर्षों तक बहिर्विहार में रहने के बाद उन्हें अमृत-महोत्सव वर्ष में गुरुकुलवास में रहने का दुर्लभ अवसर मिला। उनके संसार पक्षीय दो भाई—मुनि हनुमानमलजी और सुमेरमलजी भी दीक्षित हैं।

साध्वी केसरजी १४ अगस्त को रात के बारह बजे तक स्वस्थ थीं। अचानक उन्हें उल्टी और दस्त होने लगे। रात का समय था। इसलिए कोई उपचार संभव नहीं था। १५ अगस्त को सूर्योदय से पहले ही वर्षा शुरू हो गई। वर्षा में कोई औषधि नहीं लायी जा सकी। डॉक्टर ने दर्शन किए। उनके पास कुछ टेबलेट्स थीं। सहज प्राप्त दवा का उपयोग किया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। डॉक्टर ने ग्लूकोज चढ़ाने का परामर्श दिया, पर वर्षा के कारण वह उपलब्ध नहीं हो सका। उधर डॉक्टर ग्लूकोज की बोतल तथा अन्य कई औषधियां लेकर पहुंच गए। साधु के निमित्त लायी हुई औषधि लेने की विधि नहीं है। इसलिए डॉक्टर को समझा दिया गया। औषधि सुलभ भी हो जाती तो आयुष्य क्षीण होने के बाद क्या काम करती? धीरे-धीरे उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होती गई। ठीक सवा बजे बीसों साध्वियों की उपस्थिति में उनका समाधिपूर्वक पंडित मरण हो गया। चवालीस वर्ष पूर्व उन्होंने जिस यात्रा का प्रारंभ किया था, वह पूरी हो गई। गुरु के चरणों में जीवनयात्रा की समाप्ति का अवसर किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही मिलता है। उनकी स्मृति सभा में उनके भावी जीवन में आध्यात्मिक विकास की कामना करते हुए आचार्यवर ने उनके बारे में एक पद्य कहा—

सती केसर तू हुई है सफल अपनी सफर में,
वाल्यवय से सजग चलती चली अपनी डगर में,
अचानक ही आज पंडित मरण गुरुकुलवास में,
भाग्य से ही मिले ऐसा समय सहज सुवास में ॥

साध्वी केसरजी अवस्था से वृद्ध नहीं थी। फिर भी न जाने क्यों और कैसे आचार्यश्री को अव्यक्त पूर्वाभास हो गया था कि यह साध्वी अब अधिक समय तक नहीं रहेगी। शायद इसी प्रेरणा से अपने साधु-साध्वियों के नाम से पद्य रचना करते समय उनके नाम से एक दोहा लिखा—

केसर ! तू करणी करण मत गिण सांझ सवेर।
दीक्षित थारै भ्रातृ युग हैं हनुमान सुमेर ॥

आमेट में साधु-साध्वियां आचार्यवर की सन्निधि में थे। अमृत महोत्सव के उपलक्ष में उन सबके नाम से पद्य बनाए गए थे। किसी भी साधु या साध्वी को ऐसी प्रेरणा नहीं दी गई, जैसी साध्वी केसरजी को दी गई। इससे यह अनुमान सहज ही पुष्ट होता है कि आपकी चेतना के आन्तरिक तल पर यह बात उभर गई थी कि साध्वी केसरजी का आयुष्य कम है, इस दृष्टि से उन्हें पहले से ही सावधान कर दिया गया।

मेवाड़ के अनेक क्षेत्रों से लगभग आठ-दस हजार भाई-बहन साध्वीजी के अंतिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए पहुंच गए। इस सम्बन्ध में मेवाड़ी श्रावकों की जागरूकता और उनका उत्साह अन्य लोगों के लिए अनुकरणीय है। आमेट की चन्द्रभागा नदी के किनारे ढूंढिया मगरी पर उनका अंतिम संस्कार सम्पन्न हुआ।

असम समस्या : एक समाधान

१५ अगस्त का दिन भारतीय इतिहास में विशिष्ट दिन है। इस दिन भारत विदेशी दासता की श्रृंखला से मुक्त होकर स्वतन्त्रता की सांस लेने लगा था। गांधीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने अहिंसा का अस्त्र हाथ में लेकर जिस ढंग से विजयश्री का वरण किया, इतिहास की एक बेजोड़ घटना है। परतंत्र भारत में जनता को जीने का अधिकार तो था, पर स्वाभिमानी जीवन के तेवर कुछ दूसरे ही होते हैं। सन् १९४७ का १५ अगस्त भारत को सिर ऊंचा उठाकर जीने का अहसास दे गया। तब से अब तक इस दिन को राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाता है।

सन् १९८५, १५ अगस्त की आधी रात का समय। प्रधानमंत्री के कार्यालय में कुछ गंभीर मंत्रणा चल रही थी। कार्यालय से बाहर गहरी खामोशी थी।

कौन जानता था, उस समय कोई संघर्ष समझौते का रूप ले रहा है। रात के बारह बजकर पैंतालीस मिनट पर केन्द्र सरकार और असम समस्या में उलझे हुए लोगों के बीच समझौता हुआ। समझौते पर हस्ताक्षर हो गए। वार्ता का पन्द्रहवां दौर सफलता की सोपान पर आरूढ़ हुआ। असम क्षेत्र में स्वतंत्रता के बाद से ही संघर्षों की आग सुलगती रही है। विगत छह वर्षों से वहां आकर बसने वाले विदेशियों के विरोध में एक आन्दोलन चल रहा था। आन्दोलन प्राय: शान्तिपूर्ण था। फिर भी शिक्षा और व्यापार पर तो उसका असर होना ही था। इतनी लम्बी अवधि में कहीं-कहीं हिंसक वारदातों की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। खैर, छह वर्ष का आन्दोलन एक झटके से समाप्त हो गया। १५ अगस्त का गौरव बहुगुणित हो उठा। इस समझौते को लोकतांत्रिक परंपराओं की जीत का प्रतीक माना गया। समझौता वार्ता में जो मुद्दे तय हुए, उनमें से कुछ ये हैं—

- विदेशियों की पहचान के लिए तारीख और आधार वर्ष जनवरी १९६६ माना जाएगा।
- जो लोग १ जनवरी १९६६ और २४ मार्च १९७१ के बीच असम में आए, उनके नाम अगले दस वर्ष के लिए मतदाता सूची से निकाल दिए जाएंगे। २५ मार्च १९७१ को या उसके बाद जो विदेशी आए, उन्हें राज्य से निकाल दिया जाएगा।
- असम के आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के लिए नये कदम उठाए जाएंगे।
- आन्दोलन में भाग लेने वाले कर्मचारियों के खिलाफ कार्यवाही में सहानुभूति का रुख अपनाया जाएगा।
- असम विधान सभा भंग की जाएगी और हितेश्वर सैकिया मंत्रीमण्डल स्तीफा देगा। एक काम चलाऊ मंत्रिमण्डल बनाया जाएगा, जिसके प्रधान श्री सैकिया होंगे।

पंजाब और गुजरात के बाद असम की समस्या का समाधान देश की अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में भी कुछ नयी संभावनाओं को उजागर कर सकता है। पर यह तभी सम्भव है, जब समझौते में निर्णीत हुए मुद्दों पर दोनों पक्षों की ओर से ईमानदारी के साथ अमल हो। क्रियान्विति के अभाव में बड़े से बड़ा समझौता अकिंचित्कर हो जाता है और समस्या सुलझने के स्थान पर उलझ जाती है। इसलिए ऐसे प्रसंगों पर व्यक्ति को राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक दृष्टि का निर्माण करना जरूरी है।

मन के कीचड़ का क्या होगा

१५ अगस्त से अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह का कार्यक्रम शुरू हुआ। उस दिन

भावात्मक एकता को केन्द्र में मानकर विचार चर्चा हुई। १६ अगस्त को व्यसन-मुक्ति दिवस था। उस दिन के वक्ता थे सर्वोदयी कार्यकर्ता श्री मनोहरसिंहजी मेहता। कार्यक्रम से पहले वे साध्वी केसरजी की शवयात्रा में गए थे। पहले दिन वर्षा के कारण रास्ते में कीचड़ हो गया था। एक भाई ने मेहताजी से कहा—यहां संभलकर चलना, कीचड़ बहुत है। मेहताजी ने चुटकी लेते हुए कह दिया—यहां तो संभलकर चल सकेंगे। पर मन में जो कीचड़ भरा है, उसका क्या होगा? मेहताजी के छोटे से वाक्य ने कई लोगों को अपने मन के भीतर झांकने के लिए विवश कर दिया।

मेहताजी समाज सुधारमूलक कामों में अच्छा रस लेते हैं। व्यसन-मुक्ति और रूढ़िमुक्ति से संबंधित कार्यक्रमों में वे अधिक सक्रिय हैं। व्यसनों से होने वाले दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—मैं अपने जीवन के सात दशक पूरा कर चुका हूं। आज मैं संकल्प करता हूं कि चौहत्तर वर्ष के बाद अपना सारा जीवन आचार्यश्री द्वारा बताए गए रास्ते पर लगाऊंगा। मैं आखिरी क्षण तक सामाजिक कुरूढ़ियों को दूर करता रहूं, यह मेरी तीव्र आकांक्षा है। उन दिनों उन्होंने पचास व्यक्तियों को व्यसन-मुक्ति और रूढ़ि-मुक्ति की दिशा में प्रेरित किया था। उन लोगों का सूचीपत्र उन्होंने आचार्यवर को समर्पित किया। उदयपुर से समागत श्री भूरेलालजी बया ने भी अपने विचार रखे।

इस दिन पाली से एक बड़ा संघ आचार्यवर को पाली चातुर्मास के लिए अनुरोध करने आया था। व्यसन-मुक्ति का प्रसंग था। उन्हें भी प्रेरणा दी गई। व्यक्तिगत प्रेरणा का प्रभाव हुआ और कई व्यक्ति व्यसन-मुक्त हो गए। कुछ व्यक्ति इतना साहस नहीं कर सके। उन्होंने एक अवधि तक अमुक-अमुक व्यसन से मुक्त रहना स्वीकार किया।

कुछ व्यक्तियों के नाम और संकल्प

कान्तिलालजी सर्राफ प्रतिदिन पचास पान और जर्दा खाते। सोते समय पान उनके मुंह में रहता। सोकर उठते ही चाय के बाद पान खाते। उन्होंने पान और जर्दा छोड़ दिया। मोतीलालजी सेमलाणी (चाणोद) ने भांग और अफीम का परित्याग किया। हेमराजजी नाहर (खंरवा), मदनलालजी नाहर, प्रेमचन्दजी मिश्रा, भंवरलालजी धोखा आदि कुछ व्यक्तियों ने सिगरेट, जर्दा, भांग आदि का त्याग किया। पचास, तीस, पचीस वर्षों के व्यसन को इस प्रकार छोड़ देना बहुत ही साहस का काम है। प्रेरणा, वातावरण और गुरु के आशीर्वाद से कठिन काम भी सहज हो जाता है।

उद्बोधन सप्ताह के अग्रिम दिनों में मिलावट-निरोध, अस्पृश्यता-निवारण,

दहेज-उन्मूलन जीवन-विज्ञान और अणुव्रत प्रेरणा दिवस के रूप में व्यवस्थित संगोष्ठियों का समायोजन हुआ। आचार्यश्री और युवाचार्यश्री के उद्बोधन प्रवचनों से जनता को दिशादर्शन मिला।

दिव्य क्षणों का साक्षात्कार

तपस्या आत्मशुद्धि का एक विशिष्ट उपक्रम है। इसके अनेक रूप हैं। धार्मिक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार तपः साधना करते रहते हैं। लम्बी तपस्या के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय होता है चातुर्मास का। जैन समाज में तपस्या का अपना कीर्तिमान है। इसमें महीनों तक निरन्तर निराहार रहकर आत्मकेन्द्रित बनने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकाएं सभी इस सात्विक प्रतिस्पर्धा में भागीदार रहना चाहते हैं। किन्तु शारीरिक क्षमता के अभाव में यह चाह पूरी नहीं होती। सन् १९८५ का वर्ष तेरापंथ धर्मसंघ के लिए ऐतिहासिक वर्ष के रूप में मनाया गया। आचार्यश्री की धर्मशासना के पचास वर्षों की सफल संपन्नता के उपलक्ष में समायोजित अमृत महोत्सव के कार्यक्रम इसी वर्ष संपन्न हुए। उन कार्यक्रमों में तपस्या भी एक बिन्दु था। सामूहिक और व्यक्तिगत रूप में हुई तपस्या का पूरा आकलन संभव नहीं है। उस क्रम में कुछ साधु-साध्वियों ने विशेष तपस्या का संकल्प स्वीकार किया। उनमें एक साध्वी थी दीर्घ तपस्विनी साध्वीश्री पन्नांजी। साध्वी पन्नांजी आमेट में आचार्यश्री के साथ थीं। उन्होंने लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की चौथी परिपाटी करने की इच्छा व्यक्त की। अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए उन्होंने आचार्यवर से आग्रह भरा अनुरोध किया। आचार्यवर ने कहा—अभी तुम्हारी जरूरत है। समय आने पर तुम्हारी प्रार्थना पर ध्यान दिया जाएगा।

साध्वी पन्नांजी की विशेष तपस्या की भावना फलीभूत नहीं हुई, तब उन्होंने सदा की भांति आछ के आगार पर तपस्या करनी चाही। उनकी उत्कृष्ट भावना को देखकर आचार्यवर ने उनको इक्वावन दिन की तपस्या का संकल्प करा दिया। साध्वी पन्नांजी पिछले छत्तीस वर्षों से निरंतर चौविहार एकान्तर तपस्या कर रही हैं। आछ के आगार पर वे चार, छह मास की तपस्याएं कर चुकी हैं। तपस्या के साथ ध्यान, जप और सेवा के उनके प्रयोग अत्यन्त विलक्षण हैं। तपस्या को उन्होंने ओढ़ा नहीं, जीवन का अंग बना लिया।

१७ अगस्त को साध्वी पन्नांजी की तपस्या के इक्यावन दिन पूरे हो गए। १८ अगस्त को परमाराध्य आचार्यप्रवर और युवाचार्यश्री अनेक साधुओं के साथ साध्वियों के स्थान पर पधारे। साध्वी पन्नांजी का रोम-रोम प्रसन्नता से खिल उठा। आचार्यवर के दर्शन पाते ही उनको असीम शक्ति उपलब्ध हो गई।

आचार्यश्री, युवाचार्यश्री ने उनको सम्मिलित रूप में 'पारणा' कराया। आचार्यवर ने साध्वीश्री को सम्बोधित करते हुए एक दोहा कहा—

पन्ना दीर्घ तपस्विनी, इक्यावन दिन साज।
युवाचार्य आचार्य कर, करै पारणो आज॥

श्रद्धा और वात्सल्य की सौ-सौ धाराएं वहां उपस्थित लोगों को अभिष्णात कर रही थीं। बहुत ही दिव्य क्षण थे वे। गुरु की अन्तहीन कृपा का एक जीवंत निदर्शन। दर्शक मुग्धभाव से उस दृश्य को निहारते रहे।

साध्वी पन्नांजी तपस्या समापन के समय कुछ विशेष अभिग्रह स्वीकार किया करती हैं। उस समय भी उनके कुछ विशेष संकल्प थे, जैसे—

१. आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री साध्वियों के स्थान पर पधारकर एक साथ ग्रास दें।
२. साध्वी प्रमुखाजी एक साथ इक्कीस साध्वियों के साथ 'पारणा' करने के लिए कहें।
३. सवा लाख का जप पूरा हो जाए।
४. साधु-साध्वियां साध्वी पन्नांजी के पास बैठकर कुछ खाएं या पीएं।

ये चारों संकल्प पूरे नहीं होने की स्थिति में सात दिन की तपस्या आगे बढ़ाई जाती। संयोग से चारों अभिग्रह सफल हो गए और अत्यन्त उल्लासमय वातावरण में साध्वीजी का पारणा हो गया। पारणे के दूसरे दिन उन्होंने फिर उपवास कर लिया। लम्बी तपस्याओं के पारणे में भी उनके एकान्तर उपवास का क्रम कभी टूटता नहीं है। ऐसी तपस्विनी साध्वियों से धर्मसंघ की प्रभावना बढ़ती है और साध्वी-समाज का गौरव समुन्नत होता है।

तपस्या का तीव्र प्रवाह

उन दिनों देश भर में अनेक साधु-साध्वियां तपोयज्ञ में अपना योग दे रहे थे। कुछ तपस्याएं पूरी हो गई थीं। कुछ पूरी होने को थीं। श्रावक-श्राविकाओं में भी तपस्या के प्रति विशेष उत्साह दृष्टिगत हुआ। उन दिनों में सम्पन्न और सम्पन्न-प्राय तपस्याओं की एक झलक—

मुनिश्री पानमलजी	सरदारशहर में, ३३ दिन
मुनिश्री अर्जुनलालजी	आमेट में, ३० दिन
मुनिश्री भवभूतिजी	आमेट में, १५ दिन
साध्वीश्री पन्नांजी	आमेट में, आछ के आगार से ५१ दिन
साध्वीश्री स्वयंप्रभाजी	आमेट में, आछ के आगार से १२१ दिन
साध्वीश्री सुमतिश्रीजी	आमेट में, आछ के आगार से २७ दिन

मुनिश्री रवीन्द्रकुमारजी	नाभा में, १५ दिन
साध्वीश्री राजकुमारीजी	कांकरोली में, ५१ आयंविल
साध्वीश्री कमलश्रीजी	अहमदावाद में, आयंविल के एकान्तर
साध्वीश्री झमकूजी	अहमदावाद में, ५१ आयंविल
साध्वीश्री भत्तूजी	सरदारशहर में, ५१ आयंविल
श्रीमती खूमीदेवी डांगरा	आमेट में, २२ दिन
श्री जीतमलजी जैन	आमेट में, ३१ दिन
श्री बख्तावरमलजी पीतलिया	आमेट में, १६ दिन
श्रीमती सुशीला वोहरा	मद्रास में, ३१ दिन
श्रीमती मोहनीदेवी आंचलिया	वड़ीपादू में, ३० दिन
श्रीमती तारामणि मेहता	बाव में, ३० दिन
श्रीमती आशादेवी हरिजन	उदासर में, ३० दिन

साध्वी लघिमाश्री जी आयम्बिल तप का एकान्तर (१ वर्ष करने का लक्ष्य)
कुमारी वर्षा वहन चन्दू भाई मेहता (वाव), ३१ दिन
कुमारी ललिता वहन वावूलाल डोसी (वाव), ३१ दिन
श्रीमती वेवी वहन महासुखलाल मेहता (वाव), ३१ दिन
श्रीगती चंची वहन मुक्तिलाल मेहता (वाव), ३१ दिन
श्रीमती लीला वहन जयंतीलाल मेहता (वाव), १३ दिन
श्री भेरूलाल सिंघवी, जोगेश्वरी, वम्बई, मास खमण।
श्रीमती विजया वहन पारिख, मलाड-वम्वई, मास खमण
श्री लक्ष्मीलालजी कोठारी, कुर्ला-वम्बई, मास खमण
श्रीमती रेखादेवी पोखरना, देवगढ़ मदारिया, मास खमण
श्रीमती हुणसदेवी पोखरना, देवगढ़ मदारिया मास खमण
श्रीमती कानीदेवी वरड़िया, सरदारशहर, ३४ दिन
श्री राजकुमार जैन (संगरूर), ५५ दिन का आयम्बिल।
श्री ओम प्रकाश सिंगला (संगरूर), ३८ दिन का आयम्बिल।
श्रीमती चेतनादेवी जैन (संगरूर), ६७ दिन का आयम्बिल।
श्रीमत्ती विमलादेवी जैन (संगरूर), एक माह एकान्तर।
श्रीमती प्रेमलता जैन (संगरूर), एक माह एकान्तर।
श्रीमती कंकूदेवी चम्पालाल चोपड़ा पचपदरा, मास खमण।
श्रीमती चन्द्रकान्ता जुगराजजी जैन, ३० दिन।
श्रीमती पानीदेवी छगनलाल जी तलेसरा (पालघर), ३३ दिन
साध्वीश्री मनोहरांजी (सरदारशहर), १८ दिन
श्रीमती तोलीवाई नाहटा (सरदारशहर), ३३ दिन

श्रीमती मालचन्दजी भादानी तथा श्रीमती धनराजजी सेठिया नेफाला कोटा—मास खमण।
श्री मूलचन्दजी वाफणा (श्री डूंगरगढ़), ३८ दिन।
साध्वीश्री मुदित प्रभाजी—मास खमण।
साध्वीश्री पुष्पावतीजी—मास खमण।
मुनिश्री फतेहचन्दजी—मास खमण।
श्रीमती मनोहरीदेवी आंचलिया—मास खमण।
श्री मूलचन्दजी वाफणा, श्री डूंगरगढ़ में, ३८ दिन, ४५ दिन, ५४ दिन
श्रीमती भारी वाई सिरोहिया, उदयपुर में, ३१ दिन
श्रीमती महेन्द्रजी लोढ़ा, उदयपुर में, ३१ दिन
श्रीमती गट्टूवाई करघावाला, उदयपुर में, २५ दिन
श्री मनोहरलालजी पोखरना, उदयपुर में, २१ दिन
श्रीमती नजरवाईआच्छा, नागपुर में, ३० दिन
श्रीमती मूलीवाई धारीवाल, नागपुर में, ३० दिन
श्रीमती मोहनीवाई झावड़, नागपुर में, ३० दिन
श्रीमती घेवरचन्द झावड़, नागपुर में, ३० दिन
श्रीमती नान्हीवाई जैन, केसिंगा में, ३० दिन
साध्वीश्री नयश्रीजी, संगरूर में, १५ दिन
साध्वीश्री कंचनकुमारीजी (उदयपुर), हैदरावाद में, ३० दिन
श्री वृद्धिचन्दजी चोपड़ा (जोजावर), आमेट में, ३० दिन

मेवाड़ क्षेत्रीय महिला प्रशिक्षण शिविर

१७ और १८ अगस्त को आचार्यवर के सान्निध्य में मेवाड़ क्षेत्रीय महिला प्रशिक्षण शिविर का आयोजन था। शिविर में पचीस क्षेत्रों की वहनों ने भाग लिया। द्वि-दिवसीय शिविर में वहनों को ध्यान, योग, तत्त्वज्ञान आदि का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उनके जीवन को संस्कारी और रूढ़ि-मुक्त वनाने की दृष्टि से चर्चा गोष्ठियां हुई। वहनों ने पूरे उत्साह के साथ गोष्ठियों में भाग लिया। उनके मन में जागृति की तड़प है। वे आचार्यवर के सपनों के अनुसार महिला जाति में विकास के नये आयाम खोलने के लिए उत्सुक भी हैं। पर अभी तक गांवों में व्याप्त अशिक्षा, संस्कारहीनता और कुरूढ़ियां उनके विकास में वाधक वनी हुई हैं। आचार्यवर ने वहनों को अस्तित्व-वोध और क्षमताओं के सही उपयोग के लिए आह्वान किया।

धर्मसंघ यथार्थजीवी बने

१९ अगस्त को मध्याह्न में साधु-साध्वियों की एक अनौपचारिक सभा को संबोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—हम अपने धर्मसंघ को दीर्घजीवी और श्रमजीवी बनाए रखना चाहते हैं। इसकी दीर्घजीविता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। स्वामीजी का वरदान काम कर रहा है। लेकिन यह बात ध्यान देने की है कि हम जितने श्रमजीवी रहेंगे, संघ उतना ही दीर्घजीवी बनेगा। अमीरी जीवन के लिए अभिशाप है। इससे आयुष्य कम होता है। हम लोग आत्महित के लिए इस धर्मसंघ में दीक्षित हुए हैं। हमारा उद्देश्य तभी फलीभूत होगा, जब हम अमीरी से दूर रहकर श्रम की प्रतिष्ठा करते रहेंगे।

श्रमशीलता पर विस्तार से अपने विचार देते हुए आचार्यवर ने आगे कहा, श्रमजीवी के साथ हम अपने धर्मसंघ को यथार्थजीवी भी बनाना चाहते हैं। साधु बन गए, इसलिए संघ में रहना पड़ेगा, ऐसा सोचना केवल उपचार है। हम किसी के दबाव या प्रभाव से साधु नहीं बने हैं। इस जीवन को स्वीकार करने में प्रमुख निमित्त हमारा अपना विवेक है। इस जीवन से हमें अपना लाभ ही नहीं उठाना है। संघ और संसार को भी हमसे कुछ-न-कुछ लाभ मिलता रहे, यह ध्यान रखना जरूरी है। हम अपने धर्मसंघ को स्वस्थ रखते हुए मानवता के लिए कुछ काम करें, यह हमें अभीष्ट है। हम और किसी का भला कर सकें या नहीं, स्वयं का भला करते रहें, यही धर्मसंघ और संसार का भला है।

अपने धर्मसंघ को प्रगति के उच्च शिखर पर आरूढ़ देखने का एक सपना आचार्यवर वर्षों से देख रहे हैं। अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर कोई विशेष उपक्रम उस स्वप्न को आकार दे सके, इस दृष्टि से आपने कहा—मेरी धर्मशासना के पचीस वर्ष पूरे हुए, उस समय तेरापंथ धर्मसंघ अपनी दो शताब्दियों की यात्रा तय कर चुका था। उस वर्ष हमने मुड़कर देखा और फिर गति में वेग भरकर चले। अब पचास वर्ष का समय पूरा होने वाला है। यह भी एक मोड़ का समय है। हम मुड़ें, अपने धर्मसंघ को नया मोड़ दें, और तीव्रगति से आगे बढ़ें, यह अपेक्षा है। हमारी गति-प्रगति का मानदण्ड है वीतरागता। यही हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमारा दृष्टिकोण आध्यात्मिक बने। आध्यात्मिक दृष्टि निर्मित होने पर ही हम कोई बड़ा काम कर सकेंगे।

आचार्यवर द्वारा प्राप्त इस पाथेय को साधु-साध्वियों ने पूरी सजगता के साथ संजोकर रखा। जीवन की लम्बी यात्रा में बार-बार ऐसा पाथेय मिलता रहे, तो यात्रागत कठिनाइयों का हल होता रहता है।

आचार्यश्री स्वयं श्रम के पुजारी हैं। उम्र के आठवें दशक में प्रवेश करके भी आप दिन और रात जितना श्रम करते हैं, इस युग की विलक्षण घटना है।

आचार्य भिक्षु अपने जीवन के आखिरी समय तक श्रमशील रहे। वे सतहत्तर वर्ष की अवस्था में स्वयं भिक्षा करते थे, प्रवचन करते थे और यात्रा करते थे। आचार्य भिक्षु के ये संस्कार आचार्यश्री को विरासत में मिले। कार्य-परिवर्तन को ही विश्राम मानकर आप जैन शासन और मानव जाति की जो सेवा कर रहे हैं, उसका आकलन हो पाना भी कठिन है। आपके कर्तृत्व के छुए-अनछुए इतने प्रसंग विखरे पड़े हैं, जो अपने आप में एक जीवंत प्रेरणा है।

तेरापंथ धर्मसंघ की वहुमुखी प्रवृत्तियों और साधु-साध्वियों की कर्मशीलता की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा—एक वार किसी वुजुर्ग कांग्रेसी के मन में आशंका हो गई कि इतने साधु इकट्ठे होकर क्या करते होंगे? उन्होंने निकटता से साधुओं की चर्या का अध्ययन किया तो उन्हें लगा कि कोई साधु निकम्मा है ही नहीं। ध्यान, स्वाध्याय, प्रवचन, अध्ययन, अध्यापन, सेवा, कला जनसम्पर्क आदि कितने आयाम चल रहे हैं। हर साधु किसी-न-किसी प्रवृत्ति में संलग्न रहता है। उन्होंने जव यह वात मुझे वताई तो मैंने कहा—इतना काम भाग्य से ही मिल पाता है। जिन लोगों के पास कोई काम न हो, उनका समय कैसे वीतता होगा? यहां तो यह भी पता नहीं चलता कि सूरज कव उगता है और कव अस्त होता है।

युवा मंच से

युवक समाज की रीढ़ होता है। वह जितना शक्तिसंपन्न होता है, समाज उतना ही सक्षम वनता है। उसकी सक्षमता का मानदण्ड अर्थ-वल या संख्या-वल नहीं, चरित्रवल और संगठनवल है। अल्पसंख्यक लोग भी अपने चरित्र और संगठन के आधार पर वड़ा काम करने में सफल हो जाते हैं। तेरापंथ एक छोटा-सा समाज है। धार्मिक आस्थाओं के आधार पर इस समाज की अपनी अलग पहचान वनी। छोटे-से समाज की युवाशक्ति प्रारम्भ में धार्मिक मंच पर उपेक्षित-सी रही। उस समय धर्मसभाओं में वुजुर्ग चेहरे ही अधिक दिखाई दिया करते थे। युवक धर्म को रूढ़ि समझ वैठा था। इसलिए धर्मगुरुओं के सान्निध्य में उसे केवल परम्परा या पोंगापन का दर्शन होता। युवक जितना दूर हुआ, नयी पीढ़ी उतनी ही संस्कारहीन होती चली गई। समय-समय पर इस वात का स्पष्ट अनुभव हुआ और दूरी को पाटने का प्रयत्न होता रहा।

लगभग दो दशक पूर्व आचार्यश्री का ध्यान विशेष रूप से युवापीढ़ी पर केन्द्रित हुआ। युवकों को निकट लेने और उनकी मानसिक ग्रन्थियों को उन्मुक्त करने से यह वात समझ में आई कि समय रहते युवकों को नहीं संभाला गया तो डोर हाथ से छूट जाएगी। आचार्यवर अपने मन में जो कुछ सोच लेते हैं, उसे

करने के लिए पूरे मन से लग जाते हैं। आप स्वयं सजग हुए और कुछ संतों को विशेप निर्देश दिए। आपका निर्देश मिलते ही सन्तों ने प्रयत्न शुरू किया और युवकों का एक स्वतंत्र मंच बन गया। अखिल भारतीय युवक परिपद, जिसने आगे चलकर 'तेयुप' के नाम से अपनी पहचान बनाई, युवा संगठन का आधार बन गया। तब से प्रतिवर्प एक बार देश भर की शाखाओं के प्रतिनिधि आचार्यवर के सान्निध्य में मिलते हैं, अपनी संस्था का अधिवेशन करते हैं और शाखा परिपदों को सक्रिय बनाने के लिए नये-नये उपक्रम करते हैं।

आमेट में अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिपद का उन्नीसवां वार्पिक अधिवेशन था। उसमें देश भर की सौ शाखा परिषदों के तीन सौ पचासी युवक उपस्थित हुए। २५ से २७ अगस्त, तीन दिन तक अमृत समवसरण में ही नहीं, आमेट की स्टेशन रोड पर विशेप पहचान के साथ युवकों की टोलियां चक्रमण करती हुई दिखाई दीं।

शक्ति, संतुलन और सक्रियता बढ़े

२५ अगस्त को प्रातः मेवाड़ की धरती पर पहली बार परिपद के अध्यक्ष श्री पदमचन्द पटावरी ने ध्वजारोहण कर अपना अध्यक्षीय वक्तव्य दिया। आचार्य-प्रवर ने अपने मंगल आशीर्वचन में उस अधिवेशन को ग्रन्थि-प्रतिलेखना का अधिवेशन बताया। अतीत का सिंहावलोकन, वर्तमान को स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया का उपयोग और भविष्य को संवारने का सपना यही तो ग्रन्थि-प्रतिलेखना का वाच्यार्थ है। केवल अतीत को देखना और निराशा व्यक्त करना अधूरा सिंहाव-लोकन है। अतीत, भविष्य और वर्तमान—तीनों को एक साथ जोड़ने वाला व्यक्ति या वर्ग ही काललब्धि से लाभान्वित हो सकता है। आचार्यप्रवर ने वहां उपस्थित युवकों को शक्ति, संतुलन और सक्रियता बढ़ाने का निर्देश देते हुए अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखने का आह्वान किया। कार्यक्रम के अंत में संस्कारकेन्द्र के युवकों ने योगासन का संक्षिप्त प्रदर्शन किया।

युवक की पहचान

२५ अगस्त को प्रातःकाल अधिवेशन की समस्त औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद आचार्यवर ने युवापीढ़ी को मार्ग-दर्शन देते हुए कहा—युवक समाज की शक्ति है। समाज ने इस शक्ति के प्रति विश्वास किया है। युवकों को सोचना है कि वे अपनी शक्ति का उपयोग किस रूप में करते हैं और किस तरह समाज को लाभान्वित करते हैं। इस संदर्भ में मूलभूत प्रश्न है आस्था का। युवकों की आस्था

कहां टिकी हुई है ? व्यक्ति पर या सिद्धांत पर ? व्यक्ति महत्त्वपूर्ण हो सकता है, पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है सिद्धांत। अभी पिछले दिनों जैन विश्व भारती के डायरेक्टर डॉ० नथमल टाटिया विदेश जाकर आए हैं। उन्होंने वताया कि विदेश में एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें लिखा है—संसार की समस्या के दो मूलभूत तत्त्व हैं—हिंसा और परिग्रह। वहां इस वात को एक नयी खोज के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

मैंने यह सुनकर कहा—हमारे लिए यह कोई नयी वात नहीं है। आज से ढाई हजार वर्ष प्राचीन आगम 'ठाणं' में लिखा है—जो व्यक्ति दो स्थानों को नहीं जानता, नहीं छोड़ता, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन पाता, विशुद्ध वोधि का अनुभव नहीं कर पाता, मतिश्रुत, अवधि, मनःपर्यव एवं केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। वे दो स्थान हैं—'आरंभे चेव परिग्गहे चेव' हिंसा और परिग्रह।

हिंसा और परिग्रह के संवंध में अपना चिन्तन स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री ने युवकों से कहा—हिंसा समाधान नहीं है, वह स्वयं एक समस्या है। हिंसा के द्वारा हिंसा की समस्या नहीं मिटेगी। अहिंसा की शक्ति का प्रयोग करने से ही हिंसा का समाधान हो सकता है। इसी प्रकार परिग्रह दुःख का मूल है। पदार्थवादी दृष्टिकोण परिग्रह के प्रति आसक्ति को वढ़ाता है। भगवान् महावीर ने अर्जन के साथ विसर्जन की वात कही। विसर्जन का अर्थ दान नहीं, त्याग है। विसर्जन के सूत्र को क्रियान्वित करने के लिए युवक तीन संकल्प स्वीकार करें—

- अनुचित तरीकों से अर्थ का अर्जन नहीं करना।
- अर्जित संपत्ति का व्यक्तिगत क्षेत्र में अधिक उपयोग नहीं करना।
- आवेश पर नियंत्रण करना।

अपने प्रवचन के उपसंहार में आचार्यवर ने युवकों को अपनी नयी पहचान वनाने की प्रेरणा देते हुए वल देकर कहा—मैं चाहता हूं कि ध्वंस और वरवादी युवक की पहचान न वने। आवेश और आग्रह युवकत्व का प्रतीक न वने। युवक की पहचान हो निर्माण, सृजन, शान्ति और अनाग्रह। युवक अपनी ऐसी पहचान वनाकर ही अपने कर्तृत्व को सार्थकता दे सकता है।

शक्ति का जागरण जरूरी

विसर्जन, समर्पण, व्यसनमुक्ति और उपासकदीक्षा—इन चार विन्दुओं की ओर युवकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए युवाचार्यश्री ने २६ अगस्त को प्रातःकालीन कार्यक्रम में कहा—युवकों का घोष है—लक्ष्य वनाओ, शक्ति जगाओ। शक्ति का जागरण जरूरी है। जिसकी शक्ति जागृत नहीं होती, वह भिखारीपन का जीवन जीता है। प्रतिष्ठित और सम्मानित जीवन वही जी सकता है, जो शक्ति-

मान होता है। शक्ति तब तक नहीं जागती, जब तक भीतर में प्रवेश नहीं होता। भीतर प्रवेश होने से पहले शक्ति जाग भी जाए तो उसका उपयोग निर्माण में नहीं होता। इसलिए युवक सलक्ष्य शक्ति जगाएं और सही दिशा में उसका नियोजन करें।

युवक नयी जीवन शैली विकसित करें

२७ अगस्त को प्रातः तेयुप के कई कार्यक्रम थे। यह वर्ष उनका त्रैवार्षिक चुनाव वर्ष था। विगत तीन वर्षों से पद्मचन्दजी पटावरी परिषद के अध्यक्ष थे। उन्होंने पूरी जागरूकता और निष्ठा के साथ अध्यक्षीय दायित्व निभाया। उनकी सेवाएं संस्था को फिर मिलें, इस दृष्टि से शाखा परिषदों ने सर्व सम्मति से अगले तीन वर्षों के लिए उन्हें ही अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। श्री पटावरी ने अध्यक्षपद की शपथ ग्रहण की और आचार्यवर की दृष्टि के अनुसार काम करने का संकल्प व्यक्त किया।

युवक परिषद अपने अधिवेशन के अवसर पर प्रतिवर्ष एक युवक को युवक-रत्न का सम्मान देती है। इस परम्परा का निर्वाह करते हुए सन् १९८५ में युवकरत्न के अलंकरण से सम्मानित हुए एडवोकेट श्री प्रेमचन्द सिंगला। पंजाब के युवक श्री सिंगला ने धर्मसंघ की सेवा में जो उदाहरण प्रस्तुत किया, उसका मूल्यांकन पूरे पंजाब के लिए गौरव का विषय था।

परिषद के द्वारा निर्धारित कार्यक्रम की क्रियान्विति को लक्ष्य में रखकर अनेक शाखा परिषदों को प्रशस्तिपत्र और प्रोत्साहनपुरस्कार वितरित किये गये। अधिवेशन के अवसर पर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतियोगियों को भी पुरस्कृत किया गया। कुल मिलाकर तीन दिन के सभी कार्यक्रम विशेष रूप से युवकों के लिए थे। युवकों का उत्साह, लगन और कार्यक्रम देखकर अनेक लोगों की यह धारणा निर्मूल हो गई कि वर्तमान युवापीढ़ी को धार्मिक, नैतिक या संगठनात्मक कार्यक्रमों में कोई रुचि नहीं है।

आचार्यश्री की धर्मशासना में तेरापंथ समाज की युवापीढ़ी अनेक क्षेत्रों में निरंतर गति कर रही है। समाज के सभी युवक अपनी शक्ति को केन्द्रित कर उसका सम्यक् नियोजन करें तो एक नयी क्रान्ति घटित हो सकती है, एक नयी जीवन शैली विकसित हो सकती है।

साधना और तपस्या से सुरक्षा

३० अगस्त को मध्याह्न में गुप्तचर विभाग के एक अधिकारी उदयपुर से आमेट

आये। उन्होंने आचार्यश्री के दर्शन किये। युवाचार्यश्री के दर्शन किये और अपने आने का उद्देश्य स्पष्ट किया। युवाचार्यश्री उन्हें साथ लेकर आचार्यश्री के पास आए। वे वोले—आचार्यश्री! संत लोंगोवाल यहां आए, यह प्रसंग वहुचर्चित हो गया है। इसके वाद आपका नाम भी आतंकवादियों की हिटलिस्ट में है। हमारा दायित्व है कि हम यहां सुरक्षा का प्रवन्ध करें। हम अपने दायित्व के प्रति जागरूक रहेंगे। आपके यहां से भी सावधानी रखी जाए। क्योंकि यहां जनता का आवागमन तो वन्द हो नहीं सकता। कौन व्यक्ति आपका भक्त है और कौन द्वेषभाव से आता है। हम उसकी पहचान नहीं कर सकते। इसलिए आपके कार्यकर्ताओं में से भी कुछ व्यक्ति यहां नियुक्त रहें, जो किसी भी संदिग्ध व्यक्ति पर अपनी आंख रख सकें।

इस बात से आचार्यवर के मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। आपने तटस्थभाव से कहा—'सुरक्षा का सवसे वड़ा साधन हमारी साधना और तपस्या है। आप हमारी क्या सुरक्षा करेंगे?' 'आपका कथन विल्कुल ठीक है, फिर भी सावधानी अपेक्षित है।' अधिकारी ने पूरी विनम्रता के साथ निवेदन किया।

युवाचार्यश्री का मानस साधना से पका हुआ है। इधर-उधर की वातों पर वे अधिक ध्यान नहीं देते। किन्तु उस दिन अधिकारी की वात सुनने के वाद उनके मन में कुछ घवराहट-सी हो गई। वे दिन भर अपना साहित्यिक काम नहीं कर पाए। उनकी मनःस्थिति देखकर आचार्यवर ने ३१ अगस्त को कुछ सन्तों को स्थिति की जानकारी देते हुए कहा—हमें किसी प्रकार का भय नहीं है, फिर भी सावधानी रखने में कोई नुकसान नहीं है। संत अपने दायित्व के प्रति सजग हो गए। युवाचार्यश्री का मन भी आश्वस्त हो गया।

अगम्य लोक की यात्रा

१ सितम्वर १९८५ को दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का समायोजन था। लगभग सौ वहन-भाई उस शिविर में साधना करने आए थे। आगन्तुक लोगों को ऐसा अनुभव हुआ मानो वे किसी दूसरे लोक में आ गए हैं, अगम्य लोक की यात्रा पर आए हैं। आगन्तुकों में राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान उदयपुर के निर्देशक श्री भंवरलालजी शर्मा भी थे। शर्माजी को जीवन-विज्ञान में पूरा रस है। वे इस क्षेत्र में अच्छा प्रयत्न कर रहे हैं।

२ सितम्बर को श्री शर्माजी प्रवचन के वाद आचार्यवर के उपपात में वैठे थे। आचार्यवर ने उनसे कहा—अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के माध्यम से हम जो काम कर रहे हैं, उससे तीन निष्कर्ष आए हैं—

उपासना गौण है, चरित्र मुख्य है।
मजहब गौण है, धर्म मुख्य है।

धर्म परलोक के लिए नहीं है, धर्म का सम्बन्ध वर्तमान जीवन की पवित्रता से है।

प्रेक्षाध्यान शिविर में विशेष जागरूक रहने का संकेत करते हुए आचार्यश्री ने श्री शर्माजी से कहा—खणं जाणाहि पंडिए—पंडित वह होता है, जो अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाता है। आप तीन दिन के लिए यहां आए हैं। इन दिनों का पूरा-पूरा उपयोग करना है। अपने खाने और सोने के समय में कटौती करके भी प्रेक्षाध्यान के तत्त्वों को समझना है। प्रत्येक शिविरार्थी का यह कर्तव्य है कि वह शिविरकाल में अन्य सब कामों को गौण कर प्रयोगों पर ध्यान दे। अनिवार्य कामों से अतिरिक्त जितना समय मिले, एक-एक क्षण का सही उपयोग करे।

मुझे गुरुदेव ने बचाया

लाडनूं निवासी पूनमचन्दजी दूगड़ का व्यापार मध्यप्रदेश के राउरकेला में है। वह वहां अपने परिवार के साथ रहता था। उसका चार-पांच वर्षीय छोटा लड़का खेल रहा था। अचानक वह गिर गया। उसे काफी चोट आई। गिरते ही उसका श्वास बन्द हो गया। उसे हास्पिटल ले जाया गया। डॉक्टर ने उपचार शुरू किया। साधारण उपचार से लाभ नहीं हुआ तब श्वास लेने के लिए ऑपरेशन द्वारा गले में सुराग किया। डॉक्टर ने कहा—बच्चे के बचने की आशा बहुत कम है। इष्ट का स्मरण करो। प्रभु की कृपा होगी तो बच्चा बच जाएगा।

भाई पूनमचन्दजी ने तत्काल एक बेला करने का और उसकी पत्नी ने एक साल तक एकाशन करने की प्रतिज्ञा ली। इसके साथ ही उन्होंने 'ॐ भिक्षु, जय तुलसी' का जप करना शुरू कर दिया। बच्चे के स्वस्थ होने पर उसे अविलम्ब गुरु-दर्शन कराने का मानसिक संकल्प लेकर वे एक प्रकार से निश्चिन्त हो गए। देखते ही देखते बच्चा स्वस्थ होने लगा। डॉक्टर विस्मित था और उसके परिवार वाले अभिभूत। श्रद्धा का चमत्कार उनकी श्रद्धा को और अधिक सघनता दे गया।

२ सितम्बर को बच्चा अपने माता-पिता के साथ आमेट आया। गुरुदेव के साक्षात् दर्शन पाकर वह बहुत खुश हुआ। उसने अपनी स्वाभाविक और श्रद्धासिक्त भावना को अभिव्यक्ति देते हुए कहा—मुझे तो गुरुदेव ने बचाया है, भगवान् ने बचाया है।

समालोचना का महत्त्व

४ सितम्बर को जनसत्ता के सहायक संपादक श्री वेदव्यासजी और उदयपुर जिले के संवाददाता श्री हरिशंकर जोशी ने आचार्यवर के दर्शन किए। उन्होंने आचार्यश्री से वातचीत की, प्रेक्षाध्यान शिविर देखा, साध्वियों से वातचीत की और आचार्यश्री के सान्निध्य में चल रही गतिविधियों की जानकारी प्राप्त की। उन्होंने एक सुझाव दिया कि यहां से जो साहित्य प्रकाशित होता है, उसे समालोचना के लिए जनसत्ता में भेजा जाए। सुझाव तो उनका अच्छा था। पर यह काम तभी हो सकता है, जब साहित्य से संबंधित व्यक्ति इसका महत्त्व समझें।

विगत दो-तीन दशकों में आचार्यवर की प्रेरणा से साधु-साध्वियों की साहित्यिक अभिरुचि में परिष्कार आया है। आगम साहित्य, अणुव्रत साहित्य, प्रेक्षा साहित्य और संघीय साहित्य जो मुद्रित होकर सामने आया है, प्रबुद्ध लोग उससे बहुत प्रभावित हुए हैं। कई लोग तो वेसब्री से नये साहित्य की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ऐसे साहित्य की अच्छे पत्रों में समालोचना आती रहे तो और अधिक लोग उसका उपयोग कर सकते हैं।

पूंगी पर नाग डोल उठा

८ सितम्बर को रात्रि के समय अमृत समवरण से थोड़ी दूर पर बहुत लम्बा काला नाग दिखाई दिया। वह कुछ समय तक इधर-उधर घूमकर विल में घुस गया। बहुत देर तक वह वाहर नहीं निकला। कुछ लोगों के मन में आशंका हो गई कि नाग किसी भी समय विल से निकलकर समवसरण में जा सकता है। इसलिए इसे यहां से हटाना उचित रहेगा। विचार-विमर्श के वाद तीस रुपये देकर सपेरे को बुलाया गया। सपेरे ने पूंगी बजाई। सांप वाहर निकल आया। एक साथ कई व्यक्ति बोल पड़े— अब तक तो सुनते ही थे कि पूंगी पर नाग डोलता है पर आज तो हमने प्रत्यक्ष देख लिया।

प्राचीन कहावतों, किंवदंतियों और परम्पराओं के पीछे छिपे रहस्य को अनावृत करने के लिए उसकी गहराई तक पैठने और उसके परिवेश को परखने की अपेक्षा रहती है।

आमेट तीर्थ बन गया

उन दिनों आमेट एक तीर्थस्थान-सा वन गया था। देश भर के श्रद्धालु लोग अपनी-

अपनी सुविधा के अनुसार प्रतिदिन वहां आ-जा रहे थे। ८ सितम्बर को अहमदावाद से लगभग पांच सौ व्यक्तियों का एक विशाल संघ आमेट पहुंचा। उसके सामने दो उद्देश्य थे—तपस्विनी वहनों की तपस्या का समापन और अहमदावाद में आगामी चातुर्मास करने का अनुरोध।

अहमदावाद एक सांस्कृतिक क्षेत्र है। वहां अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान को जानने-समझने और जीने की ललक है। सन् १९८२ में आचार्यवर अहमदावाद में रहे। उस समय आपके कार्यक्रमों का स्थानीय लोगों पर जो प्रभाव हुआ, उसकी प्रतिक्रिया तत्कालीन समाचार पत्रों में देखी जा सकती है। उस समय के उत्साह और लगन को ध्यान में रखकर वहां किसी भी समय आचार्यश्री के चातुर्मास की संभावना की जा सकती है। अहमदावाद के श्रावक इस दृष्टि से पूरे जागरूक थे। उन्होंने कई वार अनुरोध किया। यह उनका सामूहिक अनुरोध था। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री गिरीश भाई आदि अनेक व्यक्तियों ने अहमदावाद में चातुर्मास करने के लिए आग्रह भरी प्रार्थना की।

आचार्यश्री कुशल व्यापारी

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपना प्रासंगिक प्रवचन करते हुए कहा—आज अहिंसा की प्यास गुजरात और पंजाव दोनों को अधिक है। पर कभी-कभी आचार्यश्री ऐसे निर्णय लेते हैं कि प्यास वाले रह जाते हैं और दूसरों को प्यास जगाकर पानी पिला दिया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि गुजरात कार्यक्रमों की दृष्टि से एक उर्वरा भूमि है। वहां अनेक संभावनाओं के वीज वोए जा सकते हैं। अच्छी फसल उत्पन्न की जा सकती है। वहां के आध्यात्मिक, प्रवुद्ध व चिन्तनशील व्यक्तियों का लाभ उठाया जा सकता है। आचार्यश्री एक कुशल व्यापारी हैं। किस काम में नफा होगा? वे स्वयं सोचेंगे और स्वयं खोज लेंगे कि मुझे कहां, क्या उपलव्ध हो सकता है। आप मुहूर्त की प्रतीक्षा करें। वड़े काम के लिए वड़े मुहूर्त की जरूरत होती है। देखना होगा कि कहां काम कव शुरू करें? गुजरात और अहमदावाद क्षेत्र में कार्य की संभावना देखते हुए वहां कोई वड़ा काम शुरू होना चाहिए। आप अपनी शक्ति जुटाने में रहें। जव भी पधारना हो, उसी दिन काम शुरू हो सके।

अमृत समवसरण में उपस्थित हजारों-हजारों लोग अहमदावाद की प्रार्थना सुन भावुक हो उठे। एक वार तो उन्हें ऐसी प्रतीति होने लगी कि सन् १९८६ का चातुर्मास अहमदावाद में ही होगा। पर जव तक आचार्यप्रवर उस सम्वन्ध में कोई संकेत न दें, तव तक वड़ी से वड़ी संभावना निर्णय का रूप नहीं ले सकती थी। इसलिए सब लोग उक्त सम्वन्ध में आचार्यप्रवर के विचार सुनने के लिए

उत्सुक हो रहे थे। इधर दो तपस्विनी वहनें—हीरालालजी कोठारी की पत्नी श्रीमती प्रेमलता कोठारी और शान्तिलालजी कोठारी की पत्नी श्रीमती पुष्पा कोठारी क्रमशः पचपन और सैंतीस दिन की तपस्या में अहमदावाद से आमेट पहुंचीं। उनके साथ दो वहनें और थीं, जो इकतीस-इकतीस दिन की तपस्या पूरी कर चुकी थीं। अमृत महोत्सव को लक्ष्य कर तप का अमोघ अर्घ्य चढ़ाने वाली वहनों की सूची वहुत लम्बी थी। पर उस दिन दो वहनें गुरु-चरणों में साक्षात् उपस्थित होकर अपनी तपस्या को सफल मान रही थीं।

क्या सत्तर के बाद भी घूमते रहेंगे ?

अहमदावादवासियों की प्रार्थना का उत्तर देते हुए आचार्यवर ने कहा—रविवार का समय वहुत कीमती होता है। फिर भी इस उपक्रम में एक घण्टा वीस मिनट का समय लगा। लोग सोचेंगे—इस प्रसंग को इतना महत्त्व दिया जा रहा है। इसके पीछे कुछ-न-कुछ रहस्य होगा। रहस्य आप खोलते रहें, हम अपने आप में आश्वस्त हैं। वैसे हम कई वार लोगों के सोचने की दिशा से हटकर कुछ नया सोचते हैं। सन् १९८१ में दिल्ली से गंगाशहर मर्यादा-महोत्सव की घोषणा, सन् १९८२ में राणावास से मर्यादा-महोत्सव के लिए नाथद्वारा की घोषणा और फिर नाथद्वारा से अहमदावाद की घोषणा अप्रत्याशित थी। ये घोषणाएं जितनी अप्रत्याशित थीं, उतनी ही कार्यकारी सिद्ध हुई। अव आप फिर से अहमदावाद की प्रार्थना कर रहे हैं। आपका कर्तव्य है। आप प्रार्थना न भी करें, तो भी हमारा दायित्व है कि हम आपके वारे में कुछ सोचें। अभी तो हमें सोचना यह है कि अमृत महोत्सव के वाद भी हम घूमते ही रहेंगे क्या? हमने लोगों से कई वार कहा है कि साठ वर्ष के वाद वे अपने जीवन को मोड़ दें। हम तो सत्तर पार कर चुके हैं। क्या हमें भी अपने जीवन को नहीं मोड़ना चाहिए? क्या सत्तर वर्ष के वाद भी हम ऐसे ही घूमते रहेंगे? हम आपकी प्रार्थना को संजोकर रखना चाहते हैं और अधिक काम करना चाहते हैं। इसलिए अहमदावाद जैसे क्षेत्र में वार-वार जाने की इच्छा होने पर भी हमें अपने चिन्तन को मोड़ देना जरूरी है, जिससे संघ के लिए स्थायी काम किया जा सके।

यह वात सुनकर अहमदावाद के श्रावकों को निराश होने की जरूरत नहीं है। आप सव आशावान् रहें। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अनुकूलता के आधार पर ही अग्रिम कार्यक्रम का निर्धारण हो सकता है। अहमदावाद क्षेत्र मेरी दृष्टि से ओझल नहीं है। वहां अच्छा काम होता रहे, इसके लिए आपको और हम सवको जागरूक रहना है।

आचार्यवर ने अपने प्रवचन में आगे कहा—अमृत कलश सामने पड़ा है। यह

देखने के लिए नहीं है और नोटों से भरने के लिए भी नहीं। अमृत महोत्सव पर प्रसारित पांच संकल्पसूत्रों को स्वीकार करने वाले लोग अपने संकल्प पत्रों से इसे भर रहे हैं। महिलाएं भी इस काम में पीछे न रहें। उनके लिए संकल्पों की भाषा दूसरी होगी। क्योंकि इन संकल्पों की महिलाओं के लिए विशेष उपयोगिता नहीं है। उनके लिए निर्धारित संकल्प ये हैं—

१. पर्दा प्रथा का परित्याग।

२. मृत्यु के अवसर पर प्रथा रूप से रोने का परित्याग।

३. तपस्या के उपलक्ष्य में लेने-देने का परित्याग।

४. दहेज की मांग, प्रदर्शन व टकराव का परित्याग।

५. मृत्यु के अवसर पर वस्त्र आदि लेने-देने का परित्याग।

उपर्युक्त संकल्पों की व्याख्या करते हुए आपने आगे कहा—गुजराती बहनों के लिए यह संकल्प कठिन नहीं है। किन्तु मेवाड़ी और मारवाड़ी बहनें सामूहिक रूप में इन संकल्पों को स्वीकार कर इस कलश को भरेंगी तो महिला समाज में नयी क्रान्ति घटित हो सकेगी। महिला मण्डल के अधिवेशन का प्रसंग सामने है। उस पर देखना है कि कितनी बहनें इस रचनात्मक काम को आगे बढ़ाती हैं।

अनशन से ऊनोदरी कठिन

आचार्यवर ने तपस्वी बहनों के हाथ से भिक्षा ग्रहण की और उन्हें पारणे में खाद्य-संयम रखने की प्रेरणा दी। खाद्य-संयम का एक प्रयोग सुझाते हुए आपने एक महीने तक अन्न का त्याग करने का निर्देश दिया। किन्तु बहनें उस निर्देश को स्वीकार नहीं कर सकीं। पचपन और तैंतीस दिन तक सब प्रकार का भोजन छोड़ने वाली बहनें एक महीने तक केवल अन्न छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुईं तब यह तथ्य सामने आया कि निराहार रहने से भी अधिक कठिन है ऊनोदरी तप। भोजन करे, उसमें अमुक पदार्थ न खाने की बात कड़ी पड़ती है। आखिर समझाते-समझाते उन्होंने पन्द्रह दिन अन्न न खाने का संकल्प स्वीकार किया।

नयी क्रान्ति का सृजन

तपस्या के उपलक्ष्य में होने वाले आडम्बर और प्रदर्शन को अर्थहीन बताते हुए आचार्यवर ने उपस्थित जनसमूह को एक नयी दृष्टि देते हुए कहा—जैन समाज में तपस्या का विशेष स्थान है। जैनों में भी तेरापंथ की तपस्या का अपना महत्त्व है। इस महत्त्व को बढ़ाने के लिए हमारे प्रत्येक आयोजन में नये मोड़ की जरूरत है। अभी एक अवसर है। जिसका लाभ उठाकर तेरापंथ धर्मसंघ नयी क्रान्ति के

साथ नये युग में प्रवेश कर सकेगा। इसके लिए एक अपेक्षा है सादगी के विकास की। सामाजिक, पारिवारिक या धार्मिक, सभी समारोहों में सादगी रखने का लक्ष्य रहे तो तेरापंथ एक उदाहरण बन सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि इस समाज में जो कुछ होता है, हमारी दृष्टि से होता है। यदि यह बात सही होती तो आज समाज का ढांचा कुछ दूसरा ही होता। इस काम में कठिनाई एक ही है कि हमारे पास 'जबान' है डण्डा नहीं है। हमारे हर निर्देश को लोग एक मत से स्वीकार कर लें, तब तो कोई भी काम सरलता से हो सकता है? पर लोग सोचते हैं कि उनके यहां से कोई नयी शुरुआत क्यों हो? दूसरे लोग उन्हें कमजोर मानेंगे, इस धारणा के चक्रव्यूह में फंसकर वे एक कदम आगे बढ़ने में हिचकते हैं और बहुत-सी बातों को सही मानने पर भी कर नहीं पाते।

कहीं-कहीं लोगों की स्वीकृति मिलती है, पर क्रियान्वयन के समय उसमें विकृति घुल जाती है। उस स्थिति में हम स्वयं को खींच लेते हैं। हमारा काम दिशा-दर्शन देने का है। मानना, न मानना आपका काम है। मानोगे तो सुख पाओगे। नहीं मानोगे तो जो होना है, होगा। एक बात अवश्य है, ऐसे प्रसंग में श्रद्धा, भक्ति और विश्वास का परीक्षण बहुत जल्दी हो जाता है। मैं आप सबसे कहना चाहता हूं कि आप उदाहरण प्रस्तुत करें। ऐसा वे ही कर सकेंगे, जिनमें साहस है और आलोचना सहन करने की क्षमता है। वही व्यक्ति महान् होता है, जो सहन करता है। किसी भी प्रकार की कठिनाई, बीमारी, बुढ़ापा, वचन-कुवचन, आलोचना आदि को आत्मधर्म मानकर सहन करने वाले व्यक्ति ही किसी क्षण नयी क्रान्ति के सर्जक बन सकते हैं।

परमाराध्य आचार्यप्रवर के सहज और प्रेरक उद्बोधन ने एक बार तो सब लोगों को झकझोर दिया। अपने जीवन को और समारोहों को सादगीपूर्ण बनाने का एक नया सपना उनकी आंखों में उतर आया। पर सपना तो सपना ही होता है। उसका क्या भरोसा किया जाए? बन्द पलकों में सतरंगे इन्द्र धनुष उतरते रहते हैं, पर आंख खुलते ही सारा इन्द्रजाल विलीन हो जाता है। काश! श्रद्धालु लोग आचार्यवर के एक-एक शब्द को अपनी हृदय-मंजूषा में सहेजकर रखें और समय-समय पर उनका समुचित उपयोग करते रहें। जिस दिन ऐसा क्षण आएगा, तेरापंथ धर्मसंघ अपने आप में नये युग का प्रतीक बन जाएगा।

बुरी आदतें जहर से अधिक घातक

जहर को घातक माना जाता है, पर मेरे अभिमत से मनुष्य की संचित बुरी आदतें जहर से भी अधिक घातक हैं। जहर आदमी को एक बार मारता है। गुस्सा, निराशा, भय, आशंका, तनाव आदि व्यक्ति को बार-बार मारते हैं।

इस जहर जो अप्रभावी बनाने की अमोघ औषधि है—प्रेक्षाध्यान शिविर। जिन लोगों को स्वस्थ और दीर्घजीवी बनना है, उन्हें ऐसे शिविरों में प्रशिक्षण लेना चाहिए। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं, जब हजारों व्यक्ति साधना के क्रम में आगे आएंगे और अपने आपको मानवता की सेवा में समर्पित करेंगे।

उक्त विचार आचार्यश्री ने उनतालीसवें प्रेक्षाध्यान शिविर के समापन समारोह में ११ सितम्बर को व्यक्त किए। यह शिविर आमेट के विद्या-निकेतन में युवाचार्यश्री के निर्देशन में चला था। देश भर से लगभग सौ साधक भाई-बहनों ने शिविर में प्रशिक्षण प्राप्त किया। ध्यान के क्षेत्र में प्रेक्षाध्यान की अपनी स्वतंत्र पहचान है और इसमें विकास की बहुत संभावना है। आचार्यश्री की प्रेरणा, युवाचार्यश्री के प्रयोग और साधकों के उत्साह व निष्ठा से प्रेक्षाध्यान एक नयी जीवनशैली का सूत्रधार बनकर प्रतिष्ठित हो रहा है।

९ सितम्बर को मध्याह्न में आचार्यवर शिविर स्थल पर भी पधारे थे। वहां उस दिन का चर्चनीय विषय था मैत्री। युवाचार्यश्री के विस्तृत विवेचन और आचार्यश्री के उपसंहारात्मक प्रवचन से मैत्री के सम्बन्ध में कई नयी बातें प्रकाश में आईं। कुल मिलाकर दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर अपने आप में एक उपलब्धि रहा।

लोकोत्तर पर्व

१२ सितम्बर से १९ सितम्बर तक पर्युषण महापर्व का समायोजन सदा की भांति अत्यन्त उत्साहपूर्ण वातावरण में हुआ। पर्व जीवन के लिए प्रेरणा बनकर आते हैं। सीधी सपाट जिन्दगी में ये एक प्रकार के मोड़ हैं। इन मोड़ों पर व्यक्ति जितना जागरूक और पुरुषार्थशील रहता है, उतना ही गतिशील बनता है और नयी स्फूर्ति का अनुभव करता है। जैन समाज में अनेक पर्व मनाए जाते हैं। कुछ पर्व लौकिक होते हैं, जिनका सम्बन्ध पारिवारिक और सामाजिक परिवेश से जुड़ा रहता है। लोकोत्तर पर्वों का सीधा संबंध आत्मा के साथ है। पर्युषण उनमें सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण पर्व है। यद्यपि यह पर्व भी अब तक विवादों के घेरे में खड़ा है। सावन, भाद्रपद, चतुर्थी, पंचमी आदि महीनों और तिथियों का झमेला पर्युषण के प्राण 'संवत्सरी' की अखण्डता को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट रहा है। जिस दिन पूरा जैन समाज मिलकर एक दिन 'संवत्सरी' मनाएगा, उसी दिन यह पर्व लौकिक झमेलों से मुक्त होकर अपनी संपूर्ण लोकोत्तरता को प्रमाणित कर सकेगा।

पर्युषण महापर्व का प्रसंग धार्मिक चेतना के जागरण का प्रसंग है। गांव, कस्बे, शहर, महानगर सभी स्थानों में इस पर्व से संबंधित लोग धर्मोपासना में

संलग्न हो जाते हैं। आचार्यप्रवर के सान्निध्य में ऐसे पर्व और अधिक जीवंत हो उठते हैं। आमेट में अमृत समवसरण धर्मोपासना का प्रमुख केन्द्र था। वहां दिन-रात स्वाध्याय, ध्यान, जप, प्रवचन आदि धार्मिक गतिविधियां तेजी के साथ चल रही थीं। उन दिनों प्रवचन-पण्डाल में प्रतिदिन एक साथ पांच हजार से अधिक सामायिक हो जाती थीं। प्रवचन के समय तो पूरा पंडाल सामायिकमय प्रतीत होने लगता था। वहनों की वहुरंगी वेशभूषा का अपना एक रूप था तो भाई लोग साधुओं जैसी श्वेत वेशभूषा में वहुत ही भव्य लग रहे थे। कुछ लोग तो आठ दिनों के लिए सव सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर अधिक से अधिक समय चेतना के ऊर्ध्वारोहण की दृष्टि से लगाते थे। प्रातःकालीन अर्हत् वंदना के समय से लेकर रात के दस-ग्यारह वजे तक नये-नये उन्मेपों के साथ धर्माराधना के प्रयोग चलते थे।

श्रमणोपासक दीक्षा : एक अभिनव प्रयोग

आचार्यश्री का स्वप्नदर्शी मानस नित नये स्वप्न देखता रहता। साधु संस्था और श्रावक समाज आपके सपनों का प्रमुख केन्द्र है। वैसे समग्र मानवजाति की हितचिन्ता आपके सपनों में तैरती रहती है। अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर श्रावक-समाज की चेतना को उत्क्रान्त करने के लिए आपने 'श्रमणोपासक' दीक्षा की परिकल्पना की। पिछले कई वर्षों से इस सम्वन्ध में हुए चिन्तन और प्रयोगों की निष्पत्तिस्वरूप श्रमणोपासक दीक्षा का एक व्यवस्थित प्रारूप तैयार हो गया। आचार्यवर ने प्रवचन में श्रावक समाज को विशेप उद्‌वोधन दिया। सुनने वालों में नया उत्साह जग गया। अहमहमिकया नाम देने की स्पर्द्धा खड़ी गई। देखते-देखने सैकड़ों व्यक्ति तैयार हो गए। लगभग साढ़े तीन सौ भाई-वहनों, जिनमें युवक-युवतियां भी वड़ी संख्या में सम्मिलित थीं, ने पंक्तिवद्ध खड़े होकर हजारों लोगों की। उपस्थिति में आचार्यवर के पास आठ दिन के लिए श्रमणोपासक दीक्षा स्वीकार की। श्रमणोपासकों की दिनचर्या अच्छे ढंग से व्यवस्थित थी। ध्यान, स्वाध्याय, जप, कायोत्सर्ग, आसन, प्रवचन-श्रवण, मनन, चिन्तन आदि से क्षण-क्षण का पूरा उपयोग होने लगा। सादी वेशभूषा, खाद्यसंयम, वाणी संयम आदि के प्रयोग आन्तरिक आह्लाद जगाने वाले थे। उस नियमित और प्रागोगिक चर्या से जुड़ने वाले उपासकों ने अपने भीतर घटित होने वाले रूपान्तरण का अनुभव किया।

श्रमणोपासक दीक्षा का प्रारूप

श्रमणोपासक दीक्षा स्वीकार करने वाले श्रावक, श्राविका के लिए न्यूनतम आचार-संहिता और चर्या का क्रम इस प्रकार है—

१. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह अणुव्रत और रात्रि-भोजन-विरति।

२. खाद्य-संयम—(क) तीन विगय से अधिक खाने का त्याग।
(ख) एक बार में नौ द्रव्य से अधिक खाने का त्याग।
(ग) जमींकन्द व तले हुए पदार्थों का परित्याग।
(घ) सचित्त खाने का त्याग।
(च) भोजन करते समय बोलने का त्याग।

३. कषाय-वर्जन (क) मृदु और सौहार्दपूर्ण व्यवहार।
(ख) कठोर व अश्लील भाषा का वर्जन।

४. भावक्रिया (क) मौन, स्वाध्याय, जप और ध्यान का अधिक से अधिक अभ्यास।
(ख) प्रतिदिन पांच सामायिक।
(ग) यथाशक्य रात्रि संवर।

५. प्रमाद-संयम—हंसी, मजाक, तास, चौपड़, सिनेमा आदि का वर्जन।

विशेष— (क) सफेद, सादगीपूर्ण वस्त्र (भाइयों के लिए ऊपर सफेद चादर)
(ख) व्यक्तिगत कार्य में यथाशक्य स्वावलम्बन।
(ग) अनिवार्य आवश्यकता के अतिरिक्त साधु-साध्वियों के स्थान या निर्धारित स्थान से बाहर जाना वर्जित।
(घ) भोजन सामूहिक हो या व्यक्तिगत, गरिष्ठ तथा तामसिक भोजन न हो।
(च) सामूहिक कार्यक्रमों में अनिवार्यतः उपस्थिति।
(छ) जप—ऊं णमो अरहंताणं, अर्हम् का लयबद्ध उच्चारण—एक विश्राम में चार बार उच्चारण।
(ज) अनुप्रेक्षा-मृदुता की अनुप्रेक्षा का प्रयोग।

श्रमणोपासक दीक्षा के इस नये प्रयोग से श्रावक-समाज में नयी जागृति आई। उनकी पूरी दिनचर्या व्यवस्थित रही। साधु-साध्वियों की सन्निधि में उनको तत्त्वज्ञान का प्रशिक्षण मिलता। लगभग एक घंटा का मूल्यवान समय आचार्यवर का उपलब्ध होता। उस समय उन्हें ऐसा सम्बल मिलता, जो उनकी भावी आध्यात्मिक जीवन-यात्रा के लिए बहुत उपयोगी था।

भीत सहै सिर भार

१५ सितम्बर को प्रातःकालीन प्रवचन के समय आचार्यप्रवर और युवाचार्यश्री का परिषद में केश-लुंचन हुआ। केश-लुंचन साधना का एक विशिष्ट अंग है। यह सहिष्णुता की कसौटी है और साधु एवं गृहस्थ की कार्यशैली का विभाजक है। कायर व्यक्ति दूसरों को लुंचन करवाते देखकर भी कांप उठते हैं। एक दृष्टि से यह अत्यन्त साहसिक कार्य है, पर शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध जिन्हें हो जाता है, वे ऐसी कसौटी पर पूरी तरह से खरे उतर जाते हैं। लुंचन शुरू करने से पूर्व आचार्यवर ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा—

पूज्य कालूगणी कहा करते थे जगत की, राजनीति की, साधु-साध्वियों की स्थिति देखकर शिक्षा लेनी चाहिए, पर दूसरों के अन्धानुकरण में नहीं फंसना चाहिए। किसी भी सन्दर्भ में स्वतंत्र चिन्तन का क्षेत्र खुला है, पर उच्छृंखल और अनुशासनहीनों को देखकर अपना मन कभी दुर्बल नहीं करना चाहिए। पूज्य गुरुदेव की इस सलोनी शिक्षा से प्रेरित होकर मैं कह रहा हूं कि लोच हमारी संस्कृति है। इसे लेकर किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं होनी चाहिए।

केश-लुंचन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में एक संस्कृत श्लोक उद्धृत करते हुए कहा—

निरक्षरे वीक्ष्य महाधनित्वं,
विद्याऽनवद्या विदुपा न हेया।
रत्नावतंसां कुलटां समीक्ष्य,
किमार्यनार्यः कुलटा भवन्ति॥

—मूर्ख व्यक्ति के पास संपदा देखकर विद्वान् व्यक्ति को अपनी श्रेष्ठ विद्या का त्याग नहीं करना चाहिए। कुलटा स्त्रियों को रत्नजटित आभूषणों से सजी हुई देखकर क्या कभी आर्य स्त्रियां कुलटा होती हैं।

केश-लुंचन से घबराकर पलायन करने वाले साधकों को देखकर क्या कभी सहिष्णु साधक पलायन कर सकते हैं? भींत सहै सिर भार, तृण टाटी टूटी परै, यह कहावत उन लोगों पर अक्षरशः घटित होती है, जो थोड़ी-सी प्रतिकूलता में घुटने टेक देते हैं।

एक प्राचीन प्रसंग को सुनाते हुए आचार्यवर ने कहा—कायर व्यक्तियों के लिए केश-लुंचन महाभारत बन जाता है। मुझे याद है—एक साधु ने सात दिन में लुंचन करवाया। ऐसा प्रसंग कभी भी उपस्थित हो सकता है। ऐसे समय में साधु-साध्वियों का यह दायित्व है कि मानसिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों को प्रोत्साहित करें, पर कभी स्वप्न में भी दुर्बलता की ओर न देखें। हमारे महान्

तीर्थंकरों, गणधरों और आचार्यों की जो परंपरा है, उसे आगे बढ़ाने में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आनी चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि आज तक तो ठीक है पर इक्कीसवीं सदी के जैन मुनि केश-लुंचन करेंगे क्या? इस संदर्भ में मेरा चिन्तन यह है कि वे क्यों नहीं करेंगे? सौ वर्ष तक करेंगे, पांच सौ वर्ष तक करेंगे, उससे आगे भी करेंगे। एक केश-लुंचन ही क्या, कोई भी परंपरा हो, जब तक उसकी उपयोगिता है, निर्विकल्प मन से उसे आगे बढ़ाना चाहिए।

केश-लुंचन शुरू करने से पहले आचार्यवर ने दशवैकालिक सूत्र के दो पद्यों का संगान किया। शरण सूत्र का उच्चारण किया। कुछ क्षण ध्यान किया और फिर अपने हाथ में राख लगाकर दाढ़ी-मूंछ का थोड़ा लुंचन किया। दर्शक दांतों तले अंगुली दबा रहे थे और आचार्यवर सहज-शांत मन से केश-लुंचन कर रहे थे। लुंचन के समय भी आपकी आकृति पर वही सदा-बहार मुसकान। कहीं कोई पीड़ा का अहसास नहीं। कुछ समय बाद स्वयं लुंचन का क्रम बदला। दो साधुओं ने अत्यन्त विनम्रता और कलात्मकता के साथ आचार्यवर के मस्तक और मुखारविन्द का लुंचन कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव किया।

परिषद में लुंचन कराने की वह कोई नयी घटना नहीं थी। इससे पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। फिर भी उस दिन कुछ नवीनता थी। पहले केवल आचार्यवर का ही केश-लुंचन परिषद में हुआ था। उस दिन आचार्यश्री और युवाचार्यश्री ने साथ-साथ बैठकर यह अनुष्ठान संपन्न किया। परिषद में ऐसे अनुष्ठानों का प्रयोग प्रदर्शन नहीं, किन्तु दर्शन बनकर प्रेरणा देता है। उस दिन भी हजारों-हजारों लोगों ने विशेष संकल्प स्वीकार कर उस दृश्य को अपनी आंतरिकता के साथ जोड़ लिया।

एक नया उपक्रम

अमृत महोत्सव की चर्चा शुरू होते ही साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं में उत्साह की नयी लहर दौड़ गयी। नयी कल्पनाएं, नयी योजनाएं और उन्हें रूपायित करने का मनोभाव। साध्वियों के मन में बहुत पहले से ही एक भावना थी कि अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर साधुओं को कुछ उपहार दिया जाए। यह भावना भीतर-ही-भीतर पककर एक रूप लेने लगी थी। इसी बीच आचार्यवर पुर पधारे। वहां के श्रावक हरखलालजी हींगड़ ने कपड़े की प्रार्थना की। साध्वियों की भावना, हींगड़जी की प्रार्थना और आचार्यप्रवर की स्वीकृति—तीनों का योग मिला। उसी दिन काम शुरू हो गया। इसके लिए साध्वियों में सिलाई करने की स्पर्द्धा खड़ी हो गयी। कौन साध्वी कितनी कलापूर्ण और जल्दी सिलाई का काम पूरा करती है, इस प्रतिस्पर्द्धा में अनेक साध्वियों की कलात्मक

भीत सहै सिर भार

१५ सितम्बर को प्रातःकालीन प्रवचन के समय आचार्यप्रवर और युवाचार्यश्री का परिषद में केश-लुंचन हुआ। केश-लुंचन साधना का एक विशिष्ट अंग है। यह सहिष्णुता की कसौटी है और साधु एवं गृहस्थ की कार्यशैली का विभाजक है। कायर व्यक्ति दूसरों को लुंचन करवाते देखकर भी कांप उठते हैं। एक दृष्टि से यह अत्यन्त साहसिक कार्य है, पर शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध जिन्हें हो जाता है, वे ऐसी कसौटी पर पूरी तरह से खरे उतर जाते हैं। लुंचन शुरू करने से पूर्व आचार्यवर ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा—

पूज्य कालूगणी कहा करते थे जगत की, राजनीति की, साधु-साध्वियों की स्थिति देखकर शिक्षा लेनी चाहिए, पर दूसरों के अन्धानुकरण में नहीं फंसना चाहिए। किसी भी सन्दर्भ में स्वतंत्र चिन्तन का क्षेत्र खुला है, पर उच्छृंखल और अनुशासनहीनों को देखकर अपना मन कभी दुर्बल नहीं करना चाहिए। पूज्य गुरुदेव की इस सलोनी शिक्षा से प्रेरित होकर मैं कह रहा हूं कि लोच हमारी संस्कृति है। इसे लेकर किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं होनी चाहिए।

केश-लुंचन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्यवर ने अपने प्रवचन में एक संस्कृत श्लोक उद्धृत करते हुए कहा—

निरक्षरे वीक्ष्य महाधनित्वं,
विद्याऽनवद्या विदुषा न हेया।
रत्नावतंसां कुलटां समीक्ष्य,
किमार्यनार्यः कुलटा भवन्ति।।

—मूर्ख व्यक्ति के पास संपदा देखकर विद्वान् व्यक्ति को अपनी श्रेष्ठ विद्या का त्याग नहीं करना चाहिए। कुलटा स्त्रियों को रत्नजटित आभूषणों से सजी हुई देखकर क्या कभी आर्य स्त्रियां कुलटा होती हैं।

केश-लुंचन से घबराकर पलायन करने वाले साधकों को देखकर क्या कभी सहिष्णु साधक पलायन कर सकते हैं? भींत सहै सिर भार, तृण टाटी टूटी परै, यह कहावत उन लोगों पर अक्षरशः घटित होती है, जो थोड़ी-सी प्रतिकूलता में घुटने टेक देते हैं।

एक प्राचीन प्रसंग को सुनाते हुए आचार्यवर ने कहा—कायर व्यक्तियों के लिए केश-लुंचन महाभारत बन जाता है। मुझे याद है—एक साधु ने सात दिन में लुंचन करवाया। ऐसा प्रसंग कभी भी उपस्थित हो सकता है। ऐसे समय में साधु-साध्वियों का यह दायित्व है कि मानसिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों को प्रोत्साहित करें, पर कभी स्वप्न में भी दुर्बलता की ओर न देखें। हमारे महान्

तीर्थंकरों, गणधरों और आचार्यों की जो परंपरा है, उसे आगे बढ़ाने में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आनी चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि आज तक तो ठीक है पर इक्कीसवीं सदी के जैन मुनि केश-लुंचन करेंगे क्या? इस संदर्भ में मेरा चिन्तन यह है कि वे क्यों नहीं करेंगे? सौ वर्ष तक करेंगे, पांच सौ वर्ष तक करेंगे, उससे आगे भी करेंगे। एक केश-लुंचन ही क्या, कोई भी परंपरा हो, जब तक उसकी उपयोगिता है, निर्विकल्प मन से उसे आगे बढ़ाना चाहिए।

केश-लुंचन शुरू करने से पहले आचार्यवर ने दशवैकालिक सूत्र के दो पद्यों का संगान किया। शरण सूत्र का उच्चारण किया। कुछ क्षण ध्यान किया और फिर अपने हाथ में राख लगाकर दाढ़ी-मूंछ का थोड़ा लुंचन किया। दर्शक दांतों तले अंगुली दबा रहे थे और आचार्यवर सहज-शांत मन से केश-लुंचन कर रहे थे। लुंचन के समय भी आपकी आकृति पर वही सदा-बहार मुसकान। कहीं कोई पीड़ा का अहसास नहीं। कुछ समय बाद स्वयं लुंचन का क्रम बदला। दो साधुओं ने अत्यन्त विनम्रता और कलात्मकता के साथ आचार्यवर के मस्तक और मुखारविन्द का लुंचन कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव किया।

परिषद में लुंचन कराने की वह कोई नयी घटना नहीं थी। इससे पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। फिर भी उस दिन कुछ नवीनता थी। पहले केवल आचार्यवर का ही केश-लुंचन परिषद में हुआ था। उस दिन आचार्यश्री और युवाचार्यश्री ने साथ-साथ बैठकर यह अनुष्ठान संपन्न किया। परिषद में ऐसे अनुष्ठानों का प्रयोग प्रदर्शन नहीं, किन्तु दर्शन बनकर प्रेरणा देता है। उस दिन भी हजारों-हजारों लोगों ने विशेष संकल्प स्वीकार कर उस दृश्य को अपनी आंतरिकता के साथ जोड़ लिया।

एक नया उपक्रम

अमृत महोत्सव की चर्चा शुरू होते ही साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं में उत्साह की नयी लहर दौड़ गयी। नयी कल्पनाएं, नयी योजनाएं और उन्हें रूपायित करने का मनोभाव। साध्वियों के मन में बहुत पहले से ही एक भावना थी कि अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर साधुओं को कुछ उपहार दिया जाए। यह भावना भीतर-ही-भीतर पककर एक रूप लेने लगी थी। इसी बीच आचार्यवर पुर पधारे। वहां के श्रावक हरखलालजी हींगड़ ने कपड़े की प्रार्थना की। साध्वियों की भावना, हींगड़जी की प्रार्थना और आचार्यप्रवर की स्वीकृति—तीनों का योग मिला। उसी दिन काम शुरू हो गया। इसके लिए साध्वियों में सिलाई करने की स्पर्द्धा खड़ी हो गयी। कौन साध्वी कितनी कलापूर्ण और जल्दी सिलाई का काम पूरा करती है, इस प्रतिस्पर्द्धा में अनेक साध्वियों की कलात्मक

अंगुलियों में स्पन्दन रहने लगा। अनेक क्षेत्रों के श्रावकों की वस्त्रदान देने की भावना साकार कर साध्वियों ने लगभग इक्यावन पछेवड़ी सिलाई कर तैयार कर दी।

भाद्रपद शुक्ला तृतीया का दिन भी हमारे धर्मसंघ का ऐतिहासिक दिन है। वि० सं० १९९३ में इस दिन आचार्यवर को युवाचार्य पद पर मनोनीत किया गया था। आमेट चातुर्मास में उसी दिन (१५ सितम्बर को) प्रातः आचार्यप्रवर ने केश-लुंचन करवाया था। मध्याह्न में आपकी सन्निधि में युवाचार्यश्री की उपस्थिति में एक छोटा-सा कार्यक्रम था। साधु-साध्वियां उपस्थित हो गये। साध्वियों द्वारा कलात्मक ढंग से बनाये गये उपहार पैकेट्स आचार्यश्री के सामने पट्ट पर रखे थे। साध्वियों ने उनको संतों को प्रदान करने के लिए निवेदन किया—आचार्यवर ने कहा—साध्वियों ने उत्साह से इतना काम किया है तो इनका वितरण भी ये ही करें। अमृत महोत्सव की प्रसन्नता में अभिवृद्धि करने वाला वह उपक्रम आचार्यवर के निर्देशानुसार बहुत ही उत्सुकतापूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। वैसे साधु-साध्वियों के पास धर्मोपकरणों के अतिरिक्त और कोई वस्तु हो भी नहीं सकती। इसलिए पछेवड़ी, मुखवस्त्रिका, डायरी, खोली आदि साधारण उपकरणों को भी संतों ने बहुत उल्लास के साथ स्वीकार कर साध्वियों के उत्साह को बढ़ाया।

उन उपकरणों में आकर्षण का एक बिन्दु था—डायरी में अंकित टाइटिल। प्रत्येक मुनि के लिए उसके अनुरूप 'उपाधि' डायरी के प्रथम पृष्ठ पर अंकित थी। उस उपाधि को पढ़ने या सुनने के बाद संतों ने बताया कि प्रायः साधुओं के बारे में साध्वियों ने समुचित शब्द का अंकन किया है। उस क्रम से साध्वियों की अंकन क्षमता को अभिव्यक्ति देने के साथ सात्विक मनोरंजन का वातावरण भी निर्मित हो गया। परमाराध्य आचार्यवर ने उस उपक्रम को सौहार्द और उत्साह का प्रतीक बताते हुए निर्जरा का हेतु बताया। वातावरण की मधुरता और सरसता ने दर्शकों के मन में भी नयी पुलकन भर दी।

सामूहिक तप का अनुष्ठान

१६ सितम्बर का मध्याह्न। आचार्यवर की अमृत समवसरण में उपस्थिति। हजारों बहन-भाई विशेष उद्देश्य से समय की प्रतीक्षा में रत। सबके मन में अज्ञात आकर्षण, उत्सुकता और अधीरता। ठीक समय पर त्रिपदी वंदना—वन्दे अर्हम्, वन्दे गुरुवरम्, वन्दे सच्चं, के उद्घोष से समवसरण गूंज उठा। 'महावीर तुम्हारे चरणों में श्रद्धा के सुमन चढ़ाएं हम' आचार्यवर द्वारा रचे गये इस मंगल गीत की स्वर-लहरी ने वातावरण को सरसता से भर दिया। आचार्यवर ने अपने

लोकप्रिय गीत 'सिरियारी रो संत' के कुछ पद्यों का संगान किया। पांच मिनट तक नमस्कार महामंत्र का मानसिक जप, पांच मिनट 'ऊं ह्रीं श्रीं अर्हं नमः' मंत्र का सामूहिक जप हुआ। इससे बाहर की ओर भागने वाली चेतना केन्द्रित हो गयी, अन्तर्मुखी बन गयी। चेतना के केन्द्र में सुखद प्रकंपन हुए। अनुभव-लोक की यात्रा शुरू करते ही आचार्यवर ने लगभग पन्द्रह सौ भाई-बहनों को एक साथ आयम्बिल तप का प्रत्याख्यान करा दिया। एक स्थान पर, एक साथ आयम्बिल तप का वह अनूठा अनुष्ठान आमेट के इतिहास में ही नहीं, इन शताब्दियों की प्रथम घटना थी। आयम्बिल तप करने वालों के लिए खाद्य-पेय था—अधपके चावल और चावलों का पानी। उस रसहीन पदार्थ का लोगों ने पूरे रस के साथ उपयोग किया। एक अलौकिक आनंद का स्रोत खुल गया।

इधर अमृत समवसरण में यह दृश्य था, उधर आचार्यवर सभा-भवन के हाल में पहुंच चुके थे। वहां एक ओर साधु तथा दूसरी ओर साध्वियां व्यवस्थित रूप में पंक्तिबद्ध बैठ गये। सामने आचार्यवर और युवाचार्यश्री विराज गये। प्रायः साधु-साध्वियों ने उस सामूहिक आयम्बिल अनुष्ठान में भाग लिया। अपने आपमें अपूर्व अवसर था वह। व्यक्तिशः आयम्बिल करने और उस सामूहिक अनुष्ठान में बहुत अन्तर प्रतीत हुआ। ऐसा लग रहा था मानो एक समूह के आध्यात्मिक विकिरणों ने वहां के वायब्रेशन को बहुत प्रभावशाली बना दिया।

सामाजिक वर्गभेद समाप्ति का निर्णय

लगभग पांच सौ वर्ष पहले की घटना है। किसी महाजन के घर वृहत्भोजन का आयोजन था। उसने पूरे गांव को न्यौता, पर एक बुढ़िया को निमंत्रण नहीं दिया। क्योंकि उसके साथ एक अर्से से उसकी अनबन थी। बुढ़िया के लड़के ने अपने साथियों को भोज के लिए जाते देखा। वह भी तैयार हो गया। बुढ़िया ने उसको समझाकर जाने से रोकना चाहा। वह नहीं माना। बुढ़िया बोली—तुम पंचों के पास जाओ और कहो कि जब तक हमारा फैसला नहीं होगा, कोई भोजन में सम्मिलित नहीं हो सकेगा। लड़का पंचों के पास गया। उसकी बात सुन पंचों ने सेवक भेजकर सबको सूचित कर दिया। इस सूचना को कुछ लोगों ने मान्य किया। कुछ लोग उसकी अवहेलना कर भोजन करने चले गये।

पंचायत की दरी बिछी। पंच बैठे। बुढ़िया आकर बोली— मैं अकेला हूं। मेरा निर्वाह होना कठिन है। मुझे नाता करने की अनुमति दी जाए। पंचों ने इस बात को अनुचित ठहराया और आज्ञा नहीं दी। बुढ़िया अपनी जिद्द पर अड़ी रही तो पंचों ने उसे समाज से बहिष्कृत करने की धमकी दी।

बुढ़िया बोली—समाज से बहिष्कृत करने की बात मेरे पर ही लागू है या

दूसरों पर भी। यदि यह नियम सबके लिए है तो भोजन वाले सेठजी की पत्नी क्या नाता करके नहीं आई है ? पंचों ने पूरे घटनाक्रम की जानकारी ली। बुढ़िया की बात सही थी। पंचों ने फैसला देते हुए कहा—जो लोग श्रीसंघ की आज्ञा की अवहेलना कर भोज में सम्मिलित हुए हैं, वे आज से दसा ओसवाल या ल्होड़ा साजन कहलाएंगे। पंचों का निर्णय मान्य हो गया। कालांतर में उन लोगों ने अपनी गलती के लिए माफी मांग ली। पंचों ने चिंतन किया और कहा—यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। इसलिए इन लोगों के साथ रोटी-पानी का व्यवहार खुला किया जाता है। भविष्य में कोई ऐसा दुस्साहस न करें, उन्हें सीख देने के लिए बहन-बेटी का व्यवहार बन्द रखा जाएगा।

पांच सौ वर्ष प्राचीन घटित इस घटना का आधार कितना सही है। अन्वेषणीय है। पर ल्होड़ा साजन (छोटे साजन) औरबड़े साजन का वर्गभेद सैकड़ों वर्षों से ओसवाल समाज में प्रचलित है। दूसरे शब्दों में इस वर्गभेद को दसा और बीसा भी कहा जाता है। आगे चलकर पांचा, ढाया—इस प्रकार की भेदरेखाएं भी खिंच गयीं। कारण कुछ भी रहा हो, पर यह वर्गभेद की समस्या समाज में दूसरी समस्याओं को जन्म देने लगी। कुछ सुधारवादी व्यक्तियों ने इसे समाप्त करने के लिए प्रयत्न भी किया, किन्तु लोगों की मानसिकता नहीं बदली। जब आचार्यवर का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ, आपने व्यक्तिगत रूप में और सामूहिक रूप में इस समस्या से निपटने के लिए आह्वान किया।

अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में सुचिन्तित कार्यक्रमों का एक बिन्दु यह भी था। आचार्यश्री ने मेवाड़ यात्रा के मध्य कई स्थानों पर इस सम्बन्ध में चर्चा की। लोगों की मानसिकता बदली, किन्तु साहस जागृत नहीं हुआ। फिर भी वर्गभेद के खिलाफ अच्छा वातावरण बन गया।

१७ सितम्बर को आमेट में मेवाड़ जैन श्वेताम्बर तेरापंथी कान्फ्रेंस का छत्तीसवां वार्षिक अधिवेशन था। मेवाड़ के अनेक क्षेत्रों के प्रतिनिधि अधिवेशन में उपस्थित थे। कान्फ्रेंस के अध्यक्ष श्री मनोहर कोठारी की अध्यक्षता में अधिवेशन की कार्यवाही चली। उसमें संस्था की गतिविधियों के साथ-साथ नया मोड़ के कार्यक्रम को तीव्रता से चलाने तथा सामाजिक वर्गभेद की समस्या को लेकर व्यापक विचार-विमर्श हुआ।

कान्फ्रेंस के अधिकारियों और सदस्यों को उक्त सन्दर्भ में विशेष दिशादर्शन देते हुए आचार्यवर ने कहा—'युग का चिन्तन बदल रहा है। परिवेश बदल रहा है। इसके साथ-साथ जो समाज नहीं बदलेगा, वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकेगा। जातिवाद और वर्गवाद सामाजिक बिखराव के प्रतीक हैं। बिखराव सारी दुनिया में है, पर आदमी बंट-बंटकर कितना बंटेगा। आज अपेक्षा है कि भेद में से अभेद खोजा जाए। अब जबकि अन्तर्जातीय सम्बन्ध स्थापित

होने लगे हैं, वैसी स्थिति में एक ही समाज छोटे-छोटे वर्गों में बंटकर रहे, यह न तो उचित है और न इससे समाज को कोई लाभ मिलता है।

आचार्यवर के उद्बोधन संदेश ने लोगों की चेतना को झंकृत किया। विचारों की पकड़ शिथिल हुई और अधिकांश लोग इस बात को समझ गए कि वर्तमान परिस्थितियों में इन मूल्यों को बदलकर नये मूल्यों को प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। इस समझ के अनुसार उस अवसर पर तेरापंथ ओसवाल समाज से छोटे-बड़े साजन (दसा-बीसा) का भेदभाव समाप्त करने का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया। समाज के लिए वह एक क्रान्तिकारी कदम था। जिस किसी ने उसके बारे में सुना, बहुत अच्छा लगा। उस निर्णय की क्रियान्विति कितनी जल्दी और सही रूप में होती है, यह बात देखने की है।

सेवा का मूल्य

मेवाड़ में भीलवाड़ा जिला के अन्तर्गत आशाहोली गांव में मुनि मानमलजी का चातुर्मास था। १० सितम्बर को प्रातः सवा नौ बजे वे अचानक अस्वस्थ हो गए। उनके साथ केवल एक ही मुनि निर्मलकुमारजी थे। वे उन्हें पूरी तरह संभालने में असमर्थ थे। यह संवाद आचार्यवर के पास पहुंचा। आपने तत्काल मुनि सुमेरमलजी 'सुदर्शन' तथा मुनि भवभूतिजी को आमेट से आशाहोली जाने का आदेश दिया। उसी दिन सायं वहां से प्रस्थान कर मुनि द्वय दूसरे दिन अपराह्न में आशाहोली पहुंचकर परिचर्या में संलग्न हो गए। एक बार स्थिति में कुछ सुधार हुआ, किन्तु धीरे-धीरे अस्वस्थता बढ़ती गई और उनका स्वर्गवास हो गया। उसके बाद तीनों मुनि वहां से विहार कर १८ सितम्बर को आचार्यवर के चरणों में पहुंच गए। दिवंगत मुनि के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए आचार्यवर ने कहा—'मुनि मानमलजी संघनिष्ठ और गुरु-इंगित के आराधक थे। वे शरीर से स्थूल थे, पर उपकरणों से बहुत हल्के रहते थे। व्याख्यान देने का उनको बड़ा शौक था। व्याख्यान देते-देते ही उन्हें ब्रेन हेमरेज हो गया। यह संवाद मिलते ही हमने यहां से दो संतों को भेज दिया। एक संत वहां पहले से ही थे। तीनों संतों ने उनकी पूरी जागरूकता से अच्छी सेवा की। यह हमारे धर्मसंघ की विशिष्ट बात है। ऐसी सेवा से संघ का गौरव बढ़ता है। दिवंगत आत्मा के भावी विकास की मंगल कामना।'

महापर्व की आराधना

१९ सितम्बर को संवत्सरी महापर्व का दिन था। उस दिन सूर्योदय से पूर्व ही

हजारों व्यक्ति अमृत समवसरण में पहुंच गए। उपवास और पौषध स्वीकार करने का एक लम्बा सिलसिला चला। सात-साढ़े सात बजे से प्रवचन शुरू हो गया। लगभग नौ बजे आचार्यप्रवर का सान्निध्य उपलब्ध हो गया। दस बजे तक समवसरण चारों दिशाओं से पूरा भर गया। उस दिन की उपस्थिति तीस-पैंतीस हजार से कम नहीं थी। साधु-साध्वियों के वक्तव्यों, गीतों के बीच आचार्य-प्रवर और युवाचार्यश्री के महत्त्वपूर्ण प्रवचन हुए। भगवान् महावीर से लेकर आज तक एक समूची परम्परा के विहंगावलोकन, प्रभावक आचार्यों के चामत्कारिक चरित्र, भगवान् महावीर का प्रेरक जीवन वृत्त आदि सुनते-सुनते सहज रूप में हर व्यक्ति बाहर से भीतर की ओर झांकने के लिए विवश हो रहा था। कुछ बच्चे, जो इन गहराइयों का स्पर्श नहीं कर पाए, वे बीच-बीच में कुछ हलचल जरूर कर रहे थे। बाकी तो अपराह्न चार बजे तक समवसरण स्थल पूरी तरह दर्शनीय था।

उस दिन अमृत समवसरण में चतुष्प्रहरी, छःप्रहरी और अष्टप्रहरी, कुल मिलाकर लगभग पांच हजार पौषध हुए। पौषध करने वालों में सबसे छोटा बालक कमलेश डांगी मात्र चार वर्ष का था। उसने पूरे उत्साह और उमंग के साथ चतुष्प्रहरी पौषध किया।

सायंकालीन सांवत्सरिक प्रतिक्रमण का दृश्य अनिर्वचनीय था। प्रतिक्रमण का अर्थ होता है लौटना। कोई व्यक्ति जिस बिन्दु पर अपने आचरणीय या उपादेय का अतिक्रमण कर अनाचरणीय कर बैठता है, उससे हटकर मूल स्थिति में पहुंचना ही प्रतिक्रमण की सार्थकता है। प्रतिक्रमण के बाद संवत्सरी की पूरी रात वर्ष भर के सिंहावलोकन की रात होती है। पूरे वर्ष में की गई राग-द्वेष मूलक प्रवृत्तियों की समीक्षा और अपनी प्रत्येक भूल के लिए आग्रहमुक्त मन से 'खमत-खामणा'। इस क्रम से मन का सारा भार उतर जाता है। नये वर्ष में अप्रमत्त भाव से प्रवेश करने के संकल्प के साथ नया सूरज उगता है, जो नयी ताजगी और प्रकाश दे जाता है।

अस्वीकार की शक्ति

२० सितम्बर को प्रातः सूर्योदय के साथ ही अमृत-समवरण में उत्सुकता की लहर फैल गई थी। हजारों लोग, जिनमें बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी सम्मिलित थे। प्रायः सभी पिछले छत्तीस घण्टों से भोजन का त्याग किए हुए थे। शरीर पर भूख का प्रभाव था, किन्तु मन प्रसन्न था। वर्ष भर की कलुषता धुलकर साफ हो गई थी। उसका कारण था मैत्री पर्व। पर्युषण वर्ष की अष्टाह्निक आराधना के बाद मन इतना उदार, हल्का और साफ हो जाता है कि वहां कलुषता की पतली-

सी परत भी टिक नहीं पाती। वैसे तो प्रतिक्रमण के तत्काल बाद विश्व के छोटे-बड़े सभी प्राणियों के साथ 'खमत-खामणा' कर मैत्री की धाराएं प्रवाहित कर दी जाती हैं। पर उसका जीवंत रूप देखने का अवसर आचार्यवर के सान्निध्य में ही मिलता है। मैत्री की फसल बोने में आठ दिन का समय लगता है। नौवें दिन फसल काटने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। आठ दिनों में फसल पकने की बात आश्चर्य भी नहीं है क्योंकि चक्रवर्ती की फसल तो एक ही दिन में पक जाती है। धर्म की खेती को आठ दिनों में पकाकर फसल काटने के अवसर पर कृषकों को अपने दायित्व के प्रति सजग करते हुए युवाचार्यश्री ने कहा—

भगवान् महावीर ने कहा—अप्पणा सच्चमेसेज्जा—सत्य की खोज करो। आठ दिनों तक खोज की, खेती की, सार-संभाल की, सब कुछ किया। अब कटाई का समय सामने है। क्या मिलेगा इससे आपको? फसल में जो बालियां लगी हैं, वे हैं सब जीवों के साथ मैत्री। मैत्री का जो सूत्र इस फसल की कटाई से प्राप्त होता है, वह है—

अस्वीकारः परं शक्तिः, अस्वीकारः परं तपः।
अस्वीकारः परं मैत्री, अस्वीकारः परं सुखम्॥

—मनुष्य की परम शक्ति क्या है? परम तपस्या क्या है? परम मैत्री क्या है? और परम सुख क्या है? इन चारों प्रश्नों का एक ही उत्तर है—अस्वीकार। मनुष्य अस्वीकार करना सीखे, बाह्य तत्त्वों को अस्वीकार करना सीखे। यह बाहर की हवा ही व्यक्ति को कठोर बनाती है। कठोर धरती पर मैत्री की फसल नहीं उग सकती। इसलिए हमें अस्वीकार की शक्ति को समझना चाहिए और उसका प्रयोग करना चाहिए।

रासायनिक परिवर्तन

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा—आज का पर्व याचना का पर्व नहीं है, खमत-खामणा का पर्व है। याचना एक पक्षीय होती है। खमत-खामणा उभय पक्षीय या सर्वांगीण होता है। याचना छोटा करता है। खमत-खामणा छोटे-बड़े दोनों करते हैं। खमत-खामणा शब्द की अपनी गरिमा है। इसकी अवहेलना, आशातना या दुरवस्था नहीं होनी चाहिए। इसे सस्ता भी नहीं बनाना चाहिए। पहले हृदय खोले, फिर बोले, यह खमत-खामणा है। पहले बोल दिया और हृदय खोला ही नहीं, इससे क्या होगा? खमत-खामणा ऊपर से नहीं, हृदय से होना चाहिए।

खमत-खामणा या मैत्री जैनधर्म का मूलभूत आधार है। इस तथ्य को पुष्ट करते हुए आपने कहा—'कुछ लोग कहते हैं जैन धर्म अहिंसाप्रधान है। कुछ

लोगों की दृष्टि में यह सामायिक प्रधान है। मेरे अभिमत से जैन धर्म मैत्री प्रधान है। जहां मैत्री नहीं है, वहां जैनत्व भी नहीं है। जैनत्व को समझने वाला व्यक्ति अपने मन में किसी प्रकार की गांठ नहीं बांधता। वह अपने अन्तःकरण को निशल्य बनाकर सबके साथ खमत-खामणा कर लेता है।'

मैत्री या खमत-खामणा के महत्त्व को उजागर करते हुए आचार्यवर ने कहा—मुझे धर्मसंघ का नेतृत्व करने का अवसर मिला। पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने मुझे यह काम सौंपा। मैंने निष्काम भाव से इस दायित्व को निभाने का प्रयत्न किया है। इस कार्यावधि में न जाने कितने उतार-चढ़ाव मेरे मन में आये हैं। कभी-कभी मुझे बहुत अधिक कठोर होना पड़ा है। किन्तु मैं आत्मसाक्षी से कह सकता हूं कि मेरी कठोरता विशेष टिकाऊ नहीं होती। मैं कठोर बनता हूं, पर टिकाऊ कठोर नहीं बनता। इसे मैं अपना गुण समझता हूं, अच्छाई समझता हूं। इस दृष्टि से पिछले भाद्रपद शुक्ला पंचमी से लेकर इस भाद्रपद शुक्ला पंचमी तक यानी पूरे वर्ष भर में जिस किसी प्रसंग में कठोरता की है, उसे याद कर मेरा मन भारी हो जाता है। इसलिए आज के दिन खमत-खामणा कर मैं अपने आपको पूरी तरह से हल्का बना लेता हूं।

इस भावाभिव्यक्ति के साथ आचार्यवर ने भावविभोर होकर युवाचार्यश्री, साधुओं, साध्वियों, श्रावकों, श्राविकाओं व अन्य सब लोगों से खमत-खामणा किया। वह प्रसंग जितना श्रव्य था, उतना ही दृश्य था। उसे देखने के लिए अनेक लोग अनिमिष बन गये और अनेकों की आंखों में हर्ष और विस्मय के आंसू बह निकले। अमृत समवसरण में शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा रहा हो, जो उस वातावरण से अभिभूत नहीं हुआ हो। आचार्यश्री एक अबोध शिशु की भांति जिस प्रकार अपना दिल खोलकर रखते हैं, हजारों लोग तो उस निश्चल मुद्रा पर ही मुग्ध हो जाते हैं।

आचार्यवर एक विशाल धर्मसंघ के शासक हैं, पर शासक से भी अधिक आप गुरु हैं। गुरु का मानस वात्सल्य रस से भीगा हुआ रहता है। शिष्य के समर्पण और गुरु के वात्सल्य का योग शिष्य के भीतर एक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन की अनुभूति देने लगता है। ऐसा ही कुछ अनुभव उन क्षणों में होने लगा था। आचार्यवर के आत्मीय संबोधन से वहां उपस्थित एक-एक साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका अन्तरलोक की यात्रा करने लगे। मैत्री पर्व के वे अमृतमय क्षण समय की सिकता पर अपने प्रेरक पदचिह्न छोड़कर आगे बढ़ गये।

इन्दिरा ज्योति पदयात्री

२० सितम्बर को रात्रि में राजस्थान प्रदेश युवक कांग्रेस (आई) द्वारा आयोजित

इन्दिरा ज्योति पदयात्रा दल के सदस्यों ने आचार्यश्री से भेंट की। यात्रादल मेवाड़ से गुजरात होता हुआ देश की राजधानी दिल्ली पहुंचकर अपनी यात्रा सम्पन्न करेगा। यात्रा दल को सम्बोधित करते हुए आचार्यवर ने कहा—आज हमारे देश में हिंसा और आतंक की समस्या बल पकड़ती जा रही है। इसका मूलभूत कारण है भावात्मक एकता का अभाव। वर्तमान परिस्थितियों में इसकी बहुत बड़ी अपेक्षा है। स्वर्गीया प्रधानमंत्री देश में शान्ति और सौहार्द का वातावरण बनाने के प्रयत्न में शहीद हो गयीं। विवेकहीन आतंकवादियों ने असमय में उनकी हत्या कर दी। यह इन्दिरा गांधी की हत्या नहीं, पूरे राष्ट्र की हत्या थी। देश की शान्ति, सौहार्द और सद्भावना की स्थापना के लिए अहिंसक शक्तियों को जागृत करने की जरूरत है। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के द्वारा अहिंसा की शक्ति का उपयोग किया जा सकता है।

पदयात्रा दल के संयोजक श्री गणपतसिंह ने यात्रा की संक्षिप्त जानकारी दी। लगभग एक सौ पदयात्रियों ने पंचसूत्री संकल्प-पत्र भरकर अमृत कलश में समर्पित किये।

इतिहास का पहला प्रसंग

किसी भी धर्मसंघ की गरिमा उसके स्वर्णिम अतीत पर नहीं, वर्तमान की ठोस उपलब्धियों पर निर्भर है। वर्तमान जितना सशक्त और समुज्ज्वल होता है, धर्मसंघ उतना ही तेजस्वी बनता है। तेरापंथ धर्मसंघ तैजस की आराधना करने वाला धर्मसंघ है। इसकी तेजस्विता का मूलभूत आधार है आचार की दृढ़ता। व्यवस्था और संगठन पक्ष भी तेज के हेतु बनते हैं। तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्यों ने पूरी जागरूकता और दूरदर्शिता से संघ को तैजस प्रदान किया, इसीलिए आज तेरापंथ का नाम संसार में रोशन हो रहा है।

किसी भी व्यक्ति, संस्था या राष्ट्र के जीवन में कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जो इतिहास के दुर्लभ दस्तावेज बन जाते हैं। तेरापंथ धर्मसंघ की संगमरमरी धरती पर अब तक न जाने कितने ऐतिहासिक वृत्त उत्कीर्ण हो चुके हैं। 'अमृत महोत्सव' उसी शृंखला का एक विलक्षण वृत्त है, जो आचार्यश्री तुलसी की धर्मशासना के पचास वर्षों की जीवंत कहानी है।

२२ सितम्बर को आचार्यश्री अपनी धर्मशासना के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। इसी सन्दर्भ में अमृत महोत्सव की आयोजना की गयी थी। उसका प्रथम चरण गंगापुर में मनाया जा चुका था, पर विधिवत वार्षिक कार्यक्रम का प्रारंभ भाद्रपद शुक्ला नवमी से होना था। इस दृष्टि से २२, २३, २४ सितम्बर ८५ को त्रिदिवसीय कार्यक्रम का समायोजन किया गया।

सितम्वर के तीसरे सप्ताह में ही आमेट की गलियों और सड़कों पर अद्भुत चहल-पहल हो गयी। संवत्सरी महापर्व की संपन्नता के वाद तो आगन्तुकों का प्रवाह काफी तेज हो गया। वम्वई, कलकत्ता, मद्रास, वैंगलोर, हैदरावाद, उड़ीसा, राजस्थान, हरियाणा, पंजाव, मालवा, कच्छ, वाव, अहमदावाद, सूरत, दिल्ली आदि कितने क्षेत्रों के नाम गिनाये जाएं, शायद कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जहां से वड़ी संख्या में लोग न आये हों। महीनों पहले ही वसें, कारें, मेटाडोर, मिनी वसें और ट्रेन के डिव्वे आरक्षित हो चुके थे। केवल उदयपुर से २२ सितम्वर को सोलह वसें एक साथ पहुंचने की सूचना मिली। पहले से आये हुए लोग तो अलग थे। आमेट के सार्वजनिक स्थान और घर यात्रियों से भर गये। फिर भी यात्री आ रहे थे। हजारों लोगों को तम्बुओं में ठहराने की व्यवस्था की गयी। दस हजार की आवादी वाला आमेट उन दिनों तिगुना-चौगुना होकर अपनी अनूठी छटा दिखा रहा था। जितने यात्री आ रहे थे, वे सव समाहित हो रहे थे। आवास व्यवस्था में जुटे हुए कार्यकर्ता दिन-रात एक कर व्यवस्था सफल वनाने में संलग्न थे। यात्री लोग भी प्राप्त व्यवस्था में संतोष का अनुभव कर रहे थे।

अमृत महोत्सव के दो उपक्रम

२१ सितम्वर को अमृत महोत्सव की पृष्ठभूमि में समाज के हजारों-हजारों लोगों को सम्वोधित करते हुए युवाचार्यश्री ने कहा—कल से अमृत महोत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ हो रहा है। पूरे वर्ष भर का क्रम हमारे सामने है। राणावास में इस सन्दर्भ में व्यवस्थित चर्चा हुई थी। शुरू से ही चिन्तन यह रहा कि अमृत महोत्सव केवल आयोजनात्मक नहीं रहेगा। इसमें रचनात्मक पक्ष प्रमुख होगा और आयोजत होंगे प्रासंगिक। इससे धर्मसंघ को गति मिलेगी। इसकी पूर्व भूमिका के रूप में गंगापुर का कार्यक्रम अच्छे ढंग से सम्पन्न हो गया। उस प्रथम चरण में पंचसूत्री कार्यक्रम एक रचनात्मक उपक्रम था। उसे लेकर मेवाड़ में पचास दिन तक लगातार पदयात्रा हुई। हजारों-हजारों लोग उसमें सहभागी वने। वाहर के क्षेत्रों में पदयात्रा की मांग आयी, पर वह कुछ क्षेत्रों में होकर रह गयी। इस उपक्रम की काफी अच्छी प्रतिक्रियाएं हुईं।

दूसरा कार्यक्रम था शिक्षा क्षेत्र में जीवन-विज्ञान। राजस्थान सरकार ने इसे प्रायोगिक रूप में स्वीकार किया। दिल्ली प्रदेश सरकार द्वारा यह लगभग स्वीकृत हो चुका है। विद्यावाड़ी (महिला शिक्षण संस्थान) के अधिकारियों की मांग पर वहां जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर आयोजित हुआ। शिक्षा-जगत में जीवन-विज्ञान के प्रति वढ़ते हुए आकर्षण को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में काफी संभावनाएं हैं।

अवसर का लाभ

आचार्यप्रवर ने श्रावक-समाज को दिये गये अपने विशेष संदेश में कहा—वर्ष भर में कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जब समाज की 'क्रीम' एक स्थान पर एकत्रित होती है। आमेट का अमृत महोत्सव का प्रसंग भी एक ऐसा ही अवसर है। इस अवसर पर समुचित लाभ उठाने के लिए हमने तीन बिन्दु निर्धारित किये हैं।

- समाज की गतिविधि को समझना, उसके मनोभावों को पहचानना।
- समाज को गतिविधियों की अवगति देकर लाभान्वित करना।
- नवीनतम गतिविधियों के साथ समाज के चिन्तनशील लोगों को जोड़ना, उस विषय में नया चिन्तन करना।

समाज के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि उस दृष्टि से एक समग्र चिन्तन हो। उसमें व्यक्तिगत इच्छाओं, आकांक्षाओं और योजनाओं का लाभ उठाते हुए पूरे समाज की क्षमताओं का उपयोग करना जरूरी है। इतने बड़े काम के लिए एक समग्र चिन्तन सुचिन्तित योजना का निर्धारण और उसका उचित क्रियान्वयन करने के लिए ऐसे अवसरों की अपेक्षा रहती है, जिनमें हर क्षेत्र के लोगों की अच्छी उपस्थिति रहे। सब लोग मिलकर सोचें, कुछ सकारात्मक निर्णय लें और विरासत में प्राप्त संगठन, अनुशासन एवं समर्पण की त्रिपदी के सहारे अपनी मंजिल की ओर गति करें।

चतुःसूत्री कार्यक्रम

अमृत महोत्सव वर्ष को जीवन-विज्ञान वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा का अर्थ यह नहीं था कि उसमें जीवन विज्ञान के अतिरिक्त कोई विशेष काम होगा ही नहीं। जीवन-विज्ञान का सीधा सम्बन्ध शिक्षा क्षेत्र से है। श्रावक-समाज की चेतना को आन्दोलित करने के लिए एक चतुःसूत्री कार्यक्रम का निर्धारण हुआ। अमृत महोत्सव के द्वितीय चरण के मंगल अवसर पर युवाचार्यश्री के निर्देशानुसार उस कार्यक्रम का विधिवत् प्रसार हुआ। उसका प्रारूप इस प्रकार है—

- समर्पण
- विसर्जन
- व्रतदीक्षा
- उपासकदीक्षा

समर्पण

श्रावक समाज को शिक्षा, साधना, सेवा, संगठन आदि के क्षेत्र में अल्पकालिक या दीर्घकालिक समय के लिए समर्पण करने के लिए संकल्पबद्ध करना।

श्रद्धा के सुमन

डॉ० महेन्द्र कर्णावट मंच-संचालन की समग्र जिम्मेदारी के साथ मंच पर उपस्थित हुआ और पूरी शालीनता और विशिष्टता के साथ अपने काम में जुट गया। एक डॉक्टर शल्य-क्रिया तो कर सकता है, पर मंच-संचालन की कला से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। पर संभवत: डॉ० महेन्द्र को यह कला विरासत में मिली थी। उसने अपने संयोजकीय वक्तव्य के साथ पारमार्थिक शिक्षण संस्था की मुमुक्षु बहनों को 'अमृत-पुरुष' की अमृत-वंदना करने के लिए आमंत्रित किया। बहनों ने वंदना को स्वर देते हुए गाया—

ओ चांद धरा पर उतर्‌यो,
ले उजली-उजली जोत।

उन स्वरों में इतनी सजीवता थी कि अमृत समवसरण की धरती पर चारों ओर चांद की ज्योत्सना बिछी हुई प्रतीत होने लगी। मेवाड़ क्षेत्रीय महिला मण्डल की बहनों का अभिनन्दन-गीत जितना श्रुति-मधुर था, उनकी आठ कन्याओं को अष्ट-मंगल के रूप में प्रस्तुति देने की कला आंखों के लिए उतनी ही सुखद थी। स्थानीय मुस्लिम कवि अब्दुल गफ्फार की पंक्तियों ने तो अनूठा जादू-सा कर दिया। उसका थोड़ा-सा नमूना—

था प्रभात भी फीका-फीका, रंगहीन संध्या की लाली।
पाप के अंधियारे में पड़कर, पुण्य की पूनम पड़ गई काली॥
आज अहिंसा आलोकित है, अणुव्रत के आह्वान से।
धन्य हुए हम आचार्यश्री तुलसी के वरदान से॥

आचार्यश्री के पचास वर्षों के शासनकाल के क्रान्तिकारी इतिहास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के महामंत्री देवेन्द्रजी कर्णावट ने। स्वागताध्यक्ष महन्त जयरामदासजी ने आचार्यश्री के प्रति हार्दिक श्रद्धाभाव प्रकट करते हुए कहा—ऐसे तेजस्वी सन्तों के दर्शन महान् सौभाग्य से ही प्राप्त हो सकते हैं। राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल देवपुरा ने चरित्र-निर्माण की दिशा में आचार्यश्री द्वारा किए जा रहे अवदान की चर्चा की। केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री शिवराज पाटिल ने आचार्यश्री के उदार विचारों एवं मानवतावादी दृष्टिकोण की सराहना करते हुए कहा—आज विश्व में भय का वातावरण व्याप्त है। पाश्चात्य देशों के साथ हम भी इसका इलाज ढूंढने में लगे हैं, लेकिन चारों ओर भय बढ़ाने के साधन जुटाए जा रहे हैं। अणुव्रत आन्दोलन हमें प्रेम का संदेश देता है। प्रेम का विकास ही भय की भावना को समाप्त कर सकने में सक्षम है। सर्वोदयी कार्यकर्त्री कुमारी निर्मला देशपांडे ने आचार्यवर द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा और अपरिग्रह के सूत्र को जीवनगत करने की

प्रेरणा देते हुए आचार्यश्री का अभिनन्दन किया।

प्रमुख गांधीवादी विचारक और गुजरात के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बाबू भाई पटेल ने कहा—मैं न तेरापंथी हूं, न जैन हूं, पर आचार्यश्री का भक्त हूं और वह इसलिए हूं कि आचार्यश्री ने जैन धर्म को जनधर्म बनाने का प्रयत्न किया है।

अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के कार्यकारी अध्यक्ष श्री शुभकरण दसाणी ने कहा—अनेक राजे-महाराजे और धर्मगुरु सोने-चांदी एवं हीरों से तुलते देखे गए हैं, पर आज हम अपने आराध्य को संकल्प-पत्र रूपी अमृत से तोल रहे हैं। अब तक लगभग साठ हजार संकल्प-पत्र भरे गए हैं। हमारी परिकल्पना है इस अभियान को आगे बढ़ाते हुए पचास लाख संकल्प-पत्र भरवाने की। इस दिशा में हम प्रयत्नशील हैं। उस अवसर पर देश के विभिन्न भागों से समागत अनेक प्रतिनिधियों ने हजारों-हजारों संकल्प अमृत कलश में डाले।

अभिवंदना का क्रम चल रहा था। शब्द सीमित थे और भाव असीम। असीम की अभिव्यक्ति संभव नहीं थी, इसलिए उसे सीमा स्वीकार करनी पड़ी। कोई भी वक्ता मंच पर उपस्थित होकर अपनी आस्था को आकार देता, श्रोताओं के मन में भी भावना की नयी लहर उठ जाती। पर सब लहरों को उतनी ऊंचाई तक उठने का अवसर नहीं मिल रहा था। इस स्थिति का युवाचार्यश्री को अनुभव हुआ। चतुर्विध धर्मसंघ की ओर से सामूहिक रूप में संघपति की अभिवन्दना का निर्णय लिया। युवाचार्यश्री के नेतृत्व में साधु-साध्वियों ने जिस अभिनन्दन गीत को स्वर दिया, उसकी प्रथम पंक्तियां हैं—

भैक्षव शासन के शृंगार, मानवता के व्याख्याकार।
गण की आज बधाई लो, गण की आभा बढ़ाई जो॥

अमृत की बूंदें

युवाचार्यश्री ने अपने प्रेरक प्रवचन में अमृत महोत्सव की परिकल्पना का घटनाचक्र प्रस्तुत करते हुए कहा—मुझे प्रसन्नता है कि आज मेवाड़ की धरती पर अमृत महोत्सव रचनात्मक रूप ले रहा है। आचार्यश्री ने नैतिकता की दिशा में अणुव्रत का सूत्रपात किया। उसे विकसित करने के लिए प्रेक्षाध्यान पद्धति दी और संस्कार-निर्माण हेतु शिक्षा के क्षेत्र में जीवन-विज्ञान का प्रयोग दिया।

अपरिग्रही समाज संरचना की चर्चा करते हुए युवाचार्यश्री ने आगे कहा—'अमृत महोत्सव के इस ऐतिहासिक अवसर पर आचार्यश्री ने एक और सूत्र दिया है, विसर्जन का। इसका संबंध अपरिग्रह की चेतना जगाने से है। जब तक समाज अपरिग्रह की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करेगा, अहिंसा के प्रयत्न में सार्थकता नहीं आएगी। हिंसा का बहुत बड़ा सम्बन्ध परिग्रह से है। व्यक्ति हिंसा के लिए

परिग्रह नहीं करता, परिग्रह के लिए हिंसा करता है। ऐसी स्थिति में विसर्जन का अभियान बहुत कारगर हो सकता है। यह अभियान केवल तेरापंथ समाज या जैन समाज तक सीमित न रहे। इसका उद्देश्य समूची मानव जाति की चेतना का जागरण है। हिंसा की आग से झुलसते हुए विश्व के लिए विसर्जन को मैं अमृत की बूंदें मानता हूं।'

युवाचार्यश्री के उक्त विचारों से प्रबुद्ध लोग बहुत प्रभावित हुए। जन-साधारण को ऐसे विचार समझने-समझाने में कुछ समय लग सकता है किन्तु जो लोग युग की समस्याओं को समझते हैं और उनका समाधान खोजने में तत्पर रहते हैं, उनके लिए इस प्रकार के विचार नये पाथेय के रूप में ग्राह्य होते हैं।

शिक्षकों और छात्रों द्वारा अभिनन्दन

राजस्थान शिक्षक संघ के अध्यक्ष श्री विशनसिंह शेखावत ने एक लाख साठ हजार शिक्षकों की ओर से आचार्यप्रवर का भावभीना अभिनन्दन करते हुए कहा—आचार्य तुलसी ने देश में चरित्र-निर्माण की दिशा में जो ठोस कार्य किया है, वह अभिनन्दनीय है। राजस्थान का शिक्षक समुदाय चरित्र-निर्माण के इस महान यज्ञ में आपके साथ है। श्री शेखावत ने राजस्थान शिक्षक संघ द्वारा पारित अणुव्रत प्रस्ताव को भी पढ़कर सुनाया।

राजस्थान विश्वविद्यालय छात्रसंघ की ओर से भी एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसे श्री राजकुमार बरड़िया ने पढ़कर सुनाया। प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार है—'लोकतंत्र में अपने हितों और अधिकारों के लिए सबको संघर्ष करने का अधिकार है। किन्तु वह संघर्ष अहिंसक मार्ग से होना चाहिए। अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी ने जहां अन्याय का प्रतिकार जरूरी बताया है, वहां शान्ति और अहिंसा के मार्ग पर भी विशेष बल दिया है। हमारा संगठन अहिंसा के मार्ग में आस्था रखता है। आचार्यश्री तुलसी के आचार्य पदारोहण के पचास वर्षों के उपलक्ष्य में आयोजित अमृत-महोत्सव के अवसर पर हमारा संगठन यह संकल्प प्रकट करता है कि यदि कोई भी समस्या हमारे सामने होगी तो शान्ति और अहिंसा के मार्ग से हम उसका समाधान करेंगे। हिंसा और तोड़फोड़ मूलक प्रवृत्तियों से दूर रहेंगे।

सुभाष स्वामी
महासचिव

चन्द्रशेखर खूंटेटा
उपाध्यक्ष

नया सवेरा आए : सोया मन जग जाए

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने अमृत महोत्सव कार्यक्रम में उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा—आज मैं अपने आचार्यकाल के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। आज से उनचास वर्ष पूर्व इसी मेवाड़ की धरती पर गंगापुर के रंग-भवन में स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने इस विशाल धर्मसंघ का दायित्व मुझे सौंपा था। मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि मुझे सैकड़ों साधु-साध्वियों और लाखों श्रावकों की आध्यात्मिक सेवा करने का अवसर मिला। एक धर्मसंघ की सीमाओं में रहकर भी मैं समूची मानव जाति के लिए काम करना चाहता हूं। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर हमने सम्प्रदायविहीन सार्वभौम धर्म की व्याख्या की। अपने देश की समस्याओं से भी हम आंख मूंदकर नहीं बैठ सकते। कानून और डण्डे के बल पर उन समस्याओं का हल खोज पाना कठिन है। व्यवस्था-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन के समुचित योग से ही वांछित परिणाम आ सकता है।

हिंसा और परिग्रह की समस्या पर विस्तार से टिप्पणी करते हुए आचार्यश्री वर्तमान शिक्षा पद्धति पर भी अपने विचार व्यक्त किए। भौतिकवाद में उलझी हुई मानव जाति को अध्यात्म में रस लेने की प्रेरणा देते हुए आपने उसके आध्यात्मिक विकास की मंगल कामना की।

अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में लोक जीवन में नयी जागृति लाने के लिए आचार्यवर ने एक घोष दिया—

नया सवेरा आए, सोया मन जग जाए।

उपस्थित जन-समूह ने समवेत स्वर में तीन बार उस घोष का उच्चारण किया तो समूचे वातावरण में जागृति की नयी लहर आ गई। इससे पहले आचार्यवर ने तीन महत्त्वपूर्ण घोष और दिए थे—

संयमः खलु जीवनम् : संयम ही जीवन है।
निज पर शासन, फिर अनुशासन।
कैसे बदले जीवन धारा, प्रेक्षाध्यान साधना द्वारा।

इन सभी घोषों ने लोक चेतना के जागरण में अच्छी भूमिका निभाई है। पूर्व घोषों की भांति आचार्यवर द्वारा प्रदत्त यह नया घोष भी नयी सुबह की तलाश में घूमते हुए लोगों को चैतन्य जागरण की दिशा देगा, ऐसा विश्वास है। उस अवसर पर आचार्यप्रवर ने अमृत गीत, प्रेक्षागीत और जीवन-विज्ञान गीत का संगान किया। इन गीतों को विशेष उद्देश्य से तैयार किया गया था।

महोत्सव के वे क्षण

अमृत महोत्सव का कार्यक्रम चल रहा था। जनता उत्सुकता के साथ तादात्म्य जोड़ने के लिए उत्साहित हो रही थी, पर माइक व्यवस्था समुचित न होने के कारण कार्यक्रम का रस आधा हो गया। इतने बड़े पैमाने पर होने वाले आयोजनों में व्यवस्थातंत्र की थोड़ी-सी गड़बड़ी आयोजकों की सूझबूझ पर प्रश्नचिह्न लगा देती है। यद्यपि अधिकांश लोग आस्था के बल पर किसी भी अव्यवस्था को सहन कर शान्त रहते हैं। पर सब लोग समान नहीं होते। वे आयोजकों की कठिनाई का अनुभव किए बिना ही छोटी-मोटी बात को तूल दे देते हैं। ऐसी स्थिति में अनावश्यक रूप में तनाव बढ़ जाता है। उस दिन भी माइक व्यवस्था ठीक न रहने के कारण वहां उपस्थित हजारों-हजारों लोग कुछ अनमने से होने लगे थे। लेकिन वह अनमनापन उन क्षणों में उत्साह और उल्लास में परिणत हो गया, जब युवाचार्यश्री आचार्यश्री को कुछ विशेष उपहार देने के लिए मंच पर खड़े हुए। सर्व प्रथम उन्होंने अपनी ओर से 'पुरुषार्थ के पचास वर्ष' नाम से एक हस्तलिखित कविता संग्रह आचार्यश्री को भेंट किया। उपहार की दूसरी कड़ी थी धर्मसंघ की ओर से समर्पित अभिनन्दन-पत्र। उस कलात्मक और हस्तलिखित अभिनन्दन-पत्र को पूरा पढ़ने का अवकाश नहीं था। पर जनता को तो उस दिन सुनने की अपेक्षा देखने में ही अधिक आनन्द मिल रहा था।

उपहार समर्पण के दूसरे क्रम में युवाचार्यश्री ने साध्वियों द्वारा निर्मित कलाकृतियां—अमृत-कलश, अमृतपात्र, धागे से बने मनकों की माला, रजोहरण आदि आचार्यवर को भेंट की। एक-एक कलाकृति मुंह से बोल रही थी। साध्वियों ने अपनी आस्था की अभिव्यक्ति के लिए चिन्तन और सृजन के शिल्प को पूरी तरह से निखरने का अवसर दिया था। वैसे तो हर कलाकृति विश्लेषण मांगती है, पर वह संभव नहीं है। एक कृति, जो अपने ढंग की पहली कृति थी, सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र थी। थाली के आकार में काष्ठनिर्मित वह कृति तेरापंथ धर्मसंघ में तासक के नाम से प्रसिद्ध है, जो आचार्यों के भोजन करने के लिए काम आती है। उस तासक पर कलात्मक अक्षरों में अमृत कलश अष्टमंगल तथा प्रेक्षाध्यान की 'मंगल भावना' का व्यवस्थित अंकन प्रथम दर्शन में ही दर्शक को अभिभूत करने वाला था। साध्वी रामकुमारीजी द्वारा निर्मित उस कलाकृति को पुरस्कृत कर आचार्यवर ने साध्वियों को कला के क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

उपहार समर्पण के उन क्षणों में हैदराबाद संघ का कलात्मक कल्पवृक्ष, सुभाष कच्छारा का रजतपट्ट, जिस पर आचार्यवर के महत्त्वपूर्ण अवदान अंकित किए गए, श्री भंवरलालजी डांगलिया का अर्चनात्मक पद्यों के अंकन वाला रजतमय श्रीफल, पंजाब का अमृतकलश आदि विशेष रूप से दर्शकों का ध्यान

आकृष्ट कर रहे थे। उन उपहारों को तो आचार्यवर ने हाथ में लेकर देख भर लिया। इससे अधिक साधुओं के लिए उनका कोई उपयोग नहीं था।

अमृत-पत्रों का वितरण

आचार्य पदारोहण धर्मसंघ का ऐतिहासिक और मांगलिक प्रसंग होता है। उस अवसर पर गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में अनायास ही मुखरता आ जाती है। शिष्य का समर्पण और गुरु का वात्सल्य। गुरु के वत्सल भावों से अनुप्राणित शिष्य-समूह कृतार्थ हो जाता है। कृतार्थता और कृपा—दोनों ही संवेदन के तत्त्व हैं। पर कभी-कभी वे रूपायित भी होते हैं। आचार्यप्रवर ने जव धर्मसंघ का दायित्व संभाला, सव साधु-साध्वियों को अपनी कृपा का प्रसाद वितरित किया। तीन सौ गाथाएं और दो वर्ष कामकाज की वक्सीस। कुछ साधु-साध्वियां, जो धर्मसंघ को विशेष सेवा दे रहे थे, उन्हें अतिरिक्त रूप में पुरस्कृत किया गया। वह प्रसंग स्मृतियों में सहेजकर रखने का प्रसंग वन गया।

पचास वर्ष की सफल धर्म-शासना के उपलक्ष्य में अमृत महोत्सव का समायोजन हुआ। कुछ स्थायी और कुछ सामयिक उपक्रम सोचे गए। उस क्रम में साध्वी-समाज की ओर से आचार्यवर को निवेदन किया गया कि आप अपने हाथ से कुछ प्रेरक शब्द लिखकर साध्वियों को दें। एक-दो बार का निवेदन स्वीकृत नहीं हुआ। आखिर गुरुदेव इस वात से सहमत हो गए। अविलम्ब काम शुरू कर दिया गया। छोटी-सी डायरी के एक-एक पन्ने में साध्वियों का नामोल्लेख कर आचार्यवर ने कुछ अनमोल वोल अंकित कर दिए। उस अवधि में एक दिन आपके मन में एक विचार आया—साध्वियों के नाम से पद्य रचना की जाए तो अधिक उपयोगी होगी। विचार, निर्णय और क्रियान्विति में कालक्षेप नहीं हुआ। कुछ ही दिनों में आमेट में प्रवासित साध्वियों के लिए पद्य तैयार हो गए। उस सिलसिले में सन्तों को विस्मृत कैसे किया जा सकता था? क्रम आगे बढ़ा और एक-एक सन्त के नाम से पद्य वन गए। सहज, सुन्दर और प्रेरक उन पद्यों का निर्माण इतिहास की दुर्लभ घटना है।

पद्यांकित पत्र साध्वियों द्वारा निर्मित अमृत कलश में भर दिए गए। अमृत महोत्सव के पुण्य क्षणों में आचार्यवर के कर-कमलों से साधु-साध्वियों को उस अमृत को ग्रहण करना था। किन्तु उस दिन समय कम होने के कारण सव अमृत-पत्रों का वितरण नहीं हो सका। प्रतीक रूप में केवल दो पत्र परिषद के समक्ष वितरित किए गए। शेष पत्र साधु-साध्वियों की एक संगोष्ठी में दिए गए। साध्वियों को दो-दो अमृत-पत्र मिले और सन्तों को एक-एक। वहिर्विहारी साधु-साध्वियों के लिए भी अमृत-पत्र लिखने का अनुरोध किया गया। पर वह काम

समय सापेक्ष था, इसलिए केवल गुरुकुल वासी साधु-साध्वियां ही इस उपक्रम से लाभान्वित हो सके। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ सहित इकत्तीस संत तथा लेखिका सहित पैंसठ साध्वियों को लक्ष्य कर पद्य लिखे गए। दो पद्य यहां प्रस्तुत हैं। बाकी के पद्य परिशिष्ट संख्या एक में दिए गए हैं।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ

निर्मित नथमल नाम से, महाप्रज्ञ मतिमान।
गुप्त अतीन्द्रिय ज्ञान सम, क्षयोपशम-संधान।।
विनय-विलक्षण सतत श्रम, निरभिमान-निर्माण।
महाप्रज्ञ से सीख लो, स्वयं-स्वयं की त्राण।।
आगम सम्पादन कुशल, प्रेक्षा-ध्यान प्रधान।
महाप्रज्ञ प्रस्तुत करें, नव जीवन विज्ञान।।
युवाचार्य आचार्यवर अविच्छिन्न अनुबंध।
महाप्रज्ञ तुलसी युगल, उदाहरण अद्वन्द्व।।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

स्वस्थ महाश्रमणी सजग साध्वी प्रमुखा शान्त।
तुलसी युग की तरुणिमा कनकप्रभा संक्रान्त।।
पद यश लिप्सा से परे अनासक्त अभ्रान्त।
तुलसी युग की तरुणिमा कनकप्रभा संक्रान्त।।
परम समर्पण भाव का, उदाहरण आदर्श।
कनकप्रभा की कृति कला, पा तुलसी उत्कर्ष।।
पद से नहीं प्रवर्तिनी प्रवर्तिनी-प्रायोग्य।
कनकप्रभा प्रतिभा प्रवण, अनुपमेय आरोग्य।।

चातुर्मास व्यवस्था समिति के कार्यकारी अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल कच्छारा के आभार ज्ञापन के साथ कार्यक्रम संपन्न होने की सूचना दी गई।

अतीत के झरोखे से

रात्रिकालीन कार्यक्रम में राष्ट्रीय समिति के संयुक्त मंत्री श्री मांगीलाल सेठिया, दैनिक नवभारत टाइम्स, दिल्ली के सह संपादक श्री पारसदास जैन, अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून के सम्पादक श्री राधेश्याम शर्मा, मारवाड़ जंक्शन पंचायत समिति के प्रधान श्री चक्रवर्तीसिंह, स्थानकवासी कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी

मुणोत, समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री मोतीलाल एच० रांका, श्री पारस भाई जैन, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री विजयसिंह सुराना, मेवाड़ के लोकप्रिय कवि श्री माधवजी दरक, सुश्री सन्ध्या शर्मा आदि अनेक भाई-बहनों ने आचार्यवर के गरिमामय व्यक्तित्व और कर्तृत्व को हार्दिक नमन समर्पित करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। बैरवा समाज पुर की ओर से श्री देवीलालजी बैरवा ने आचार्यवर को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। युवा साधुओं ने 'अतीत के झरोखे से' नामक एक परिसंवाद प्रस्तुत किया। सरदारशहर निवासी श्री मानमलजी आंचलिया (मानव मित्र) जो पिछले एक वर्ष से उपासक दीक्षा में दीक्षित थे, अमृत महोत्सव के मंगल अवसर पर अग्रिम एक वर्ष के लिए पुनः उपासक दीक्षा स्वीकार की।

हैदराबाद से स्थानकवासी, मूर्तिपूजक एवं तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक दल संवत्सरी की एकता के लिए प्रयत्नशील है। वह देश के प्रमुख जैनाचार्यों, साधु-साध्वियों एवं कार्यकर्ताओं से संपर्क कर रहा है। अपनी सम्पर्क यात्रा के दौरान उस दल ने आमेट में आचार्यश्री के दर्शन किए और अपनी योजना की अवगति दी। संवत्सरी की एकता के लिए आचार्यवर के मन की तड़प एवं चिन्तन से वह दल अपरिचित नहीं था। उसका विश्वास था कि आचार्य तुलसी जैसे समर्थ आचार्य ही इसको गति दे सकते हैं। उस दल ने पूरे जैन समाज की ओर से आचार्यवर का अभिनन्दन किया। आचार्यश्री ने उसको संवत्सरी की स्थायी एकता के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा देते हुए अपनी ओर से किए जा रहे प्रयत्नों की जानकारी दी।

तुलसी-जीवन-दर्शन

अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर एक ऐतिहासिक आया था—तुलसी जीवन दर्शन-प्रदर्शनी। प्रदर्शनी में एक ओर आचार्यश्री के जीवन से संबंधित लगभग तीन सौ बड़े चित्र एवं सौ चार्टर थे, जिनमें आचार्यवर के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को उजागर किया गया था। दूसरी ओर उसमें आचार्यश्री का साहित्य, जनपथ पाक्षिक के प्रारम्भिक अंक, आचार्यप्रवर के प्रथम मर्यादा महोत्सव, ब्यावर के समाचार पत्रों की कटिंग, रेखाचित्र, अभिनन्दन पत्र, अमृत महोत्सव पर प्रकाशित विद्वानों के लेख, संवाद एवं कुछ दुर्लभ चित्र प्रदर्शित किए गए थे।

प्रदर्शनी की कल्पना की राष्ट्रीय समिति के संयुक्त मंत्री डॉ० महेन्द्र कर्णावट ने। अपनी कल्पना के अनुरूप उन्होंने सामग्री संकलन और उसके व्यवस्थापन में पूरे कौशल का परिचय दिया। आमेट में प्रदर्शनी को बहुत सुन्दर रूप में समायोजित करने में मेवाड़ क्षेत्रीय तेरापंथ युवक परिषद के कार्यकर्ताओं ने पूरा

श्रम किया। उनमें श्री शान्तिलाल बाफणा, श्री उत्तमचन्द सुकलेचा, श्री अरुण हिरण, श्री शान्तिलाल कोठारी आदि का नाम उल्लेखनीय है। तुलसी जीवन दर्शन प्रदर्शनी का उद्घाटन किया सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने। देश भर से समागत हजारों लोगों ने उस प्रदर्शनी को देखा और उस वर्तमान का साक्षात्कार किया, जो कल अतीत बनकर हमारी ऐतिहासिक परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी बनने वाला है।

जागो, फिर एक बार

अमृत महोत्सव के भव्य कार्यक्रम के मध्य २३ से २५ सितम्बर का त्रिदिवसीय महिला अधिवेशन भी आयोजित था। इस अधिवेशन में देश के एक सौ सत्रह स्थानों से लगभग पांच सौ प्रतिनिधि महिलाएं उपस्थित थीं। अधिवेशन का उद्घाटन सूर्योदय के साथ-साथ आचार्यवर की मंगल सन्निधि में अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती सज्जनदेवी चोपड़ा ने किया। आचार्यवर ने महिलाओं को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

मध्याह्न की उजली धूप में ठीक सवा बारह बजे अमृत महोत्सव के अन्तर्गत महिलाओं का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मंच पर महिलाओं की उपस्थिति और उन्हीं पर मंच संचालन की जिम्मेदारी। दर्शक और श्रोता विस्मित थे। चालीस हजार लोगों की सभा पर महिलाएं नियंत्रण कर सकेंगी? इस प्रश्नचिह्न ने कुछ लोगों को विचलित भी किया। किन्तु विचलन की स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकी। श्रीमती पुष्पा कोठारी के कुशल संचालन ने सबको आश्वस्त कर दिया। मंच के ठीक सामने अग्रिम पंक्तियों में केसरिका गणवेश में सैकड़ों महिलाएं और श्वेत परिधान में बैठी कन्याएं एक बार तो सबका ध्यान अपनी ओर खींच ही लेती थीं। एकरूपता की भी एक छाप होती है। यदि महिलाओं का वेश एक सरीखा नहीं होता तो शायद उनकी ओर कोई दृष्टिपात ही नहीं करता।

अमृत महोत्सव के मंगल क्षणों में अपने आराध्य की अर्चना के लिए उपस्थित देशभर के महिला मंडलों की प्रतिनिधि बहनों की ओर से अभ्यर्थना गीत प्रस्तुत किया गया, जिसे स्वर दिया श्रीमती सरला रायजादा ने। श्रीमती सज्जनदेवी चोपड़ा ने अपने अध्यक्षीय भाषण के बाद एक सौ ग्यारह कार्यकर्ता बहनों को आचार्यश्री के समक्ष प्रस्तुत किया। बहनों ने संघीय सेवा के लिए अपना समय देने का संकल्प व्यक्त किया। मंडल की मन्त्री श्रीमती निर्मला दूगड़ ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। महिला मण्डल की बहनों को प्रतिवर्ष एक घोष दिया जाता है। इस वर्ष का घोष था—जागो, फिर एक बार। घोष की प्रतिध्वनियों से अमृत समवसरण गूंज उठा। इस छोर से उस छोर तक बैठी महिलाओं के मन

में जागने का संकल्प प्रबल हो उठा।

कीर्तिमानों के कीर्तिमान

संघ प्रवक्ता चन्दनमलजी बैद ने महिलाओं को वीरांगना शब्द से सम्बोधित करते हुए आचार्यवर द्वारा महिलाओं के लिए दिए गए अवदान की चर्चा की। उन्होंने कहा—गुरुदेव ! आप कीर्तिमानों के कीर्तिमान हैं। आपकी और आपके संघ की कीर्ति उत्तरोत्तर प्रवर्धमान है। कहा जाता है कि आज तीर्थंकर नहीं हैं, किन्तु आपने किसी तीर्थंकर से कम काम नहीं किया है। आपने अपनी दूरगामी सूझबूझ से संघ को जिन ऊंचाइयों तक पहुंचाया है, यह एक विलक्षण बात है।

दस हजार की आबादी वाले आमेट में पचास हजार लोगों के लिए आवास और भोजन-पानी की व्यवस्था जुटाना कोई सरल काम नहीं है। फिर भी आमेट के कार्यकर्ताओं ने सहजता से इतनी व्यवस्था जुटा ली, इस बात का उल्लेख करते हुए चन्दनमलजी ने आगे कहा—भारत में हिंसा फैल रही थी। पंजाब में सुलगती हुई हिंसा को समाप्त करने के लिए आपने सन्त लोंगोवाल से बातचीत कर जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वह हमारी संत-परम्परा के अनुकूल है। इतना काम करके भी आपने राजनीति में हिस्सा नहीं लिया। सक्रिय राजनीति से दूर रहकर भी आप एक दूसरे रास्ते से उसमें प्रवेश कर चुके हैं। इससे हम लोगों को भी आपका मार्ग-दर्शन उपलब्ध होने लगा है। आज इस मंगल अवसर पर मैं अपनी समग्र आस्था आपके प्रति समर्पित करता हूं।

मैं महिलाओं के कारण हूं

अणुव्रत प्रवक्ता श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने महिलाओं का विश्लेषण करते हुए कहा—मेरे चित्त में महिलाओं के प्रति गहरी श्रद्धा है। मैं अगर आज हूं तो अपने बलबूते पर नहीं हूं। दो महिलाओं के कारण हूं। मुझे जीविकोपार्जन तक का शऊर नहीं था। शुरू में मैं कैसे जी गया, यह तो मां ही जानती है। उसके बाद क्या हुआ, यह पत्नी जानती है। इसलिए मेरे मन में नारी जाति के प्रति कृतज्ञता है।

संसार में गहरा रहे संकट के बादलों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—स्त्री का जो और जितना भाग होना चाहिए था, आज की सभ्यता में उतना हो नहीं पाया है। इसलिए यह सारा संकट और असन्तुलन है।

स्त्री और पुरुष की क्षमता को अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने आगे कहा—प्रहार की शक्ति पुरुष में है, हो सकती है, लेकिन सहिष्णुता की शक्ति स्त्री के पास है। आज जो घोर असंतुलन दिखाई दे रहा है, उसका कारण सहिष्णुता का अभाव

है। यह संसार दो चीजों से बना है—परिवार और बाजार। जिसमें हर एक अपने को देता है, वह है परिवार। जहां हर एक अपने लिए लेना चाहता है, वह है बाजार। बाजार का निर्माण पुरुष ने किया है और परिवार के केन्द्र में स्त्री प्रतिष्ठित है। वह परिवार की अधिष्ठात्री है। पुरुष सत्ता की प्रधानता के कारण आज परिवार पर बाजार हावी हो रहा है। इस स्थिति में परिवार टूटते जा रहे हैं। यदि हमें वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना को आकार देना है तो स्त्री के अवदान को स्वीकार करना ही होगा।

आचार्यवर के कर्तृत्व के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए श्री जैनेन्द्रजी ने तेरापंथ समाज में साध्वियों और महिलाओं की प्रगति के बारे में सन्तोष व्यक्त किया। उन्होंने आचार्यश्री के नेतृत्व का अभिनन्दन किया, जिसके कारण समाज और देश में संभावनाओं के नये दरवाजे खुले।

अप्रमत्तता को प्रणाम

साप्ताहिक हिन्दुस्तान की संपादक श्रीमती शीला झुनझुनवाला, जो अधिवेशन की मुख्य अतिथि थीं, अपने पति के साथ आमेट आई थीं। उन्होंने अंधविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ी हुई नारी को चेतना देने के कारण आचार्यवर का अभिनन्दन करते हुए कहा—आपके उपदेशों ने ज्ञान के बन्द कपाटों को खोला है। आचार्यकाल के पचासवें वर्ष में प्रवेश के इन क्षणों में आपका कर्मठ सन्त जीवन उभरकर सामने आ गया है। आपके बारे में कुछ कहना प्रकाश को प्रकाशित करने जैसा है।

जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान श्री दलसुख भाई मालवणिया ने कहा—तीर्थंकर का समवसरण कैसा होता होगा, मैं नहीं जानता। यह समवसरण मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं। तीर्थंकर के समवसरण में सारे हिन्दुस्तान के लोग नहीं आते थे, आर्य देशों की अपनी सीमाएं थीं। यहां देश भर के लोग उपस्थित होते हैं। आचार्यश्री की इस व्यापकता ने मुझे प्रभावित किया है। एक समय था, जब मैं तेरापंथ का कट्टर आलोचक था, पर अब इसका पूरा समर्थक और प्रशंसक बन गया हूं। इसका सबसे बड़ा कारण है आचार्यश्री की अप्रमत्तता। इन्होंने 'समयं गोयम ! मा पमायए' इस मंत्र को जीकर दिखाया है। इस संसार में मैंने बहुत कुछ देखा, पर इन जैसी अप्रमत्तता नहीं देखी। मैं इस अप्रमत्तता को प्रणाम करता हूं।

व्यापकता को नमन

दैनिक ट्रिब्यून के संपादकश्री राधेश्याम शर्मा ने आचार्यवर के प्रति आस्था व्यक्त

करते हुए कहा—आचार्यश्री तुलसी, सम्प्रदाय विशेष के आचार्य हैं, किन्तु आपके कार्यक्रम वहुत व्यापक हैं। आपके विचारों में कहीं संकीर्णता नहीं है। आप शतायु होकर इसी प्रकार मानव जाति के लिए कार्यरत रहें, यही मंगल भावना है।

दैनिक नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली) के सहसंपादक श्री पारसदास जैन ने कहा—आचार्यश्री तुलसी ने तेरापंथ और जैनधर्म के उन्नयन के लिए ही नहीं, समग्र मानव समाज से लिए काम किया है। आपको किसी जाति या वर्ग के घेरे में नहीं रखा जा सकता। अस्पृश्यता निवारण के लिए आपने वहुत काम किया है। मैं इस पुनीत अवसर पर आपके दीर्घ जीवन के लिए मंगल कामना करता हूं।

संसद सदस्य श्री रामचन्द्र विकल ने कहा—अहिंसक शक्तियों एवं मानव जाति के विकास के लिए आचार्य तुलसी के द्वारा समय-समय पर जो कार्य किए गए हैं, वे अभिनन्दनीय हैं। मानवता की सेवा के लिए आपके मन में प्रारंभ से ही तड़प रही है। इसलिए आपने अपने जीवन को उसी के लिए समर्पित किया है।

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जैन आचार्यवर के निकट परिचितों में से हैं। उन्होंने आपकी अभिवन्दना में वोलते हुए कहा—आचार्य तुलसी ने मानवता की सेवा में अपना जीवन समर्पित किया है। मानव, सच्चे अर्थों में मानव वने, यही इनका ध्येय है। अणुव्रत आन्दोलन के मार्ग पर चलकर व्यक्ति अपनी दुर्वलताओं पर विजय पा सकता है। यह आन्दोलन जाति, सम्प्रदाय और वर्ण आदि के दायरे से परे हटकर मानव जाति के लिए विकास के द्वार खोलता है। आचार्यश्री की यह अनुपम देन है। इसीलिए हम आपकी अभिवंदना करते हैं।

अधिवेशन में अ० भा० तेरापंथ महिला मण्डल की ओर से जगराओ (पंजाव) की वहन श्रीमती निर्मला जैन की आस्था और सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए उसे 'नारी-रत्न' के अलंकरण से सम्मानित किया गया।

सूरत के विशिष्ट श्रावक श्री कुसुम भाई जवेरी की सेवाओं का स्मरण करते हुए आचार्यवर ने उनको 'संघ-प्रभावक' सम्वोधन से सम्वोधित किया।

मोमासर (जयपुर) निवासी श्रावक श्री उत्तमचन्दजी सेठिया की माता श्रीमती मनोहरीदेवी सेठिया को आचार्यवर ने मरणोपरान्त 'श्राविका-रत्न' सम्वोधन से सम्वोधित किया।

मुनि किशनलालजी ने उस अवसर पर कुछ पुस्तकें आचार्यवर को भेंट कीं। कई महिलाओं ने भी इस कार्यक्रम में अपने विचार व्यक्त किए। इस श्रृंखला में सवसे अधिक आकर्षण का विन्दु था—साध्वी-समाज द्वारा उद्गीत 'समूहगान।' एक स्वर, एक लय और एकरसता के साथ गाए गए उस भावप्रवण गीत ने श्रोताओं के मन को वांध लिया।

महिलाएं जागेंगी तो संसार जाग जाएगा

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने महिला अधिवेशन के माध्यम से उपस्थित जनसमूह को उद्बोधन देते हुए कहा—'मैं मानव हूं, धार्मिक हूं, जैन हूं, आखिर तेरापंथी भी हूं। जैनेन्द्रजी ने एक वार मुझे वताया कि जव वे कभी किसी से वात करेंगे, मेरी वात को करेंगे, पर पंथ की वात नहीं करेंगे। मैंने पूछ लिया—'लोग पूछेंगे तव ?' तव तो कहना ही होगा कि वे तेरापंथी हैं।

जैनेन्द्रजी ने अनेक वार अपने वक्तव्यों में तेरापंथ की चर्चा की है। मेरा विश्वास है कि हमारे धर्मसंघ की जितनी गति, प्रगति हुई है, उसमें अन्यान्य कारणों के साथ एक कारण तेरापंथ भी है। तेरापंथ जैसा सुसंगठित, सुव्यवस्थित सम्प्रदाय मुझे नहीं मिलता, मुझे सारा समय साधु-साध्वियों की व्यवस्था में ही लगाना पड़ता। मेरी नींद हवा हो जाती।

एक मूर्तिपूजक मुनि ने मुझसे पूछा—आचार्यजी! क्या आपको नींद आती है? मैंने कहा—मैं तो पूरी निश्चिन्तता के साथ सोता हूं। यह सुनकर उन्होंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—मेरे पास पांच-सात साधु हैं, उनसे भी मेरी नींद हराम हो गई है। आपके पास तो सात सौ साधु हैं। फिर आप कैसे सोते होंगे? मैंने कहा—मैं आपको समझा तो नहीं सकता, पर इस कारण मेरी नींद कभी नहीं उचटती है। मेरा यह निश्चित अभिमत है कि मेरे विकास में मेरा धर्मसंघ सव तरह से सहयोगी है।

आचार्यवर ने अपने मंगल प्रवचन में महिला समाज में हुए परिवर्तनों को विस्तार से बताते हुए कहा—महिलाओं की चेतना को जागृत करते समय पता नहीं हमें कितना सुनना और सहना पड़ा है। आखिर आज हमारे श्राविका समाज का एक रूप वन गया है। समाज की सैकड़ों-सैकड़ों कन्याओं ने दहेज की मांग या ठहराव के प्रसंग में शादी न करने का संकल्प स्वीकार कर क्रान्ति की चिनगारी सुलगा दी है। मण्डल की अध्यक्ष ने अभी एक सौ ग्यारह कार्यकर्ता वहनों को प्रस्तुत किया। इन वहनों को वहुत काम करना है। काम करने के अनेक अवसर इनके सामने हैं। ये अपनी शक्ति का सम्यक् नियोजन कर उदाहरण उपस्थित करें। मेरा विश्वास है कि महिला समाज जागेगा तो पूरा संसार जाग जाएगा। इसलिए आप जागें और अपने कर्तृत्व को उजागर करें।'

अर्चना के क्षण

२४ सितम्वर को मध्याह्न में साढ़े वारह वजे अमृत महोत्सव के द्वितीय चरण का समापन समारोह था। अनेक वक्ताओं और गीतकारों ने शब्दों के नये परिधान

सजाकर अपनी भावना को अभिव्यक्ति दी। युवा साधुओं का गीत—ओ जीवन के निर्माता, जीवन की लो सौगातें—काफी आकर्षक था। मुनि उदित और मुनि मुदित ने आचार्यवर के शासनकाल के पचास कीर्तिमान जो पिछले आचार्यों के युग में नहीं हुए, प्रस्तुत किए। युवा सन्तों का वह एक श्रमसाध्य और शोधपूर्ण उपक्रम था। मुनि मोहनलालजी आमेट ने एक वर्ष तक सात द्रव्यों से अधिक न खाने का संकल्प स्वीकार कर आचार्यवर का त्यागमय अभिनन्दन किया। आमेट क्षेत्र में देहातों से आए हुए सत्तर देहाती भाइयों ने खड़े होकर आजीवन शराब न पीने का संकल्प किया। पत्रकार श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट, राज्यसभा के सदस्य श्री भंवरलाल पंवार, स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मुणोत आदि के वक्तव्यों में आचार्यश्री के उदार विचारों और व्यापक कार्यक्रमों की चर्चा की गई।

समर्पण के पचास वर्ष

आचार्य तुलसी : समर्पण के पचास वर्ष (Fifty Years of Selfless Dedication) अंग्रेजी भाषा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विमोचन के लिए आचार्यवर को समर्पित किया गया। इस ग्रन्थ के अंग्रेजी अनुवाद, संपादन आदि कार्यों में डॉ० आर० भटनागर और एस० एल० गांधी ने गहरी निष्ठा के साथ अपने समय और श्रम का विनियोजन किया था। जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में आचार्यप्रवर और उनके कर्तृत्व से सम्बन्धित विशेष सामग्री है। कुछ विशेष अवसरों के रंगीन चित्रों ने पुस्तक को अतिरिक्त सौन्दर्य और आकर्षण दे दिया है। अंग्रेजी भाषा में अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। पुस्तक को समर्पित करते हुए डॉ० भटनागर ने कहा—इस अवसर पर मैं यहां उपस्थित हूं, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। आचार्यश्री का व्यक्तित्व असीम है। आपके व्यक्तित्व की गहराई तक शब्दों की पहुंच नहीं हो सकती। लगभग सवा साल के श्रम से यह पुस्तक एक रूप ले सकी, यह आपकी कृपा और प्रेरणा का ही सुफल है। भाई सोहनजी जैसे कर्मठ और निष्ठावान व्यक्ति इस काम में मेरे साथ जुड़े, इसलिए भी यह काम इतना जल्दी संभव हो सका। मानवता की सेवा में समर्पित आपके जीवन से जन-जन को प्रेरणा मिले, इस मंगल भावना के साथ मैं इस अवसर पर आपका अभिनन्दन करता हूं।

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित साहित्य संस्था के अध्यक्ष श्री खेमचन्दजी सेठिया ने आचार्यवर को समर्पित किया। अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति द्वारा प्रकाशित साहित्य का समर्पण किया श्री मोतीलाल एच० रांका ने।

अमृत महोत्सव के अवसर पर देश भर से लगभग चालीस हजार लोग आमेट

आचार्यवर की अपेक्षाओं को जनता ने ध्यान से सुना। कुछ लोगों ने व्यक्तिगत रूप में अपने नाम भी प्रस्तुत किए। यदि उक्त आह्वान की सम्यक् क्रियान्विति हो सकी तो अमृत महोत्सव वर्ष की एक ऐसी उपलब्धि होगी, जो युग-युग तक अविस्मरणीय रहेगी।

कुछ नये उपक्रम

अमृत महोत्सव के उपलक्ष में साधु-साध्वियों की एक निवन्ध प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता का विषय था—आचार्यश्री के महत्त्वपूर्ण अवदान। वारह साधु तथा चौदह साध्वियां प्रतियोगी थीं। लेखन क्षमता के आधार पर प्रतियोगियों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया। प्रायः सभी साधु-साध्वियों ने पूरे मनोयोग से निवन्ध लिखे थे। प्रथम श्रेणी में मुनि राजेन्द्रकुमारजी और द्वितीय श्रेणी में मुनि प्रशान्तकुमारजी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। वैसे सभी प्रतियोगियों के निबंध स्तर के थे।

अमृत महोत्सव के अवसर पर सरदारशहर निवासी श्री रिद्धकरण नौरतनमल डागा की ओर से 'श्रीमती मनोहरीदेवी डागा समाज सेवा पुरस्कार' प्रारंभ किया गया। तेरापंथ धर्मसंघ व समाज की निष्ठापूर्वक निष्काम सेवा करने वाले को इक्कीस हजार एक रुपये का यह पुरस्कार प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को दिया जाएगा, ऐसी घोषणा की गई। सन् १९८५ का पुरस्कार समाज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री शुभकरणजी दसाणी को दिया गया।

साहित्यकारों का अर्घ्य

अमृत महोत्सव के अवसर पर देश भर के प्रवुद्ध चिन्तक, कवि, साहित्यकार आदि आचार्यवर के प्रति आस्था का अर्घ्य चढ़ाने के लिए तत्पर हो गए। तेरापंथ समाज एक छोटा-सा समाज है। आचार्यश्री ने समाज की सीमाओं को विस्तार देकर पूरे देश की जनता के साथ आत्मीय सम्वन्ध स्थापित किए। जनता ने आचार्यवर के उदात्त विचारों का मूल्यांकन कर आपको राष्ट्रसंघ की दृष्टि से देखा। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान जैसे व्यापक कार्यक्रमों ने आपको जन-जन का मसीहा वना दिया। जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय आदि भेदरेखाओं को समाप्त कर जन-जन ने आपको अपनी श्रद्धा का केन्द्र वनाया। अमृत महोत्सव के मंगल अवसर पर वे सभी लोग अपनी मंगल कामनाएं समर्पित करने के लिए माध्यम खोजने लगे। लालों-लाखों लोग किसी स्थूल या व्यक्त माध्यम को प्राप्त नहीं कर सके। उन्होंने अपने अन्तःकरण की समस्त कोमल भावनाओं को राष्ट्र संत पर

निछावर कर दिया। कुछ प्रबुद्ध लोगों ने लेखनी उठाई और उन्मुक्त मन से आचार्यवर के कर्तृत्व को उजागर करने का प्रयत्न किया। उन सबकी भावनाओं को संकलित कर ग्रन्थ को विस्तार नहीं देना है। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण लेखकों का नामांकन करना आवश्यक है। दैनिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में लिखने वाले कुछ प्रमुख लेखक इस प्रकार हैं—श्री जैनेन्द्रकुमारजी, श्री यशपालजी, श्री नेमीचन्दजी जैन, श्री रत्नेश कुसुमाकर, श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट, श्री नरेन्द्र मानावत, श्री सुमनेश जोशी, श्री दलसुख भाई मालवणिया, श्री नन्दकिशोर नौटियाल, श्री रोहित शाह तथा श्री हसमुख वक्षी।

तुम अमृत के रूप

लेखकों ने अपनी कलम की नोक से आचार्यवर के कर्तृत्व को उकेरने का प्रयास किया तो कवि मानस की संवेदनाएं भी मुखर हो उठीं। साधु-साध्वियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर के कवियों ने भी अपने संवेदन को स्वर दे दिया। यहां एक-दो पद्य उद्धृत किए जा रहे हैं—

तुम अमृत के रूप, कर दिया,
तुमने क्षर को अक्षर।
धन्य हो गया तुम्हें प्राप्त कर,
यह भव का रत्नाकर॥

—कन्हैयालाल सेठिया

अमृत उत्सव आदर्शों की निष्ठा का प्रण,
करुणा मंडित जीवन यात्रा एक समर्पण।
उस करुणा के मंगलमय हीरक प्रभात में,
चन्दन से वन्दन करती हो मलय वात में॥
दसों दिशाएं पुण्य प्रयोजन की समिधा से,
आलोकित हैं अर्हत् की संदेश-सुधा से॥

—लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

पत्र जगत की हलचल

लेखक और कवि जब मुखर होते हैं, तब पत्र-पत्रिकाओं को अपना मौन खोलना ही पड़ता है। आचार्यप्रवर के अमृत महोत्सव की आयोजना ने देश भर के पत्रों में नयी हलचल पैदा कर दी। आचार्यश्री अपनी यात्राओं, कार्यक्रमों और उदार विचारों से राष्ट्र के क्षितिज पर पूरी तरह से प्रभासित होने लगे। इस कारण

पत्रकारों और संवाददाताओं के लिए आपके बारे में जानना-समझना और जनता को सही जानकारी देना जरूरी हो गया। समय-समय पर अधिकांश पत्र अपने दायित्व के प्रति जागरूक रहे। अमृत महोत्सव के अवसर पर तो पत्र-पत्रिकाओं में सात्विक प्रतिस्पर्धा-सी खड़ी हो गई। आए दिन आचार्यवर के पास इंटरव्यू लेने वालों की आवाजाही शुरू हो गई। अनेक पत्रों ने उस अवसर पर आचार्यश्री, युवाचार्यश्री के विशेष लेख आमंत्रित किए और अनेक लेखकों ने आन्तरिक प्रेरणा से अपनी कलम चलाई। २४-२५ सितम्बर १९८५, अमृत महोत्सव के मंगल पर्व को निमित्त बना विशेष लेख और विशेष संवाद प्रकाशित किए गए। पत्रकारों की सेवा का यह अभियान केवल तीन दिन ही नहीं चला। उन्होंने लगभग पूरी मेवाड़ यात्रा में अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया। कुछ प्रमुख पत्रों के नाम इस प्रकार हैं—दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली; दैनिक नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली; दैनिक जनसत्ता, नई दिल्ली; दैनिक नवज्योति, जयपुर; दैनिक राजस्थान पत्रिका, जयपुर; दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर; आधुनिक राजस्थान, अजमेर; नई दुनिया, इन्दौर; इंडियन एक्सप्रेस, अहमदाबाद; जलते दीप, जोधपुर; गुजरात समाचार, अहमदाबाद; संदेश, अहमदाबाद; ब्लिट्ज, बम्बई; धर्मयुग, बम्बई; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली; युगपक्ष, बीकानेर; सेनानी, बीकानेर; ब्लास्ट, जोधपुर; दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़ आदि-आदि।

उक्त पत्रों में अमृत महोत्सव के अतिरिक्त संत लोंगोवाल और आचार्यश्री की बातचीत, युवक अधिवेशन, महिला अधिवेशन, अणुव्रत अधिवेशन, जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर, जैन एकता और समन्वय की दिशा में, जैन विद्या परिषद सेमिनार, नयी शिक्षा नीति में प्राथमिक व अनौपचारिक शिक्षा संगोष्ठी आदि विशेष आयोजनों के संवाद भी व्यापक स्तर पर प्रकाशित हुए। दैनिक प्रवचनों और कार्यक्रमों का विवरण भी जब-तब छपता ही रहता था। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि इस बार मेवाड़ यात्रा में पत्रकार बन्धुओं ने आचार्यश्री के कार्यक्रमों, विचारों और गतिविधियों को जिस उदारता के साथ जनता तक पहुंचाया, वह एक अपूर्व घटना थी।

महिलाएं शक्ति को सार्थक करें

२५ सितम्बर को अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल के त्रिदिवसीय अधिवेशन का समापन था। समापन समारोह में एक ओर क्षेत्रीय मंडलों की गतिविधियों के मूल्यांकन की निष्पत्ति सामने आई, दूसरी ओर उल्लेखनीय काम करने वाले मंडल प्रशंसित और पुरस्कृत हुए। सन् १९८५ का चल विजयोपहार बम्बई महिला मण्डल को मिला।

इस वर्ष अधिवेशन में विविध क्षेत्रों की कन्या मण्डलों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं की एक प्रदर्शनी आमेट में आयोजित की गई। इसमें पचीस क्षेत्रों की कन्याओं ने भाग लिया। हजारों लोगों ने प्रदर्शनी देखी और कन्याओं को प्रोत्साहित किया। कन्याएं प्रारम्भ से ही रचनात्मक काम से जुड़ें, इस दृष्टि से समायोजित प्रदर्शनी ने अनेक नयी प्रतिभाओं को प्रकाश में आने का अवसर दिया और अनेक प्रतिभाओं को निखरकर सामने आने की प्रेरणा दी।

परमाराध्य आचार्यवर ने पाथेय के रूप में महिलाओं को विशेष प्रतिबोध देते हुए कहा—नारी जाति में सबसे बड़ी अपेक्षा है आत्मविश्वास के जागरण की। विश्वास एक शक्ति है। शक्तिहीन व्यक्ति कुछ भी काम नहीं कर सकता। शक्ति के दो स्रोत हैं—ज्ञान और क्रिया। कोरा ज्ञान खतरनाक होता है और आचरण शून्य ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं होता। मुझे प्रसन्नता है कि आज महिलाएं अनेक क्षेत्रों में सक्रिय हैं। ये अपने ज्ञान व सद्आचरण के द्वारा परिवार, समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपनी शक्ति का विनियोजन करती रहें। महिलाओं ने काफी काम किया है, पर जो करना है, वह और अधिक है। सक्रिय महिला कार्यकर्त्ता अन्य मण्डलों को अपना समय देकर उन्हें भी सक्रिय करें। उन्हें जो काम सौंपा जाए, उसे ईमानदारी से पूरा कर अपनी क्षमताओं को अर्थवान बनाएं।

जिन खोजा तिन पाइयां

२६ सितम्बर को मध्याह्न में एक बजे अमृत समवसरण में आचार्यवर की मंगल सन्निधि में १८६वां भिक्षु चरमोत्सव मनाया गया। तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु एक विलक्षण व्यक्ति थे। उनके मन में धर्म के यथार्थ स्वरूप को उजागर करने और उसे जीने की गहरी तड़प थी। 'जिन खोजा तिन पाइयां' के अनुसार उन्होंने शास्त्रों की गहराई में उतरकर सत्य का साक्षात्कार किया। सत्य के आलोक से उनकी आत्मा उद्भासित हो उठी। उन्होंने सत्य का अनुगमन किया और जनता ने उनका अनुगमन किया। उनके विचारों से प्रभावित लोगों का संघ बन गया, जो तेरापंथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। दो सौ पचीस वर्ष पहले धर्मक्रांति का शंखनाद करने वाले आचार्य भिक्षु वि० सं० १८६० भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को महाप्रयाण कर गए। उस दिन की स्मृति में ही भिक्षु चरम महोत्सव का आयोजन किया जाता है।

आचार्य भिक्षु के बहुआयामी जीवन और दर्शन पर अनेक वक्ताओं ने अपने सुचिन्तित विचार व्यक्त किए। आचार्यप्रवर ने आचार्य भिक्षु के जीवन प्रसंगों को इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया कि श्रोता लोग आत्मविभोर हो उठे।

अमृत समवसरण का पूरा वातावरण उस समय मुखर हो गया, जब आचार्यवर ने आचार्य भिक्षु के प्रति एक श्रद्धागीत समर्पित किया। उस गीत के कुछ बोल इस प्रकार हैं—

श्री जिन शासन के उद्गाता मर्यादा के नव निर्माता,
भिक्षु भारत भू-मंडल पर बन अवतार आये,
लो स्वीकारो श्रद्धा सुमनों का उपहार लाये ॥

अनुशासन के बिना मूल्य संयम का होता कहीं नहीं,
अनुशासन के प्रथम धर्म का है पवित्र सन्दर्भ यही,
मर्यादा की गंगोत्री से अमल व्यवस्था धार बही,
सम आचार, विचार और सामाचारी भी सही-सही,
सुन्दरता आई मनभाई शक्ति-साधना की सहनाई,
लायी गहराई, संयम में नये निखार आये ॥

आचार्य भिक्षु के प्रति आस्था को और अधिक पुष्ट करने वाला वह आयोजन उनके नाम से घटित होने वाले चमत्कारों का जीवन्त साक्षी बन गया।

एक कीर्तिमान

साध्वी स्वयंप्रभाजी द्विशताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर दीक्षित हुई। शिक्षा, सेवा और तपस्या—सभी क्षेत्रों में उसकी रुचि है। पिछले दो वर्षों से उसके मन में लम्बी तपस्या करने की भावना जागी। भावना परिपक्व हो गई तो उसने आचार्यवर से अनुरोध किया कि अमृत महोत्सव वर्ष में उसे मेवाड़ में तपस्या करने का अवसर दिया जाए। आचार्यवर अनुकम्पित हुए। आपकी अनुज्ञा से साध्वी स्वयंप्रभा ने दीर्घ तपस्विनी साध्वी पन्नांजी की देखरेख में आछ के आगार पर लम्बी तपस्या शुरू कर दी। आचार्यवर ने उसको लावासरदारगढ़ चातुर्मास करने का निर्देश दिया। उसने वहीं पहुंचकर तपस्या का प्रारंभ किया।

आचार्यश्री चातुर्मासिक प्रवास के लिए आमेट पधारे। साध्वी स्वयंप्रभाजी भी सरदारगढ़ से चलकर दर्शन करने के लिए आमेट आ गई। उसकी भावना थी कि तपस्या का क्रम गुरुदेव के सान्निध्य में चले। फिर भी उसका चातुर्मास घोषित था, इसलिए वह अधिक आग्रह नहीं कर सकी।

लावासरदारगढ़ के श्रावक जानते थे कि साध्वीश्री की मनोभावना क्या है? उन्होंने अपने स्वार्थ का विसर्जन कर आचार्यवर से निवेदन किया—गुरुदेव! आप कृपा कर तपस्विनी साध्वी को आपकी सेवा का अवसर दें। हम लोग गृहस्थ हैं। हमारे पास साधनों की कमी नहीं है। हम यहां आकर आपके प्रवचन से लाभान्वित हो सकते हैं। श्रावकों के इस सूझबूझपूर्ण निवेदन पर ध्यान देकर

आचार्यवर ने साध्वी स्वयंप्रभा जी को आमेट रहकर तपस्या करने की अनुमति दे दी। साध्वीजी का एक अधूरा सपना पूरा हो गया।

लावासरदारगढ़ के लोग सैकड़ों की संख्या में प्रतिदिन बस द्वारा वहां पहुंच जाते। आने वालों को प्रायः दो बार सेवा उपलब्ध होती रही। विशेष प्रसंगों पर प्रातः, मध्याह्न और रात्रि में, तीन-तीन बार बसों के यातायात का क्रम बना रहा। इस क्रम से सरदारगढ़वासी प्रसन्न थे, साध्वी स्वयंप्रभाजी खुश थी और आचार्यवर को भी सन्तोष था।

२९ सितम्बर को साध्वी स्वयंप्रभा ने एक सौ इक्कीस दिनों की तपस्या सानन्द संपन्न कर ली। इस अवधि में वह प्रायः प्रतिदिन आचार्यश्री की उपासना करती, स्वाध्याय, ध्यान, जप करती और आगन्तुक लोगों से बातचीत भी करती। लगभग तैंतालीस, चौवालीस वर्ष की अवस्था में चौमासी तप करने वाली वह पहली साध्वी थी, इस दृष्टि से उसने एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

२९ सितम्बर को प्रातः अमृत समवसरण में तपस्या का अभिनन्दन करने के लिए एक कार्यक्रम रखा गया। अनेक भाई-बहनों ने उस अवसर पर अपने विचार रखे। साध्वी स्वयंप्रभाजी ने भी तेरह दोहों के माध्यम से अपनी भावना प्रकट की। परमाराध्य आचार्यप्रवर के आशीर्वाद रूप मंगल प्रवचन के बाद कार्यक्रम संपन्न हुआ।

३० सितम्बर को प्रातः आचार्यश्री और युवाचार्यश्री साध्वियों के स्थान पर पधारे। साध्वी स्वयंप्रभाजी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में खड़ी थी। आचार्यवर ने तप का माहात्म्य बताते हुए एक दोहा कहा—

चौमासी तप आदर्‌यो, आछ ग्रहण उपरान्त।
अमृतोत्सव आमेट में, स्वयंप्रभा चित शान्त॥

मेवाड़ का प्रसिद्ध पेय 'आछ' गर्म छाछ का निथरा हुआ पानी पीकर एक सौ इक्कीस दिनों तक निराहार और निर्जल रहकर साध्वी स्वयंप्रभाजी ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। आचार्यवर ने अपने हाथ से ग्रास देकर साध्वीजी के 'पारणा' कराया। उस समय वहां उपस्थित साधु-साध्वियों और सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं के हृदय सागर में हर्ष की लहरें तरंगित हो उठीं।

पर्युषण यात्रा

चतुर्विध धर्मसंघ की आध्यात्मिक और धार्मिक जागरणा का आधार होता है, संघ के आचार्य की दूरगामी सूझबूझ। आचार्यश्री नेअपने धर्मसंघ को सतत गतिशीलता का मंत्र दिया है। उस मंत्र के सहारे प्रगति के नये-नये आयाम खुले हैं, खुल रहे हैं। पर्युषण पर्व के अवसर पर श्रावक समाज की धर्म जागरणा में साधु-साध्वियां

बहुत बड़ा निमित्त बनती हैं। क्षेत्रों का विस्तार जिस गति से हुआ है, सब स्थानों में साधु-साध्वियों के चातुर्मास नहीं होते। ऐसी स्थिति में यह सोचा गया कि खाली क्षेत्रों में समणियों, मुमुक्षु बहनों और उपासकों का उपयोग किया जाए तो अच्छा काम हो सकता है। चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति में अधिक समय नहीं लगा। कई वर्षों से व्यवस्थित रूप में यह क्रम चल रहा है। इन वर्गों की पर्युपण यात्राओं के परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहते हैं, इसलिए इनकी मांग भी बढ़ती जा रही है। जिन क्षेत्रों में साधु-साध्वियों का जाना संभव नहीं है, वहां ये वर्ग पहुंच सकते और काम कर सकते हैं। सन् १९८५ में यात्रा पर जाने वाले वर्गों का विवरण इस प्रकार है—

१. समणी स्मितप्रज्ञाजी	: काठमाण्डो (नेपाल)
२. समणी मधुरप्रज्ञाजी	: सिलीगुड़ी
३. समणी कुसुमप्रज्ञाजी	: औरंगाबाद
४. समणी सुप्रज्ञाजी	: रायपुर
५. समणी परमप्रज्ञाजी	: भुज
१. मुमुक्षु समता जैन	: विशाखापत्तनम्
२. मुमुक्षु सुप्रभा जैन	: कटक
३. मुमुक्षु ज्योति जैन	: अजमेर
४. उपासक मानवमित्रजी	: जावद

पर्युषण से पहले आसपासके अनेक क्षेत्रों में समणियों के सान्निध्य में कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें तेरापंथ या जैन समाज ही नहीं, अन्य लोग भी लाभान्वित हुए। इस क्रम की समाज में अच्छी प्रतिक्रिया है।

अभूतपूर्व प्रयोग

कुछ व्यक्ति व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में रूढ़ता को पसन्द नहीं करते। रूढ़ता का प्रतिपक्ष है प्रयोगधर्मिता। प्रायोगिक जीवन में विश्वास करने वाले अपने चिन्तन के वातायन को सदा खुला रखते हैं और उसके द्वारा भीतर आने वाले प्रकाश, हवा धूपरूप मौलिक विचारों के साथ अपनी सोच को जोड़ते हैं। ऐसे व्यक्तियों की सूची में एक नाम है—आचार्यश्री तुलसी। अपने साठ वर्ष के साधनाकाल में आपने जितने प्रयोग किए हैं, कोई भी परम्परावादी कर नहीं सकता। आप स्वयं प्रयोग करते हैं और अपने परिपार्श्व में रहने वालों को प्रायोगिक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। अमृत महोत्सव वर्ष की आयोजना अपने आप में एक प्रयोग थी। इस वर्ष में और भी कई नये प्रयोग हुए। उनमें गुरुकुलवासी साधु-साध्वियों के लिए सामूहिक रूप में जो प्रयोग किया गया, वह

था नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग।

२९ सितम्बर को मध्याह्न में साधु-साध्वियों की गोष्ठी में नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग की जानकारी देते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—कोई भी प्रयोग तब तक सफल नहीं होता, जब तक प्रयोक्ता की मानसिकता उसके साथ नहीं जुड़ती। तुम लोग इस प्रयोग के साथ जितने जुड़ोगे, उतना ही काम होगा। जब तक किए जाने वाले कार्य के प्रति आस्था घनीभूत नहीं होती, तब तक काम में रस नहीं आता। आस्था बहुत बड़ी चीज है। कौन प्रक्रिया कितनी अच्छी है, महत्त्व इसका नहीं है। महत्त्व है आस्था का। सम्यक् दृष्टिकोण या आस्था के सहारे कठिन से कठिन काम आसानी से हो सकता है।

३० सितम्बर को प्रातः साढ़े आठ बजे आचार्यवर के मंगल सान्निध्य में युवाचार्यश्री के कुशल निर्देशन में नवाह्निक विशेष प्रयोग शुरू हुआ। प्रयोग के बारे में साधु-साध्वियों ने सामूहिक रूप से संकल्प दोहराया—

'मैं चित्त की निर्मलता के लिए प्रेक्षाध्यान का अभ्यास कर रहा हूं।'

साधना से पूर्व सब साधु-साध्वियां उपसंपदा स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हुए। युवाचार्यश्री ने उपसंपदा के सूक्तों का उच्चार किया। साधु-साध्वियों ने समवेत स्वर में उनका प्रत्यावर्तन किया—

- अब्भुट्ठिओमि आराहणाए।
  —मैं आराधना के लिए उपस्थित हूं।
- मग्गं उवसंपज्जामि।
  —मैं अध्यात्म साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं।
- सम्मत्तं उवसंपज्जामि।
  —मैं अन्तर्दर्शन की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।
- संजमं उवसंपज्जामि।
  -- मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

उपसंपदा की चर्या के पांच संकल्पसूत्र हैं—

भावक्रिया—वर्तमान में जीना, जानते हुए कार्य करना, अप्रमत्त रहना।

प्रतिक्रिया-विरति—अनुकूल-प्रतिकूल किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया नहीं करना।

मैत्री—सबके साथ मित्रता का अनुभव करना।

मिताहार—खाद्य-संयम का अभ्यास करना।

मितभाषण—बिना प्रयोजन न बोलना, चिन्तनपूर्वक बोलना।

शिविर-काल में ध्यान, कायोत्सर्ग, जप आदि अनुष्ठानों में विशेष समय लगाना था। ध्यान के लिए पद्मासन, सुखासन, वज्रासन आदि आसन-प्रयोग सुझाए गए। खड़े रहकर भी ध्यान किया जा सकता था।

शिविर-काल में साधकों को निर्देश दिया गया कि वे प्राय: मौन रहें, गृहस्थों के साथ संपर्क नहीं के बराबर रखें, समाचार-पत्र न पढ़ें, ध्यान संबंधित साहित्य के अतिरिक्त दूसरा साहित्य न पढ़ें, भोजन में सीमित द्रव्यों का उपयोग करें, परस्पर चर्चा-परिचर्चा न करें, समय पर उपस्थित रहने का प्रयत्न करें और सब गोष्ठियों में भाग लें।

इस प्रयोग के नौ दिनों में गृहस्थों या साधुओं द्वारा आचार्यवर का चरण-स्पर्श करना निषिद्ध था। गृहस्थों को आचार्यवर का समय केवल निर्धारित काल में ही प्राप्त होता था।

शिविरकाल में प्रायः योगासन, ध्यान और कायोत्सर्ग का क्रम चलता। मध्याह्न में प्रेक्षा प्रशिक्षण और जिज्ञासा-समाधान का क्रम चलता। दिन में दो बार कुछ चुने हुए साधु-साध्वियों की संगोष्ठी आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के सान्निध्य में होती, जिसमें साधना, शिक्षा, साहित्य, मर्यादा, व्यवस्था आदि विषयों पर खुलकर चर्चा होती। रात्रि के समय पुनः ध्यान, अनुप्रेक्षा आदि का अभ्यास किया जाता।

नवपदी जप

नमस्कार महामंत्र के पांच पद तथा एसो पंच णमुक्कारो के चार पद, कुल नौ पदों का उच्चारण करते हुए नौ रंगों के साथ नौ चैतन्य केन्द्रों पर सामूहिक जप का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी रहा। मंत्र के लयबद्ध उच्चारण से होने वाले शान्ति और पवित्रता के विकिरण बाहरी वातावरण को ही नहीं बदलते थे, साधकों के मन पर भी गहरा असर छोड़ते थे। जप का क्रम इस प्रकार चलता था—

मंत्र	चैतन्यकेन्द्र	रंग
णमो अरहंताणं	ज्ञान केन्द्र	सफेद
णमो सिद्धाणं	दर्शन केन्द्र	लाल
णमो आयरियाणं	विशुद्धि केन्द्र	पीला
णतो उवज्झायाणं	आनन्द केन्द्र	हरा
णमो लोए सव्वसाहूणं	शक्ति केन्द्र	नीला
एसो पंच णमुक्कारो	स्वास्थ्यकेन्द्र	सफेद
सव्व पावप्पणासणो	तैजस केन्द्र	अग्निवर्ण (हल्का लाल)
मंगलाणं च सव्वेसिं	प्राण केन्द्र	अरुणवर्ण (लाल-सूर्य जैसा)
पढमं हवइ मंगलं	चाक्षुष केन्द्र	पीला

कषायमुक्त क्षण का अनुभव ही मोक्ष है

अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति तथा साधक के बीच जो दूरी है, उसे कम करने की प्रक्रिया साधना है। साधना का उद्देश्य है मोक्ष। संपूर्ण मोक्ष की बात एक बार छोड़ दें तो भी मोक्ष शब्द की बहुत सार्थकता है। वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान, कषाय-मुक्त क्षण का अनुभव अथवा चित्त का निर्मलीकरण ही मोक्ष है। इस परिभाषा के अनुसार साधक इस जीवन में भी मोक्ष सुख का अनुभव कर सकता है। यह सुख ही आध्यात्मिक सुख है। कोई भी साधक गहरी साधना के द्वारा इस सुख का साक्षात्कार कर सकता है। इस संदर्भ में साधु-साध्वियों को अपने जीवन की तटस्थ समीक्षा करने का निर्देश देते हुए युवाचार्यश्री ने उनके सामने एक प्रश्न श्रृंखला उपस्थित की—

- क्या आपको आध्यात्मिक सुख का अनुभव हुआ है?
- क्या आपको अलौकिक आभास के क्षणों में जीने का अवसर मिला है?
- क्या आपको शक्तियों के जागरण का अनुभव हुआ है?
- क्या आपको अनन्त सुख की कल्पना को यथार्थ में जीने का अनुभव हुआ है?
- क्या आपके जीवन में निस्पृहता, अनुत्सुकता जैसी वृत्तियों का उदात्तीकरण हुआ है?

उक्त प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर जिन साधकों के पास है, वे आचार्य उमास्वाति के शब्दों में इसी जीवन में मोक्ष का अनुभव कर सकते हैं। शिविरकाल में स्वभाव-परिवर्तन के प्रयोग, आहार विवेक, आसन-प्रयोग, शरीर विज्ञान, श्वासप्रेक्षा, अनुप्रेक्षा आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर संगोष्ठियां हुईं। उनमें युवाचार्यश्री के गंभीर प्रवचनों के साथ मुक्तरूप से प्रश्नोत्तर भी चले।

सक्रिय प्रशिक्षण

मध्याह्न में दो गोष्ठियां होतीं—सवा बजे से ढाई बजे तक और पौने तीन से पौने चार बजे तक। दोनों गोष्ठियों के बीच का समय अतिशायी सुखद और प्रेरक होता। उस अवधि में आचार्यवर साधु-साध्वियों को श्रमणचर्या का सक्रिय प्रशिक्षण देकर उनमें नयी ऊर्जा का संप्रेषण करते। कैसे चलना, कैसे प्रमार्जन करना, कैसे प्रतिलेखन करना, कैसे स्थान की सफाई करना, कैसे हाथ में झोली रखना, कैसे रजोहरण पकड़ना आदि चर्या की छोटी से छोटी बात को कलात्मकता और जागरूकता के साथ कैसे संपादित करना चाहिए, श्रद्धेय आचार्यवर ने स्वयं करके दिखाया और एक-एक साधु-साध्वी का परीक्षण भी किया। शिष्य के

सर्वांगीण विकास का दायित्व गुरु पर होता है। उस दायित्व को पूरा करते समय आचार्यश्री आत्मतोष का अनुभव करते और शिष्य गुरु की आत्मीय अनुकम्पा से भीगे उन क्षणों में अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते।

अनुभव अपने-अपने

३० सितम्बर से ८ अक्टूबर तक 'नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग' अपने आप में अनूठा प्रयोग था। प्रयोगकाल में प्रायः सभी साधु-साध्वियों में अच्छा उत्साह रहा। उन दिनों समय की नियमितता से चर्या व्यवस्थित हो गई। दिन भर लोगों का घेराव रहने से व्यक्तिगत साधना में बाधा उपस्थित होती, वह पूरी तरह से टूट चुकी थी। दिन भर ध्यान, स्वाध्याय, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, कायोत्सर्ग आदि का क्रम चलता। साधु-साध्वियों को सामूहिक रूप में आचार्यश्री का सान्निध्य दो बार उपलब्ध हो जाता। दिन में दो बार चयनित साधु-साध्वियां आचार्यवर की सन्निधि में बैठकर चिन्तन करते। प्रातः चार बजे से और रात्रि में अर्हत् वन्दना के बाद साधुओं की साधना का क्रम आचार्यवर के उपपात में चलता। साध्वियों का उनके अपने स्थान पर सामूहिक रूप में चलता।

इस प्रयोग से साधु-साध्वियां प्रसन्न थे, पर श्रावक समाज में एक रिक्तता-सी अनुभव होने लगी। प्रातः और सायं दूर से गुरु-वंदन करना तथा प्रवचन में सवा नौ बजे से दस बजे तक आचार्यवर को सुनना। इससे अतिरिक्त समय में लोग खाली-खाली हो गए। पर्युषण पर्व और अमृत-महोत्सव के बाद काफी लोग वैसे भी अपने-अपने घरों को लौट गए। नये सिरे से आने वालों को पहले ही सूचित कर दिया गया था कि नौ दिनों में उनको आचार्यवर का सान्निध्य अधिक नहीं मिल सकेगा, इसलिए उन्होंने अपना कार्यक्रम कुछ समय और ठहरकर बनाया। कुल मिलाकर उस समय स्थानीय लोगों के अतिरिक्त लोग बहुत कम हो गए। इस कारण से भोजनालय में सन्नाटा-सा छा गया। सामान्यतः वहां सैकड़ों व्यक्ति कूपन खरीदकर भोजन करते थे। विशेष प्रसंगों पर भोजन करने वालों की संख्या हजारों तक पहुंच जाती। अमृत महोत्सव के दिन २२ सितम्बर को वहां लगभग पांच हजार यात्रियों ने भोजन किया। उसके बाद ३ अक्तूबर को भोजन करने वाले व्यक्ति केवल आठ थे, जबकि भोजनालय में पचास कर्मकर नियुक्त थे। इससे जनता की मानसिकता का बोध होता है। आचार्यवर की मुक्त सन्निधि पाकर उन्हें जितना तोष और पोष मिलता है, सीमित समय में नहीं मिल पाता। इसलिए श्रद्धालु लोग दिनभर यथासमय उपासना में रहकर ही कृतार्थता का अनुभव करते हैं।

प्रतिदिन दर्शन करता हूं

६ अक्टूबर को राजस्थान के तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री रामपाल उपाध्याय ने आचार्यवर के दर्शन दिए। आचार्यवर उस समय विशेष प्रयोग में थे, इसलिए उन्हें व्यक्तिगत रूप में अधिक समय नहीं मिला, फिर भी प्रवचन के समय वोलने का अवसर मिल गया। श्री उपाध्याय आचार्यश्री के कर्तृत्व से प्रभावित हैं। जव वे वोलते हैं, तव ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई पीढ़ियों का श्रद्धालु श्रावक वोल रहा हो। उस दिन भी उपाध्यायजी ने अपने वक्तव्य में कहा—मैं जव यहां से ऑपरेशन कराने के लिए विदेश गया था, तव आचार्यश्री के दर्शन करके गया था। वहां से लौटते ही पुनः दर्शन करने पहुंच गया। यहां मेरा आना स्वान्तःसुखाय होता है। आपको यकीन हो या नहीं, पर यह सही वात है कि जिस दिन मैंने पहली वार आचार्यश्री के दर्शन किए, उसके वाद शायद एक भी दिन ऐसा नहीं गया, जव मैंने आपके दर्शन न किए हों। विदेश में, अस्पताल में भी मुझे आपके दर्शन हो जाते थे। आचार्यश्री धर्म को विज्ञान के साथ जोड़ते हैं, इसका मेरे मन पर विशेष प्रभाव है। अपनी इस यात्रा के दौरान मैं जहां कहीं गया, मैंने जीवन-विज्ञान की चर्चा की। मेरा यह विश्वास है कि शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने में जीवन-विज्ञान की परियोजना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

श्री उपाध्यायजी ने अपनी यात्रा का एक प्रसंग सुनाते हुए आगे वताया—कनाडा में पचास करोड़ डालर की लागत से एक प्रयोगशाला वनी है। उस प्रयोगशाला में औषधि विज्ञान के संदर्भ में नये प्रयोग करने की योजना है। औषधियां चल रही हैं, फिर भी आदमी स्वस्थ नहीं होता। ऐसी स्थिति में औषधि के बिना ही स्वस्थ रहने की तकनीक सोची जा रही है। उसके अनुसार शरीर में ऐसी कोशिकाओं का निर्माण किया जाएगा, जो भीतर-ही-भीतर वीमारियों से लड़कर उन्हें प्रभावहीन वना सकें। मुझे लगता है कि जीवन-विज्ञान भी यही काम कर रहा है। जव जीवन-विज्ञान जैसी सरल प्रक्रिया से वांछित सफलता मिल सकती है, तव ऐसी भारी-भरकम योजनाओं में उलझने की जरूरत क्या है?

नये युग में प्रवेश से पहले

आचार्य प्रवर ने अपने उद्‌वोधन संदेश में कहा—हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश की चर्चा कर रहे हैं। केवल पन्द्रह वर्ष का समय शेष रह गया है। क्या हमने इस वात पर भी विचार किया है कि नये युग में प्रवेश करने से पहले नयी पीढ़ी का निर्माण करना होगा? जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान ऐसे प्रयोग हैं, जिनके द्वारा

व्यक्ति का सर्वांगीण निर्माण किया जा सकता है। हम इनके द्वारा व्यापक परिवर्तन लाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

ज्ञानशाला का उपयोग

वेंगलोर में पिछले दस वर्षों से ज्ञानशाला चल रही है। वहां के वालक और कन्याएं उससे वरावर लाभान्वित हो रहे हैं। कभी-कभी ज्ञानशाला में दो सौ, चार सौ वालक-वालिकाएं सम्मिलित हो जाते हैं। सैंकड़ों वच्चों ने पचीस वोल, भक्तामर, प्रतिक्रमण आदि कण्ठस्थ कर लिये हैं। समाज के लोग भी ज्ञानशाला को अपना पूरा सहयोग और समर्थन दे रहे हैं। अमृत महोत्सव के प्रसंग में शाला के पचास वच्चों को आचार्यवर के दर्शन कराने का निर्णय लिया गया। दस संरक्षकों के साथ वे पंच दिवसीय कार्यक्रम वनाकर आमेट पहुंचे। सोहनजी कटारिया आदि संरक्षकों ने ज्ञानशाला की गति-प्रगति से आचार्यवर को अवगत किया। आचार्यवर ने वच्चों को नींव के पत्थर की उपमा देते हुए कहा—नींव का पत्थर जितना मजवूत होता है, मकान भी उतना ही मजवूत रहता है। इन वच्चों को संस्कारी वनाने का दायित्व हम पर है। आप और हम, सव जागरूक रहें तो वच्चों का जीवन एक उदाहरण वन सकता है।

आचार्यवर के प्रेरक उद्‌वोधन से वच्चों को नयी दिशा मिली। अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुति में एक दिन उन्होंने गीत गाया—'आमेट वाले वावा।' आचार्यवर ने उस पर टिप्पणी करते हुए कहा—मुझे वावा क्यों कहते हो? मैं वृद्ध वनना नहीं चाहता। आचार्यवर ने अत्यधिक व्यस्तता में भी वच्चों को पूरा समय दिया। इससे उनको अतिरिक्त आत्मतोप का अनुभव हुआ। आमेट में वच्चे कैसे रहेंगे, संरक्षकों की यह चिन्ता निर्मूल हो गई। क्योंकि वच्चों ने अपना आगे का सारा कार्यक्रम स्थगित कर आचार्यवर की उपासना में रहने की इच्छा व्यक्त की।

ज्ञानशाला एक वहुत उपयोगी रचनात्मक उपक्रम है। इसके माध्यम से वच्चे अपनी संस्कृति और परंपरा से परिचित होते हैं, तत्त्वज्ञान सीखते हैं, संगीत एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं तथा उनका आत्मविश्वास जागता है। गांव-गांव में ज्ञानशाला की प्रवृत्ति चले तो एक व्यापक समस्या का समाधान हो सकता है।

प्रायोगिक जीवन

धार्मिक जीवन का सवसे वड़ा आधार है आस्था। अनास्था का विलय होने से अध्यात्म का जागरण होता है। अध्यात्म निश्चय की दिशा है। सामुदायिकता

व्यवहार है। संघवद्ध साधना में निश्चय और व्यवहार का समन्वय जरूरी है। इस दृष्टि से साधक को प्रारंभ से ही उभयमुखी जीवन जीने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। साधक के जीवन में जब कभी विकृति का प्रवेश हो, उसे दूर करने के लिए प्रयोग करने की अपेक्षा रहती है। प्रायोगिक जीवन के विना धर्म की तेजस्विता मंद हो जाती है। विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हो रहे हैं, इसलिए विज्ञान आगे बढ़ रहा है। धर्म के क्षेत्र में प्रयोग की वात गौण हो गयी, इसलिए वह जहां है, वहां खड़ा है। भगवान् महावीर सत्य की जो विरासत हमारे लिए छोड़कर गये हैं, क्या हमने उसको सहेज कर रखा है? महावीर का वह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, सार्थक है। हमें उन मौलिक मूल्यों, नीतियों, आदर्शों और परंपराओं को जीवित रखना है। साध्वियों की एक गोष्ठी को संवोधित करते हुए आचार्यवर ने उक्त विचार दिये। साध्वियों ने प्रायोगिक जीवन जीने की प्रेरणा पाकर सामूहिक रूप से कुछ छोटे-छोटे प्रयोग शुरू कर दिये। उन प्रयोगों का संबंध चर्या संबंधी जागरूकता से था। एक-एक सप्ताह के लिए संकल्प पूर्वक किये गये उन प्रयोगों के परिणाम भी काफी अच्छे रहे।

विज्ञान और अध्यात्म का अन्तर

श्री कृष्णराजजी मेहता गांधीवादी विचारक और सर्वोदयी कार्यकर्ता हैं। वर्तमान में वे विनोवाजी के छहों आश्रमों के व्यवस्थापक हैं। आमेट चातुर्मास में वे आचार्यवर के संपर्क में आये। उनके साथ खुलकर वातचीत हुई। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के वारे में विशेष रूप से वे एक प्रभाव लेकर लौटे। कुछ समय वाद वे फिर आमेट आये। इस वीच पटना में विज्ञान और अध्यात्म पर एक सेमिनार वुलाया गया। उसमें दुनिया के चुने हुए वैज्ञानिक और आध्यात्मिक व्यक्ति एकत्रित हुए। इस सेमिनार का वातावरण वनाने के लिए चार व्यक्ति सब विश्वविद्यालयों में घूमे। उनमें एक श्री मेहता भी थे। ये लोग लगभग दो सौ व्यक्तियों से मिले। काफी व्यक्ति उपस्थित हुए। चर्चाएं चलीं। उनका निष्कर्ष यह था कि विज्ञान के क्षेत्र में सव विद्वान एक मत हैं पर अध्यात्म के क्षेत्र में उनमें भारी मतभेद परिलक्षित है। इस वात को लेकर श्री मेहताजी ने आचार्यवर से निवेदन किया कि दुनिया में भिन्न-भिन्न ध्यान पद्धतियां चल रही हैं। सूफी, ईसाई, जैन, वौद्ध आदि सव पद्धतियों के प्रवक्ता एक साथ वैठें और अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करें तो अध्यात्म के सन्दर्भ में भी एक हो सकते हैं।

श्री मेहताजी की वात अच्छी थी, उपयोगी थी। इस दृष्टि से आचार्यवर ने कहा—हम आपके सुझाव को हृदय से स्वीकार करते हैं। जैन विश्व भारती ऐसे सेमिनार की आयोजना के लिए कभी भी तैयार है। वहां जीवन-विज्ञान के वारे में

भी विचार-विमर्श हो सकता है।

अपर्याप्त और पूरक

श्री मेहताजी बोले—आचार्यश्री ! गांधीजी ने ग्यारह व्रत दिये। उनका प्रसार हुआ। आज यह बात सिद्ध हो गयी है कि वे ग्यारह व्रत पर्याप्त नहीं हैं। आपने जो बात कही—अणुव्रत का प्रसार पर्याप्त नहीं लगा, इसलिए हमने प्रेक्षाध्यान का क्रम चलाया। वही बात गांधीजी के व्रतों पर लागू हो सकती है। गांधी और विनोबा ने हृदय-परिवर्तन का जो मार्ग सुझाया, वह पर्याप्त नहीं है। इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान को गहराई से समझूं।

मेहताजी ने प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान का साहित्य लिया और वे दिल्ली चले गये। वहां वे जैनेन्द्रजी से मिले। निर्मलाजी से मिले। कुछ अन्य साथियों से मिले। सबने उनकी बात में दिलचस्पी दिखाई। दिल्ली से उनका पत्र आया—यहां वातावरण काफी उत्साहवर्धक है। मैं एक बार फिर आचार्यश्री से मिलना चाहता हूं। कब तक आऊं?

मैं गद्‌गद हो गया

१२ अक्टूबर से २१ अक्टूबर ८५ तक होने वाले प्रेक्षाध्यान शिविर की उन्हें जानकारी दी गयी। वे शिविर से पहले ८ अक्टूबर को ही आमेट पहुंच गये। उन्होंने कहा—मैं एक बार जैन विश्व भारती देखना चाहता हूं। समय उनके पास था ही। वे ९ अक्टूबर को लाडनूं चले गये। वहां उन्होंने जैन विश्व भारती की गतिविधियों का निरीक्षण किया। साधना केन्द्र, पुस्तकालय, पारमार्थिक शिक्षण संस्था आदि संस्थानों को देखने के बाद वे वृद्ध साध्वियों का सेवाकेन्द्र देखने गये। सेवाकेन्द्र की व्यवस्था का उनके मन पर गहरा प्रभाव हुआ। उन्होंने कहा—मैं सारे हिन्दुस्तान में घूमा हूं। पर वृद्ध साध्वियों की ऐसी व्यवस्था कहीं नहीं देखी। उन साध्वियों की प्रसन्नता और निश्चिन्तता देखकर मैं गद्‌गद हो गया।

अनिन्दा भी एक व्रत है

श्री मेहताजी ने एक रोचक संस्मरण सुनाते हुए कहा—मुझे लाडनूं में कुछ मित्र मिले। वे बोले—आप यहां कहां आ गये? इनमें यह ठीक नहीं, वह ठीक नहीं, इत्यादि। उनकी यह बात सुनकर मैंने कहा—गांधीजी ने ग्यारह व्रत बताये। यथाशक्ति हम उनका आचरण करते हैं। गांधीजी के बाद विनोबाजी ने एक

व्रत दिया 'अनिन्दा।' उस व्रत को ध्यान में रखकर हम किसी भी व्यक्ति की निन्दा में रस नहीं लेते। आपने वताया कि उनमें अमुक-अमुक वातें ठीक नहीं हैं। पर हमें आचार्यजी और उनके धर्मसंघ में कुछ विरल विशेषताएं मिलीं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। गुलाव में कांटा होता है, वह उसकी सुरक्षा के लिए है। इतने वड़े धर्मसंघ में कहीं कोई कमी भी है तो वह अच्छे के लिए है। आप गुणग्राही वनें और अच्छाई स्वीकार करें तो आपको भी लाभ होगा।

तैजस शरीर से आगे क्या है

लाडनूं के द्विदिवसीय प्रवास की स्मृतियों में खोये हुए मेहताजी आमेट पहुंचे। वहां वे ध्यान शिविर में रहे। दिन भर साधना करने के वाद रात्रि में कुछ समय के लिए वे आचार्यश्री के उपपात में वैठकर चर्चा करते। एक दिन की चर्चा में उन्होंने कहा—आचार्यजी! प्रेक्षाध्यान का क्रम वहुत ही आशाजनक है। मुझे इसमें वहुत संभावनाएं नजर आ रही हैं। मैं इन दिनों के प्रयोग से तैजस शरीर तक अनुभव करने लगा हूं। उसके वाद क्या वचता है?

आचार्यश्री ने उनको वताया—तैजस शरीर के वाद कर्म शरीर और उसके वाद अपनी सत्ता का अनुभव हो जाये तो वहुत वड़ी उपलब्धि है।

वे वातें जिनका विशेष प्रभाव पड़ा

मेहताजी ने आचार्यश्री के व्यक्तित्व का विश्लेपण करते हुए कहा—आपकी दो-चार वातों से मैं वहुत प्रभावित हूं—

१. आप अपनी पुरानी वात को स्थिरता से पकड़े हुए हैं और हर नये विचार के लिए आपके दरवाजे खुले हैं।
२. आप आगे वढ़े हैं तो समाज को भी साथ लेकर वढ़े हैं।
३. आपका सम्वन्ध विनोवा, जे० पी० और समाजवादी नेताओं, जैनेन्द्रजी जैसे साहित्यकारों और कम्युनिष्टों के साथ भी है।
४. 'अहिंसा परमो धर्मः' की वात सारा संसार कहता है, आपकी 'अपरिग्रह परमो धर्मः' की खोज विल्कुल नयी है।

हम निहाल हो गये

प्रेक्षाध्यान शिविर में गुजरात से चार भाई आये थे। टोकरसी भाई तथा तीन अन्य। वे सब मूर्तिपूजक समाज में अचलगच्छ से संबंधित थे। टोकरसी भाई ने

आचार्यवर से निवेदन किया—हम चार व्यक्ति हैं। मैं तीन-चार बार शिविर में भाग ले चुका हूं। ये तीनों नये हैं। यहां हमें जैसा अमृत मिला, हम निहाल हो गये। प्रेक्षाध्यान की साधना जैन-एकता के लिए भी बहुत उपयोगी हो सकती है। हमारे आचार्यश्री गुणसागर सूरिजी हैं। उनके संघ में छत्तीस साधु और एक सौ पांच साध्वियां हैं। वे भी जैन एकता और संवत्सरी की एकता के लिए बहुत उत्सुक हैं। आप कृपा कर उनके लिए कोई संदेश दें।' आचार्यवर ने उन्हें अपने विचार दिये। उनको बहुत प्रसन्नता हुई।

राष्ट्रधारा से जुड़ा हुआ आन्दोलन

कई लोगों के मन में प्रश्न उभरता है—आचार्यश्री तुलसी युगप्रधान आचार्य क्यों कहलाते हैं? सीधे शब्दों में इसका उत्तर यही है कि आचार्यश्री ने युगीन परिवेश में युग की समस्याओं को समाधान दिया, इसीलिए आप युगप्रधान हो गये। आचार्यश्री ने अपनी साधना के साठ वर्षों में और धर्मशासन के पांच दशकों में मानव जाति के लिए जो काम किया है, विलक्षण है। आपकी शारीरिक और मानसिक सक्रियता में कहीं कोई अन्तर परिलक्षित नहीं होता। वही गति, वही स्फूर्ति। सादे लिबास में खूबसूरती ऐसी कि मानो सौन्दर्य के सारे परमाणु यहीं पिंडीभूत हो गये। उम्र के हर वसंत ने आपको चिरयौवन का तोहफा दिया, इसलिए आप स्वयं को निरंतर तरोताजा अनुभव करते हैं। लम्बी यात्रा या अतिश्रम से कभी चेहरे पर क्लान्ति की झलक आ भी जाए तो वह लम्बे समय तक ठहर नहीं सकती। कर्मशीलता के संस्कार आपके व्यक्तित्व में बहुत गहरे तक उतरे हुए हैं। यही कारण है कि तेरापंथ और जैन धर्म के लिए अपने पुरुषार्थ का पूरा उपयोग करते हुए भी आप मानवधर्म की सेवा में संलग्न हैं। अणुव्रत आपके इसी मानवीय दृष्टिकोण का फलित है। पिछले अड़तीस वर्षों से अणुव्रत राष्ट्रधारा से सीधा जुड़कर काम कर रहा है। राष्ट्रीय चरित्र और अनुशासन की दृष्टि से इसने जो प्रकाश दिया है, वह धीरे-धीरे मानव-मन को आलोकित कर रहा है।

२२ अक्टूबर को प्रातः अमृत समवसरण में अणुव्रत एवं अखिल भारतीय अणुव्रत समिति का अधिवेशन शुरू हुआ। अणुव्रत गीत की मधुर स्वर-लहरी ने पलभर में विगत या भविष्य में उलझे हुए लोगों को वर्तमान की ठोस धरती पर लाकर खड़ा कर दिया। मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं) ने अणुव्रत की शाश्वत प्रासंगिकता का उल्लेख करते हुए बताया कि वह अपने उद्भव काल में जितना मूल्यवान् था, आज भी उतना ही मूल्यवान् है। समिति के मंत्री श्री शुभकरण सुराना ने वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। परमाराध्य आचार्यप्रवर ने 'संयमः खलु जीवनम्' इस अणुव्रत घोष के साथ अपना उद्बोधक प्रवचन प्रारंभ करते हुए

कहा—भारतीय संस्कृति में आस्था रखने वाला हर भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि मुझे अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमृतत्व और असद् से सद् की ओर ले चलो। मैं इसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूं—मैं स्वयं अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर तथा असद् से सद् की ओर गति करूं। यह प्रस्तुति पुरुषार्थ की प्रतीक है। अणुव्रत आंदोलन पुरुषार्थ की नींव पर खड़ा है। उसके कुछ निष्कर्ष हैं—धर्म किसी जाति और वर्ग की बपौती नहीं, जन-जन की सम्पत्ति है। शूद्र हो या महाजन, सब धर्म के अधिकारी हैं। धर्म स्वार्थसिद्धि का नहीं, परमार्थ का पथ है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य धर्म के सिद्धांतों को जीने का प्रयत्न करे। आचार्यवर के इस उद्बोधन संदेश से अनेक लोगों को नयी दृष्टि प्राप्त हुई।

अणुव्रत का अधिवेशन प्रायः प्रतिवर्ष होता है। उस समय अणुव्रत से जुड़े हुए व्यक्ति ही, जैसे अणुव्रती कार्यकर्त्ता, अणुव्रत-प्रवक्ता, अणुव्रती या अणुव्रत समर्थक भाई-बहनों की उपस्थिति रहती है। इस वर्ष अधिवेशन के साथ नयी शिक्षा-नीति और जीवन-विज्ञान संगोष्ठी की आयोजना थी। इस दृष्टि से उस अवसर पर कुछ शिक्षाविदों को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। आमंत्रित व्यक्तियों में डॉ० ईश्वरभाई पटेल (पूर्व कुलपति, गुजरात विश्वविद्यालय), डॉ० यशवन्त भाई शुक्ला (पूर्व कुलपति सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, एवं वर्तमान अध्यक्ष गुजरात विद्या सभा), डॉ० चीनुभाई नायकर (प्रिंसिपल एच० के० आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद), डॉ० लीलाकांत मिश्र (गुजरात विद्यापीठ), डॉ० रामजीसिंह (अध्यक्ष गांधी विचार विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय) डॉ० दयानन्द भार्गव (अध्यक्ष संस्कृत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय), श्री मांगीलाल जैन (उपनिदेशक माध्यमिक शिक्षा परिषद्, राजस्थान) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

शिक्षा से व्यक्तित्व का निर्माण हो

जीवन-विज्ञान संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए आचार्यवर ने कहा—शिक्षा की आधारशिला है विनय। जो व्यक्ति विनीत और अनुशासित होता है, संपदा स्वयं उसका अनुगमन करती है। शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य है जीवन का सर्वांगीण विकास। इसके द्वारा आन्तरिक चेतना का जागरण होना चाहिए। आज बुद्धि और मन को जगाने का प्रयत्न हो रहा है, किंतु चेतना को जागृत करने की दिशा में गहरी खामोशी है। हमारे शिक्षाशास्त्री बड़ी-बड़ी फाइलों में उलझ रहे हैं, पर मूलभूत समस्या तक नहीं पहुंच पाये हैं। मूलभूत समस्या है भावात्मक विकास की। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान इस त्रिपदी कार्यक्रम के द्वारा हम इसी समस्या को समाधान देने की दिशा में कुछ काम करना चाहते हैं। आप

और हम मिलकर प्रस्थान करें तो व्यक्तित्व-निर्माण, जीवन-निर्माण और संस्कार निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम हो सकता है।

श्री ईश्वर भाई पटेल ने कहा—आज की शिक्षा-पद्धति अधूरी है। क्योंकि उससे जीवन के अनुभवों का संवंध नहीं है। आज के विद्यार्थी उपाधि चाहते हैं। पर वे निष्ठापूर्वक अध्ययन नहीं करते, श्रम से जी चुराते हैं। शिक्षक भी वच्चों के निर्माण पर ध्यान न देकर आत्मश्लाघा में रस लेने लगे हैं। इस अपूर्णता को पूर्णता में बदलने के लिए हम सव जीवन-विज्ञान के स्वर को वुलंद करें, यह आवश्यक है।

शिक्षा जीवन की रश्मि है

डॉ० रामजीसिंह ने साक्षरता को शिक्षा का प्रारम्भ बताते हुए कहा—सन् १९४७ में सेवाग्राम वर्धा में वापू ने देश-भर के शिक्षाविदों की एक संगोष्ठी बुलायी थी। उन्होंने बताया—हम स्वतंत्र हो गये हैं। अब हमें सोचना होगा कि हमारी शिक्षा-नीति क्या हो ? नया राष्ट्र नयी शिक्षा-नीति के विना करेगा भी क्या? इस अवधारणा के साथ उन्होंने हमको एक दिशा दी। पर हमने उनकी वात भुला दी। इन चार दशकों में देश में हिंसा और भ्रष्टाचार तीव्र गति से वढ़ रहा है। नैतिकता और आध्यात्मिकता को निर्वासित करने का परिणाम है भ्रष्टाचार। इसे समाप्त करने के लिए शिक्षा-नीति के पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है। मेरा अभिमत है कि इस अमृत वर्ष में शिक्षा के संदर्भ में अमृत वर्षा नहीं हुई तो देश में चरित्र का भयंकर दुष्काल हो जाएगा। शिक्षाविदों का ध्यान आचार्यश्री के चिंतन पर केन्द्रित नहीं हुआ तो शिक्षा संस्थान मरुभूमि होकर रह जाएंगे। शिक्षा की चुनौती केवल स्कूलों और कॉलेजों तक सीमित नहीं है, इससे हमारे राष्ट्र की अस्मिता जुड़ी हुई है।

डॉ० सिंह ने अपने मन्तव्य को विस्तार से समझाते हुए आगे कहा—हमारी प्राथमिकता पांच सितारे होटल और आधुनिक विकास को दी जा रही है, शिक्षा को नहीं। शिक्षा जीवन की रश्मि है। वह आवृत हो गई तो जीना ही दूभर हो जाएगा। आज हमारे देश में पनप रही हिंसा और आतंकवाद शिक्षा के अभाव की देन है। यदि हमारे देश की पूरी जनता शिक्षित होती तो वह आतंकवादी सभ्यता के शिकंजे में नहीं आ पाती। जो शिक्षा आत्मा की चेतना को न जगा सके, विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण न कर सके, समाज को ऊपर न उठा सके, वह शिक्षा ही वेकार है। अणुव्रत लोक-शिक्षण का तत्त्व है। इस माध्यम से लोक-जागरण का जो काम हो रहा है, वह शिक्षा का मूल है।

शिक्षा : उद्देश्य और निष्पत्तियां

डॉ० दयानन्द भार्गव ने कहा—हमारी शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य तीन होने चाहिए—बौद्धिक विकास, संस्कारों का परिष्कार और उत्पादन क्षमता। इनकी निष्पत्ति भी तीन रूपों में होनी चाहिए—प्रज्ञा का जागरण, संस्कार-मुक्ति और अप्रमाद। तीन बातें और हो सकती हैं—विज्ञान के साथ धर्म, सामाजिक अभ्युत्थान के साथ अन्तर्दृष्टि और हस्तशिल्प के साथ योग। इधर अणुव्रत, प्रेक्षा और जीवन-विज्ञान की त्रिपुटी हमारे सामने है। इस त्रिपुटी के अभ्यास और प्रयोग से बुद्धि के साथ प्रज्ञा का समुचित योग हो सकता है। इस योग के साथ हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करेंगे तो कुछ बेहतर जीवन जी सकेंगे।

समाज की आकांक्षा के अनुरूप

युवाचार्यश्री ने मूल्यपरक शिक्षा की चर्चा करते हुए कहा—समाज को आज ऐसे लोगों की जरूरत है, जो श्रमशील, ईमानदार, शान्त, अनाग्रही, सामंजस्यपूर्ण मनोवृत्ति वाले और आवेग पर नियंत्रण करने की क्षमता रखने वाले हों। शिक्षित व्यक्ति में ये सब बातें फलित होनी चाहिए। क्या वर्तमान शिक्षा ऐसे व्यक्तियों को तैयार करने में सक्षम है ? बुद्धि का काम भाषा और गणित की शक्ति बढ़ाने का है, चरित्र निर्माण का काम बुद्धि का नहीं है। जीवन-विज्ञान से आध्यात्मिक और बौद्धिक दोनों विकास हो सकते हैं। समाज की आकांक्षा के अनुरूप काम करने वाले व्यक्तित्व का निर्माण इसके द्वारा हो सकता है। हमें प्रयोग को व्यापक बनाना है।

युवाचार्यश्री ने अपने प्रवचन के अग्रिम अंश में अल्पज्ञ, विशेषज्ञ और सर्वज्ञ का विश्लेषण करते हुए कहा— शिक्षा अल्पज्ञता से सर्वज्ञता की ओर ले जाने वाला प्रस्थान है। इस प्रस्थान में अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान का आलम्बन सहयोगी बन सकता है। अणुव्रत से संकल्पशक्ति का, प्रेक्षा से दर्शनशक्ति का और जीवन-विज्ञान से सृजनात्मक एवं भावनात्मक शक्ति का विकास संभव है।

मध्याह्न में अणुव्रती कार्यकर्ताओं की एक गोष्ठी आचार्यवर के सान्निध्य में हुई। गोष्ठी में समालोच्य बिन्दु थे—

- अणुव्रत कार्यक्रम को गति देना।
- कार्यकर्ताओं की टीम तैयार करना।
- अणुव्रत कार्य में आने वाली बाधाओं के निरसन की प्रक्रिया पर विचार करना।

लगभग वीस कार्यकर्ताओं ने उपर्युक्त बिन्दुओं के संबंध में अपने विचार, सुझाव प्रस्तुत किए। परमाराध्य आचार्यप्रवर के प्रेरक उद्‌वोधन से कार्यकर्ताओं को नयी दिशा और नया संबल मिला।

एक आह्वान पर

२३ अक्टूबर को अणुव्रत का खुला अधिवेशन था। अधिवेशन के इस सत्र में अणुव्रत प्रवक्ता श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट, श्री चिनुभाई नायक, श्री राधेश्याम, श्री यशवन्तभाई आदि ने अपने मंजे हुए विचार प्रस्तुत किए। अ० भा० अणुव्रत समिति ने अमृत-कलश पद यात्रियों में से अणुव्रती कार्यकर्ता श्री पूर्णचन्द वड़ाला और श्री रामनारायण चेचाणी को शाल ओढ़ाकर सम्मानित किया।

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने अणुव्रत आचार-संहिता की मीमांसा करते हुए जनता को अणुव्रत के पथ पर वढ़ने का आह्वान किया। आचार्यश्री की वाणी का जादुई प्रभाव देख लोग चकित रह गए। एक ही आह्वान पर अमृत समवसरण में उपस्थित सैकड़ों लोग एक साथ खड़े हो गए। उन्होंने अणुव्रत के नियमों को सुना और उनके अनुसार जीवन यापन का संकल्प व्यक्त किया। संकल्प की ध्वनि-तरंगों से समवसरण का वातावरण तरंगित हो उठा।

आचार्यवर का दूसरा आह्वान था—अणुव्रत कार्य को गति देने का। अणुव्रती भाई-वहनों पर यह दायित्व है कि वे जिस प्रशस्त रास्ते पर चल रहे हैं, उस पर चलने के लिए वे दूसरों को भी प्रेरित करें। एक न्यूनतम कार्यक्रम के रूप में आचार्यवर ने प्रत्येक अणुव्रती से यह अपेक्षा की कि वह एक वर्ष में कम से कम पांच व्यक्तियों को अणुव्रती जीवन जीने के लिए तैयार करें। अनेक भाई-बहनों ने उत्साह के साथ इस काम में जुटने की भावना व्यक्त की। इस अधिवेशन में शिक्षा नीति के विषय में भी मुक्त चिन्तन हुआ। इस संदर्भ में अणुव्रत समिति को यह निर्देश दिया गया कि वह आगामी वर्ष तक किसी भी अणुव्रती को निरक्षर नहीं रहने देगी। शिक्षा की प्रथम सोपान साक्षरता पर आरोहण करने के वाद ही उनको आध्यामिक और बौद्धिक विकास की दिशाएं दी जा सकती हैं।

समिति के अध्यक्ष श्री गिरीश भगवतप्रसाद तथा मंत्री श्री शुभकरण सुराना समिति के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की दिशा में जागरूकता से काम कर रहे हैं।

२२, २३ अक्टूबर १९८५ को आमेट में आचार्यवर के सान्निध्य में और युवाचार्यश्री के निर्देशन में राष्ट्र की नयी शिक्षानीति पर विशेप संगोष्ठी हुई। संगोष्ठी की तीन उपनिषदें युवाचार्यश्री के सान्निध्य में हुई, जिनमें देश के

विभिन्न भागों से समागत शिक्षाविद्, शिक्षक तथा साधु-साध्वियां उपस्थित थीं। डॉ० रामजी सिंह ने संगोष्ठी में हुई विचार-चर्चा के आधार पर अनुशंसाएं तैयार कीं—

- प्रत्येक विद्यार्थी के लिए 'जीवन-विज्ञान' का पाठ्यक्रम।
- शिक्षा का आजीविका से अनुबंध।
- एक वर्ष के भीतर शिक्षा के सार्वभौमीकरण की योजना।

इन अनुशंसाओं के आधार पर उन्होंने संगोष्ठी के निष्कर्षों को विस्तार के साथ व्यवस्थित रूप देकर राजीव सरकार के पास प्रेषित करने का निर्णय लिया। अनुशंसापत्र का स्वरूप इस प्रकार है :

नयी शिक्षा नीति पर राष्ट्रीय परिसंवाद

१. **प्राक्कथन**—शिक्षा आज देश की एक ज्वलन्त समस्या है। इसका उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। फिर भी इसका मूल प्रयोजन मानव की अन्तरचेतना को जागृत करना है। शिक्षा के माध्यम से आज बुद्धि और मन को तो जगाया जा रहा है लेकिन हमारे अन्तर की चेतना जागृत नहीं होती और जब तक ऐसा नहीं होता, हमारी शिक्षा, शिक्षा की चुनौतियों का उत्तर नहीं दे सकती। हमारी समस्याओं का समाधान तो नहीं ही कर सकती। बुद्धि के विकास के साथ प्रज्ञा का उदय और संस्कार-परिष्कार के साथ सम्यक् जीवन का निर्माण आवश्यक है। शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास के द्वारा प्रामाणिकता और कर्तव्यनिष्ठा पैदा नहीं की जा सकती। यही नहीं, हम अपने आवेगों और संवेगों पर भी नियंत्रण नहीं कर सकते। बुद्धि से भाषा का परिष्कार तर्कशक्ति की प्रखरता और उपादेय जानकारियों की उपलब्धि तो हो सकती है। किन्तु नैतिकता का विकास एवं चरित्र-निर्माण संभव नहीं है। जब तक भावना का विकास नहीं होगा, हमारे व्यक्तित्व में उदारता, सहृदयता, सहिष्णुता आदि के गुण भी पल्लवित नहीं होंगे और सामाजिक सामंजस्य की कल्पना भी दिवास्वप्न रहेगी। आचरण-शून्य शिक्षा कोरी बौद्धिकता है, उससे सद्गुण और सदाचार का विकास कोई अनिवार्य नहीं है।

शिक्षा और समाज-व्यवस्था के बीच गहरा अनुबंध है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा समाज-व्यवस्था से कटी हुई है। इसलिए इसकी प्रासंगिकता दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है। शिक्षा समाज-व्यवस्था के अनुरूप होकर ही प्रासंगिक होती है। इसलिए न केवल व्यक्ति के निर्माण के लिए बल्कि समाज-व्यवस्था को युगानुरूप और गतिशील बनाने के लिए शिक्षा अत्यन्त सशक्त उपकरण है। जीर्ण-शीर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के परिवर्तन तथा लोकतंत्र, समाजवाद, सर्वधर्म

समभाव एवं अहिंसा आदि के जीवन-मूल्यों के प्रति निष्ठा जागृत करना शिक्षा का मुख्य प्रश्न है। यदि हमारी शिक्षा-व्यवस्था समाज में धर्मान्धता, अन्धविश्वास आर्थिक विषमता, हिंसा और आतंकवाद की चुनौतियों का उत्तर नहीं दे सकती तो वह अप्रासंगिक है। यह ठीक है कि समाज में बढ़ती हुई हिंसा और विघटन के अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कारण हैं, किन्तु सबके मूल में मुख्य रूप से अभाव है, जो सामान्यत: श्रम-निष्ठा की कमी से उत्पन्न होती है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षापद्धति से निकले बुद्धिजीवी श्रम से भी कतराते हैं और आचरण से भी। यदि उनकी बौद्धिकता और विशेषज्ञता में श्रम-निष्ठा और चरित्र-निष्ठा जुड़ जाती तो समाज का स्वास्थ्य बहुत कुछ ठीक हो जाता।

२. **नैतिक ह्रास और जीवन-विज्ञान के प्रयोगों की भूमिका**—नैतिक और चारित्रिक शिक्षा पर विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं विशेषज्ञ समितियों ने समय-समय पर अपनी महत्त्वपूर्ण अनुशंसाएं दी हैं, किन्तु उसके ठोस कार्यान्वयन का कभी गम्भीर प्रयास नहीं हुआ है। आज मूल्यों की इस संकटग्रस्त स्थिति को अत्यन्त खतरनाक माना जा रहा है और शिक्षा की प्रक्रिया को सुसंगत और व्यवहार्य मूल्य-प्रणाली तथा तर्क-संगत, वैज्ञानिक एवं नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित करने की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। यह एक शुभ लक्षण है।

मूल्यों के उत्तरोत्तर ह्रास को रोकने के लिए बौद्धिक पाठ्यक्रम में भी बच्चे से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक यथायोग्य महापुरुषों की जीवनियां, महाकाव्यों से त्यागमय जीवन घटनाएं, कला-साहित्य का ज्ञान, स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास के साथ-साथ मानवीय संस्कृति के विकास की गाथा, धर्म के मूल तत्त्वों की जानकारी, विज्ञान और अध्यात्म का सामंजस्य, तुलनात्मक धर्मदर्शन के अध्ययन आदि का समावेश अपेक्षित है। किन्तु केवल बौद्धिकता एवं विचारवादिता से भावना का विकास संभव नहीं। इसलिए हमें इसका अनुसंधान करना होगा कि हम किस प्रकार शिक्षार्थियों में नैतिकता एवं चरित्र विकसित कर सकें।

सौभाग्य से आचार्यश्री तुलसी के मार्ग-दर्शन में उनके पट्टशिष्य युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने इस संदर्भ में जीवन-विज्ञान की कल्पना और योजना रखी है, जो वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत तो है ही, अब प्रयोगसिद्ध भी हो चुकी है। केवल सिद्धांत बोध के द्वारा विद्यार्थी अपनी अस्मिता को पहचान सके और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पित हो सके, यह कम संभव है। इसके लिए सिद्धांत एवं प्रयोग दोनों का समन्वय आवश्यक है। जीवन-विज्ञान में अध्यात्म और विज्ञान, तत्वमीमांसा और योग, मानविकी और भौतिकी रसायनविज्ञान, मनोविज्ञान और समाज-विज्ञान तथा सृष्टि संतुलनशास्त्र का समन्वय है। संक्षेप में जीवन-विज्ञान यह मानता है कि मस्तिष्क में असीम शक्ति है, जिसको जागृत किया जा सकता है।

शक्ति की जागृति तनाव और थकान के विना की जा सकती है। मस्तिष्क विद्या के अनुसार मस्तिष्क का वायां भाग तर्क, गणित, भाषा और भौतिक विचार के लिए उत्तरदायी है, उसका दायां भाग आध्यात्मिक जागृति, अन्त:प्रज्ञा, स्वप्न और कल्पना के लिए उत्तरदायी है। अनुकंपी नाड़ी तंत्र (Para Sympathetic Nervous System) की अति सक्रियता से व्यक्ति आक्रामक, उद्धत एवं अशांत रहता है, जवकि परानुकंपी नाड़ी तंत्र (Sympathetic Nervous System) की अति सक्रियता से व्यक्ति डरपोक, दब्बू, हीन भावना से ग्रसित होता है। यह स्नायविक असंतुलन है। जीवन-विज्ञान इन दोनों का संतुलन कर व्यक्ति को एक शांत मानव एवं स्वस्थ नागरिक वनाता है। मनुष्य के अन्दर बुद्धि (Reasoning Mind) एवं संवेग (Emotion) में संघर्ष होता है। बुद्धि उचित-अनुचित का भेद तो वता देती है, किन्तु संवेग ही प्रवल होकर आचरण में प्रवृत्ति करता है। इसलिए ज्ञान और आचरण की दूरी वनी रहती है। जीवन-विज्ञान का अभ्यास संवेग को नियंत्रण में रखने की पद्धति है। उसी प्रकार संवेग (Sence Energy) निरन्तर क्रियाशील रहते हैं, जिससे शक्ति का वहुत अपव्यय होता है। अत: सक्रियता से मस्तिष्क एवं मेरु प्रणाली पर दवाव पड़ता है और स्वसंचालित नाड़ी तंत्र भी दवाव का अनुभव करता है, जीवन-विज्ञान संवेद का भी नियंत्रण करता है। जीवन-विज्ञान के द्वारा चेतना प्रक्रिया को कम कर विंव प्रक्रिया (Reflex Activity) को वढ़ाया जा सकता है ताकि मस्तिष्क पर दवाव न पड़े। पीनियल ग्लैंड की निष्क्रियता से नियंत्रण की क्षमता और थाइमस ग्लैंड की निष्क्रियता से आनन्द की अनुभूति में कमी आ जाती है और वृत्ति वाह्यमूलक हो जाती है। हमें यह समझना चाहिए कि व्यवहार एवं आचरण का मुख्य आधार भावधारा है। भाव दो भागों में विभक्त है—विधेयात्मक (Positive) एवं निषेधात्मक (Negative)। जीवन-विज्ञान के द्वारा विधेयात्मक भाव का विकास कर निषेधात्मक से मुक्ति पायी जा सकती है। इस प्रकार जीवन-विज्ञान तनाव-मुक्ति की भी प्रक्रिया है। इसके साथ स्मृति-सम्वर्धन और ग्रहण-क्षमता का मौलिक आधार, लयवद्ध श्वास—जिससे मस्तिष्क को पर्याप्त आक्सीजन मिल जाता है और मानसिक तनाव कम कर अध्ययनशीलता को केन्द्रित एवं प्रभावी वनाता है। संक्षेप में जीवन-विज्ञान मस्तिष्क प्रशिक्षण की वह प्रवृत्ति है, जिसमें संवेद, संवेग एवं विचार-नियन्त्रण की पद्धति है, जिसके सात साध्य-तत्त्व एवं पांच साधन-तत्त्व हैं।

भारतीय संस्कृति की परम्परा में ऋषि-मुनियों ने हमारी उच्च चेतना को जगाने के लिए योग, ध्यान आदि के अभ्यास पर वल दिया है। श्रवण, मनन के साथ निदिध्यासन हमारी शिक्षा का अनिवार्य अंग था। दुर्भाग्य से आज श्रवण और पठन तक वात रह गई है, मनन और निदिध्यासन दोनों हमने भुला दिए

हैं। जब तक मनुष्य की भावना नहीं बदलती या दूसरे शब्दों में जब तक उसका अन्तःपरिवर्तन या हृदय-परिवर्तन नहीं होता, मात्र व्यवस्था-परिवर्तन से उसका बदलाव नहीं होगा। भाव-परिष्कार एवं आचरण परिवर्तन के लिए जीवन-विज्ञान एक अभिनव प्रयोग है। इसके अभ्यास से हम विद्यार्थियों में एक ओर तो उनकी स्मृति, अवधान एवं ग्रहणशीलता को प्रखर कर सकते हैं, दूसरी ओर उनमें कर्त्तव्यनिष्ठा, दायित्व-बोध और अनुशासन सरलता से ला सकते हैं। अतः संगोष्ठी की यह सशक्त अनुशंसा है कि जीवन-विज्ञान के अध्ययन और प्रयोग को नयी शिक्षा नीति में प्रारम्भिक स्तर से ही यथायोग अनिवार्य स्थान दिया जाए। इससे परम्परागत धार्मिक शिक्षा को लागू करने के विवाद भी नहीं खड़े होंगे एवं भारतीय संविधान की धारा २८ का भी किंचित् उल्लंघन नहीं होगा। जीवन-विज्ञान वास्तव में नैतिक शिक्षा का ही विकल्प नहीं, यह शिक्षा को सार्थक, समयोपयुक्त एवं समग्र बनाने का एक विज्ञान है। इसमें न धर्म या अध्यात्म की एकांगिता है, न विज्ञान की। यह अन्तर विषयानुबंधी होने के कारण इसके अन्तर्गत एक साथ सामान्यीकरण एवं विशिष्टीकरण दोनों का समन्वय है। सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि जीवन-विज्ञान अब काफी हद तक प्रयोगसिद्ध भी हो चुका है। जीवन-विज्ञान शिविरों में अनेकों साधु-साध्वियां एवं हजारों लोगों ने इसका लाभ तो उठाया ही है, अब तो राजस्थान सरकार ने जीवन-विज्ञान का पाठ्यक्रम प्रथम चरण में अट्ठाईस माध्यमिक विद्यालयों में लागू कर दिया है। इसकी उपादेयता महसूस कर गुजरात विश्वविद्यालय ने अहमदाबाद में एवं राजस्थान पुलिस अकादमी ने जयपुर में शिविर आयोजित किए। अहमदाबाद मेडिकल एसोशिएशन ने अन्तःस्रावी ग्रन्थियां एवं प्रेक्षाध्यान पर एक विशेष संगोष्ठी की। सबके उत्साहवर्द्धक परिणाम मिले हैं। अब तो जीवन-विज्ञान का विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक स्तर तक एवं शिक्षकों के लिए शिक्षक-प्रशिक्षक का पूरा पाठ्यक्रम भी तैयार किया जा चुका है। इसको देखते हुए यदि भारत का कोई विश्वविद्यालय आगे बढ़कर अध्ययन एवं शोध के लिए स्नातकोत्तर डिप्लोमा या डिग्री में जीवन-विज्ञान का पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर देश को नेतृत्व दे सके तो यह बड़ा काम होगा।

३. **शिक्षा और आजीविका**—शिक्षा में जीवन-विज्ञान के साथ आजीविका का भी प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। शिक्षा यदि हमारी जीविका का साधन नहीं बन सकती तो शिक्षा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा और इस शिक्षापद्धति में प्रवेश पाने या उसमें टिकने के लिए प्रेरणा भी नहीं रहेगी। यही कारण है कि सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक श्रम को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाना ही चाहिए। इससे एक ओर तो हम शिक्षार्थियों को आजीविका के लिए आश्वस्त कर उनमें आत्मविश्वास और स्वावलंबन की भावना का संचार कर सकेंगे साथ-साथ

व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित कर ऊंच-नीच के सामाजिक भेदभाव को भी कम कर सकेंगे। श्रम जीवन का एक मूल्य है। विना हाथ-पांव हिलाए हम जी ही नहीं सकते। प्रश्न इतना ही है कि हम शरीर श्रम को सामाजिक उपयोगिता से कितना जोड़ सकते हैं। संगोष्ठी का स्पष्ट चिन्तन है कि शिक्षा को हमें हस्त-शिल्प, उद्योग और व्यवसाय से जोड़ना ही होगा। हाथ-पैर से काम करने वालों को केवल कर्म-कौशल ही प्राप्त नहीं होता वल्कि श्रम का अभ्यास वहुत हद तक उसका हृदय भी शुद्ध करता है। दूसरे शब्दों में क्रियाशक्ति के विकास से हृदय या भावशक्ति का भी विकास होता है। इसलिए प्रायोगिकी के साथ शिक्षा का अनुवंध होना ही चाहिए। भारतीय संदर्भ में प्रायोगिकी को ग्रामविकास तथा सामान्य लोगों के जीवन से अधिकाधिक जोड़ना होगा। इसके लिए शिक्षा को गांवों में कृषि, पशुपालन, कुटीर एवं ग्रामोद्योग एवं नगरों में कल-कारखाने एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से जोड़कर इसे अधिक सार्थक वनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में हमें शिक्षानीति का राष्ट्र की अर्थनीति के साथ मेल वैठाना होगा ताकि हमारे भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का सम्यक् उपयोग हो सके। जन-शक्ति योजना के साथ चूंकि हम शिक्षा के क्षेत्र में तकनीक एवं उद्योग का मेल नहीं विठा पाए, इसलिए देश की शिक्षा निर्जीव हो गई और शिक्षित वेरोजगारी की समस्या भी विकराल वनती जा रही है इस संवंध में समिति जहां भारत के औद्योगिक विकास का स्वागत करेगी, वहां उद्योग के स्वरित आधुनिकीकरण के स्थान पर समुचित तकनीक अपनाने के लिए सरकार से आग्रह रखेगी। क्योंकि भारत की विराट जनसंख्या एवं सीमत पूंजी का ख्याल रखना होगा। फिर तकनीक और प्रायोगिकी मनुष्य के लिए है, मनुष्य प्रायोगिकी के लिए नहीं।

कुछ लोगों को अभी भ्रम है कि जीविकोपार्जन की औद्योगिकी शिक्षा से साहित्य-कला आदि का अध्ययन दुर्वल पड़ेगा। वास्तव में कर्म से विच्छिन्न होकर साहित्य सचमुच साहित्य कहलाने लायक नहीं रहेगा। वेद, उपनिषद् आदि के रचनाकारों के जीवन में ज्ञान और कर्म अलग नहीं थे। प्राचीन युग में सुकरात और आधुनिक युग में मैक्समूलर ने दीर्घकालीन सैनिक जीवन व्यतीत किया। डिवी ने कार्यानुभव, क्रो मैको ने कर्म, मांटेसरी ने क्रिया के द्वारा शिक्षण, माओ ने आधा काम, आधा पठन (हाफ-हाफ) एवं गांधी ने उद्योग के माध्यम से शिक्षण का विचार रखा। इसलिए आभिजात्य प्रभाव के कारण शिक्षा में कर्म कौशल की उपेक्षा हुई है, उसका प्रायश्चित करना ही होगा एवं हस्त-शिल्प, कृषि उद्योग को पाठ्यक्रम एवं परीक्षा का अनिवार्य अग वनाना होगा। प्रचलित पाठ्यक्रम इतना वोझिल हो गया है कि इसमें न तो नैतिक शिक्षा और न आजीविका की शिक्षा के लिए गुंजाइश है। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति

में ग्रहण—शिक्षा के साथ आसेवन शिक्षा का समन्वय किया गया था। हमें भी साहसपूर्वक शिक्षा में ज्ञान के साथ कर्म को जोड़ना होगा। हां, यह ध्यान रखना होगा कि जब बच्चे छोटे हों तो उद्योग एवं हस्त-शिल्प की शिक्षा उनके लिए बोझ नहीं, बल्कि आनन्द का पर्याय बने।

४. **शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं अनौपचारिक शिक्षण तथा अणुव्रत की भूमिका**—मूल्यों के ह्रास एवं जीविकोपार्जन के दुर्दान्त संकट के साथ शिक्षा के सार्वभौमीकरण की समस्या शिक्षा की बड़ी चुनौती है। क्योंकि संविधान में निरक्षरता निवारण के निर्देश के बावजूद देश में आज लगभग दो सौ तेरह लोग निरक्षर हैं एवं यदि ऐसी ही स्थिति रही तो इस शताब्दी के अन्त तक यहां विश्व के ५४ प्रतिशत लोग निरक्षर हो जाएंगे।

इस दुःखद स्थिति के निवारण के लिए शिक्षा पर हमें अपनी राष्ट्रीय आय का कम से कम ७.५ प्रतिशत (जितना पहली पंचवर्षीय योजना में प्रावधान था) धन खर्च करना ही चाहिए एवं उसमें प्राथमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्राथमिकता देनी होगी। हमें यह बराबर याद रखना होगा कि शिक्षा राष्ट्र की सर्वोत्तम प्रतिरक्षा है और हमारे सामाजिक-आर्थिक विकास का भी सशक्त उपकरण है। शिक्षा का सार्वभौमीकरण केवल स्कूली शिक्षा को सशक्त करने से ही नहीं अपितु अनौपचारिक शिक्षण को व्यापक बनाने से फलीभूत होगा। इस पवित्र काम में सरकार के साथ परिवार, स्वयंसेवी संस्थाओं, धार्मिक, सांस्कृतिक संगठनों आदि का पुरुषार्थ लगाना चाहिए। सरकार जहां विद्यालय-भवन नहीं बना सके, वहां हम मंदिर, उपाश्रय धर्मशालाएं एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करें। अनौपचारिक शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए निवर्तमान शिक्षकों का योगदान लेना चाहिए। क्योंकि वे दक्ष भी होंगे एवं उन पर खर्च भी कम होगा। साक्षरता की प्रेरणा के लिए अन्य उपायों के अतिरिक्त किसी भी नौकरी या अनुदान प्राप्ति तथा वोट देने के लिए साक्षरता की योग्यता अनिवार्य कर दी जाये। अनौपचारिक शिक्षण को जीवन एवं जीवनपरक बनाने के लिए हमें इसे समाजोपयोगी तथा जीविकोपयोगी भी बनाना होगा।

लेकिन यह महसूस किया गया कि निरक्षरता का कलंक मिटाने के लिए एक कठोर राजनैतिक संकल्प एवं एक व्यापक जनान्दोलन आवश्यक है। इसके लिए तकनीकी एवं शिल्प संस्थानों को छोड़कर कुछ समय तक देश के सभी शिक्षण संस्थानों को बंद करके पैंतीस लाख शिक्षकों, लगभग एक करोड़ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों एवं राष्ट्र के समस्त स्वयंसेवी एवं धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं की सम्मिलित शक्ति को संयोजित कर युद्धस्तर पर एक वर्ष के भीतर निरक्षरता-निवारण का कार्य पूरा किया जा सकता है। जिस प्रकार गुजरात में शिक्षण-नव निर्वाण दल बना है, उसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर एक शिक्षासेना बनाकर यह

अभियान किया जाये।

यह संतोष और हर्ष की बात है कि अणुव्रत आन्दोलन विगत कई दशाब्दों से नैतिक, आध्यात्मिक जागरण के द्वारा अनौपचारिक रूप से लोक-शिक्षण का एक महान् कार्य कर रहा है। इस अमृत वर्ष में अणुव्रत आन्दोलन ने निरक्षरता निवारण का पुनीत कार्य अपने कार्यक्रमों में विशेष रूप से जोड़कर भारत की अन्य स्वयंसेवी एवं धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

बापू और विनोबा के बाद

डॉ० रामजीसिंह गांधी दर्शन के गंभीर अध्येता हैं। उन्होंने आचार्यश्री के विचारों में गांधीदर्शन का प्रतिबिम्ब देखा। वे उनके संपर्क में आये और प्रभावित हो गये। क्षेत्रीय दूरी के कारण वे बार-बार आचार्यवर के सान्निध्य में उपस्थित नहीं हो सकते थे, फिर भी उपेक्षा होने पर विचारों के आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता था। २ जुलाई ८५ को संप्रेपित उनके विचार यहां उद्धृत किये जा रहे हैं—

सचमुच यह मेरा अभाग्य ही है कि बहुत दिनों से आपके चरण-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पाया हूं। शायद गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

बिनु सतसंग विवेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

जागतिक स्तर पर अंतरिक्ष में जाकर मानव की युद्धलिप्सा का विस्तार ही हुआ है और अमेरिका तारिका युद्ध (Star War) के क्षेत्र में दाखिल हो चुका है। लेकिन विश्वास यही है कि युद्ध का गति तत्त्व अब समाप्त हो चुका है। अतः आणविक युद्ध पागलपन या भूल से भले ही हो जाये, किन्तु योजना एवं विचार पूर्वक हो नहीं सकता।

लेकिन जब मैं अपना राष्ट्रीय परिवेश देखता हूं तो अधिक मायूसी होती है। युद्ध की हिंसा से उतना कष्ट नहीं हो सकता, किन्तु निर्दोष एवं निरपराध बच्चों एवं स्त्रियों आदि की हिंसा अधिक कष्ट देती है। अभी जो कनिष्क की दुर्घटना हुई, उसमें चालीस तो बच्चे थे। फिर जब मैं अपने प्रदेश बिहार में आता हूं तो हमारी चिन्ता और भी घनीभूत हो जाती है। यहां प्रतिदिन इतनी नृशंस हत्याएं हो रही हैं कि उसकी सीमा नहीं। अनुमान से बिहार में लगभग पचास लाख अवैध आग्नेय अस्त्र हैं। यह एक पहेली ही है कि जो बिहार भगवान् महावीर और बुद्ध से लेकर गांधी, विनोबा और जयप्रकाशजी की कर्मभूमि रहा हो, वहीं

हिंसा सुरसा की तरह फैल रही है। बिना कारण तो कोई कार्य नहीं होता, अतः हम कुछ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि कारण ढूंढ़ने का प्रयास तो करते हैं, लेकिन मन को संतोष नहीं होता है। इसीलिए अपनी यह वेदनापूर्ण जिज्ञासा श्री चरणों में निवेदित कर रहा हूं ताकि प्रकाश मिले।

और केवल कारण जान लेने की ही इच्छा नहीं है। इसके निवारण के लिए हम जैसे छोटे लोग क्या कर सकते हैं? गांधी विचार के पाठ्यक्रम में अहिंसा ही भरी पड़ी है, उसे पढ़ाता रहता हूं। अहिंसा दर्शन पर एक अखिल भारतीय परिचर्चा का भी आयोजन किया था, जिनके निबन्ध विभाग की पत्रिका के तीन अंकों में छापे गये हैं। किन्तु जन-मानस के अन्दर हिंसा और नृशंस हिंसा पर ऐसी गगनविहारी चर्चा का कोई असर नहीं दीखता। यहां तक कि विश्वविद्यालय का युवा मानस भी आज हिंसा का तेजी से अनुगामी ही बनता जा रहा है। सरस्वती परिसर में अक्सर बन्दूकें चलती रहती हैं, बम के धड़ाके होते रहते हैं। बापू ने कहा था कि सत्य और अहिंसा देव-स्थलों के उत्तुंग भवनों पर अवस्थित कोई अमूर्त भावना नहीं, यह तो व्यावहारिक जीवन की यथार्थ साधना है। इस युग में बापू और विनोबाजी के बाद अहिंसा की साधना में सिद्ध आचार्य के रूप में आपको ही देखता हूं। इसलिए मात्र जिज्ञासा-निवारण और दिशा-निर्देश प्राप्त करने के लिए ये कुछ शब्द निवेदित करने की धृष्टता की है। आशा है आप दिशा-दर्शन करेंगे।

एक नया प्रयोग

२५ अक्टूबर को बम्बई से डॉ० रतनचन्द एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलाजी ने दर्शन किये। डॉ० ने स्वास्थ्य की जांच करने के बाद कहा—आपका स्वास्थ्य काफी ठीक है। थोड़ा वजन और कम कर लेना चाहिए। वजन कम करने की प्रक्रिया सुझाते हुए उन्होंने कहा—एक महीने के लिए दूध-दही, तेल-घी आदि का प्रयोग सर्वथा बन्द कर दिया जाये। मिठाई, चीनी का प्रयोग कई वर्षों से बन्द है ही। भोजन में एक सूखी चपाती, सब्जी और थोड़ा-सा चावल लिया जा सकता है। दूध के स्थान पर कुछ लेना आवश्यक हो तो 'आछ' ली जा सकती है।

आचार्यवर यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। भोजन में संयम करने की बात आपको अतिरिक्त रूप से आह्लादित करती है। उसी दिन से प्रयोग शुरू हो गया। छह विगय बन्द, सीमित द्रव्य, सीमित भोजन। सात दिन में एक किलो वजन कम हो गया।

कभी-कभी आचार्यवर का श्वास कुछ भारी हो जाता। संतों ने श्वास के लिए औषधि-सेवन का अनुरोध किया तो आपने दृढ़ता से निषेध कर दिया।

भोजन में एक साथ इतनी कटौती होने से शरीर पर दुर्बलता का प्रभाव झलकने लगा, किन्तु आपके मन के किसी भी कोने में उस प्रयोग को बन्द करने की इच्छा नहीं जगी। साधु-साध्वियों के अनुरोध की उपेक्षा करके भी आपने लगातार एक महीने तक वह क्रम जारी रखा और उसका वांछित परिणाम भी आया।

आचार्यवर की ऐसी दृढ़ इच्छा शक्ति को देखकर बहुत बार मन विस्मय से भर जाता है। कितना गहरा और अविभक्त व्यक्तित्व है आपका। उसमें कहीं कोई टूटन नहीं, दरार नहीं। दृढ़ता की यह धरोहर भारतीय जनता को उपलब्ध हो जाये तो कई पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। एक व्यक्ति की सर्जनात्मक चेतना और प्रयोगधर्मिता से पूरा वातावरण प्रभावित हो सकता है।

आप कहीं जा नहीं सकेंगे

इन दिनों पूरे विश्व में प्रदूषण की चर्चा है। प्रदूषण के कारण आदमी का जीना मुश्किल हो रहा है। न शुद्ध हवा, न शुद्ध पेयजल और न शुद्ध भोजन। जीवन का आधार ही जब प्रदूषित है तो जीवन प्रदूषण-मुक्त कैसे हो सकेगा? इस प्राकृतिक प्रदूषण से भी अधिक खतरनाक है मन का प्रदूषण, मानवता का प्रदूषण। मानवता का प्रदूषण एक सौ मील की रफ्तार से चल रहा है तो उसका प्रतिकार एक सौ दस मील की रफ्तार से करना होगा अन्यथा मानवता इतनी प्रदूषित हो जायेगी कि धर्म और नीति की चर्चा एक स्वप्न मात्र बनकर रह जायेगी।

आचार्यश्री अपनी कठोर साधना से प्रदूषित मानवता की चिकित्सा कर रहे हैं। यह काम इतना बड़ा है कि पांच-दस क्या, सौ-हजार वर्ष में भी पूरा होना कठिन है। ऐसे कठिन समय में ऐसे महामानव ही मनुष्य को त्राण दे सकते हैं। इसीलिए अनेक विचारशील व्यक्ति आचार्यश्री के सामने उपस्थित होकर अपनी भावनाएं रखते हैं—'आचार्यजी ! जब तक मानवता का प्रदूषण नहीं मिटेगा, आप कहीं जा नहीं सकेंगे। आपकी इच्छा-शक्ति एवं संकल्पशक्ति से ही यह काम हो सकेगा।'

जैन विद्या परिषद्

जैन विद्या परिषद जैन-विश्व भारती की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। अब तक बीदासर, बीकानेर, दिल्ली, बम्बई, लाडनूं, जयपुर आदि अनेक स्थानों पर ऐसी परिषदें आयोजित हो चुकी हैं। इन विद्या परिषदों में दिल्ली की विद्या परिषद् अविस्मरणीय रही। उसमें जर्मन विद्वान डॉ० एल्सडोर्फ ने भाग लिया, जो जर्मनी

में प्राच्य भारतीय विद्याओं के प्रमुख शोधकर्ता रहे हैं।

जैन विद्या परिषद् का मुख्य उद्देश्य शोध की नूतन प्रवृत्तियों को उजागर करना है। संस्कृत और पाली साहित्य में काफी शोध कार्य हुआ है। किन्तु प्राकृत साहित्य उपेक्षित-सा रहा है। कारण कुछ भी हो, प्राकृत साहित्य में जब तक गहरा शोध नहीं होगा, जैन दर्शन के अनेक रहस्य अज्ञात रहेंगे। जैन दर्शन पर कुछ विदेशी विद्वान् भी काम कर रहे हैं। उनका काम जर्मन फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा में है तथा परंपराओं का सम्यक् बोध न होने के कारण कहीं-कहीं विवादास्पद भी है। फिर भी उस काम का अपना मूल्य है। जैन विद्या परिषद् विद्वानों को प्रोत्साहित कर प्राच्य विद्याओं के अध्ययन और शोध के लिए प्रेरित कर रही है।

जैन विद्या परिषदों का आयोजन प्रायः आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के सान्निध्य में हुआ है। इस आयोजन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब भी विद्वान् तात्त्विक चर्चाओं में उलझते हैं, आचार्यश्री, युवाचार्यश्री के गंभीर उद्बोधनों से सम्बुद्ध हो जाते हैं। कई बार तो पेपर बढ़ने वाले विद्वान भी अपने पेपर से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों की अपेक्षा भी युवाचार्यश्री से करते हैं। विद्या परिषद् की आयोजना अत्यधिक उपयोगी है, इस बात को अनुभव करने पर भी उसमें निरंतरता नहीं रह सकी। आचार्यश्री के अमृत महोत्सव वर्ष में वर्षों के अन्तराल को पाटने के लिए आमेट में विद्या परिषद् का कार्यक्रम निर्णीत हो गया। इस परिषद् में महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसमें पढ़े जाने वाले शोधपत्र भगवती सूत्र को ही केन्द्र में रखकर लिखने का निर्णय लिया गया। इस परिषद् में भाग लेने के लिए भारतीय विद्वानों के साथ विदेशी विद्वानों को भी आमंत्रित किया गया। उनमें से अनेक विद्वानों ने पत्रों के माध्यम से अपनी सहमति प्रेषित की। किन्तु अवकाश और पारपत्र उपलब्ध न होने के कारण वे लोग पहुंच नहीं सके। यहां न पहुंच पाने पर भी वे मानसिक दृष्टि से जैन विद्या परिषद् के साथ जुड़ चुके थे। उन्होंने इस आयोजन की सफलता के लिए अपने शुभ कामना संदेश भेजे। वे विद्वान प्राच्य भारतीय साहित्य के प्राध्यापक हैं। कुछ विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं—

१. प्रो० वेजलर : हेम्बर्ग विश्वविद्यालय, पश्चिम जर्मनी
२. प्रो० ओबरहेमर : वीन विश्वविद्यालय, आस्ट्रिया
३. प्रो० केलिटकया : पेरिस विश्वविद्यालय, फ्रांस
४. प्रो० जोसेफ काहिल : एलबर्ट विश्वविद्यालय (एडमोनटोन), कनाडा
५. प्रो० के० आर० नोरमन : कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, ब्रिटेन
६. प्रो० जमाकी : योकीयोगा इन्स्टीट्यूट, जापान
७. प्रो० मैडम मेरी : म्युनिख विश्वविद्यालय, पश्चिम जर्मनी

८. प्रो० वैण्डर : पेनिसलवेनिया विश्वविद्यालय, अमेरिका
९. प्रो० क्राफोर्ड : हवाई विश्वविद्यालय, अमेरिका
१०. प्रो० जोशिमा मीचीवाकी : गुनमा विश्वविद्यालय, जापान
११. प्रो० कीविचो : जैंरोवी विश्वविद्यालय, कीनिया
१२. प्रो० डैंलियू : ग्रीण्ट विश्वविद्यालय, वेल्जियम
१३. प्रो० मार्क्स वैन्स : कैंम्ब्रिज विश्वविद्यालय, ब्रिटेन
१४. प्रो० नैन्सी : फाक मिशीगन विश्वविद्यालय, कनाडा
१५. प्रो० उमरीक : लागोस विश्वविद्यालय, नाइजीरिया
१६. प्रो० जानअंरा : कैंपकोस्ट विश्वविद्यालय, घाना

२६ अक्टूबर को प्रातःकालीन प्रवचन के समय आचार्यवर के सान्निध्य में जैन विद्या परिषद् का उद्घाटन हुआ। इस परिषद् में साधु-साध्वियों, समणियों तथा समागत विद्वानों ने अपने शोधपत्र पढ़े। पठित शोधपत्रों पर खुली चर्चाएं हुईं। सभी शोधपत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य था—पांचवां अंग आगम भगवती। परिषद् के संयोजक थे श्री माणिक्यलाल वर्मा राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा के प्राचार्य श्री महावीर राज गेलड़ा। जैन विश्व भारती द्वारा आयोजित इस परिषद् का प्रारंभ समणीवृन्द द्वारा प्राकृत भाषा की श्रुत वंदना से हुआ। भीलवाड़ा महाविद्यालय के प्रवक्ता डॉ० डी० सी० जैन ने जैन विद्या परिषद् का संक्षिप्त परिचय दिया।

आचार्यश्री महायुगपुरुष हैं

डॉ० डी० एस० कोठारी ने अपने अभिभाषण में कहा—आचार्यश्री तुलसी अध्यात्म के द्वारा हमारा युगानुरूप मार्गदर्शन कर रहे हैं। हम सबका परम कर्तव्य है कि आप द्वारा बताये नये मार्ग का अनुगमन करें।

ग्रामीण विकास एवं पंचायत राज्यमंत्री श्री रामपाल उपाध्याय ने उस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—जैन विद्या परिषद् के इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम के आठ सत्रों में लगभग चालीस शोध निबन्ध पढ़े जाएंगे, यह जानकारी पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आचार्यश्री की दृष्टि पैनी है। वे हर अंधेरे कोने को उजाले में परिवर्तित करना चाहते हैं। मैं इन्हें युगपुरुष नहीं, महायुगपुरुष के सम्बोधन से सम्बोधित करना चाहता हूं। मैंने अनेक धर्मों के कार्यक्रमों में भाग लिया है। मुझे आचार्यश्री की दृष्टि में एक नयी ही जीवंतता, वैज्ञानिकता और जागरण देने की क्षमता का एहसास हुआ है। मैंने प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी को लिखा है कि नयी शिक्षा नीति के विषय में आप देश के महान संतों के चिन्तन को भी सम्मिलित करें। अपने पत्र में मैंने आचार्यप्रवर

और युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नाम का उल्लेख भी किया है।

पांच-दस जयाचार्य जन्म लें

युवाचार्यश्री ने इस परिषद् में पढ़े जाने वाले शोधपत्रों के मूलभूत आधार 'भगवती सूत्र' की चर्चा करते हुए कहा—'भगवती सूत्र का मूल नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति है। इसका गाथा परिमाण है २०,००० पद्य। इस सूत्र में समागत जाव शब्द की संपूर्ति की जाए तो यह सवा लाख पद्य परिमाण वाला ग्रन्थ बन जाता है। इसी दृष्टि से इसको सवालक्खी भगवती भी कहा जाता है। संवादशैली का ग्रन्थ होने के कारण इसको व्याख्या प्रज्ञप्ति नाम से अभिहित किया गया है। इस सूत्र में श्वेताम्बरों के अभिमत से ३६,००० प्रश्नोत्तर हैं। दिगम्बरों की मान्यता के अनुसार प्रश्नोत्तरों की संख्या ६०,००० है। इस दृष्टि से इसे प्रश्नोत्तर बैंक कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में तात्विक और सैद्धान्तिक विश्लेषण तो है ही, दुनिया के ज्ञान-विज्ञान का कोई विषय शायद ही बचा हो, जिसके बारे में थोड़ी-बहुत चर्चा न हो। इस ग्रन्थ में कई विषय ऐसे हैं, जो गहरे वैज्ञानिक अन्वेषण की अपेक्षा रखते हैं। यदि उन विषयों पर शोध हुई तो दुनिया को नया प्रकाश मिल सकता है।'

भगवती सूत्र के व्याख्या ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा—'तेरापंथ के चतुर्थ आचार्यश्री जयाचार्य ने ज्ञान के आकर इस ग्रन्थ का राजस्थानी भाषा में भाष्य किया है। वह पद्यात्मक है और विविध रागिनियों में निबद्ध है। उसका नाम है भगवती की जोड़। इस ग्रन्थ का पद्य परिमाण ८०,००० है, जो पांच सौ एक गीतों में रचित है। जयाचार्य ने इसमें सूत्र के गूढ़ रहस्यों का जो मार्मिक और बोधदायी विश्लेषण किया है, विलक्षण है। आज अगर पांच-दस जयाचार्य जन्म लें, तब कहीं भगवती सूत्र के थोड़े-बहुत रहस्यों का आधुनिक सन्दर्भों में उद्घाटन हो सकता है।'

हजारों शोध-प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल उद्वोधन में कहा—भगवती एक ऐसा आगम ग्रन्थ है, जिसमें ढाई हजार वर्ष पहले ही असाम्प्रदायिक धर्म की उद्घोषणा की जा चुकी है। मिथ्या दृष्टि की देश आराधकता और असोच्चा केवली का प्रकरण, उक्त तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं। आज विद्वान डाक्टरेट करना चाहते हैं, पर उनके सामने ऐसे विषय बहुत कम हैं, जिनके बारे में काम नहीं हुआ हो। जबकि भगवती सूत्र एक ऐसा आगम ग्रन्थ है, जिसके आधार पर हजारों शोध प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। जहां

पश्चिम का दर्शन समाप्त होता है, वहां पूर्व का दर्शन शुरू होता है। जहां अन्य विषय समाप्त होते हैं, हमारे विषय प्रारंभ होते हैं। आज तक इस आगम पर विशेष काम नहीं हुआ है। यह ज्ञान-विज्ञान का अखूट कोष है। विद्वान लोग इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो अपूर्व काम हो सकता है।

मौलिक चिन्तन की खिड़कियां खुलें

मध्याह्नकालीन सत्र में राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री हीरालाल देवपुरा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—'जैन विश्व भारती मानवीय संस्कृति के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। उसके तत्वावधान में ही जैन विद्या परिषद् का आयोजन हुआ है। एक धर्माचार्य के सान्निध्य में आयोजित इस प्रकार के कार्यक्रम को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। आचार्यश्री ने जीवन के मूलभूत तत्त्वों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने एक नारा दिया है—निज पर शासन : फिर अनुशासन। संयम और अनुशासन को आधार माना जाए तो इस युग की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है।'

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने अपने मंगल संदेश में कहा—'हम अपनी धर्म-सभाओं में नये क्रम शुरू करते हैं। यह भी एक नया क्रम है कि ऐसी विद्वतापूर्ण चर्चाएं जनता के बीच चलती हैं। साधारण जनता को ऐसे कार्यक्रमों में रस आने लगा है और विद्वान् जनता के बीच अपने विचारों की प्रस्तुति करते हुए प्रमुदित हैं। एक समय था जब विश्व की अनेक संस्कृतियां भारतीय संस्कृति से प्रभावित थीं। पर समय के साथ स्थिति में बदलाव आया है। आज हम पश्चिम का अनुकरण करने लगे हैं। अपनी अच्छी चीजों के प्रति भी हमारा विश्वास उठ गया है। हम तब तक किसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते, जब तक इस पर पश्चिम की मोहर नहीं लग जाती। अविश्वास की इस स्थिति के कारण हमारे मौलिक चिन्तन की खिड़कियां बन्द हो रही हैं। राजस्थान के शिक्षा मंत्री सामने बैठे हैं। मैं उनसे कहता हूं कि वे नयी शिक्षा नीति में श्रम, आत्म-नियंत्रण और सामंजस्यपूर्ण वृत्ति की बात पर अवश्य बल दें। इस काम में अणुव्रत, प्रेक्षा-ध्यान और जीवन-विज्ञान का बहुत बड़ा सहयोग मिल सकता है।

विद्या परिषद् के तीन दिन

जैन विद्या परिषद् का अभिक्रम आठ सत्रों में चला। प्रत्येक सत्र में आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री का मंगल सान्निध्य और मार्ग-दर्शन उपलब्ध हुआ। डॉ० नथमल टाटिया ने अपनी जापान-यात्रा के अनुभव सुनाए। डॉ० प्रेम सुमन जैन ने अमेरिका

में 'ईश्वरवाद' पर हुए एक सेमिनार के संस्मरण सुनाए। डॉ० महावीर राज गेलड़ा ने हिम्वर्ग की लाइब्रेरी की चर्चा की, जहां अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जैन दर्शन पर काम किया है। वहां जैन दर्शन पर पचीस प्रतिशत साहित्य अंग्रेजी में है और पचहत्तर प्रतिशत जर्मन में। समणी स्मितप्रज्ञाजी ने अपनी लन्दन-यात्रा की जानकारी दी। तीन दिवसीय आठ सत्रों में छब्बीस शोत्र-पत्र पढ़े गए। उनका क्रम इस प्रकार है—

पहला सत्र : २६ अक्टूबर १९८५, समय प्रातः ८-३० से ११-३०

१. प्रो० डी० सी० जैन जैन विद्या परिषद, परिचय
२. डॉ० महावीर राज गेलड़ा स्वागत एवं विषय-प्रयोग
३. श्री रामपालजी उपाध्याय उद्‌घाटन
४. डॉ० प्रेम सुमन जैन, उदयपुर भगवती सूत्र में प्रतिपादित धार्मिक उदारता
५. युवाचार्यश्री उद्‌बोधन
६. आचार्यप्रवर आशीर्वचन

दूसरा सत्र : समय मध्याह्न दो बजे से साढ़े चार बजे तक

१. मुनि श्रीचन्द्रजी 'कमल' : पर्व तिथियों में हरियाली खाने का निषेध क्यों?
२. साध्वीश्रीकनकश्रीजी : महावीर की अनुशासन पद्धति।
३. साध्वीश्री निर्माणश्रीजी : लोकस्थिति के मूल तत्त्व एवं प्रदूषण।
४. डॉ० रमेशचन्द्र जैन : भगवती में गणित और उपमेय।

तीसरा सत्र : समय, रात्रि ८ से ९-४५

१. डॉ० कमलेशकुमार जैन, वाराणसी : श्रमण परंपरा में संवर।
२. मुनिश्री उदितकुमारजी : श्वास-प्रेक्षा : प्राचीन और आधुनिक सन्दर्भ में
३. डॉ० प्रेमचन्द रांका, जयपुर : जैन दर्शन में शहरी निरूपण।
४. मुनिश्री धनंजयकुमारजी : सार्वभौम धर्म का घोषणा-पत्र।

चौथा सत्र : २७ अक्टूबर १९८५ समय प्रातः नौ बजे से साढ़े ग्यारह तक

१. मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं) : महावीर का सम्प्रदायातीत दृष्टिकोण।

२. समणी कुसुमप्रज्ञाजी : गर्भप्रज्ञप्ति।

पांचवां सत्र : समय मध्याह्न दो से साढ़े चार बजे तक

१. साध्वी जिनप्रभा : महावीर चौवीसवें तीर्थंकर क्यों ?
२. साध्वीश्री अशोकश्री जी : माहण शब्द : एक विमर्श।
३. समणी स्मितप्रज्ञाजी : चेतन और अचेतन का सम्बन्ध कैसे ?
४. डॉ० नन्दन जैन (रीवां) : सूत्रों में लम्बाई की इकाई

छठा सत्र : समय रात्रि ८ से ९-४५ तक

१. डॉ० प्रेमचन्द जैन, जयपुर : जमालि और वहुतर वाद
२. डॉ० फूलचन्द जैन 'प्रेमी', बनारस : भगवती में उल्लिखित पार्श्व और पार्श्वापत्यीय श्रमण।
३. मुनि प्रशान्तकुमारजी : ज्ञान और चारित्र का संबंध

सातवां सत्र : २८ अक्टूबर १९८५, समय प्रातः नौ से ग्यारह तक

१. मुनि राजेन्द्रकुमारजी : क्या आत्मा शरीर परिमाण है ?
२. साध्वी मधुस्मिताजी : भगवती में मैत्री के तत्त्व।
३. डॉ० महावीर राज गेलड़ा : क्या चन्द्रमा में देवता है ?
४. समणी अक्षयप्रज्ञाजी : देवता भी बूढ़े होते हैं।
५. समणी मुदितप्रज्ञाजी : भगवान् महावीर एक परामनोवैज्ञानिक।
६. समणी सुप्रज्ञाजी : सुख-दुःख की अवधारणा।
७. मुनि मुदितकुमारजी : आगम की व्याख्या पद्धति और नयवाद।
८. साध्वी विमलप्रज्ञाजी : कर्मफल भोगना अनिवार्य : एक विमर्श।
९. साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी : पर्याय की अपेक्षा नास्तित्व : स्रोत की खोज

आठवां सत्र : समय मयाह्न २ बजे से ४ बजे तक

यह सत्र जैन विद्या परिषद के समापन समारोह के रूप में था। इस अवसर पर समागत विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। बीकानेर के श्री अनोपचन्दजी बोथरा की ओर से समागत विद्वानों को साहित्य का उपहार दिया गया।

युवाचार्यश्री एवं आचार्यश्री का विशेष दिशादर्शन प्राप्त हुआ। बहुत ही उत्साह और उल्लासपूर्ण वातावरण में आठों सत्रों की कार्यवाही संपन्न हुई। जनता ने विद्वानों के विचारों को समझा या नहीं, पर सबको पूरी शान्ति एवं धृति के साथ सुना। हज़ारों-हज़ारों महिलाओं की उपस्थिति में लगातार तीन दिन तक इतनी गंभीर चर्चा व्यवस्थित रूप में चली, इस बात से विद्वान बहुत प्रभावित हुए।

सबसे बड़ी उपलब्धि

गंगापुर में अक्षय तृतीया के दिन आचार्यवर के सान्निध्य में भगवती-सूत्र के अध्ययन का क्रम शुरू हुआ। अध्ययन काल में जैन विद्या परिषद बुलाने का निर्णय हुआ और उसके शोधपत्रों के लिए भगवती सूत्र को ही आधार मानने का निर्देश दिया गया। विषय का निर्धारण होने के कारण कई विद्वान चाहने पर भी इस परिषद् में सम्मिलित नहीं हो सके। विद्वान लोग कम आए या अधिक, उनके आगमन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है विद्वानों के निर्माण की। सन् १९८५ की जैन विद्या परिषद् की सबसे बड़ी उपलब्धि हुई एक साथ अनेक नये साधु-साध्वियों और समणियों द्वारा शोध क्षेत्र में प्रवेश की। शोधपत्रों के लिए विषय-निर्धारण और सामग्री संकलन करते समय तक उन लोगों को यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वे कुछ लिख सकेंगे। परमाराध्य आचार्यवर का आशीर्वाद, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। उसके साथ ही युवाचार्यश्री का सक्रिय मार्ग-दर्शन उपलब्ध हुआ। प्रत्येक साधु-साध्वी और समणी के शोधपत्र की रूपरेखा तैयार करने से लेकर उसे अंतिम रूप देने तक सारी प्रक्रिया के साक्षी युवाचार्यश्री स्वयं थे। यही कारण था कि उनके पहली बार लिखे गए शोधपत्रों को सुनकर वहां उपस्थित विद्वान बहुत प्रभावित हुए। कुछ विद्वानोंने तो यहां तक कह दिया कि आचार्यश्री ने अपने शिष्य-शिष्याओं का निर्माण इतने अच्छे ढंग से किया है कि इन्होंने हमारी वर्षों की साधना को पीछे छोड़ दिया।

जैन विद्या परिषद् के समागत विद्वानों की एक छोटी-सी परिचय गोष्ठी साध्वियों के स्थान पर हुई। साध्वियों को विद्वानों से परिचित कराया गया और विद्वानों को साध्वियों के अध्ययन, अध्यापन, सेवा, साधना, साहित्य-लेखन आदि की अवगति दी गई। आचार्यश्री के नेतृत्व में साध्वी-समाज की प्रगति की कहानी सुनकर विद्वान परिषद् विस्मित रह गई। विद्वानों के अनुरोध पर साध्वी कनकश्री जी ने प्राकृत भाषा में वक्तव्य दिया। इसका भी उनके मन पर बहुत अनुकूल असर हुआ। साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं के निरीक्षण में तो वे इतने मुग्ध हो गए कि उन्हें अपने अगले कार्यक्रम के समय का भी ध्यान नहीं रहा।

चामत्कारिक अनशन

आसीन्द के छिहत्तर वर्षीय वयोवृद्ध श्रावक श्री गणेशमलजी कांठेड़ हार्निया का ऑपरेशन कराने के लिए व्यावर गए थे। १५ अक्टूबर ८५ को उनका ऑपरेशन हो गया। टांके अभी तक खुले नहीं थे। १८ अक्टूबर ८५ को मध्याह्न के समय वे रस पी रहे थे। उन्हें स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) के दर्शन हुए और अनशन की प्रेरणा मिली। उन्होंने तत्काल चारों आहार का प्रत्याख्यान कर दिया। पुत्र नौरतनमल अंगूर लेकर आया तो उन्होंने अपने त्याग की वात कह दी। नौरतन ने बहुत समझाया, पर वे अटल थे। डॉक्टर को स्थिति की अवगति दी गई। उसने सोचा— दिमाग में कोई गड़वड़ हो गई है। अतः इन्हें जयपुर ले जाया जाए। किन्तु कांठेड़ बोले— मैं स्वस्थ हूं, सामान्य हूं। आप चिन्ता न करें। आखिर डॉक्टर ने वहीं पर हार्ट, दिमाग, रक्तचाप आदि की जांच की। सव कुछ सामान्य था। वहां से वे आसीन्द आकर आचार्यवर से अनशन की स्वीकृति लेने के लिए आमेट पहुंचे। स्वस्थ शरीर, सामान्य परिस्थिति, घूमते-फिरते व्यक्ति को अनशन की स्वीकृति कैसे मिल सकती थी? श्री कांठेड़जी वोले—गुरुदेव! आप कुछ भी कहें, मुझे तो गुरु के गुरु से स्वीकृति मिल चुकी है। आमेट से वे आसीन्द चले गए और पूरी दृढ़ता के साथ अनशन की आराधना करने लगे। उनकी दृढ़ संकल्पशक्ति विस्मय उत्पन्न करने वाली थी। अनशन काल में कई उपद्रव भी हुए। पर उनके पारिवारिक जनों में किसी प्रकार का प्रकम्पन नहीं हुआ। उन दिनों कांठेड़जी का घर पूरी तरह से धर्मस्थान जैसा वन गया। दिन-रात जप, भजन, स्वाध्याय, लोगों का आगमन, सन्तों का आध्यात्मिक सहयोग और परिजनों की जागरूकता। उस अवधि में उनको कई वार स्वामीजी के दर्शन हुए तथा उनके साथ संवाद स्थापित करने का अवसर मिला। आखिर ग्यारह दिनों के चौविहार अनशन में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके परिवार वालों ने सारे काम जैन संस्कार विधि से संपन्न किए। वे शीघ्र ही सामूहिक रूप में आचार्यवर के दर्शन करने और विशेष सम्वल प्राप्त करने के लिए आमेट पहुंच गए।

आचार्यवर ने श्री गणेशमलजी के अनशन को चामत्कारिक अनशन के रूप में स्वीकृत करते हुए निम्नलिखित पद्य कहे—

अद्भुत चामत्कारिक अनशन परतख आज निहारा है,
श्री कांठेड़ गणेशमलजी का यह अजब नजारा है,
साक्षात दर्शन हुए भिक्षु के और वढ़ी हिम्मत मन की,
सव कष्टों को काट वढ़ाई इज्जत भैक्षव शासन की॥ १॥
तोड़ी सारी रूढ़ियां, पाया अमर सुहाग।
पत्नी ने, परिवार ने समझा अपना भाग॥ २॥

श्री गणेशमलजी ने अनशन काल में ऐसी कई बातें बतायीं, जो उनसे परोक्ष में घटित होने पर भी उन्हें साक्षात् जैसी दिखाई दे रही थीं। २६ अक्टूबर ८५ को रात्रि में साढ़े आठ बजे कई श्रावकों की उपस्थिति में उन्होंने कुछ बातें बतायीं—

१. दो दिन बाद मेरा काम सिद्ध हो जाएगा।
२. मैं भीखणजी स्वामी की सेवा में जाऊंगा।
३. उदयपुर में होने वाला मर्यादा महोत्सव ऐतिहासिक एवं विशेष महत्त्वपूर्ण होगा।
४. आचार्यप्रवर अभी और तपेंगे। दुनिया में इनका बहुत यश फैलेगा एवं साथ-साथ विरोध भी चलेगा।
५. भिक्षु शासन बड़ा जयवंता है। इस पर पूर्ण श्रद्धा रखना।
६. अमृत महोत्सव विरोध के बावजूद सफल होगा।

श्री गणेशमलजी के इस प्रसंग को कोई अतिशयोक्ति मान सकता है। किन्तु जो लोग इसके साक्षी बनकर रहे हैं, वे इसे एक चमत्कार के रूप में अनुभव करते हैं।

प्रभावक अनशन

लाडनूं निवासी श्री जीवनमलजी दूगड़ की धर्मपत्नी श्रीमती गोगीदेवी दूगड़ ने तिरानवे वर्ष की परिपक्व वय में विलक्षण अनशन किया। श्राविका गोगीदेवी प्रारंभ से ही धार्मिक वृत्ति की महिला थी। लाडनूं में साध्वियों के आवास-स्थल के निकट ही रहने के कारण उसे उपासना का अच्छा अवसर मिला। अंतिम समय में उसने पूरी जागरूकता के साथ अचानक अनशन स्वीकार किया। चौवीस दिनों के अनशन में उसके विचार उत्तरोत्तर दृढ़ होते रहे। ऐसी मनोबली श्राविका को अपने देहत्याग के समय का पूर्वाभास हो गया। उसने प्रातः काल ही बता दिया कि आज सायंकाल ठीक छह बजे मेरा अनशन पूरा होगा। इस सूचना ने सबको सजग कर दिया। पांच बजे के बाद आगन्तुकों से घर भर गया। साढ़े पांच, पौने छह और देखते-देखते घड़ी की सुई छह और बारह के अंक पर पहुंची और चौवीस दिन के अनशन में श्राविका का स्वर्गवास हो गया। उसके पारिवाररिकजनों ने जैन संस्कार विधि से सारे काम संपन्न कर आमेट में आचार्यवर के दर्शन किए। ऐसे अनशन से धर्मशासन की प्रभावना होती है।

घर-घर में अमृत वर्षा

अक्टूवर का आखिरी दिन। चातुर्मास पूरा होने में मात्र २८ दिन शेष थे। आचार्यवर सुवह से शाम तक अपनी चर्या में व्यस्त रहते थे। प्रवचन, जनप्रतिवोध, अध्यापन, साहित्य-लेखन, स्वाध्याय और आगन्तुक लोगों के साथ धर्म-चर्चा। दिन भर लोगों की भीड़। आचार्यश्री के जीवन में ऐसे क्षण विरल ही होते हैं, जब आप एकान्त में रहते हों। आपकी साधना ऐसी अवश्य हो गई है कि भीड़ में भी अकेले रह सकते हैं। इतनी व्यस्तता में भी आमेट के लोग चाहते थे कि आचार्यश्री अपने चरणस्पर्श से उनके घरों को पवित्र करें। कोई सौ-पचास घर तो थे नहीं। साढ़े तीन सौ, चार सौ घरों में जाना वहुत श्रमसाध्य काम था। तेरापंथी परिवारों के अतिरिक्त जैन तथा वोरा समाज के लोग भी यही इच्छा रखते थे। आचार्यवर ने अपने समय से भी अधिक मूल्यांकन किया जनभावना का और पूरे गांव में परिभ्रमण करने का निश्चय कर लिया। ३१ अक्टूवर से ३ नवंवर तक चार दिनों में आपने पूरे गांव का तथा ५ से ७ नवंवर तक लक्ष्मी वाजार और स्टेशन का स्पर्श कर लिया। इस प्रकार एक सप्ताह में घर-घर अमृत वर्षा हो गई। इससे श्रद्धालु लोगों को जिस आनन्द का अनुभव हुआ वह अनिर्वचनीय था।

नयी शिक्षा नीति के सन्दर्भ में

सन् १९८५ में हमारे देश में दो वातों पर व्यापक चर्चा हुई—इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कैसे? और नयी शिक्षा नीति। दोनों वातें देश के प्रधानमंत्री राजीव गांधी के आह्वान पर चल रही थीं, इसलिए शिक्षाविद्, राजनेता, धर्मनेता और वौद्धिक लोग सभी उन चर्चाओं से जुड़े हुए थे। आचार्यवर के सान्निध्य में भी समय-समय पर ऐसी विचार-चर्चा आयोजित होती रहती है। आचार्यश्री ने शिक्षा के साथ मूल्यपरक शिक्षा को जोड़ने की वात कही और उसे 'जीवन-विज्ञान' नाम से प्रस्तुति दी गई। अमृत महोत्सव वर्ष को युवाचार्यश्री ने जीवन विज्ञान वर्ष के रूप में मनाने की उद्घोषण की। आचार्यश्री के सान्निध्य में जीवन-विज्ञान के क्षेत्र में जो काम हुआ, उसने राजस्थान सरकार को प्रभावित किया। उसने भीलवाड़ा तथा आमेट में जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए। उनमें चालीस स्कूलों के दो-दो अध्यापकों को जीवन-विज्ञान का प्रशिक्षण दिया गया। शिविरों के अंतिम दिनों में प्रधानाध्यापक तथा जिला शिक्षाधिकारी भी उनमें उपस्थित रहे। ये शिविर राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर तथा जैन विश्व भारती के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित किए गए। दोनों शिविरों के परिणाम उत्साहवर्धक रहे।

शिक्षा जीवन की आवश्यकता है। पर इसका उद्देश्य मनुष्य के बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं है। केवल बौद्धिक विकास खतरा है। इस बात को ध्यान में रखकर कोठारी आयोग और डॉ० राधाकृष्णन आयोग ने शिक्षानीति के बारे में पुनर्मूल्यांकन किया, पर काम नहीं बना। संपूर्ण रूप से स्वस्थ, जागृत और गतिशील जीवन का निर्माण करने वाली शिक्षा ही राष्ट्र की आकांक्षा के अनुरूप व्यक्तित्व दे सकती है।

७ नवंबर को आचार्यवर के मंगल सान्निध्य में जीवन-विज्ञान के सन्दर्भ में 'नयी शिक्षा नीति' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई। यह संगोष्ठी ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा समायोजित थी। राजस्थान के ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज्यमंत्री श्री रामपाल उपाध्याय इस संगोष्ठी के अध्यक्ष थे। भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षामंत्री डॉ० कालूलाल श्रीमाली, महामण्डलेश्वर मुरली मनोहर शरण, ग्रामीण एवं पंचायती राज्य निदेशक श्री लक्ष्मीचन्द्र गुप्त, उदयपुर क्षेत्र की विधायिका कुमारी गिरिजा व्यास, राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर के निदेशक श्री भंवरलाल शर्मा, राजस्थान के राज्यमंत्री श्री महेन्द्रकुमार परमार, विकास आयुक्त श्री तेजकुमार तथा पंचायत समितियों के पंच, सरपंच एवं जिला शिक्षाधिकारी इस संगोष्ठी में उपस्थित थे।

महिलाएं शिक्षित बनें

शिक्षा संगोष्ठी के प्रथम सत्र का कार्यक्रम अमृत समवसरण में हजारों लोगों की उपस्थिति में चला। डॉ० डी० सी० जैन मंच संचालक थे और वक्ता थे डॉ० श्रीमाली, गिरिजा व्यास, महामण्डलेश्वरजी एवं उपाध्यायजी। श्री लक्ष्मीचन्द्र गुप्त ने विषय प्रवेश करते हुए कहा—शिक्षा ऐसा विषय है, जो हर परिवार से जुड़ा हुआ है। शैक्षिक जगत में प्राथमिक शिक्षा विकास की मूलभूत बुनियाद है। राजस्थान शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। यहां की महिलाएं बहुत कम शिक्षित हैं। अशिक्षित महिलाएं बच्चों की प्राथमिक शिक्षा में अपनी भागीदारी कैसे निभा सकेंगी ? प्राथमिक शिक्षा के साथ बच्चों में अनुशासन, स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता के भाव कैसे विकसित हों, इस संबंध में आचार्यप्रवर हमारा मार्ग-दर्शन करेंगे।

शिक्षा नीति की पूर्णता

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने शिक्षा संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा—कोई

श्रुत की पूजा करते हैं और कोई भगवान् की पूजा करते हैं। मेरी दृष्टि में देवता और श्रुत में कोई अन्तर नहीं है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने इसी तथ्य को अभिव्यक्ति देते हुए कहा है—

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या, ये यजन्ते हि देवताम्।
न किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयो:॥

आप्त पुरुषों ने श्रुतपूजा और देवपूजा में कोई अन्तर नहीं बताया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में ज्ञान का कितना महत्त्व है। पर यहां यह समझना जरूरी है कि वह ज्ञान कैसा है? वह है जीवन-विज्ञान, जीने का ज्ञान, जीने की कला। जीवन की कला चरित्र के निर्माण से निखरती है। हमारे यहां सहअस्तित्व का सिद्धान्त है। किन्तु शिक्षा एवं चरित्रशून्यता में सहअस्तित्व वांछनीय नहीं है। चरित्रशून्य व्यक्ति डिग्री पाकर भी क्या करेगा? भारत वर्ष में शिक्षा की स्थिति बहुत दयनीय है। यहां शिक्षा का स्तर इतना गिर गया है कि जिस विषय में डॉक्टरेट की जाती है, उसका पूरा ज्ञान ही नहीं होता। जब तक डिग्री का महत्त्व रहेगा, शिक्षा को मात्र जीविका साधन माना जाएगा, भारतीय संस्कृति के अनुरूप बच्चों का निर्माण नहीं होगा। पुस्तकीय शिक्षा अधूरी है। उसके साथ प्रायोगिक शिक्षा की बात नत्थी करने से ही हमारी शिक्षानीति संपूर्ण बनेगी।

बूंद-बूंद विचार

'शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य भारत सरकार को १९६० में पूरा करना था, वह आज १९८५ तक भी पूरा नहीं हुआ है। इस काम के लिए देश के प्रत्येक नागरिक की अपेक्षाओं को समझना होगा और उन्हें पूरा करना होगा।' उक्त विचार डॉ० कालूलाल श्रीमाली के हैं।

उदयपुर क्षेत्र की विधायक कुमारी गिरिजा व्यास ने श्री रामपालजी उपाध्याय को धन्यवाद देते हुए कहा—'आपने शिक्षा संगोष्ठी का उद्‌घाटन ऐसे व्यक्ति से कराया है, जो समूचे हिन्दुस्तान को दिशा-बोध दे सकते हैं और हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठा दे सकते हैं। जब-जब संस्कृति भ्रष्ट होती है, ऐसे महापुरुष उसे नयी दिशा देते हैं। लोक-उत्थान के लिए लोक-संस्कृति को जगाने वाले व्यक्ति ही लोक-संग्रह करने में सफल होते हैं। आचार्यश्री तुलसी की आत्मा में हिन्दुस्तान और उसकी संस्कृति के प्रति जो लगाव है, उसी से शिक्षा-नीति में नये तत्त्वों का प्रवेश संभव है। हमने अपने देश की आजादी के बाद बहुत कुछ पाया, पर नैतिकता को खो दिया। वैज्ञानिक शिक्षा अधूरी रहेगी, जब तक इसमें नैतिक मूल्यों का समावेश नहीं होगा। आचार्यश्री ने जीवन-विज्ञान के द्वारा

मूल्यपरक शिक्षा के नये आयाम खोले हैं, इस बात को ठीक तरह से समझने के बाद ही नयी शिक्षा-नीति का निर्धारण होना चाहिए।'

महामंडलेश्वर मुरली मनोहर शरण ने कहा—'प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में माताओं को शिक्षित बनाना जरूरी है। इनके शिक्षित बनने का सीधा फलित है, घर को सरस्वती का मंदिर बनाना। मां को शिक्षित किये बिना प्राथमिक शिक्षा कैसे होगी? एक समय था, जब परिवार ही विद्यालय था। आज वह क्रम बदल गया है।'

आपने आगे कहा—'आचार्यश्री तुलसी राष्ट्रीय व्यक्तित्व से धनी हैं और युवाचार्यश्री ज्ञान-विज्ञान से धनी हैं। हमें इन दो महापुरुषों से दिव्य प्रेरणा पाकर मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक संस्कारों से संपन्न बनाना है।'

श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने अपने प्रासंगिक प्रवचन में कहा—'समस्या की बात सब करते हैं, समाधान नहीं खोजते। बीमारी है तो उसका उपचार भी होना चाहिए। मेरी दृष्टि में समस्या और समाधान में कोई दूरी है भी नहीं, अपेक्षा है उन दोनों को जोड़ने की। आज मनुष्य का सारा ध्यान इक्कीसवीं सदी पर टिका हुआ है। मैं जानना चाहता हूं कि इक्कीसवीं सदी में प्रवेश हिंसा, शोषण, गरीबी और आतंक के साथ होगा या इन्हें छोड़कर? केवल टेक्नॉलॉजी के साथ अगली सदी में कदम रखना है या भारतीय विशिष्टता के साथ? जब तक हम शिक्षा के साथ श्रम, स्वास्थ्य, बुद्धि और चरित्र विकास जैसी बातों को नहीं जोड़ेंगे, विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकेगा।'

युवाचार्यश्री ने नयी शिक्षा-नीति के संदर्भ में बहुत विस्तार के साथ जीवन-विज्ञान पर प्रकाश डाला।

संगोष्ठी के अध्यक्ष श्री उपाध्यायजी ने अपना मन खोलते हुए कहा—'आज की यह शिक्षा संगोष्ठी नहीं होती तो हमारी शिक्षा एक पाये वाली खटिया की तरह होती। युवाचार्यश्री ने चतुष्पदी के योग की जो बात कही है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा को संपूर्ण बनाने के लिए ऐसा करना ही होगा। जीवन-विज्ञान मानवीय मूल्यों और आध्यात्मिक संस्कारों का बोध देने वाली एक व्यापक पद्धति है। हमें इसके सिद्धांतों को समझकर प्रयोग करना चाहिए।'

जूते यहां सुशोभित न करें

मध्याह्न में आचार्यवर के सान्निध्य में एक विचार-गोष्ठी का आयोजन था। उसमें शिक्षा सचिव सहित अनेक जिला अधिकारी तथा शिक्षक सम्मिलित हुए। इस विचार गोष्ठी का संचालन कर रहे थे श्री रामपालजी उपाध्याय। वे एक-एक व्यक्ति को विचाराभिव्यक्ति के लिए आमंत्रित कर रहे थे। एक सहायक

अध्यापक अपनी कुर्सी छोड़कर बोलने के लिए आ रहे थे। उनके पांवों में जूते थे। उपाध्यायजी ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा—'आज की यह संगोष्ठी किसी सचिवालय या होटल में नहीं, एक महान् आचार्य की सन्निधि में हो रही है। इसलिए आप जूतों को यहां सुशोभित न करें। मैं तो पहले से ही अपने जूते कार में छोड़कर आया हूं। आप सब जूते खोलकर ही बोलने के लिए आएं, यह हमारी संस्कृति है।'

देखते-देखते प्रायः सबके जूते खुल गये और सभा में एक संयत हास के साथ सन्नाटा छा गया।

क्या होना चाहिए, यह बताएं

शिक्षा विचार गोष्ठी में एक-एक वक्ता खड़े होकर अपने विचार दे रहे थे। अधिक वक्ताओं ने यही बताया कि कहां क्या हो रहा है? उपाध्यायजी उस दिन विशेष रूप से विनोदी मूड में सभा का संचालन कर रहे थे। कुछ वक्ताओं के विचार सुनने के बाद वे बोले—'हो रहा है क्या कहां, यह कहा तो क्या कहा?' मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप 'क्या होना चाहिए, कैसे होना चाहिए?' इन बिंदुओं पर अपने विचार दें।

एक अध्यापक के वक्तव्य पर वहां उपस्थित लोगों ने ताली बजायी। उपाध्यायजी ने अविलम्ब सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा—इस सभा में ताली बजाना सर्वथा वर्जित है। लोग सहम गये। वक्ता और श्रोता दोनों के लिए यह आवश्यक है कि वे जिस सभा में उपस्थित हैं, उसकी सांस्कृतिक परम्परा क्या है, इसे भी समझें। इस संदर्भ में 'आयारो' का सूक्त—'के यं पुरिसे कंचणए' व्यक्ति कौन है, किसके प्रति आस्थाशील है, यह जानना बहुत जरूरी है।

तीन घंटे तक चली इस विचार-गोष्ठी में एक उन्मुक्त चर्चा हुई, जो सोद्देश्य थी, सरस थी और कुछ परिणाम लाने वाली थी। इसमें जीवन-विज्ञान के पाठ्यक्रम को गतिशील बनाने की दृष्टि से एक वातावरण बना। आचार्यश्री और युवाचार्यश्री के सान्निध्य एवं मार्ग-दर्शन से सब लोगों को नया चिन्तन और नया उत्साह मिला। शैक्षिक संस्थान के निदेशक श्री भंवरलाल शर्मा ने आभार-ज्ञापन किया।

सौ गांव अणुव्रत गांव बने

मेवाड़ में कई व्यक्ति अणुव्रत के अच्छे कार्यकर्त्ता हैं। अणुव्रत की आचार संहिता में उनकी निष्ठा है। वे वैसा जीवन जीना चाहते हैं और दूसरों को प्रेरणा भी देते

हैं। वहां के कार्यकर्त्ताओं और साधु-साध्वियों के प्रयत्न से मेवाड़ में कई क्षेत्र अणुव्रत-ग्राम के रूप में विकसित हो रहे हैं। ७ नवम्वर को कुछ कार्यकर्त्ता एक नयी योजना लेकर आये। अपनी योजना का प्रस्तुतीकरण करते हुए उन्होंने कहा—अमृत-महोत्सव के उपलक्ष्य में मेवाड़ में सौ गांवों को अणुव्रत गांव वनाने का लक्ष्य है। दस-दस गांवों का एक-एक वर्ग वना दिया जाए। जैसे—आमेट, राजसमंद, गंगापुर, राशमी आदि। इन अणुव्रत गांवों में कोई व्यक्ति निरक्षर न रहे। दुर्व्यसनों का शिकार न रहे। किसी के लिए चिकित्सा का अभाव न रहे आदि। इस काम में सरकारी स्तर पर प्रयत्न हो और कुछ अणुव्रती कार्यकर्त्ता पूरे मनोयोग से जुड़ें तभी यह काम आगे वढ़ सकता है। आचार्यश्री ने उनकी योजना सुन ली। योजना तो वहुत अच्छी है, समय पर इसकी क्रियान्विति हो, यह अपेक्षा है।

गुरु की कृपा

७ नवम्वर को लेडी डॉक्टर चन्द्रकिरण श्री पोकरचंदजी तातेड़ के साथ आचार्यवर के दर्शन करने आमेट आयी। डॉक्टर कई वर्षों से संपर्क में है। उसके मन में आचार्यप्रवर के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। वह कहती है—ऑपरेशन कक्ष में जाते समय मैं आचार्यजी का नाम लेकर जाती हूं। इस नाम में इतनी ताकत है कि उलझे हुए मरीज भी वहुत कम समय में स्वस्थ हो जाते हैं। वह वहुत दिनों से आचार्यश्री के दर्शन करने की वात सोच रही थी, पर समय नहीं मिला। कुछ समय पूर्व उसे सूचना मिली कि आमेट में साध्वियों को उसकी अपेक्षा है। उसने तत्काल आमेट पहुंचने का निर्णय ले लिया। वह कार से चली और मारवाड़ से मेवाड़ पहुंच गयी। गोमती चौराहे के पास रास्ते में एक भैंस खड़ी थी। गाड़ी पूरी रफ्तार से चल रही थी। तत्काल ब्रेक न लगने से एक्सीडेंट हो गया। गाड़ी कई जगह से क्षतिग्रस्त हो गयी। भीतर वैठे सभी लोग सही-सलामत थे। ड्राइवर वोला—थोड़ी देर यहां रुककर विश्राम कर लें। यह वात सुनकर डॉ० चन्द्रकिरण ने कहा—गुरु की कृपा से किसी को कुछ भी नहीं हुआ है। यहां समय मत लगाओ। चलते रहो। गुरु के दर्शन पाकर सव कुछ ठीक हो जाएगा।

चामत्कारिक चिकित्सा

आमेट निवासी चांदमलजी चौपड़ का पुत्र चिमनकुमार वम्वई से दर्शन करने के लिए आया। दो दिन वाद ही उसे वुखार हो गया। वुखार इतना तेज था कि उसे वार-वार वेहोशी आने लगी। डॉक्टर को वुलाया। उपचार कराया। पर पूरा

लाभ नहीं हुआ। चांदमलजी ने आचार्यवर से दर्शन देने के लिए अनुरोध किया। आप पधारे। चिमन आंख मूंदे निढाल लेटा हुआ था। उसके पिता बोले—बेटा! देखो, सामने कौन हैं? दर्शन करो। चिमन ने आंखें खोलीं। गुरुदेव को देखते ही वह उछलकर नीचे उतरा और गुरुदेव के चरणों में लेट गया। आचार्यवर ने उसको मंगल पाठ सुनाया। कुछ समय बाद ही उसका बुखार उतर गया। चार दिनों में वह पूरी तरह से स्वस्थ हो गया।

एक प्रसंग : एक प्रतिक्रिया

डॉक्टर जतन डागा (देवगढ़मदारिया) बम्बई से आचार्यवर के दर्शन करने आया। उसके साथ उसकी पत्नी, दो पुत्रियां—श्वेता तीन वर्ष, स्वाति पांच वर्ष और एक उनका चचेरा भाई नितिन था। तीनों बच्चे उछलते-कूदते आचार्यश्री के पास पहुंचे। लड़के को संकेत दिया गया तो उसने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श किया। उसे देखकर दोनों बच्चियां भी आगे बढ़ने लगीं। उन्हें बीच में ही रोक दिया गया। एक क्षण में उनके चेहरे पर मायूसी छा गयी। भैया गुरुदेव के पांव छू सकता है तब हम क्यों नहीं छू सकतीं? इस प्रश्न ने उनके मन को उद्वेलित कर दिया। एक समय था, जब बच्चे और बच्ची के संबंध में समाज की अवधारणाएं बहुत भिन्न-भिन्न थीं। उन्हीं अवधारणाओं के आधार पर उनके पालन-पोषण और शिक्षण का क्रम चलता था। आज प्रबुद्ध लोगों की अवधारणाएं बदल गयी हैं। इसलिए बच्चियों के पालन-पोषण में भी अपेक्षित सावधानी बरती जाती है। फिर भी किसी बिंदु पर थोड़ा भी अन्तर परिलक्षित होने पर उससे होने वाली प्रतिक्रिया को टालना संभव नहीं है। लड़का अमुक काम कर सकता है तो लड़की क्यों नहीं? इस क्यों का उत्तर मनोवैज्ञानिक तरीके से नहीं दिया जाएगा, तब तक इस नयी पीढ़ी की मानसिकता को नहीं बदला जा सकेगा। कच्ची उम्र में होने वाली छोटी-सी प्रतिक्रिया न जाने भीतर-ही-भीतर अवचेतन मन को किस रूप में प्रभावित कर दे। इस दृष्टि से काफी सतर्कता रखने की जरूरत है।

शतजीवी चिरं भूयात्

१४ नवम्बर १९८५, कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। आचार्यश्री अपने जीवन के इकहत्तर वसंत पूरे कर बहत्तरवें वसंत में प्रवेश कर रहे थे। वसंत के आगमन से प्रकृति का कण-कण खिल उठता है, वैसे ही आचार्यवर के अनुयायियों और भक्तों के सूरजमुखी मन खिल उठे। मेवाड़ के गांव-गांव से भक्त लोग आमेट पहुंचे। देश के दूरवर्ती क्षेत्रों के लोग भी समय पर पहुंच गये। उस दिन आचार्यवर

चार बजे से पहले ही जाग गये। ध्यान, चिन्तन और विगत वर्ष का सिंहावलोकन करते-करते पांच बज गये। तब तक अनेक साधु आपके परिपार्श्व में आकर बैठ गये। लगभग पांच बजे युवाचार्यश्री ने आचार्यवर को जन्मदिन की बधाई दी और मंगल भावनाओं से ओतप्रोत आशुरचित दो संस्कृत श्लोक कहे—

शतशाखी यतो जातः, संघः कल्पतरुर्महान्।
शतजीवी चिरं भूयात्, आचार्यस्तुलसीप्रभुः॥
सोच्छ्वासा विजयोल्लासाः सापेक्षा सुसमन्विताः।
सायासा सहजानन्दा श्रीः धीः कीर्तिः प्रवर्धताम्॥

—जिनके प्रयत्न पुरुषार्थ और आशीर्वाद से तेरापंथ धर्मसंघ रूप यह महान् कल्पवृक्ष शतशाखी बना है, वे हमारे प्रभु आचार्य तुलसी शतजीवी बनें। आचार्यश्री ने धर्मसंघ को नये-नये उन्मेष दिए हैं, उन उन्मेषों की क्रियान्विति से संघ को विजय के उल्लास से भरा है। आचार्यश्री के सारे कदम सापेक्ष और सुसमन्वित हैं। वे निरन्तर श्रम करते हैं। फिर भी सहज आनन्द से भरे रहते हैं। उन्होंने श्री, बुद्धि और कीर्ति के अप्रतिम शिखर को छुआ है। उनकी ये संपदाएं सदा बढ़ती रहें, यही मंगल भावना है।

युवाचार्यश्री की विद्वता और श्रद्धापगी अभिवन्दना तथा वहां उपस्थित संतों की मानसिक भावार्पणा के बाद आचार्यवर ने कहा—'आज तेरापंथ धर्मसंघ की प्रगति का सारा श्रेय मुझे दिया जा रहा है। पर मैंने जो कुछ किया है, उसमें मूलभूत आधार हमारे पूर्वाचार्य हैं। उनके द्वारा प्रदत्त ठोस धरातल पर ही कुछ काम होने की संभावना है। वर्तमान में युवाचार्य महाप्रज्ञजी का विरल योग कार्यकारी बन रहा है। इसके साथ हमारे विनीत, प्रबुद्ध और समर्पित साधु-साध्वियों तथा श्रावक-श्राविकाओं के असाधारण सहयोग से ही मैं कुछ करने का साहस कर सकता हूं। इन सबके समवेत योग से ही मैं अपने जीवन के क्षणों को सार्थकता दे पाया हूं। मैंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अकेला आगे बढ़ूं। संघ के साथ-साथ आगे बढ़ने की मेरी अभीप्सा में ही मुझे तोष मिला है।

यह संक्षिप्त कार्यक्रम सूर्योदय से पूर्व का है। पूर्व नियोजित न होने पर भी यह कार्यक्रम बहुत रोचक और प्रेरक रहा। इसी समय तेरापंथ सभा-भवन से संगीत की मधुर स्वर-लहरियों में मंगल भावना भरे गीत प्रसारित किए गए। प्रकृति और पुरुष—दोनों के कण-कण पुलकन से भर उठे।

उस दिन के कार्यक्रमों में प्रभात-जागरिका भी एक आकर्षक उपक्रम था। बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष हजारों की संख्या में अमृत समवसरण से चले। मंगल गीतों एवं जयघोषों से पूरा वातावरण मुखर था। स्थान-स्थान पर दर्शकों की उत्सुक निगाहें उस नयनाभिराम दृश्य को देखकर थकती ही नहीं थीं। शहर की परिक्रमा कर जागरिका के यात्री लौट आए। आचार्यवर ने उनको विशेष

संदेश दिया।

अहिंसा सार्वभौम दिवस

आचार्यवर का जन्मदिन पिछले कई वर्षों से अणुव्रत-दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। इस बार अमृत महोत्सव के सन्दर्भ में 'अहिंसा सार्वभौम मंच' की दृष्टि से सघन चिन्तन चला और यह निर्णय लिया गया कि आचार्यश्री का जन्मदिन 'अहिंसा सार्वभौम दिवस' के रूप में मनाया जाएगा। अहिंसा जीवन का शाश्वत मूल्य है। अपनी खुशी की तलाश में दूसरे की खुशियों में बाधा न पहुंचाना अहिंसा का आदर्श है। इस आदर्श की दुहाई बहुत दी जाती है, पर इस तक पहुंच विरले व्यक्तियों की है। इस आदर्श को व्यापक रूप देने के लिए अहिंसा की कज का आविर्भाव जरूरी है। अहिंसा सार्वभौम इसी उद्देश्य से की गई एक नयी प्रकल्पना है। अहिंसा सार्वभौम के स्वरूप का यह विश्लेषण किया है अहिंसा सार्वभौम मंच के प्रेरणास्रोत आचार्यश्री तुलसी ने।

अहिंसा सार्वभौम की आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्यश्री ने बताया कि हिंसा का आतंक केवल किसी राष्ट्र विशेष में नहीं, समूचे संसार में है। इस विषय में किए गए सर्वेक्षणों के अनुसार ईसा पूर्व छत्तीस सौ वर्ष से लेकर आज तक मानव जाति कुल दो सौ बानवे वर्ष ही शान्ति से रह सकी। इस बीच छोटे-बड़े चौदह हजार पांच सौ तिरानवे युद्ध लड़े गए। उन युद्धों में तीन अरब व्यक्तियों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।

अहिंसा सार्वभौम का उद्देश्य केवल विचार चर्चाएं आयोजित करने में ही पूरा नहीं हो जाएगा। उसे राष्ट्र की जनता को कार्यक्रम देना होगा। अहिंसा के विषय में अनुसंधान, प्रयोग और प्रशिक्षण, इन तीन कार्यक्रमों को आधार बनाकर अहिंसानिष्ठ व्यक्ति कुछ काम करेंगे तो अहिंसा की तेजस्विता बढ़ेगी और वह हिंसा के सामने एक चुनौती बनकर खड़ी हो सकेगी। मानव जाति को आज जिन समस्याओं से जूझना पड़ रहा है, उनके समाधान में अहिंसा-सार्वभौम एक छोटी-सी प्रकाश किरण बनकर भी काम करेगा तो पूरी मानव जाति को त्राण मिलेगा, इस विश्वास को खंडित नहीं किया जा सकता। अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति ने इस कार्यक्रम को व्यापक बनाने के लिए हिंसा के विरुद्ध हस्ताक्षर अभियान और अहिंसक मंच की स्थापना आदि कार्यों को देशव्यापी स्तर पर चलाने का निर्णय लिया।

भारत के स्वर्गीय प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का जन्मदिन १४ नवंबर को आता है। इस बार आचार्यश्री के जन्म-दिन की तारीख भी यही थी। एक राजनैतिक व्यक्तित्व, एक धार्मिक व्यक्तित्व। दो ध्रुवों के उत्स का इस रूप

में मिलन, अहिंसा की ऊर्जा के आविर्भाव में किंचित भी निमित्त बना तो यह आयोजन अपने आप में लोक संस्कृति की अमूल्य धरोहर बन जाएगा।

प्रातः साढ़े नौ बजे अमृत समवसरण में अहिंसा सार्वभौम दिवस का कार्यक्रम शुरू हुआ। मंगल-गीत, शुभ-कामना समर्पण और आचार्यश्री के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने वाले बहुत कम समय में अपनी-अपनी भावना प्रकट कर रहे थे। वक्ताओं और गीतकारों की सूची देकर उस असीम व्यक्तित्व को सीमित नहीं करना है। समवसरण में उपस्थित हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में उस महान् व्यक्तित्व के प्रति अपनी भावांजलियां समर्पित कर उनके दीर्घ जीवन की मंगल कामना कर रहा था।

समझ से दूर

राजस्थान विद्यापीठ के कुलपति श्री जनार्दनराय नागर ने कहा—गांधी के बाद अहिंसा के क्षेत्र में आचार्य तुलसी महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। गांधी ने सत्य और अहिंसा का मार्ग बताया था। आचार्यश्री ने उस मार्ग पर चलने के लिए व्रत स्वीकार करने की बात कही। आज हमारा घर, पड़ोस और राष्ट्र सब हिंसा को आधार मानकर चल रहे हैं, यह भयंकर भूल है। हमारे वैज्ञानिक भी राजनीतिज्ञों के दास हो गए हैं। उन्होंने स्टारवार की परिकल्पना ही नहीं, सामग्री भी प्रस्तुत कर दी है। यह मानव जाति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। आचार्यश्री इस खतरे से उबरने का मार्ग सुझा रहे हैं। मैं बहुत लम्बे अरसे से आचार्यश्री को समझने का प्रयत्न करता रहा पर वे मेरी समझ से दूर रहे। जब से उनके विचार मेरी समझ में आए, मुझे लगा वे मजहब से दूर भारतीय संस्कृति को एक शुद्ध, ठोस आध्यात्मिक आधार प्रदान कर रहे हैं। हमारा विद्यापीठ परिवार उन्हें 'भारत-ज्योति' के रूप में देख रहा है।

जीवंत व्यक्तित्व के धनी

युवाचार्यश्री ने उस अवसर पर अपने प्रेरक प्रवचन में कहा—'आज का यह पवित्र क्षण उल्लास, पुलकन और रोमांच का क्षण है। आज से दो दिन पूर्व लोगों ने 'श्री' की आराधना की, पर अगले ही दिन वे समझ गए कि 'श्री' ही सब कुछ नहीं है। यह समझ में आते ही वे त्याग के प्रतीक आचार्यवर का अभिनन्दन करने के लिए आमेट पहुंच गए। आचार्यश्री जीवंत व्यक्तित्व के धनी हैं। वही व्यक्ति जीवंत व्यक्तित्व का धनी होता है, जो अपनी दुर्बलताओं के स्वीकरण एवं परिष्करण की क्षमता रखता है। एक संस्कृत कवि ने सूरज से कहा—तुम्हारा

चमकना मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम आते हो तब अपने परिवार के ग्रह, नक्षत्र और तारों की सत्ता को आवृत कर अकेले चमकते हो। चन्द्रमा अपने पूरे परिवार के साथ चमकता है, इसलिए वह अच्छा लगता है।

यही बात मैं आचार्यश्री के सन्दर्भ में देखता हूं। आप विकास के पथ पर अकेले नहीं बढ़े। आपने पूरे धर्म-परिवार को विकास के रास्ते पर बढ़ाया। इसलिए आप सबके श्रद्धेय हैं। युवाचार्यश्री ने अपने प्रवचन में अहिंसा सार्वभौम के सम्बन्ध में भी विस्तार से बताया।

कुंजरे सट्ठिहायणे

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा—मेरा जन्म सं० १९७१ का है। आज मैं इकहत्तर वर्ष पूरे कर आगे बढ़ रहा हूं। मैंने 'मातृदेवो भव, आचार्य देवो भव' इन निदेशक पदों के अनुसार अपने जीवन के ग्यारह-ग्यारह वर्ष समान रूप से अपनी संसार पक्षीया मां एवं गुरु के चरणों में समर्पित रहकर बिताए। बाईस वर्ष की उम्र में मेरे कंधों पर धर्मसंघ का दायित्व आ गया। ग्यारह वर्ष गृहस्थ जीवन के छोड़ देने से मेरे साधु-जीवन के साठ वर्ष पूरे हो रहे हैं। साठ वर्षों का मुनि जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। वह हाथी महान् होता है, जो साठ वर्ष का हो जाता है—कुंजरे सट्ठिहायणे। इस जीवन के साठ वर्ष पूरे करते समय मैं बहुत-बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं।

मुझे साठ वर्ष के साधनाकालीन जीवन का एक-एक क्षण याद है। इस काल में मैंने कोई भूल नहीं की, यह बात नहीं है। मैं किसी को कुछ कहता हूं तो अपनी भूल तत्काल स्मृति में आ जाती है। मैंने इन साठ वर्षों में अपने लिए मुख्य रूप से दो काम किए—

- मूर्छा के परित्याग का प्रयत्न।
- आराधना की साधना का प्रयत्न।

इन प्रयत्नों में मुझे कहां तक सफलता मिली है, कह नहीं सकता। इदं तत्त्वं केवलिगम्यम्—केवली भगवान् ही इस बात को जान सकते हैं। इतना अवश्य कह सकता हूं कि राग की मूर्च्छा कम हुई है, द्वेष की मूर्च्छा काफी कम हुई। इसी कारण मैं प्रशंसा और निन्दा की स्थिति में भी बराबर सन्तुलित रह सका।

आराधना दो प्रकार की होती है—धार्मिक की आराधना, केवली की आराधना। केवली की आराधना के दो रूप हैं—अन्तकृत की आराधना (मोक्ष की आराधना) और कल्पोपन्न की आराधना। केवली की आराधना में कल्पोपन्न

की आराधना कैसे संभव है ? यह प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है। इसके समाधान में आगम कहते हैं—केवली तीन प्रकार के होते हैं—अवधिज्ञान केवली, मनःपर्यवज्ञान केवली और केवलज्ञान केवली। अवधिज्ञान केवली और मनःपर्यव-ज्ञान केवली कल्पोपन्न की आराधना करते हैं। धार्मिक की आराधना भी दो प्रकार की है—श्रुत धर्म की आराधना, चारित्र धर्म की आराधना। मैंने धार्मिक की आराधना करने का प्रयत्न किया है। संसार की स्थिति कैसी भी हो, हमें निराश नहीं होना है, काम करना है। यदि परिस्थितियों से आहत होकर हमने काम करना छोड़ दिया तो हमारी भावी पीढ़ी काम करना ही भूल जाएगी। इसलिए हमें सतत सक्रियता का जीवन जीना है। आप सबका उत्साह मुझे इस सक्रियता में बल दे रहा है, ऊर्जा दे रहा है। अपने बहत्तरवें वर्ष-प्रवेश के अवसर पर मैं खुश हूं। मेरी खुशी में आप सब भागीदार बने हैं, इस बात की भी मुझे खुशी है।

अहिंसा गीत के प्रकम्पन

अहिंसा सार्वभौम के सम्बन्ध में चिन्तन देते हुए आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में कहा—अणुयुग की विभीषिका से आज समूचा विश्व संत्रस्त है। इतने अणुअस्त्र निर्मित हो गए हैं कि देखते-देखते सारा संसार भस्मीभूत हो सकता है। इस समस्या का समाधान चिन्ता करने से नहीं होगा। यदि आप लोग अहिंसा का व्रत स्वीकार करें, अणुव्रत के अनुसार जीवन-यापन करें तो सब अस्त्रशस्त्रों को अपनी मौत मरना होगा।

अहिंसा की शक्ति का लोकजीवन से परिचय हो, अहिंसा के हथियार का किस रूप में उपयोग हो तथा अहिंसा के प्रति गंभीरनिष्ठा का जागरण हो, इस दृष्टि से आचार्यवर ने 'अहिंसा सार्वभौम दिवस' को ध्यान में रखकर एक 'अहिंसा-गीत' बनाया। अमृत समवसरण में जब आपने उस गीत का संगान किया तब एक बारगी तो सारा वातावरण अहिंसा के प्रकम्पनों से भर उठा उस गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

जय हे जय जीवनदाता,
समभाव सुधा का सिंचन दो, अमिताभ अहिंसा माता।
जय हे जय जीवन दाता।
मैत्री करुणा समता संयम शम आत्मतुला ये सारे,
हैं तेरे नाना रूप शान्ति के सदा सजग रखवारे,
अभय और आश्वासन की तू अनुपम अनुसन्धाता।

यह पूरा गीत पठनीय, मननीय एवं स्मरणीय है।

कुछ उपहार

'ज्योति पुरुष रै स्वागत में दीवाली आवै है' साध्वियों द्वारा इस सामूहिक अभ्यर्थना के वाद जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में आचार्यश्री को कुछ उपहार भेंट किए गए। उन उपहारों में आचार्यश्री का भोजनपात्र (तासक) अखरोट से वना मंदिर और धागे से गूंथे गए वड़े-वड़े मनकों की माला ने दर्शकों के मन को वांध लिया। भोजनपात्र कला की दृष्टि से अद्भुत था। उसमें आचार्यश्री की धर्मशासन के गौरवशाली पचास वर्षों को पचास प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी गई है। प्रत्येक वर्ष की एक-एक उपलब्धि का प्रतीक उसका समय और उसकी सूचना लेखनी के सहारे तासक पर उतारी गई है। अक्षरों की वनावट इतनी सुन्दर है कि उस पात्र को देखने के वाद निगाहें वहां से हटती ही नहीं हैं। पात्र के पीछे भारत का पूरा नक्शा अंकित कर उसमें आचार्यवर के यात्रापथ को रेखांकित किया गया है। इस कलाकृति को आचार्यवर ने भी वहुत पसन्द किया और कलाकार साध्वी रामकुमारीजी की कला को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें एक वर्ष तक 'विगय वर्जन' की वक्सीस की। प्रतीक-निर्माण की कल्पना श्रद्धेय युवाचार्य श्री के उर्वर मस्तिष्क की उपज है।

दूसरा उपहार था अखरोट का कलात्मक मंदिर। मंदिर के रूप में संवारे गए उस अखरोट में एक द्वार वनाकर उसके भीतर आचार्यश्री का छोटा-सा चित्र चिपका दिया गया था। मंदिर के पट खुलने से भगवान के दर्शन हो सकते हैं। वास्तविक भगवान तो आदमी के भीतर विराजमान है। वह अपने मन-मंदिर को खोल ले तो भीतर विराजमान भगवान से भी साक्षात्कार हो सकता है। विश्वमानव के मन-मंदिर में आचार्यवर के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से भी वह एक सुन्दर उपक्रम-सा प्रतीत हुआ।

आचार्यवर ने उपहार से प्राप्त प्रत्येक वस्तु का संक्षिप्त परिचय देते हुए कला को साधना का अभिन्न अंग के रूप में प्रतिपादित किया।

अणुव्रत पुरस्कार की घोषणा

जय तुलसी फाउंडेशन द्वारा विगत कुछ वर्षों से नैतिक क्षेत्र में विशेष काम करने वाले नीतिनिष्ठ व्यक्तियों को अणुव्रत पुरस्कार से सम्मानित किया जाता रहा है। इस पुरस्कार में एक लाख रुपये की राशि के साथ सम्मान-पत्र प्रदान किया जाता है। इस पुरस्कार की घोषणा आचार्यश्री के जन्मदिन पर की जाती है और उसकी क्रियान्विति मर्यादा महोत्सव के अवसर पर होती है।

फाउंडेशन के उपाध्यक्ष श्री मांगीलालजी सेठिया ने सन् १९८५ का पुरस्कार

श्री गुलजारीलाल नन्दा को देने की घोषणा की। इससे पूर्व चार विशिष्ट व्यक्तियों को यह पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है।

श्री नन्दाजी भारत के पूर्व कार्यकारी प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री हैं। अणुव्रत आन्दोलन के साथ उनका निकट का संबंध है। वे सही अर्थ में अणुव्रती हैं। नैतिक क्षेत्र में उन्होंने उल्लेखनीय काम किया है। उनका व्यक्तित्व साफ-सुथरा है। ऐसे व्यक्ति नैतिकता के क्षेत्र में आगे बढ़ने वालों के लिए एक जीवंत प्रेरणा बन सकते हैं। श्री नन्दाजी का चयन कर फाउंडेशन की चयन समिति ने अपनी विशिष्ट निर्णायक क्षमता का परिचय दिया। यह पुरस्कार उन्हें उदयपुर में प्रदान किया जाएगा।

अमृत-संदेश

अमृत-पुरुष आचार्यवर के अमृतमय कृतित्व ने जन-जन के मन में व्याप्त विष को अमृत में बदलने के लिए जो अवदान दिया है, वह किसी से अज्ञात नहीं है। आपके आलोकधर्मी व्यक्तित्व ने लोकजीवन में घिरे हुए सघन अन्धकार को भी आलोकित करने का प्रयत्न किया है। आज विश्व की मानसिकता में हिंसा, आतंक और अनीति का जहर जमा हो रहा है। हर आयु वर्ग की मानसिकता इस जहर से आक्रान्त है। यह आक्रमण केवल राजनीति में ही नहीं है, समाज और धर्मनीति भी स्वार्थ, शोषण एवं अन्धविश्वासों के शिकंजे में तड़प रही है। जीवन-पोथी के पन्ने-पन्ने पर आशंका और अशान्ति की छाप है। ऐसे समय में आचार्यश्री के आचार्यकाल के पचासवें वर्ष को अमृत-महोत्सव के रूप में मनाने की प्रासंगिकता है। अमृत महोत्सव वर्ष में अपने बहत्तरवें जन्मदिन पर आचार्यवर ने अपने धर्मसंघ के नाम एक विशेष संदेश दिया। वह अमृत-संदेश भी आपके अवदानों का एक सूक्ष्म हिस्सा है। अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति ने उस संदेश को मुद्रित करवा कर देश भर में प्रसारित कर दिया। जन्म-दिवस के कार्यक्रम में सब स्थानों पर उसे पढ़कर सुनाया गया। वह संदेश यहां अविकल रूप से उद्धृत किया जा रहा है—

'जैन शासन हमारी आस्था का केन्द्र है, इस बात का हमें गौरव है। आचार्य भिक्षु के धर्म-संघ तेरापंथ में हमें अपनी आध्यात्मिक क्षमताओं को समझने और उन्हें उजागर करने का अवसर मिला, यह भी कम गौरव की बात नहीं है।

आचार्य भिक्षु श्रुतकेवली थे। इससे आगे वे अतीन्द्रिय ज्ञानी थे, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। उन्होंने मर्यादा, अनुशासन, व्यवस्था और संगठन के सूत्र दिए, हृदय-परिवर्तन और साधनशुद्धि के सूत्र दिए, वे वर्तमान युग के लिए बहुत मूल्यवान हैं। कोई भी त्रैकालिक सत्य हर युग के लिए मूल्यवान होता ही है।

आचार्य भिक्षु ने साहित्य-निर्माण का जो बीज वपन किया, वह आज शतशाखी हो गया है। उन्होंने अपने साहित्य में शाश्वत का स्वर दिया, वह आज हमारे लिए ज्योतिस्तम्भ बना हुआ है। जयाचार्य ने साहित्य, कला और तर्क के क्षेत्र में तेरापंथ को जो उच्चता दी, वह हमें विरासत में उपलब्ध है। पूज्य कालूगणी ने आधुनिकता की पृष्ठ-भूमि पर जो काम किया, अध्ययन की आधार भित्ति तैयार की, उस पर आज हमारा उन्नत प्रासाद खड़ा है। धर्म-संघ के विकास में हमारे श्रावक-श्राविकाओं का जो श्रद्धासिक्त सिंचन मिला है, वह भी इतिहास की एक विरल घटना है।

हम अतीत के बहुत आभारी हैं और हृदय से कृतज्ञ हैं। किन्तु केवल अतीत में जीने से कोई आदमी शक्तिशाली नहीं बनता। इसलिए हमें अपने वर्तमान को भी शक्तिशाली बनाना है। शक्ति के तीन स्रोत हैं—आचार, शिक्षा और अध्यात्म-साधना। आचार के क्षेत्र में हमें समाचारी, मर्यादा और समिति-गुप्ति के प्रति पूर्ण जागरूकता एवं प्रामाणिकता का विकास करना है। शिक्षा के क्षेत्र में हमें वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों, दार्शनिक एवं तार्किक प्रगति के साथ-साथ चलना है। युगबोध, युगभाषा और युगशैली का विवेकपूर्वक अनुसरण करना है। अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में आन्तरिक मूल्यों की सिद्धि और अध्यात्म के उस अतल में पहुंचने का प्रयत्न करना है, जिससे वैज्ञानिक और बौद्धिक युग का मानस अध्यात्म की उपयोगिता स्वीकारता रहे।

सौभाग्य से हमारे हाथ में तीन महत्त्वपूर्ण काम हैं—अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान (शिक्षा का नया प्रयोग) इस त्रिपुटी के द्वारा हमारे संघ ने पूरी मानवता को मार्ग-दर्शन दिया है और वह स्वयं भी गौरवान्वित बना है।

आगम-सम्पादन का कार्य हमारे साहित्यिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत रहा है। हमें उसे और विकसित करना है।

समणश्रेणी की नियोजना ने आधुनिक युग को एक नयी संभावना दी है। इस श्रेणी के द्वारा अध्यात्म के विकास में बहुत योग मिलेगा, यह भविष्य का संकेत है।

हम विरासत में प्राप्त इस संपदा की सुरक्षा करें, यह हमारा दायित्व है। हमें केवल रक्षित ही नहीं बनना है। हमारा लक्ष्य है—रोहिणी बनकर उस संपदा को और अधिक बढ़ाना। इस कार्य में हमें अपने पूरे धर्म-संघ का जो हार्दिक समर्पण और योग प्राप्त है, उससे अपूर्व 'रोमांच हो रहा है। 'अमृत-महोत्सव' के इस अवसर पर मैं अपने धर्मसंघ के प्रति मंगल भावना करता हूं और चाहता हूं कि हमारा धर्मसंघ अपनी सीमा में रहता हुआ असीम की दिशा में प्रस्थान करे और जन-जन को अमृत की बूंदों से संतृप्त करे।'

अमृत-विद्या-पीठ और अमृतस्तंभ

आमेट के वरिष्ठ श्रावक श्री कजोड़ीमलजी बोहरा ने आचार्यवर के अमृतमय चातुर्मास को एक रचनात्मक यादगार के रूप में संजोकर रखने के लिए आमेट में 'तुलसी अमृत विद्यापीठ' की स्थापना एवं उसके निर्माण हेतु तेरापंथी सभा, आमेट द्वारा एक लाख रुपये के अनुदान की घोषणा की। अमृत-विद्यापीठ का उद्देश्य है—जैन संस्कारों के अनुरूप भावी पीढ़ी का निर्माण करना। जैन साहित्य पर शोध की सुविधा हेतु वहां एक विशेष पुस्तकालय की योजना है। योग्य शिक्षकों का निर्माण करने के लिए शिक्षकों को प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान से प्रशिक्षित करने की व्यवस्था भी वहां उपलब्ध रहेगी। इसके साथ मेधावी छात्रों को प्रोत्साहन देना, असहाय महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने में सहयोग देना आदि प्रवृत्तियों को संचालित करने का भी लक्ष्य है, ऐसा अमृत-विद्या-पीठ के आयोजकों ने बताया।

उक्त घोषणा की क्रियान्विति के लिए २५ नवंबर को मध्याह्न में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित हुआ। डॉ० डी० एस० कोठारी इस कार्यक्रम के प्रमुख अतिथि थे। तुलसी अमृत विद्यापीठ और अमृत-स्तम्भ का शिलान्यास किया श्री गुलाबचंदजी लोढ़ा एवं श्री शंकरलालजी कोठारी ने। डॉ० कोठारी ने शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री शुभकरणजी दसाणी, श्री के० एल० कोठारी, श्री कन्हैयालालजी बाफणा तथा महंत जयरामदासजी आदि ने प्रासंगिक विषय पर अपने विचार व्यक्त किए।

परमाराध्य आचार्यवर ने अपने मंगल संदेश में कहा—रचनात्मक काम किसी भी क्षेत्र में हो, उसका अपना महत्त्व होता है। ऐसे कार्यक्रमों से हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं होता। फिर भी बच्चों को संस्कारी बनाने का जो उद्देश्य है, वह हमारे उद्देश्यों से भिन्न नहीं है। आज लोगों ने शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक कार्यक्रम हाथ में लिया है। ऐसे उपक्रमों की सफलता के लिए कार्यकर्ताओं के योग की अपेक्षा है। आमेट के कार्यकर्ता अपनी क्षमता को बढ़ाने के साथ कल्पनाशील मानसिकता का भी निर्माण करेंगे, ऐसी आशा है।

दो कविताएं

देश के ख्यातनामा कवि श्री कन्हैयालालजी सेठिया ने आचार्यवर के जन्म-दिन पर अपनी भावभीनी अभ्यर्थना दो लघु कविताओं के माध्यम से अर्पित की। श्री सेठियाजी कलकत्ता थे। वे आमेट नहीं आ सके, इसलिए अपनी कविताएं लिखित रूप में प्रेषित कीं। कम शब्दों में गंभीर अर्थ को अभिव्यक्ति देने वाले उनके

वे पद्य काव्य रसिक पाठकों के लिए यहां उद्धृत किए जा रहे हैं—

स्वयं गरल पी तृषित विश्व को,
वहत्तर अमृत कुंभ दिए।
संवेदन वन विश्व प्राण में,
तुम जीवन का मर्म जिए ॥

पंथवद्ध पर पंथमुक्त वन,
सहज भाव से संत रहे।
तुम समाधि से स्व तक पहुंचे,
जव केवल अरिहंत रहे ॥

क्षण-क्षण किया आपने उजला,
तम को जीवन ज्वाल से।
तिलक करेगा सूर्य उषा का,
कुंकुम ले नव थाल से ॥

जन्म-दिवस पर अर्पित मेरा,
चरण कमल में नम्र नमन।
व्यक्त शब्द में करूं हृदय की,
कैसे मैं अनुभूति गहन ॥

जीवन का आधा समय अणुव्रत के नाम

जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में कार्यक्रम के इतने अधिक आयाम थे कि वहुत समेटने पर भी वे सिमट नहीं सके। मंच संचालक की पूरी नियमितता के वावजूद सव लोगों को भावाभिव्यक्ति का अवसर नहीं मिल सका। इसलिए १५ नवंवर को द्वितीय चरण के रूप में जन्म-दिवस का अवशिष्ट कार्यक्रम चला। उसमें अनेक साधु-साध्वियां एवं भाई-वहनों ने विविध भाषाओं, विविध विधाओं और विविध कोणों से आचार्यश्री के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना-अभिवंदना की। देश के प्रमुख स्थानों से आए हुए अनेक प्रतिनिधियों ने उस अवसर पर 'अमृत संकल्पपत्र' अमृत कलश में समर्पित किए। वे संकल्पपत्र उन-उन क्षेत्रों के लोगों ने भरकर भेजे थे। पहुना के उत्साही अणुव्रत कार्यकर्ता श्री गणेश जी कूकड़ा ने अपने शेष जीवन का पचास प्रतिशत समय निःस्वार्थ भाव से अणुव्रत की सेवाओं के लिए समर्पित करने की घोषणा की।

उस दिन प्रमुख वक्ता श्रीभाई भगवान, उदयपुर, ने आचार्यश्री का अभिनन्दन करते हुए कहा—इस समय हम अणुव्रत और अणुवम के वीच जी रहे हैं। अभी कुछ समय पूर्व रूस, अमेरिका और इंग्लैण्ड आदि देशों के लोगों में 'दी आफटर'

फिल्म देखने के बाद तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उस फिल्म में युद्ध की भीषण स्थितियों का दिग्दर्शन कराया गया है। वहां के लोगों ने युद्ध को रोकने के लिए सामूहिक रूप से एक आन्दोलन शुरू कर दिया है। फिर भी उन देशों में तनाव की स्थिति है। इस तनाव से वचने के लिए आचार्यवर ने अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का महान् अवदान दिया है। इन दोनों के द्वारा ही मनुष्य को त्राण मिल सकता है।

सन् ८६ के लिए प्रार्थना

आचार्यश्री सन् १९८५ का चातुर्मास आमेट में विता रहे थे। आगामी चातुर्मास के वारे में तब तक कोई चिन्तन नहीं हुआ था। जन्म-दिवस के अवसर पर देश भर से श्रद्धालु लोग आमेट पहुंचे थे। वे एक मौके से दो-दो लाभ उठाना चाहते थे। आगन्तुक लोगों में से सात क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने विशेष रूप से चातुर्मास की प्रार्थना की। उन सात क्षेत्रों के नाम हैं—दिल्ली, लाडनूं, राजनगर, सुधरी, पाली, श्रीडूंगरगढ़ और अहमदावाद।

आचार्यवर ने सब क्षेत्रों के लोगों की प्रार्थना सुनकर अपने संक्षिप्त प्रवचन में कहा—चातुर्मास में अगले चातुर्मास की प्रार्थना एक शुभ सूचना है। प्रार्थना करने वाले क्षेत्र सात हैं। चातुर्मास कहीं एक स्थान पर होना है। इन क्षेत्रों में सवसे पहला और प्रमुख क्षेत्र है। मेवाड़ (राजनगर)। देश भर में इतना सघन क्षेत्र दूसरा कहीं नहीं है। यहां अणुव्रत कार्य को आगे वढ़ाने की भी वहुत संभावना है। मेवाड़ी श्रावकों की श्रद्धा-भक्ति वेजोड़ है। मैं इन्हें संतुष्ट नहीं कर पाता, इसकी मेरे मन में भी पीड़ा हैं। इनकी आस्था का क्या उल्लेख करूं, ये तो एक दिन के प्रवास को ही चौमासा मान लेते हैं। इस वार तो इन्होंने मिल वैठकर एक समझौता किया था कि मेवाड़ के चार क्षेत्र विशेष रूप से चातुर्मास के प्रत्याशी हैं। चारों क्षेत्रों में अमृत महोत्सव के चार चरणों का समायोजन हो जाए। हमने इस वात को स्वीकार किया और सब लोग संतुष्ट भी हो गए। पता नहीं अव यह चातुर्मास की वात कहां से उठी है ?

इस संदर्भ में हमें विचार करना है कि आगामी चातुर्मास मेवाड़ में ही करना है या यहां से विहार करना है। विहार करते हैं तो दिल्ली वाले सामने खड़े हैं। दिल्ली देश की राजधानी है। समाज के लोगों के आने-जाने की वहां पूरी सुविधा है। दिल्ली के कार्यकर्ता सक्षम हैं। इनकी प्रार्थना में वजन भी है, पर चैत्र-वैशाख का कार्यक्रम राजसमन्द में संपन्न कर फिर दिल्ली पहुंचना मुश्किल है।

आचार्यवर की यह वात सुनते ही दिल्ली के वहन-भाई खड़े होकर बोले—आप दिल्ली पधारने का निर्णय लेने की कृपा करें। दिल्ली पहुंचने में आपको अधिक समय नहीं लगेगा। सरदारशहर से दस दिन में आप दिल्ली पहुंच गए थे।

अब क्या चिन्ता है ?

दिल्ली के भाई बैठे ही नहीं थे कि देवेन्द्रजी कर्णावट ने खड़े होकर कहा—हम दिल्ली के साथ समझौता कर रहे हैं। एक चातुर्मास १९८६ का और दूसरा १९८९ का। चार वर्ष बाद आचार्यश्री पचहत्तर वर्ष के हो जाएंगे। वह अवसर भी इतिहास का विरल प्रसंग है। आचार्यवर १९८६ का चतुर्मास हमें दें तो १९८९ का दिल्ली को दें। यदि आप इस साल ही दिल्ली जाना बहुत जरूरी समझते हैं तो १९८९ के लिए मेवाड़ की घोषणा कर दें। अन्य क्षेत्रों के लोगों ने भी अपनी-अपनी दलीलें प्रस्तुत कीं।

आचार्यवर ने सभी क्षेत्रों के लोगों को आश्वस्त और उत्साहित करते हुए कहा—प्रार्थना करने का अधिकार सब क्षेत्रों को है, पर अभी कोई अनुमान लगाना सार्थक नहीं होगा। मर्यादा-महोत्सव से पहले इस सम्बन्ध में कोई भी निर्णय लेने का विचार नहीं है।

दो शिविर

दीपावली की छुट्टियों में बच्चों के समय का पूरा उपयोग हो, इस दृष्टि से आमेट में आचार्यवर के सान्निध्य में पंचदिवसीय संस्कार निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। स्थानीय सौ बालक-बालिकाओं ने शिविर में भाग लिया। उन्हें धार्मिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण देने का काम साधु-साध्वियां करती थीं। शिविर-संचालन का दायित्व श्री हस्तीमलजी सेठिया पर था। पांच दिनों में बच्चों ने बहुत कुछ देखा, समझा और ज्ञान प्राप्त किया। १८ नवंबर की रात्रि में इस शिविर का समापन कार्यक्रम चला। इसी दिन मध्याह्न में चातुर्मास में चल रही जैन विद्या ८५ की परीक्षा स्थानीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में संपन्न हुई। परीक्षा में बयासी परीक्षार्थी सम्मिलित हुए।

बच्चों के शिविर से पहले स्थानीय युवतियों का एक पंच दिवसीय शिविर साध्वियों के निर्देशन में चला। शिविर में पचहत्तर बहनों ने भाग लिया। उन्हें तत्त्वज्ञान, प्रेक्षाध्यान आदि के प्रशिक्षण के साथ यह भी सिखाया गया कि वे परिवार में सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्व के साथ कैसे रह सकती हैं? पारिवारिक दायित्व और व्यस्तता के बावजूद युवतियों ने पूरे मन से शिविर काल का उपयोग किया।

दीक्षा : एक शाश्वत आकर्षण

जैन धर्म में दीक्षा एक सांस्कृतिक उपक्रम के रूप में स्वीकृत है। यह जीवन का

ऐसा संस्कार है, जो व्यक्ति को लौकिक से लोकोत्तर दिशा में अग्रसर कर देता है। दीक्षित होने वाला व्यक्ति संसार में रहता है, समाज में रहता है, पर उसके चित्त में संसार, समाज या परिवार न रहे, यह आवश्यक है। दीक्षा का अर्थ केवल वेश-परिवर्तन मात्र नहीं है। चित्त या संस्कार परिवर्तन के अभाव में दीक्षा मात्र उपचार बनकर रह जाती है। जैन दीक्षा में भी तेरापंथ दीक्षा की अपनी अलग पहचान है। एक आचार्य के नेतृत्व में अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं का संपूर्ण विसर्जन। विचाराभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता, किन्तु अंतिम निर्णय आचार्य का। पूरी निश्चिन्तता और पूरा आश्वासन। न चिन्ता, न भय। शर्त केवल एक ही—आचार और अनुशासन के प्रति जागरूकता। सवा दो सौ वर्षों के इतिहास में अब तक २२७७ दीक्षाएं हो चुकी हैं। एक धर्मसंघ में आचार्य के नेतृत्व की इतनी लम्बी परंपरा एक विरल घटना है।

२१ नवंबर को आमेट में दीक्षा-समारोह का कार्यक्रम था। पांच युवतियां, दो विवाहित और तीन कुमारी कन्याएं। संपन्न परिवारों को छोड़ आन्तरिक विराग से साधना के पथ पर अग्रसर होने की उत्कंठा। वातावरण में नयी उमंग, नया उत्साह। आमेट में बहुत वर्षों के बाद दीक्षा का समारोह हो रहा था। इसलिए सब लोगों में अतिरिक्त उत्सुकता थी। खानदेश की एक विवाहित बहन दीपमाला अपने छोटे-छोटे चार बच्चों को छोड़कर इस महान यात्रा के लिए उत्सुक हो रही थी। उसके बच्चे भी इतने समझदार और निर्मोह। बहन ने बच्चों का परीक्षण लेने के लिए कहा—बच्चो ! मेरी दीक्षा में तुम्हारी आज्ञा की अपेक्षा रहेगी। तुम अभी अबोध हो। यदि तुम कह दो कि अभी तक अपनी मम्मी को दीक्षा नहीं देंगे, तो मैं तुम्हारे साथ कुछ समय तक फिर रह सकंगी। बच्चों ने यह बात सुनी और वे एक भी क्षण लगाए बिना बोले—मम्मी ! तुम इतना बड़ा काम करने जा रही हो। हम अपनी ओर से उसमें बाधक नहीं बनेंगे। तुम्हारी खुशी, हमारी खुशी है। तुम अपना वर्षों का संजोया सपना पूरा करो, हम सब इससे प्रसन्न हैं।

उक्त प्रसंग में बच्चे प्रसन्न थे, मां प्रसन्न थी, पर जिस किसी ने यह बात सुनी, वह गद्‌गद हुए बिना नहीं रह सका। बहन दीपमाला के दो बच्चे—एक लड़का और एक लड़की वयस्क हैं। पर दो बच्चे—नौ और ग्यारह वर्ष की कच्ची उम्र में भी इतने परिपक्व हैं कि मां की दीक्षा का अवसर उपस्थित होने पर भी उनकी आंख तक नम नहीं हुई। उन बच्चों के भविष्य को वह अपनी बहन एवं जेठानी के हाथों में सौंपकर अपना भविष्य संवारने के लिए कृत संकल्प थी। दीपमाला के पीहर और ससुराल दोनों पक्षों के लोग उसके त्याग, वैराग्य और दृढ़ता का परीक्षण करने के बाद ही उसे दीक्षा की अनुमति देने पर सहमत हुए।

२१ नवम्बर को प्रातः नौ बजे अमृत-समवसरण में लगभग दस हजार लोगों

की उपस्थिति में दीक्षा संस्कार का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। दीक्षा के संदर्भ में कई वक्ताओं के वक्तव्य हुए। अनेक लोगों ने दीक्षार्थिनी वहनों के प्रति शुभ कामनाएं प्रकट कीं एवं उन्हें वधाई दी। पांचों वहनों का परिचय दिया गया। उनके अभिभावकों द्वारा लिखित आज्ञापत्र पढ़कर सुनाने के वाद गुरुदेव को समर्पित किए गए। दीक्षार्थिनी वहनों ने आचार्यवर से अनुरोध किया कि अव उन्हें जल्दी से जल्दी गुरु का अनुग्रह प्राप्त हो। जनता की आंखें आचार्यवर की ओर टिकी हुई थीं। दीक्षा संस्कार देखने-सुनने की उत्कट लालसा थी। आचार्यवर ने युवाचार्यश्री को निर्देश दिया कि दीक्षा संस्कार उनके द्वारा संपन्न हो।

पुनर्जन्म का नाम है दीक्षा

युवाचार्यश्री ने आर्षवाणी का उच्चारण कर आचार्यवर की अनुमति से पांचों वहनों को दीक्षित किया। रजोहरण प्रदान, केश-लुंचन, नामकरण आदि संस्कारों को संपन्न करवाते हुए आचार्यवर ने नव दीक्षित साध्वियों को साधना के क्षेत्र में आगे वढ़ने के लिए आशीर्वाद दिया। उस अवसर पर आपने जैन धर्म की दीक्षा का विश्लेपण करते हुए समाज में नया मोड़ अभियान को तीव्र वनाने के लिए आह्वान किया।

युवाचार्यश्री ने दीक्षा से पूर्व दिए गए अपने प्रवचन में कहा—दार्शनिक लोगों के मन में सदा से एक प्रश्न उभरता रहा है कि पुनर्जन्म या नहीं? क्योंकि वह किसी को आंखों से दिखाई नहीं देता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पुनर्जन्म के प्रति आज भी जनता में आकर्षण है। इसलिए तो यहां इतने लोग एकत्रित हुए हैं। दीक्षा क्या है? सामाजिक जीवन से मृत्यु और संयमी जीवन का जन्म। यही तो दीक्षा है, यही पुनर्जन्म है।

दूसरा प्रश्न है—वातावरण प्रवल है या चेतना? चेतना की प्रवलता का साक्ष्य है यह समारोह। ऐसे भौतिक वातावरण में दीक्षा के लिए तैयार वही हो सकता है, जिसकी चेतना प्रवल होती है। आज के इस कार्यक्रम से सव लोग यह सीखें कि वातावरण को भी चेतना से प्रभावित किया जा सकता है।

नवदीक्षित साध्वियों के परिवर्तित और पूर्व नाम इस प्रकार हैं—

१. साध्वीश्री दीपयशा (धूलिया)	श्रीमती दीपमाला
२. साध्वीश्री लोकयशा (रतननगर)	श्रीमती लक्ष्मी
३. साध्वीश्री मंगलयशा (गांधीधाम)	कुमारी मुक्ता
४. साध्वीश्री मधुरयशा (गंगाशहर)	कुमारी माधुरी
५. साध्वीश्री सौम्ययशा (धूलिया)	कुमारी स्नेह

मैं जैन धर्म का प्रचारक बनूंगा

कुमारी स्नेह खानदेश (धूलिया) के सिंधी परिवार की लड़की है। तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास की यह पहली घटना है जब सिंधी परिवार की कोई लड़की दीक्षित हुई हो। कुमारी स्नेह के चाचा राजेन्द्रकुमारजी दीक्षा के कार्यक्रम में उपस्थित थे। उन्होंने दीक्षा के बारे में सुना, समझा और देखा। उसके मन पर गहरा असर हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि तेरापंथ की दीक्षा कड़ी तो है, पर प्रभावी भी है। कड़ी औषधि का निश्चित ही प्रभाव होता है।

भाई राजेन्द्र पन्द्रह वर्ष पहले आचार्यवर के दर्शन करना चाहते थे। पर नहीं हो सके। सिंधी परिवार के संस्कारों में पलने के कारण वे शराब-मांस से परहेज भी नहीं रखते थे। दीक्षा के कार्यक्रम, आचार्यश्री का व्यक्तित्व और धर्मसंघ की परम्पराओं का उन पर इतना असर हुआ कि उन्होंने सभा में खड़े होकर शराब और मांस के प्रयोग का त्याग कर दिया। इसके साथ ही उन्होंने यह भावना व्यक्त की—गुरुदेव ! मैं अब जैन धर्म और तेरापंथ का प्रचारक बनूंगा। मेरे सामने परिवार एवं बच्चों की जिम्मेदारी है, फिर भी जितना समय मिल सकेगा, उसे मैं धर्म के प्रचार-प्रसार में लगाऊंगा।

दीक्षा के कार्यक्रम में संतों की 'कुमार-परिषद्' ने मुनि मोहनलालजी 'आमेट' के निर्देशन में एक दीक्षा-गीत गाया। लोक-भावना को आध्यात्मिक परिवेश देने वाला वह गीत श्रोताओं को भीतर तक छू गया। पूरी सभा में एक बार वही छा गया। आचार्यप्रवर ने गीत के रचयिता मुनि मोहनलालजी को नौ कल्याणक से पुरस्कृत किया।

मेवाड़ के श्रावक समाज के लिए

मेवाड़ में रहने वाले महाजन दसा और बीसा—इन दो वर्गों में विभक्त हैं। दोनों वर्गों में परस्पर भोजन-व्यवहार चलता है, किन्तु वैवाहिक रिश्तों पर प्रतिबंध है। आचार्यवर की मेवाड़-यात्रा में करणीय कार्यों के बिन्दुओं में एक बिन्दु यह भी था कि 'दसा-बीसा' का भेद समाप्त हो। आचार्यश्री की भावना के अनुरूप मेवाड़ के श्रावकों ने इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। मेवाड़ कान्फ्रेंस के माध्यम से एक निर्णय ले लिया और वर्गभेद समाप्ति की घोषणा भी कर दी गई। अब इस संबंध में श्रावक-समाज को पूरी जागरूकता के साथ उस निर्णय को क्रियान्वित करने की जरूरत है। मेवाड़ की भांति मारवाड़ में गांववाणिया और हाटवाणिया का झमेला है, उसे समाप्त करने के लिए भी एक सघन प्रयत्न अपेक्षित है।

मेवाड़ में तेरापंथ धर्मसंघ के दो सौ वर्षों की परिसम्पन्नता के उपलक्ष्य में द्विशताब्दी समारोह का आयोजन हुआ था। यह घटना पचीस वर्ष पहले की है। उस समय 'नया मोड़' के नाम से एक अभियान चला था। उसका उद्देश्य था समाज की रूढ़, अर्थहीन एवं बोझिल परम्पराओं का परिष्कार। उद्देश्य के अनुरूप वह अभियान सफलता की दिशा में अग्रसर हुआ। कुछ वर्षों बाद उसमें एक गतिरोध आ गया। अमृत-महोत्सव का प्रसंग उस गतिरोध को तोड़ने के लिए बहुत अनुकूल अवसर है। मेवाड़ कान्फ्रेंस द्वारा उसका परिष्कृत और परिवर्धित रूप पुस्तिका के माध्यम से सब लोगों तक पहुंचा दिया गया है। अब एक बार फिर तीव्र प्रयत्न के साथ उसकी क्रियान्विति होनी चाहिए।

उक्त दोनों बातें परमाराध्य आचार्यवर के निर्देशानुसार मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं) ने उपस्थित जनसमूह के सामने विस्तार से बताई। मेवाड़ के श्रावक इन दो बिन्दुओं को गंभीरता से समझें और गांव-गांव, घर-घर में व्यक्ति-व्यक्ति को समझाएं तो निश्चित रूप से एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हो सकता है। सामाजिक जीवन की स्वस्थता का यह उपक्रम सफल होकर विकास की नयी दिशाओं का भी उद्घाटन कर सकता है।

धर्म का परीक्षण समूह में

२४ नवंबर को प्रातः 'रूढ़ि-मुक्त-समाज और धर्म' विषय पर प्रवचन का कार्यक्रम था। भारतीय जनता पार्टी, भीलवाड़ा के संयोजक श्री पारसमलजी रांका ने निश्चित विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। परमाराध्य आचार्यप्रवर ने दिशा-दर्शन देते हुए कहा—धर्म व्यक्तिगत होता है, किन्तु उसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। व्यक्ति की धार्मिकता का सही परीक्षण समूह में होता है। जब तक जीवन में धर्म का आचरण नहीं होता, समाज में विकृतियां पैदा होती हैं। उन विकृतियों को दूर करना आवश्यक है। रूढ़ि भी एक विकृति है। रूढ़ि-मुक्त समाज धर्म की पौध अंकुरित करने के लिए उर्वर धरती है। इस धरती को तैयार करने के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर पर मानसिकता का निर्माण होना जरूरी है।

मध्याह्न में जैन विश्व भारती द्वारा आयोजित जैन-विद्या की परीक्षा में आमेट के अनेक छात्र-छात्राएं सम्मिलित हुए। रात्रि के समय आचार्यवर का प्रवास गांव में हुआ। श्री कजोड़ीमलजी बोहरा के मकान में कुछ देर ठहरने के बाद आप रावले में पधार गए। रात्रि का कार्यक्रम रामचौक में था। 'बदलता युग और राष्ट्रीय चरित्र' विषय पर युवाचार्यश्री और आचार्यवर के प्रवचन हुए। कंवर प्रतापसिंह जी ने रावले की ओर से आचार्यवर का अभिनन्दन किया।

२५ नवम्बर का प्रातः कालीन कार्यक्रम महन्त श्री जयरामदासजी के अखाड़े में था। महन्तजी आचार्यश्री तुलसी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। उनके मन में आचार्यवर के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। चातुर्मास काल के प्रायः सभी कार्यक्रमों में वे वरावर उपस्थित रहे। वे जव वोलते, तव ऐसी प्रतीति होती मानो आचार्यवर के साथ उनके कई जन्मों के संस्कार जुड़े हुए हैं। अखाड़े में लगभग आधा घण्टा तक आचार्यवर ने महन्तजी के साथ वातचीत की। महन्तजी अणुव्रत से वहुत प्रभावित हैं। उन्होंने आचार्यश्री से निवेदन किया कि वे अणुव्रत कार्यक्रम के प्रति सदा समर्पित रहेंगे।

चमत्कार, जिसे मानना ही पड़ता है

मनुष्य का जीवन अनेक रहस्यों का खजाना है। एक ही व्यक्ति के जीवन में घटित होने वाली इतनी घटनाएं हैं कि उनका विश्लेषण करना, बहुत वड़े सत्य को समझने का प्रयत्न करता है। उन घटनाओं में कुछ वातें ऐसी होती हैं, जो चमत्कार के रूप में दिखाई देती हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो किसी प्रकार के चमत्कार में विश्वास नहीं करते, पर कभी-कभी अविश्वास की वदली को चीर कर विश्वास का उजाला फैल जाता है। उस उजाले में व्यक्ति अपने मन के विखराव को सुघड़ता से जोड़-सांध लेता है। कभी-कभी व्यक्ति को रहस्यमय शक्ति की सत्ता का अनुभव होता है। कभी उस महान् शक्तिशाली सत्ता से सम्पर्क भी हो जाता है। ऐसे क्षणों में व्यक्ति अकल्पित आह्लाद और आत्मतोष का अनुभवन करने लगता है। ऐसी स्थिति में उसे वरवस चमत्कार पर विश्वास करना पड़ता है।

कलकत्ता से समागत भाई अमृतलालजी संचेती ने एक आंखों देखी घटना की जानकारी दी। उसे सुनकर लगा चमत्कार इसी का नाम है। घटनाक्रम इस प्रकार है—साध्वी चान्दकुमारीजी अपनी कलकत्ता-यात्रा के मध्य सम्मेद शिखर पहुंची। ११ अप्रैल १९८५ को वहां कलकत्ता से कई परिवार साध्वियों की उपासना में आए थे। अमृतलालजी और उनके ममेरे भाई अमरावसिंह का परिवार भी वहां था। रात को साढ़े सात वजे वे साध्वियों से मंगलपाठ सुनकर जीप से गिरिडीह के लिए चल पड़े। सत्तर-अस्सी किलोमीटर की रफ्तार से जीप चल रही थी। सहसा सामने से एक ट्रक आता दिखाई दिया। ड्राइवर ने ट्रक से जीप को वचाने का प्रयास किया, पर वह अपना सन्तुलन खो चुका था। उसने जीप को वाईं ओर मोड़ दिया। उस सड़क के दोनों ओर दस-पन्द्रह फीट गहरे गड्ढे थे। सामने मौत और दाएं-वाएं भी मौत। जीप में वैठे छोटे-वड़े सभी व्यक्ति घवरा गए। घवराहट के उन क्षणों में मानो उनके अन्तःकरण में फिट

टेपरिकार्डर चलने लगा। सबके मुंह से अनायास ही ॐ शान्ति, जय भिक्षु, जय तुलसी की ध्वनियां निकलने लगीं।

सहसा एक जोरदार धमाका हुआ। ट्रक तो एक ओर रह गया, किन्तु जीप एक दूसरी जीप से टकरा गई। जीप की खिड़कियों में लगे शीशे चूर-चूर हो गए। जीप में बैठा एक चार वर्षीय बालक अमित (मीठू) उस झटके से उछलकर पांच-सात फीट दूर जाकर गिरा। जीप में बैठे सब लोग स्तब्ध रह गए। उनके पांवों के नीचे से जमीन खिसकती हुई महसूस हुई। फिर वे एकाग्र मन से अपने इष्ट का जाप करते रहे।

भाई अमृत और अमराव नीचे उतरकर उस बच्चे के पास पहुंचे। वह सड़क पर पेट के बल पड़ा था। उन्होंने सोचा, जरूर यह बेहोश हो गया है अथवा इसे कोई गंभीर चोट आई है। आशंकित मन से उन्होंने बच्चे को गोद में उठाया। बच्चे ने आंखें खोल दीं। उन्होंने उसको दुलारते हुए पूछा—मीठू! चोट कहां आई है? वह एक क्षण लगाए बिना ही बोला—मेरे चोट क्यों आए। मुझे तो पारसनाथ भगवान और भिक्षु स्वामी ने उठा लिया।

भिक्षु स्वामी ने तुझे कैसे उठाया, क्या गोद में लिया था? यह पूछने पर अमित बोला—गोद में नहीं उठाया। जैसे आप पानी का गलास उठाते हैं, वैसे ही उठाया।

बच्चे के इस कथन के साथ ही सबने एक रोमांच-सा अनुभव किया। उनके घबराए हुए मन आश्वस्त हो गए। बच्चे को कहीं खरोंच भी नहीं लगी। इस बात से सब अभिभूत थे। उन्होंने एक साथ दो स्थितियों से साक्षात्कार किया—एक ओर अट्टहास करती हुई मौत, दूसरी ओर देव, गुरु एवं धर्म के प्रति आस्था-शक्ति। गुरु-कृपा से मौत ने भी मुंह फेर लिया, यह चमत्कार नहीं तो क्या है?

जप का प्रभाव

अक्टूबर के पहले सप्ताह की बात है। लुधियाना से कुछ लोग बस द्वारा आमेट के लिए रवाना हुए। उनकी बस दिल्ली-जयपुर रोड पर दौड़ रही थी। कोटपुतली के आसपास सामने से एक जीप आई। उसमें आठ-दस सशस्त्र व्यक्ति बैठे थे। उन्होंने बस को रोकने का निर्देश दिया। इस निर्देश से एक बार तो सब लोग कांप उठे। पर दूसरे ही क्षण बस में सवार बहन-भाई ॐ भिक्षु का जप करने लगे।

ड्राइवर को अहसास हो गया कि कुछ अनहोना घटित होने वाला है। उसने बस की रफ्तार धीमी की। ज्यों ही वह जीप के निकट पहुंची, ड्राइवर के मस्तिष्क में बिजली-सी कौंधी। उसने बस को थोड़ा-सा मोड़कर जीप से आगे

निकाल लिया और फिर गति तेज कर तीस किलोमीटर आगे पहुंच गया। वहां सड़क के पास आठ-दस ट्रक खड़े थे। ड्राइवर ने वस उनके वीच में ले जाकर खड़ी कर दी। वस के प्रायः यात्री स्वामीजी का जाप करते रहे। पीछे से जीप आई और वहां ट्रकों की भीड़ देखकर वह आगे निकल गई। वस वहीं खड़ी रही। कुछ समय वाद जीप लौटकर आई, दिल्ली रोड की तरफ वढ़ गई। उसके वाद उनकी वस जयपुर की ओर रवाना हुई। वस में वैठे यात्रियों ने आचार्य भिक्षु के नाम का चमत्कार साक्षात् अनुभव किया।

गुरु के नाम का प्रकाश

अक्टूबर महीने में ही संपतमलजी, डूंगरमलजी भुतोड़िया का परिवार जीप गाड़ी से रवाना हुआ। उन्हें आमेट से जयपुर जाना था। ड्राइवर अस्सी किलोमीटर की रफ्तार से गाड़ी चला रहा था। देवगढ़ के पास गाड़ी का ब्रेक फेल हो गया। वह तीन वार चक्कर लेती हुई एक गड्ढे में जाकर गिर पड़ी। सवकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। प्रकाश के नाम पर उनके पास गुरु का नाम ही वचा था। सम्पतमलजी ने सोचा—अव मरना तो है ही। इस समय हम गुरु के नाम का स्मरण तो करते रहें ताकि मानसिक शान्ति खंडित न हो। एक क्षण भी घवराए विना वे गुरु का नाम जपते रहे। गाड़ी के गड्ढे में गिर जाने पर भी किसी को कुछ नहीं हुआ। उन्होंने आत्म-विश्वास के साथ कहा—आज तो हम गुरु के नाम से वच पाए हैं।

अदृश्य सत्ता का अनुभव

अमृत महोत्सव का कार्यक्रम संपन्न होने के वाद वम्बई से समागत श्रद्धालु लोग श्री रावतमलजी वांठिया, सागरमलजी सेठिया, वालचन्दजी चोरड़िया आदि के परिवार गांधीधाम एक्सप्रेस से वम्वई जा रहे थे। पालघर के आसपास ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गई। पटरी में कुछ खरावी के कारण इंजन दो डिव्वों के साथ आगे चला गया। उनसे पीछे के चार डिव्वे पटरी से नीचे उतर गए। उन डिव्वों के चक्के टूट गए। फिर भी वे चलते रहे। विना इंजन के डिव्वे कई किलोमीटर तक चले। भीतर वैठे यात्री हिलोरें खाते रहे और अपने इष्ट का स्मरण करते रहे। सारा सामान अस्त-व्यस्त हो गया। पर किसी भी भाई-वहन को चोट नहीं आई। उन्होंने अनुभव किया कि कोई अदृश्य सत्ता उन्हें आलम्वन देकर वचा रही है। यह घटना १९८५, सितम्वर के अंतिम सप्ताह की है।

तमिलनाडु वच गया

१४ नवंवर १९८५ को देश भर में आचार्यवर का जन्म-दिन 'अहिंसा सार्वभौम दिवस' के रूप में मनाया गया। वड़े शहरों में रविवार के विना किसी भी कार्यक्रम में अधिक लोग नहीं आ सकते। इसलिए वहां विशेप कार्यक्रम रविवार को आयोजित होते हैं। मद्रास में भी १४ नवंवर के वाद १७ नवंवर को रविवार होने से जन्मदिन का दूसरा चरण व्यापक रूप में मनाया गया। साध्वी किस्तूरांजी के सान्निध्य में कार्यक्रम चल रहा था। तमिलनाडु राज्य के खाद्य मंत्री श्री सौन्दर राजन उस कार्यक्रम के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भापण में कहा—आचार्य तुलसीजी इस देश के महान् तपस्वी हैं। जो मानव को सही मानव वनाने के लिए अणुव्रत का पैगाम लेकर सारे देश में पैदल घूम रहे हैं। वे मानव जाति के उद्धार के लिए कितना श्रम करते हैं। वे जो कुछ करते हैं, वह सव हमारी भलाई के लिए करते हैं। यहां पर अणुव्रतों के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

जिस समय सौन्दर राजन वोल रहे थे, आकाश में गहरे वादल छाए हुए थे और मूसलाधार पानी वरस रहा था। आकाशवाणी से वार-वार सूचना दी जा रही थी कि समुद्री तूफान आज दो वजे तमिलनाडु में प्रवेश कर रहा है। मंत्री महोदय इस सूचना को सुनकर व्यथित हो रहे थे। उन्होंने अपने भापण में व्यथा को खोलते हुए कहा—

आज का वायुमण्डल तमिलनाडु के लिए वहुत खराव है। यहां वारह दिनों से निरंतर वर्पा हो रही है। इससे तो अभी हम संभले ही नहीं हैं और मौसम विभाग ने सूचना दी है कि दोपहर में दो वजे तूफान मद्रास की ओर आ रहा है। अभी दिन के साढ़े वारह वजे हैं। डेढ़ घण्टे के वाद क्या होगा? कुछ कहना कठिन है। हम लोग आज उस महान् तपस्वी आचार्यश्री तुलसी का जन्मदिन मना रहे हैं। मैं उस महान व्यक्ति से प्रार्थना करता हूं कि आप इस तूफान से तमिलनाडु को वचा लें।

मंत्री महोदय ने भावविह्वल होकर अपने मन की पीड़ा रख दी। उनके वाद श्री सोहनराजजी चण्डालिया वोले। उन्होंने पूरे विश्वास के साथ कहा कि जो तूफान आ रहा है, वह आचार्यश्री की कृपा से जरूर दूर चला जाएगा।

कार्यक्रम संपन्न हुआ। आधा घण्टा वाद आसमान से वादल उतर गये। धूप निकल आयी और तूफान का संकट टल गया। उसी समय आकाशवाणी से संवाद प्रसारित हुआ—तमिलनाडु की ओर वढ़ने वाला तूफान आंध्र प्रदेश की ओर मुड़ गया है। हमारा प्रदेश समुद्री चक्रवात के संकट से मुक्त हो गया है।

यह चमत्कार आचार्यश्री के नाम से हुआ, मंत्री महोदय की गहरी आस्था से

हुआ अथवा किसी दूसरे कारण से हुआ ? इस पर वैज्ञानिक रिसर्च हो सके तो जीवन की अनेक पहेलियों का समाधान हो सकता है।

कोई अच्छी चीज चढ़ाओ

२६ नवम्बर को चारभुजा के श्रावक दर्शन करने आमेट आए। उनके साथ मंदिर के पुजारी नाथूजी भी थे। सफेद दाढ़ी और सफेद पगड़ी, वर्षों तक पूजा करने का अनुभव। पुजारीजी ने नमस्कार कर आचार्यवर के चरणों में कुछ नोट रख दिये। साथ में आए श्रावक उन्हें हड़बड़ी से समझाने लगे। आचार्यवर ने उनको रोकते हुए भाई नाथूजी से पूछा—ये नोट किसलिए ? पुजारीजी सहमते हुए बोले—यह मेरी ओर से छोटी-सी भेंट है। इसे आप स्वीकार करें। आचार्यश्री—इतनी छोटी-सी भेंट ? कागज की क्या भेंट लें ? कोई अच्छी चीज चढ़ाओ।

यह बात सुन पुजारीजी सोचने लगे कि आचार्यजी सिक्के लेंगे या और कुछ ? आचार्यश्री ने उनका ध्यान अपनी ओर खींचते हुए कहा—आप तम्बाकू पीते हैं ? पुजारीजी ने स्वीकार किया। आचार्यश्री ने कहा—भेंट देनी हो तो यह दो। शक्ति सारू भक्ति, अपने मन को टटोलो। हिम्मत हो तो तम्बाकू पीना छोड़ दो। एक बार पुजारीजी सकपका गये। वे बोले—और कुछ दूं ? आचार्यश्री ने उन्हें समझाया—नहीं, हमें और कुछ नहीं चाहिए। देना हो तो अपनी कोई बुराई दे दो। पुजारीजी का मन बदल गया। वे तम्बाकू छोड़ने के लिए तैयार हो गये। आचार्यश्री ने एक बार फिर उनकी जांच करते हुए कहा—देखो, जिन्दगी भर का काम है। अच्छी तरह सोच लो। पुजारी आचार्यवर के चरणों में झुकते हुए बोले—गुरुजी ! सोच लिया। अब तो जीवन भर तम्बाकू को हाथ नहीं लगाऊंगा। तम्बाकू के बिना एक दिन भी रहना जिसके लिए मुश्किल था, वही पुजारी आचार्यश्री की प्रेरणा से इतने अभिभूत हो गए कि उन्होंने जिन्दगी भर के लिए तम्बाकू से मुक्ति ले ली।

समन्वय परम्परा के रक्षक

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य हैं, पर आपका व्यक्तित्व इतना बहुआयामी है कि आप किसी सीमा में बंधे हुए नहीं हैं। तेरापंथ, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, सनातनी कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जिसके मन में आपके प्रति अपनत्व न हो। आपके व्यक्तित्व की प्रखर और उजली चमक से भारत का आम आदमी ही नहीं, बौद्धिक वर्ग भी प्रभावित है। डॉ० निजाम उद्दीन श्रीनगर (कशमीर) में इस्लामिया कॉलेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। वे अब तक

आचार्यश्री से साक्षात् मिल नहीं सके हैं। फिर भी वे साहित्य एवं अन्य गतिविधियों से परिचित हैं। उन्होंने आचार्यवर के संबंध में एक निबंध लिखा है—'आचार्यश्री तुलसी की धर्मशासना : आधुनिक संदर्भ में।' इस लेख में आचार्यश्री के व्यक्तित्व का विश्लेषण जिस खूबी से किया है, ऐसा प्रतीत होता है, वे आचार्यश्री को भीतर और बाहर दोनों बिन्दुओं पर बहुत गहराई से समझते हैं। अमृत महोत्सव के मंगलमय अवसर पर आचार्यवर के प्रति अपना नमन समर्पित करते हुए २२ सितम्बर को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है—'२२ सितम्बर से २४ सितम्बर १९८५ तक आपके अपने आचार्य काल के पचासवें वर्ष में प्रवेश करने पर जो 'अमृत-महोत्सव' मनाए जा रहे हैं, वे जन-जन को अनुप्रेरित करेंगे। आपका व्यक्तित्व बहुमुखी है, उसमें एक चुम्बकीय आकर्षण है और आपका अणुव्रत आन्दोलन भारत के मानस को नूतन ऊर्जा और शक्ति प्रदान कर उसे सम्यक् मार्ग दर्शाने वाला है, नैतिक मूल्यों की आभा विकीर्ण करने वाला है। आपने साम्प्रदायिकता की सीमाओं को पार कर मानवता के उद्धार के लिए लाखों लोगों के मानस को आन्दोलित एवं अनुप्राणित किया। अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से धर्म-संघ को तेजवंत बनाया, उसे मिसाली अनुशासन में ढाला। हजारों मील की यात्राएं कर, गांव-गांव नगर-नगर पहुंच आपने जो जीर्ण रूढ़ियों को विदीर्ण किया, वह अपने में एक सराहनीय कार्य है। आप भगवान् महावीर की समन्वय परंपरा के रक्षक और प्रचारक हैं। आज के युग में सह-अस्तित्व और समन्वय की बड़ी जरूरत है। अहिंसा और अनेकांत के वृक्षों को सींचने वाले ऐसे महान् कर्मयोगी और निस्पृही साधक को मेरा बार-बार नमन।'

सत्ता के प्रति जागरूकता

श्री विमल मित्र हमारे देश के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। उनका उपन्यास 'गण देवता' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत है। युवाचार्यश्री का साहित्य और प्रेक्षाध्यान पत्रिका पढ़कर वे बहुत प्रभावित हुए। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री से साक्षात्कार करने की उनकी बहुत इच्छा है, पर वे अपने मन पर उम्र की सलवटें महसूस करने लगे हैं। इसी कारण लम्बी यात्रा करने में हिचकिचाते हैं। कभी-कभी साहित्यकार विचारों के जंगल में भटक जाता है। इस भटकन में उसकी अपनी पहचान उससे छूट जाती है। किन्तु श्री विमल मित्र अपनी सत्ता के प्रति पूरी तरह से जागरूक हैं। उन्होंने जिस ऋजुता और सहजता से अपने जीवन को खोलकर रखा है, उससे उनके चिन्तन में अध्यात्म की गहराई परिलक्षित होती है।

आत्मख्यापन मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है। कोई विरल व्यक्ति ही ऐसा होता है, जो अपने कर्तृत्व का ख्यापन नहीं चाहता। इस चाह को पूरा करने के

लिए प्रयत्नशील रहने पर भी वह उस पर आवरण डालकर रखता है। किन्तु विमल मित्र ने इस संदर्भ में ख्याति की वासना से मुक्त न हो पाने की अपनी वृत्ति को जिस ढंग से अभिव्यक्ति दी है, उनकी वासना से मुक्त होने की बेचैनी अनायास ही प्रकट हो जाती है। १८ अक्टूबर १९८५ को लिखे पत्र में उन्होंने जो भावना प्रकट की है, उसमें उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व की झलक साफ-साफ दिखाई देती है। उनकी भावना का मूर्त्त रूप इस प्रकार है—'आपके द्वारा सम्पादित 'प्रेक्षाध्यान' मासिक हमेशा मिल रहा है। पृथ्वी के इस अधःपतित युग में मानव-कल्याण की जो बातें आप प्रकाशित-प्रचारित कर रहे हैं, वे और किसी भी पत्रिका में दुर्लभ हैं। हम लोग दुनिया के सभी आदमी असंपूर्ण हैं। संपूर्ण सत्य को ग्रहण करने में इसीलिए हमें कठिनाइयां होती हैं। आपकी पत्रिका से ही यह मालूम हुआ कि पशु का पशु होना, पक्षी का पक्षी होना और पेड़ों का पेड़ होना बहुत आसान है, लेकिन मनुष्य का मनुष्य होना बहुत मुश्किल है।

'युवाचार्य महाप्रज्ञ का लेख या उनकी वाणी मेरे लिए दीपक की तरह है। उनका लेख मेरे मन को आलोकित कर देता है। मेरी इच्छा होती है कि मैं आपके लाडनूं के आश्रम में जाऊं और उनकी बातें लगातार सुनूं। लेकिन खेद है कि मैं अभी चौहत्तर वर्षों का वृद्ध व्यक्ति हूं। जब-जब भी प्रेक्षाध्यान मेरे पास आता है, तब मैं सारा काम छोड़कर उसे पढ़ने लगता हूं और जब कहीं जाना पड़ता है और थोड़ा भाषण देना पड़ता है तो मैं 'प्रेक्षाध्यान' से सीखी हुई बातें कह देता हूं। जैसे साधु एकनाथ की कहानी। बादशाह, वजीर और एक दुकानदार की कहानी। या फिर उस आदमी की कहानी, जिसकी कन्या का विवाह किसान के साथ हुआ था और दूसरी कन्या का कुम्हार के साथ। मेरा आशय यह है कि जो बंगला-भाषी सज्जन 'प्रेक्षाध्यान' नहीं पढ़ते, उन तक प्रेक्षाध्यान का संदेश पहुंचाना।

'अभी तक मेरे चरित्र में एक दोष है। इस दोष से मैं मुक्त नहीं हो पा रहा हूं। यह कामना-वासना ही मुझे बेचैन कर देती है। लेखक के रूप में ख्याति की वासना से मैं मुक्त नहीं हो पाता और इसके लिए मैं बहुत लज्जित भी हूं। प्रेक्षाध्यान पढ़कर मुझे काफी शांति मिलती है। यदि लाडनूं हमारे नजदीक होता तो मैं वहां जाकर युवाचार्य के चरणस्पर्श करता और कामना-वासना से मुक्त होने का आशीर्वाद मांगता।

'आपका और ज्यादा समय नहीं लूंगा। चिट्ठी लंबी होती जा रही है। आप सभी को मेरा प्रणाम।'

स्वर्ग कहां गया

२७ नवम्बर, चातुर्मास का अंतिम दिन। पांच मास का समय मानो पंख लगाकर उड़ गया। आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन के मध्य एक विशेष बात का उल्लेख करते हुए कहा—'आज दो क्षण के लिए अक्षिनिमीलन हुआ। उस अवधि में स्वप्न-लोक की यात्रा करता हुआ मैं स्वर्ग में पहुंच गया। ज्यों ही आंख खुली कि स्वप्न के स्वर्ग का लोप हो गया। एक बार मैंने सोचा—स्वर्ग कहां गया? दूसरे क्षण आंखें खोलकर इस परिषद् को देखा तो लगा—वास्तविक स्वर्ग तो यहीं पर है। स्वर्ग में कहां साधु हैं, कहां साध्वियां हैं? कहां यह समवसरण की छटा है? इससे बढ़कर स्वर्ग क्या होगा? आचार्य भिक्षु का यह धर्मशासन ही स्वर्गीय सुखों की अनुभूति देने वाला है।

जनता के संत

२७ नवम्बर को रात्रि में मंगल कामना समारोह का प्रथम चरण आयोजित था। उसका दूसरा चरण २८ नवम्बर को मध्याह्न में शुरू हुआ। महंत श्रीजयरामदास जी सहित अनेक भाई-बहनों ने श्रद्धाभक्ति से ओतप्रोत मंगल भावनाएं व्यक्त कीं। चातुर्मास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल कच्छारा ने आमेट वर्षावास की उपलब्धियों की चर्चा की।

मेवाड़ के महाराणा महेन्द्रसिंहजी उसी दिन उदयपुर से आमेट आये थे। ठीक ग्यारह बजे उन्होंने आचार्यवर के दर्शन कर आधा घण्टा तक बातचीत की। उसके बाद कार्यक्रम में बोलते हुए उन्होंने कहा—आचार्यश्री मेवाड़ पधारे। अमृत महोत्सव का अवसर मेवाड़ को मिला। यह हमारे सौभाग्य का प्रतीक है। वैसे उदयपुर राजघराने के साथ तेरापंथ धर्मसंघ का संबंध बहुत पुराना है। आपके श्रावक हमारे यहां वफादारी से काम किया करते थे। आप जनता का भला कर रहे हैं, इसलिए जनता के संत बन गये। केवल मेवाड़ या राजस्थान पर ही नहीं, पूरे भारत पर आपका असीम उपकार है। मुझे बहुत खुशी है कि आज आमेट से विदा होने के अवसर पर मैं आपके दर्शन कर सका।

प्रदेशी जैसी कथा बने

२४ जून १९८५ से २८ नवम्बर १९८५ तक का कालखंड अमृत महोत्सव के दूसरे चरण के रूप में आमेट को प्राप्त हुआ। तेरह हजार की आबादी वाले कस्बे में एक साथ चालीस हजार लोगों की समुचित व्यवस्था कर यहां के कार्यकर्त्ताओं

ने सबको आश्चर्य में डाल दिया। पांच महीनों का चातुर्मास आज संपन्न हो गया है। अब आचार्यश्री यहां से प्रस्थान करने वाले हैं। प्रस्थान की वेला में आपको एक ही बात कहनी है कि जैसी प्रदेशी राजा की कथा बनी, वैसी आमेट की भी बने। उक्त विचार श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने सन् १९८५ के आमेट चातुर्मास के आखिरी प्रवचन में दिए। इससे पूर्व उन्होंने श्रमण केशीकुमार और राजा प्रदेशी के कुछ रोचक प्रसंग भी सुनाए।

संतां को सनेहड़ो

आचार्यवर ने अपने विदाई संदेश में कहा—श्रमण केशीकुमार को विदा देने के लिए राजा प्रदेशी आया था। आज हमें विदा करने के लिए महाराणा महेन्द्रसिंहजी आए हैं, यह भी एक संयोग की बात है। मेवाड़ की अपनी संस्कृति है। महाराणाओं ने इसकी सुरक्षा की है। ये महाराजाजी भी उस परम्परा का निर्वाह करते हुए जनता को समता और सन्तुलन का प्रशिक्षण देते रहें।

विदाई के प्रसंग पर एक नीतिकार का मंतव्य उद्धृत करते हुए आचार्यवर ने आगे कहा—

सज्जनसंगो मा भूत्,
यदि संगो, मास्तु तादृशः स्नेहः।
स्नेहश्चेत्, नो विरहो,
यदि विरहो, मास्तु जीवितस्याशा॥

—सज्जन व्यक्तियों का संपर्क होने के बाद उनसे बिछुड़ना बहुत कष्टप्रद होता है। इसलिए कवि ने सज्जन व्यक्तियों के साथ होने वाले संपर्क स्नेह से दूर रहने की बात कही है। यदि उनके साथ स्नेह हो जाये तो विरह न होना ठीक है। विरह की स्थिति उपस्थित होने पर तो जीवन की आशा भी छोड़नी पड़ती है।

यह एक स्थिति है। दूसरी अवधारणा के अनुसार—संतां को सनेहड़ो, ठाट को सो तेहड़ो—संतों का स्नेह ओस की तहों जैसा होता है। जैसे ओस की तहें नहीं जमतीं, वैसे ही साधुओं का स्नेह नहीं टिकता। इस वस्तुस्थिति को समझकर साधु-संतों के साथ प्रतिबद्ध होना ही नहीं चाहिए। क्योंकि प्रतिबद्धता के बाद होने वाला वियोग अधिक दुःखद होता है।

संतों का जहां तक प्रश्न है, वे किसी क्षेत्र या व्यक्ति विशेष के साथ जुड़कर करेंगे ही क्या? वे तो जहां जाएंगे, वहीं आमेट तैयार है। इसलिए स्वागत और विदा—दोनों समय में समान रूप से खुश रह सकते हैं। संत जनता को समता का पाठ पढ़ाएं, ताकि सब लोग हर स्थिति में सुख का अनुभव कर सकें।

कार्यक्रम की सम्पन्नता के तत्काल बाद आचार्यवर ने अमृत समवसरण से

प्रस्थान कर दिया। हजारों-हजारों लोग उस प्रस्थान यात्रा में सहभागी थे। लक्ष्मी बाजार से स्टेशन तक पूरा राजपथ जनाकीर्ण था। अनेक स्त्री-पुरुषों की आंसूभीगी पुतलियों में एक ही चित्र था, अमृतपुरुष आचार्यश्री तुलसी का। सवा पांच महीनों का अमृतमय सान्निध्य, अमृत समवसरण का जीवंत माहौल। आचार्यवर के प्रस्थान में साक्षी खड़े लोगों के मन कुम्हला गये। जनता की नहीं, आस्था की भीड़ परेशान हो उठी। अब क्या करेंगे, कहां जाएंगे, क्या सुनेंगे आदि प्रश्नचिह्नों में जनता की मानसिकता पूरी तरह से खो गयी।

तेरापंथ सभा-भवन से प्रस्थान कर आचार्यवर 'सुनील बाल निकेतन' पधारे। वहां जनसमूह को प्रतिबोध दिया। साध्वियों का प्रवास हैप्पी-होम में हुआ। लक्ष्मी बाजार की सारी रौनक स्टेशन रोड की ओर प्रयाण कर गयी।

कार्यकर्ताओं का पुरुषार्थ

आमेट मेवाड़ का अच्छा क्षेत्र है। पिछले एक सौ पचहत्तर वर्षों से वहां तेरापंथ के आचार्यों का चातुर्मास नहीं हुआ। इस प्रलम्ब अन्तराल के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा। अन्यथा इतना बड़ा क्षेत्र इतने समय तक वंचित क्यों रहता? वि० सं० १८३५ में वहां आचार्य भिक्षु का चातुर्मास हुआ। उसके बाद सं० १८६६ में आचार्यश्री भारमलजी का चातुर्मास हुआ। शेष छह आचार्यों के पावस प्रवास का सौभाग्य उस धरती को नहीं मिला। सं० २०४२ का चातुर्मास तेरापंथ के इतिहास में महत्त्वपूर्ण चातुर्मास है। आमेटवासियों को एक ऐतिहासिक अवसर उपलब्ध हुआ, इससे पीछे का अभाव भर गया। आमेट में लगातार पांच महीनों से भी अधिक समय तक अमृत की वर्षा हुई।

आचार्यवर चातुर्मास करने आमेट पहुंचे, उस समय ऐसा लगा कि अमृत महोत्सव के चातुर्मास के लिए आमेट क्षेत्र का चुनाव ठीक नहीं हुआ। इसके पीछे कई कारण थे। प्रारंभ में कार्यकर्ताओं के बीच सामंजस्य की कमी, यात्रियों के लिए यातायात के साधनों की कमी, आवास आदि के लिए उचित व्यवस्था की कमी, कार्यकर्ताओं में संतुलन एवं सहिष्णुता की कमी आदि। साधु-साध्वियों के आवास या अन्य सुविधाओं को लेकर वहां कोई कठिनाई नहीं थी। तेरापंथ सभा-भवन इतना बड़ा है कि साधु अधिक भी होते तो कठिनाई नहीं होती। साध्वियों के लिए भी साताकारी स्थान उपलब्ध हो गया। गोचरी की भावना पूरे गांव में बहुत अच्छी थी। श्रावक-श्राविकाएं धर्मसंघ के प्रति समर्पित थे। किन्तु चातुर्मास की सफलता का मापदण्ड साधु-साध्वियों की व्यवस्था या सुविधा नहीं होता, उसका मूलभूत आधार है देश भर के हजारों-हजारों यात्रियों की व्यवस्था। यात्री लोग भोजन आदि की दृष्टि से पूरे स्वावलम्बी होते हैं, पर व्यवस्था की अपेक्षा तो

स्थानीय लोगों से ही रहेगी।

आमेट में दो चार ऐसी बातें हो गयीं, जिनके कारण एक बार निराशा-सी होने लगी। आचार्यवर तक स्थिति पहुंची। आपने वहां के प्रमुख कार्यकर्ताओं को बलवती प्रेरणा दी। प्रेरणा का परिणाम भी आया किन्तु प्रथम बार में छवि धूमिल हो जाये तो उसे साफ-सुथरा बनाने में कालक्षेप तो हो ही सकता है। कार्यकर्ताओं में उत्साह था, काम करने की निष्ठा थी, वे अपनी सुख-सुविधाओं को गौण कर व्यवस्था को सफल बनाने में जुट गये। फिर भी देश भर में यह बात फैल गयी कि आमेट में कोई व्यवस्था नहीं है। यद्यपि अफवाह के बावजूद आने वालों की संख्या में कमी नहीं हुई। लेकिन आने वाले लोग इधर-उधर की बातें जरूर सुनाते। आगन्तुक लोगों से ऐसी प्रतिक्रिया सुनकर कार्यकर्ताओं को बहुत शर्म महसूस हुई। अपनी कमियों को दूर करने के लिए उन्होंने युद्धस्तर पर काम शुरू कर दिया। अब तो अनेक दिशाओं में सफलताओं के द्वार खुल गये। लोगों ने पुरुषार्थ का परिणाम देखा। निराशा आशा में परिणत हो गयी। आधुनिक साधनों की कमी के बावजूद चातुर्मास सफल रहा। अमृत महोत्सव की इतनी सघन व्यवस्थाएं उन लोगों ने जिस कौशल के साथ संपादित कीं, आगन्तुक लोग विस्मित रह गये।

आमेट चातुर्मास में सबसे बड़ी प्राकृतिक कठिनाई थी पानी की कमी। आसपास कहीं वर्षा नहीं थी। वर्षा के बिना नदी में पानी नहीं आ सकता। नदी में पानी आये बिना कुएं भरते नहीं हैं। बाहर से पानी मंगाने पर बहुत अधिक व्यय होता। इस कठिनाई के हल में प्रकृति ने सहयोग दिया। पहाड़ों पर हुई वर्षा से नदी में पानी आ गया और एक बहुत बड़ा संकट दूर हो गया।

आमेट चातुर्मास की सफलता का सबसे बड़ा निमित्त बना लक्ष्मी बाजार। यह बाजार नहीं होता तो गांव में आवास और प्रवचन के लिए अपेक्षित स्थान मिलना संभव ही नहीं था। लक्ष्मी बाजार में स्थित वहां का विशाल तेरापंथ सभा-भवन, उस भवन के सामने विशाल खुला प्रांगण, समर्पित कार्यकर्ता, जिन्होंने दिन-रात अनवरत श्रम किया। उन्होंने न घर का काम देखा, न व्यापार देखा और न अपना स्वास्थ्य। कार्यकर्ता इतनी लगन और निष्ठा के साथ परिश्रम नहीं करते तो शायद सफलता के आगे प्रश्नचिह्न लग जाते।

आमेट मित्र-मण्डल

आमेट चातुर्मास में व्यवस्था आदि की दृष्टि से चातुर्मास व्यवस्था समिति, तेरापंथी सभा, युवक परिषद, महिला मण्डल आदि सभी संस्थाएं सक्रिय रहीं। कुछ युवक आमेट मित्र-मण्डल बम्बई के नाम से भी व्यवस्था में संलग्न थे। उनमें

ऐसे युवक भी थे, जो वम्बई में साधु-साध्वियों के आवास-स्थल के आसपास ही रहते हैं। वे वहां साधु-साध्वियों के आगमन और विहार—इन दो अवसरों को छोड़कर कभी प्रवचन श्रवण या उपासना का लाभ नहीं लेते। इस वार वे आमेट में वहुत नजदीकी से संपर्क में रहे। इसमें उन्हें सामाजिक और संघीय दायित्व का वोध हुआ और वे पूरे मन से धर्मसंघ के साथ जुड़ गये। वम्बई में उनका व्यवसाय चलता है, फिर भी चातुर्मास काल में व्यवसाय से उनका मन उखड़ गया। वे जाते और पांच दिन वाद लौट आते। उनकी मानसिकता ऐसी हो गयी कि उन्हें वार-वार आमेट आना ही पड़ता। वे नयी योजनाएं वनाते और उनकी क्रियान्विति के लिए भी तत्पर रहते।

आमेट मित्र-मण्डल के सदस्यों ने वताया कि उनके पास आर्थिक आय के स्रोत वहुत हैं, व्यय के साधन खोजने पड़ते हैं। उन्होंने चिन्तन किया, वे मर्यादा महोत्सव जैसे वड़े प्रसंगों पर फ्री आई कैम्प या अन्य चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था करेंगे, जिससे पूरे समाज को लाभ मिल सके। सामाजिक दृष्टि से सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर कुछ करना भी एक वड़ा काम है। यह तभी हो सकता है, जव व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना से ऊपर उठकर समाज और देश के साथ गहन अपनत्व का अनुभव करता है।

चातुर्मासिक व्यवस्थाएं : एक दृष्टि में

आमेट में आचार्यवर का प्रवास एक कार्यकारी चातुर्मास के रूप में संपन्न हुआ। इस चातुर्मास में व्यवस्था की दृष्टि से जो काम हुए उनकी संक्षिप्त-सी जानकारी निम्नलिखित विन्दुओं से हो सकती है।

- चातुर्मास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री कजोड़ीमलजी वोहरा।
- चातुर्मास व्यवस्था समिति के मंत्री श्री केन्हैयालालजी कच्छारा।
- स्वागत समिति के अध्यक्ष महन्त जयरामदासजी।
- स्वागत समिति के मंत्री श्री सोहनलालजी वम्व।
- चातुर्मास का समय पांच मास दस दिन।
- टीन की चद्दरों का पक्का प्रवचन पंडाल, वाईस हजार आठ सौ स्क्वायर फीट।
- पण्डाल में अनुमानित उपस्थिति आठ हजार की।
- पण्डाल में संलग्न सड़क, सड़क के आगे का चौक, दूसरी ओर का खाली स्थान आदि सव मिलाकर वाईस हजार स्क्वायर फीट। इस स्थान का पर्युषण पर्व, दीक्षा आदि विशेष अवसरों पर उपयोग हुआ। इस स्थान में धूप से वचाव के लिए अतिरिक्त रूप में सौ सामियाने काम में लिये गये।

- सुनील बाल निकेतन के विशाल प्रांगण में अमृत महोत्सव का पण्डाल एक लाख स्क्वायर फीट का था। अनुमानित उपस्थिति चालीस हजार।
- अमृत महोत्सव के दिन २२ सितम्बर को एक साथ पचास वसों से यात्री आये।
- अमृत महोत्सव के समय तीस कार्यकर्ता एवं पचास पुलिस के जवान पूरे गांव में तथा अन्य आवास-स्थलों पर गश्त लगाते रहे।
- चातुर्मास में आचार्यश्री का आवास-स्थल, साध्वियों का आवास-स्थल, भोजनशाला, कार्यालय, चिकित्सालय यात्रियों की आवास-व्यवस्था, आदर्श साहित्य संघ, जैन विश्व भारती, अणुव्रत समिति के कार्यालय वहुत निकट थे।
- चातुर्मास से पूर्व यात्रा एवं आवास-व्यवस्था के परिपक्व अनुभवी श्री खेमचन्दजी सेठिया ने आमेट में एक साथ छह सौ परिवारों की व्यवस्था करने का संकेत दिया था। कार्यकर्त्ताओं ने स्थायी रूप से आठ सौ परिवारों के आवास की व्यवस्था की। पर अमृत महोत्सव के अवसर पर एक साथ चौदह सौ परिवार हो गये।
- चातुर्मास में एक सौ पन्द्रह वड़े संघ आए। सवसे वड़ा संघ सिवाची-पालानी का था। उसमें लगभग दो हजार व्यक्ति थे। इस संघ के खानपान की व्यवस्था एक व्यक्ति की ओर से की गयी थी। ऐसी व्यवस्था में औचित्य नहीं लगा। इसलिए पांच दिनों में उस संघ की गोचरी नहीं की गयी।
- आमेट में सभी जाति और वर्ग के लोगों का सहयोग रहा। प्राय: सभी घरों में यात्री ठहरे।
- आवास-व्यवस्था के लिए सरकारी मकान भी उपलब्ध हो गये।
- २२ से २४ सितम्बर तक गांव के सारे विद्यालय उपलब्ध हो गये २२ सितम्बर को रविवार था, २३ सितम्बर को प्रधान अध्यापक से अनुरोध कर अवकाश घोषित कराया, २४ सितम्बर को अवकाश था। इससे यात्रियों को काफी सुविधा रही।
- यात्री गांव में ठहरना नहीं चाहते। क्योंकि गांव आचार्यवर के आवास-स्थल से थोड़ा दूर था। पर गांव में ठहरने वालों को सुविधा अधिक थी।
- यात्रियों को गांव में ठहराने में सवसे वड़ी कठिनाई थी पानी की। वर्षा होने और नदी आने के वाद उस कठिनाई का समाधान हो गया।
- अमृत महोत्सव के दूसरे दिन अपराह्न में वहुत तेज वर्षा हुई। इससे टेंटों में ठहरे यात्रियों की परेशानी वढ़ने लगी। किन्तु स्थानीय कार्यकर्ताओं ने वड़ी तत्परता के साथ वैंक, हास्पिटल, सिनेमाघर आदि खुलवाये और यात्रियों को ट्रकों द्वारा सुरक्षित स्थान में पहुंचा दिया। इस कार्य को संपादित

महीनों तक उनका घर प्रायः भरा रहा। एक बार उनके यहां युवाचार्यश्री पधारे। वल्ल पुर के तेरह भाई वहां दर्शन करने आए। वे दर्शन कर लौटने लगे तो नानालालजी ने उनको पानी पीने के लिए कहा। भाई बोले—पानी पीएंगे, भोजन भी करेंगे। नानालालजी उनको भीतर ले गए और भोजन के लिए बैठा दिया। वे भोजनालय समझकर बैठ गए। वहां भोजन करने वाले पांच-दस व्यक्तियों को देखकर उन्होंने बैठते ही पूछ लिया—भोजनालय में लोग कम आते हैं क्या? नानालालजी ने विनम्रता से कहा—यह भोजनालय नहीं है, आपका घर है। यह बात सुनते ही वे सहम गए। नानालालजी ने उनको वहीं भोजन करने का आग्रह करते हुए कहा—यदि आप लोग भोजन किए बिना चले गए तो मुझे रात को नींद नहीं आएगी। मुझे आप लोगों के आतिथ्य का मौका कब मिलेगा? आत्मीयतापूर्ण मनुहार को वे टाल नहीं सके। लौटते समय उनके मन पर साधार्मिक वात्सल्य की अमिट छाप थी।

कुल मिलकर हर व्यवस्था अपने आप में सफल रही। वैसे तो हर बड़ी व्यवस्था में व्यवस्थापकों, कार्यकर्ताओं एवं आगन्तुक लोगों के सामने छोटी-मोटी कठिनाई हो सकती है। पर उसे कठिनाई न मानकर व्यवस्था के अनुरूप स्वयं को एडजेस्ट कर लेना सबसे बड़ी सफलता है।

विशेष प्रसंग

एक व्यक्ति की सर्जनात्मक चेतना पूरे परिवेश को सृजनशील बना देती है। यह बात सब लोगों के बारे में घटित होती है या नहीं, आचार्यश्री तुलसी के बारे में अक्षरशः सही है। आचार्यश्री जहां रहते हैं अथवा जिनको आपके सान्निध्य में रहने का अवकाश मिलता है, वे कितने ही हताश क्यों न हों, एक बार तो उन्हें पुनरुज्जीवन-सा मिल जाता है। आचार्यश्री कहीं एक दिन रहें, एक वर्ष रहें, चातुर्मास करें या चार दिन रहें, वह कालखण्ड उपलब्धियों का काल होता है। आमेट चातुर्मास में भी अनेक आयोजन और अनेक उपलब्धियां हुईं। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है—

- एक सौ पचहत्तर वर्षों के बाद तेरापंथ के आचार्य का आमेट में चातुर्मास।
- अमृत महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम।
- अमृत महोत्सव के अवसर पर युवाचार्यश्री द्वारा आचार्यश्री को अभिनन्दन-पत्र एवं अन्य कलात्मक उपहारों का समर्पण।
- अमृत महोत्सव की खुशी में साध्वियों द्वारा सन्तों को उपहार।
- आचार्यवर द्वारा अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में अमृत पाथेय के रूप में पद्यों का निर्माण और अमृत-पत्रों का वितरण।

- संत हरचन्दसिंह लोंगोवाल का आचार्यश्री से मिलन। राजीव-लोंगोवाल समझौते में आचार्यश्री की अहम् भूमिका।
- आचार्यवर को वधाई देने के लिए गृहमंत्री का आगमन।
- अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के कार्यक्रम।
- जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर का आयोजन।
- दो वार प्रेक्षाध्यान शिविरों का समायोजन।
- जीवन-विज्ञान शिक्षा-संगोष्ठी।
- नयी शिक्षा नीति के सन्दर्भ में परिचर्चा।
- जैन विद्या ८५ की साप्ताहिक कक्षाएं।
- जैन विद्या परिषद की संगोष्ठी।
- मुमुक्षु वहनों का ध्यान शिविर।
- साधु-साध्वियों का नवाह्निक प्रेक्षा-प्रयोग।
- प्रेक्षा प्रयोग काल में नौ दिन तक आचार्यवर के चरण-स्पर्श का निषेध।
- मध्याह्न में आचार्यश्री, युवाचार्यश्री के सान्निध्य में नियमित रूप से भगवती सूत्र का वाचन।
- अणुव्रत अधिवेशन, तेरापंथ युवक परिषद का अधिवेशन, महिला मण्डल का अधिवेशन, मेवाड़ कान्फ्रेंस का अधिवेशन, मेवाड़ क्षेत्रीय महिला मण्डल का सम्मेलन।
- श्रमणोपासक दीक्षा का नया प्रयोग।
- प्रतिक्रमण के वाद प्रतिदिन प्रेक्षाध्यान की कक्षाएं।
- प्रतिदिन तीनों समय प्रवचन। रविवार को विशेष प्रवचन।
- रात्रि में जैन रामायण का वाचन।
- तपस्याओं का अद्भुत सिलसिला। ऊपर में पचपन दिन तक की तपस्या।
- संवत्सरी के दिन पूरे नगर में लगभग छह हजार पौषध।
- वारह-तेरह हजार की आवादी वाले ग्राम में लगभग चालीस हजार की उपस्थिति।
- वातानुकूलित मकानों में रहने वाले लोगों का तम्बुओं में प्रवास।
- बोहरा समाज के लोगों से विशेष संपर्क।
- तैंतालीस वर्षीया साध्वी द्वारा आछ के आगार से चातुर्मासिक तप।
- एक दिन में लगभग पन्द्रह सौ व्यक्तियों द्वारा एक साथ आयंविल तप का अनुष्ठान।
- अमृत-कलश पद-यात्रा के संयोजकों द्वारा एक साथ अड़तीस हजार संकल्प पत्रों का समर्पण।
- आचार्यवर द्वारा एक महीने तक खाद्य-संयम का विशेष प्रयोग।

- आचार्यश्री के जन्म-दिन को अहिंसा सार्वभौम दिवस के रूप में मनाना। उस अवसर पर पूरे धर्मसंघ के नाम आचार्यवर द्वारा दिया गया अमृत-संदेश।
- आचार्यश्री युगपुरुष हैं। युग की भाषा में सोचते हैं और युग की भाषा में बोलते हैं। आप युग का अनुगमन करते हैं। अथवा युग आपका अनुगमन करता है। निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना कठिन है। आपके जीवन का प्रत्येक दिन अपने आप में इतिहास है। राष्ट्र की अस्मिता उनके साथ इस प्रकार गुंथी हुई है कि एक राष्ट्र संत की महिमा अनायास ही उजागर हो जाती है। आपकी पदयात्रा, ज्ञानयात्रा या संपर्क-यात्रा में एक भी दिन साथ रहने के बाद वहां अधिक दिन बिताने की लालसा अंकुरा उठती है। मन को रेशमी सपने पंख लगाकर कल्पना के संसार में उड़ान भरने लगते हैं। कल्पना के आकाश को छोड़ यथार्थ की ठोस धरती पर पांव रखते ही वे सब प्रसंग साक्षात हो जाते हैं, जो आपके परिपार्श्व में घटित होते हैं। एक प्रसंग के साथ दसों प्रसंग जुड़े हुए होते हैं। इसलिए उनका कहीं छोर ही दिखाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में उस शृंखला की कुछ कड़ियों को ही रूपायित किया जा सकता है। मेवाड़ की इस यात्रा में यही कुछ करने का प्रयत्न किया गया है। आमेट चातुर्मास की सम्पन्नता के साथ ही यात्रा का यह क्रम संपन्नता के बिन्दु का स्पर्श कर यहीं पर विराम ले रहा है।



परिशिष्ट

१. अमृत-पद्य
२. यात्रा-पथ-निर्देशिका

१. अमृत-पद्य

मुनिश्री अर्जुनलाल (नाथद्वारा)

अर्जुन रो अर्पण सदा, गुरुचरणां सर्वस्व ।
सहज समर्पण भाव स्यूं, बढ़ै शिष्य वर्चस्व ।

मुनिश्री सुमेरमल 'सुदर्शन' (सुजानगढ़)

संजम सेवा में सजग, शिष्य सुमेर सुजान ।
आखिर अपणी साधना, अपणो अनुसंधान ।।

मुनिश्री सुमेरमल (लाडनूं)

संघ संघपति चरण में, सहज समर्पण भाव ।
क्यूं नहिं बढ़ै सुमेर मुनि, गण में प्रबल प्रभाव ।।

मुनिश्री बालचन्द (गंगाशहर)

श्रम सेवा संभाल में, चालै चंपक चाल ।
गुरु-इंगित आराधना में विशाल मुनि बाल ।।

मुनिश्री मधुकर (गंगाशहर)

मुनि मधुकर री मधुरिमा, धैर्य और गाम्भीर्य ।
गण में गूंजे गुरु-कृपा, पा वर्चस्वी वीर्य ।।

मुनिश्री हीरालाल (बीदासर)

रे हीरा ! तूं हर पलक, आगम पाठ अंवेर ।
मोटा भागां स्यूं मिलै, सूत्र-गगन की सैर ।।

मुनिश्री जतनमल (लाडनूं)

रतन जतन कर राख, जोगारम जोखिम भर्‌यो ।
सारी दुनिया साख, भरै अगर निज मन भरै ।।

मुनिश्री श्रीचन्द्र 'कमल' (टमकोर)

बना वासना से विरत, मन इन्द्रिय निर्द्वन्द ।
विकट साधना वृत्ति से, सुलभ साध्य श्रीचन्द !

मुनिश्री मोहनलाल (आमेट)

डरै घणो दायित्व स्यूं, करै स्वयं सब सेट ।
तन दुर्बल आत्मा सबल, मुनि मोहन आमेट ।।

मुनिश्री दुलहराज (दुधोड़)

दुलह ! दुलह श्रमशीलता और जम्यो जप जोग ।
भारहीन मन जो बणै तो सार्थक उद्योग ।।

मुनिश्री किशनलाल (मोमासर)

किशन मिशन समझै सफल, श्रम समता के साथ ।
प्रेक्षा की प्रेक्षा सतत, एक बात दिन-रात ।।

मुनिश्री भवभूति (कांकरोली)

शान्त भाव संजम सझै, भद्र प्रकृति भवभूति ।
बडा-बडेरां री विमल, याद करै अनुभूति ।।

मुनिश्री धर्मरुचि (मोमासर)

धर्मघोष - शिष्य धर्मरुचि, आगम युग अणगार ।
एक धर्मरुचि आज है, विमल विवेक विचार ।।

मुनिश्री राजेन्द्रकुमार (हांसी)

सहज साधना सन्त सी, ऋजु मृदु मुनि राजेन्द्र ।
मणि कांचन संयोग स्यूं, महाप्रज्ञ को केन्द्र ।।

मुनिश्री विजयकुमार (सुजानगढ़)

विजय-विजय के गीत गा, सीखा जो संगान ।
संघ-संघपति शासना, पाकर परम निधान ।।

मुनिश्री श्रेयांसकुमार (गंगाशहर)

प्रामाणिकता पुष्ट कर, श्रेयार्थी श्रेयांस ।
एक साधना में सजग, लगा समय अधिकांश ।।

मुनिश्री धर्मेन्द्रकुमार (राजलदेसर)

साधे नित जप जोग नै, समझ साधना केन्द्र ।
संघ - शासना में सतत, धर धीरज धर्मेन्द्र !

मुनिश्री उदितकुमार (सरदारशहर)

उदितोदित हो उदित मुनि ! संयम समता साथ ।
पा पाथेय सुमेर से, निशिदिन रहे सनाथ ।।

मुनिश्री मुदितकुमार (सरदारशहर)

मुदित ! मुदित मन रात-दिन, रहे स्वास्थ्य से स्वस्थ ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः, अपनी धुन में मस्त ।।

मुनि श्री अरविन्दकुमार (लाडनूं)

बिना शर्त गुरु-चरण में, अर्पित हो अरविन्द !
आग्रह-वृत्ति विरक्त चित्त, अनुशासित अहमिन्द ॥

मुनिश्री धनंजयकुमार (श्रीडूंगरगढ़)

धार धनंजय ! धीरता, वर अध्यात्म अमोल।
ले तप संयम की तुला, स्वयं-स्वयं को तोल ॥

मुनिश्री जिनदास (सिसाय)

रोज रोप आक्रोश से, घर हांणी जग हास।
प्रकृति विजय अभ्यास से, जग कहसी जिनदास ॥

मुनिश्री प्रशान्तकुमार (उदासर)

स्थिर संतुलन हर स्थिति, सह रह कर चित शान्त।
निश्चित गुण निष्पन्न ह्वैं, थारो नाम प्रशान्त ॥

मुनिश्री दिनेशकुमार (टापरा)

एके साधे सब सधै, धर शिर गुरु आदेश।
पा मधुकर से प्रेरणा, देखे प्रगति दिनेश ॥

मुनिश्री जिनेशकुमार (जसोल)

तर जीवन जोखिम भर्‌यो, संहर हर संक्लेश।
जीवन निमल निसल्ल जी, जागृत शिष्य जिनेश ॥

मुनिश्री ऋषभकुमार (तारानगर)

बणणो है धोरी वृषभ, ऋषभ ! न रंच अधीर।
ऋषभ चरण की शरण में, धीर वीर गंभीर ॥

मुनिश्री लाभरुचि (राजलदेसर)

बना ललित से लाभरुचि, कलि-कारागृह मुक्त।
संजम समता में सजग, रहे सतत संयुक्त ॥

मुनिश्री लोकप्रकाश (पचपदरा)

लेश नहीं लोकैषणा, और नहीं आवेश।
यह स्वरूप अखिलेश का, लक्ष्य बना लोकेश !

मुनिश्री धर्मेशकुमार (कांजीवरम्)

विविध धर्म आराधना, कर धर चित धर्मेश।
ध्यान अध्ययन और तप, कटसी निश्चित क्लेश ॥

मुनिश्री अभयकुमार (सरदारशहर)

अभय अभय अब है न भय, संजम-लय में लीन।
हीन भावना क्षीण कर, गण नन्दन वन सीन ॥

साध्वीश्री नजरकंवर (वास)

निजरकंवर राखी निजर, संयम में इकधार।
प्रथम अंक पायो प्रवर, श्रमणी-गण में सार ॥

साध्वीश्री टमकू (लाडनूं)

झमकू जुग री है सती, दाखांजी री देन।
टमकू गुरुकुलवास में, चित में पावै चैन ॥

साध्वीश्री कमला (जयपुर)

कमलू सती समाज में, सम्मानित सोल्लास।
प्रमुखाजी रै तीसरै, युग में गुरुकुलवास ॥

साध्वीश्री पन्ना (देरासर)

पन्ना दीर्घ-तपस्विनी, तप रो प्रवल प्रभाव ।
धर्मसंघ इतिहास में, पन्ना तरणी नाव ।।

साध्वीश्री आनन्दकुमारी (मोमासर)

आनंदित आनन्द कुमारी, मात सुजाणां रो सुरवास ।
अति उल्लासे परम प्रयासे, पायो अवकी गुरुकुलवास ।।

साध्वीश्री हुलासां (लाडनूं)

वेटी धनजी वैद री, नजरकंवर री वेन ।
हुलासां संजम सझे, खूमांजी री देन ।।

साध्वीश्री सुन्दर (सरदारशहर)

सुन्दर-सुन्दर पथ लियो, चरणामृत चारित्र ।
पाप-भीरुता स्यूं हुवै, जीवन परम पवित्र ।।

साध्वीश्री केशर (लाडनूं)

केशर तूं करणी करण, मत गिण सांझ सवेर ।
दीक्षित थारै भ्रातृयुग, है हनुमान सुमेर ।।

साध्वीश्री मेहतावां (सरदारशहर)

तन चेतन की भिन्नता, महतावा ! मंजूर—
करो, हरो आठूं करम, तो शिव-सदन न दूर ।।

साध्वीश्री केशर (लाडनूं)

केसर ! परमेशर समर, हर क्षण धर चित धीर ।
विपय वासना नै विसर, तो करसी भव तीर ।।

साध्वीश्री भत्तू (लाडनूं)

भत्तू भा शुभ भावना, क्षण-क्षण जागृत जोग ।
अपणै आडो आवसी, अपणो शुभ उपयोग ।।

साध्वीश्री मालू (चूरू)

तूं भागण मालू सती, महाप्रज्ञ-सा भ्रात ।
पिण अपणै पुरुषार्थ स्यूं, मिटसी यातायात ।।

साध्वीश्री बिदामां (पींपली)

अपणै आपै में सदा, प्रतिपल रहै प्रकाम ।
वो ही शिवपुर साधसे, हो चाहे दाख बिदाम ।।

साध्वीश्री भीखां (पींपली)

भीखां निज भगवान स्यूं, भले मांगले भीख ।
सुख में दुख में समर तू, आ तुलसी की सीख ।।

साध्वीश्री सूरजकुमारी (रतननगर)

साध्य सिद्धि सूरज ग्रहै, साधक अपणै हाथ ।
पाप-भीरुता पथ वहै, प्रामाणिकता साथ ।।

साध्वीश्री विजयश्री (सरदारशहर)

पन्ना तपसण पास, निशदिन रहती निमल दिल ।
आत्म विजय् विश्वास, वृद्धिगत कर विजयश्री !

साध्वीश्री बिदामां (खिवाड़ा)

वाणी मन की विमलता, वर्द्धमान अविराम ।
तो अक्षय सुख सन्निकट, समझै सती बिदाम ।।

साध्वीश्री केशर (टमकोर)

केशर री क्यार्‌यां खिली, रातियां हर्ष विभोर ।
तिण में एक कड़ी जुड़ी, केशरजी टमकोर ।।

साध्वीश्री पानकुमारी (सुजानगढ़)

घर परिकर तज सहज में, पानकंवर ली दीख ।
तो सहजे हर परिस्थिति, रहजे मीठो ईख ।।

साध्वीश्री रामकुमारी (लाडनूं)

रामकुमारी लिपिकला कुशल वर्णी अभिराम ।
प्रेक्षा कौशल प्राप्त कर, अब बण आत्माराम ।।

साध्वीश्री जतनकुमारी (लाडनूं)

जतनी ! संयम रतन नै खूब जतन कर राख ।
कथनी करनी एकता स्यूं भरसी जग शाख ।।

साध्वीश्री इन्दिरा (सरदारशहर)

अन्तर मन स्यूं इन्दिरा ! अपणी वृत्ति सुधार ।
तो तू निश्चित जाणज्ये, वशवर्ती संसार ।।

साध्वीश्री राजवती (श्रीडूंगरगढ़)

शान्ति सलिल स्यूं शान्त है, जो कषाय की लाय ।
तो राजी वाजी सही, नित समता की चाय ।।

साध्वीश्री वसुमती (सरदारशहर)

सुमती सीखे वसुमती, शल्य शान्त कर तीन ।
सहजानन्द समंद में होस्ये स्वयं विलीन ।।

साध्वीश्री जसवती (सरदारशहर)

जशकामी जश नां लहे, लहे सुजश निष्काम।
तो करणी निष्काम कर, जश पूरे मन हाम॥

साध्वीश्री धर्मवती (गंगाशहर)

तन में मन में वचन में, निवसे निशदिन धर्म।
धर्म नाम सार्थक सती, मेटी मन रो भर्म॥

साध्वीश्री प्रकाशवती (सिसाय)

स्वयं प्रकाशी रैं हुवै, पर प्रकाश अवकाश।
हर अन्तर तम, नाम कर सार्थक सती प्रकाश॥

साध्वीश्री कनकश्री (लाडनूं)

कनक ! कनक सौ टंच सो, जी जीवन अविराम।
शांत, दांत, उपशांत सब, वने व्याधियां वाम॥

साध्वीश्री सुप्रभा (श्रीडूंगरगढ़)

सुप्रभात है सुप्रभा ! गई अंधेरी रात।
कर पुरुषार्थ अवै इसो, पल-पल रहे प्रभात॥

साध्वीश्री चन्दनबाला (दिल्ली)

कभी न विसरो चन्दना, चंदनवाला नाम।
वढ़े मनोवल आत्मबल, वने व्याधियां वाम॥

साध्वीश्री सुमतिश्री (सरदारशहर)

गर्भावस्था में सुमति, वने सुमति दातार।
स्वयं सुमति ले सुमति दे, तो निश्चित निस्तार॥

साध्वीश्री अशोकश्री (सरदारशहर)

अर्हद् आश्रय से अगर, बनता वृक्ष अशोक।
तो सद्गुरु शरणागता, क्यों नहिं सती अशोक॥

साध्वीश्री स्वयंप्रभा (सरदारशहर)

स्वयंप्रभाजी तप तपे, विजित कषाय विकार।
तब ही अभिधा स्वयंप्रभा, सार्थक हो साकार॥

साध्वीश्री ज्ञानप्रभा (सरदारशहर)

जो क्षयोपशम भाव से, ज्ञानावरणी कर्म।
ज्ञानप्रभा विकसित सुगम, हो निज में निज मर्म॥

साध्वीश्री कीर्तिश्री (तारानगर)

कीर्ति श्री की कामना, करे मनुज बेकार।
तदनुरूप जो साधना, कीर्ति श्री साकार॥

साध्वीश्री कुसुमलता (तारानगर)

कुसुम सुकोमलता बिना, कुसुम नाम निक्षेप।
मृदुता ऋजुता योग स्यूं, निपट कुसुम निर्लेप॥

साध्वीश्री जिनप्रभा (लाडनूं)

पा जिन-प्रवचन जिनप्रभा! पलक न करें प्रमाद।
अप्रमाद की साधना, स्वयं सुखद संवाद॥

साध्वीश्री कल्पलता (लाडनूं)

कल्पलता की कल्पना, कोरी बात हि बात।
खड़ी सामने देखलो, कल्पलता साक्षात॥

साध्वीश्री प्रज्ञावती (वाव)

पा प्रज्ञा प्रज्ञावती, कहलावै सो साच।
ते नाम्ना प्रज्ञावती, जन्मजात प्रोवाच॥

साध्वीश्री वीणाकुमारी (सरदारशहर)

बणो प्रवीणा ज्ञान वल और चरण बल तोल।
वीणा मृदु वीणास्वरी; बोलो झीणा बोल॥

साध्वीश्री सुषमाकुमारी (सरदारशहर)

तू सुषमा ! दुषमार में, पायो तेरापंथ।
भद्रे ! थारै भाग्य रो, के वरणूं वृत्तंत॥

साध्वीश्री प्रभावनाश्री (टमकोर)

करणी संघ-प्रभावना, कठिन कठिनतर कार।
थारो नाम प्रभावना, निज जीवन उद्धार॥

साध्वीश्री उर्मिलाश्री (गंगाशहर)

उठे उर्मिला के हृदय, हर्ष उर्मि हर बार।
जैन धर्म मानव जनम, तेरापथ पथ पार॥

साध्वीश्री विमलप्रज्ञा (बीदासर)

विमलता यह विमलप्रज्ञा, विमल जीवन जी सदा।
सिद्ध कर आत्मानुशासन, सर्वदा स्ववंशवदा॥

साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञा (लाडनूं)

अप्पुस्सुए अवहिल्लेसे, साध्य अपणो साधती।
सिद्धप्रज्ञा ज्ञान दर्शन चरण वर आराधती॥

साध्वीश्री निर्वाणश्री (श्रीडूंगरगढ़)

परम लक्ष्य चारित्र का, निश्चित परिनिर्वाण।
निर्मल दिल निर्वाणश्री ! अर्पित हों दश प्राण॥

साध्वीश्री वर्धमानश्री (दिल्ली)

वर्धमान विद्या विनय, वर्धमान विज्ञान।
वर्धमानश्री ! विरतचित, अविरल हो अभियान॥

साध्वीश्री स्वर्णरेखा (श्रीडूंगरगढ़)

स्वर्णरेखा की चमक, चारित्र के आचरण में।
स्वर्णरेखा तभी सार्थक, समर्पण गुरु-शरण में॥

साध्वीश्री उज्ज्वलरेखा (सरदारशहर)

उज्ज्वल उज्ज्वल ही रहे, सदा सुकृत की रेख।
श्रवण मनन पूर्वक पढ़े, आगम के आलेख॥

साध्वीश्री मधुस्मिता (सरदारशहर)

मंजिल दूर मधुस्मिता ! पर क्यों बने निराश।
सही मार्ग संकल्प दृढ़, हो अनवरत प्रयास॥

साध्वीश्री चित्रलेखा (लाडनूं)

देखो दृग-युग मूंदकर, चित्रा ! अपना चित्र।
परिमार्जन की प्रक्रिया से हो परम पवित्र॥

साध्वीश्री मधुलता (गंगाशहर)

बनो मधुलता ! मधुव्रता, गुरुपादाम्बुज लीन।
स्वयं स्वयं की स्वामिनी, सदा-सदा स्वाधीन॥

साध्वीश्री विभाश्री (गंगाशहर)

अपने विभुवर की विभा में बन भागीदार।
नाम विभाश्री की करो सार्थकता साकार॥

साध्वीश्री सौम्यप्रभा (सरदारशहर)

समता शीतलता नहीं, नहीं शान्ति सद्भाव।
सौम्यप्रभा अभिधान का, कैसे बढ़े प्रभाव॥

साध्वीश्री ऋषभप्रभा (सरदारशहर)

त्याग तितिक्षा विमलता, ऋजु मृदुता सौहार्द।
क्या समझे इसके बिना, ऋषभप्रभा का हार्द॥

साध्वीश्री अर्हतप्रभा (सरदारशहर)

थोड़ी-सी अर्हत्प्रभा, यदि जीवन में व्याप्त।
क्षमा सरलता सहजता, पा लेगी पर्याप्त॥

साध्वीश्री शारदाश्री (भीनासर)

क्या श्री—शोभा शारदा की ली तुमने छीन।
स्वयं शारदाश्री बणी, संयम में तल्लीन॥

साध्वीश्री मनीषाश्री (चाडवास)

अपने मन की मालकिन, बनी मनीषा मौज।
सतत साधनारत रहो, स्वयं स्वयं की खोज॥

साध्वीश्री विवेकश्री (चाडवास)

वय चाहे छोटी बड़ी, जागृत विमल विवेक।
तो जीवन की सफलता, कहूं कल्पना छेक॥

साध्वीश्री अनुशासनश्री (गंगाशहर)

अनुशासन अनुशासना! जीवन में अनिवार्य।
सदा सहज स्वीकृत रहे, अति प्रसन्न आचार्य॥

साध्वीश्री प्रेरणाश्री (मद्रास)

सदा प्रकृति प्रेरित रहे, प्रामाणिकता पन्थ।
फिर गुरुवर की प्रेरणा, है आभार अनन्त॥

साध्वीश्री लब्धिप्रभा (टिटिलागढ़)

बिन गुरु करुणा कठिनतर, है तरणो भव-अब्धि।
सुगुरु चरण की शरण यदि, लब्धिश्री उपलब्धि॥

साध्वीश्री पीयूषप्रभा (सरदारशहर)

प्रख्याती पीयूष की, गुणी-गुणाई बात।
गुरु-वच सत पीयूष है, सदा मिलै साक्षात॥

साध्वीश्री अमृतप्रभा (सरदारशहर)

अमृतोत्सव उपलक्ष में, अमृतप्रभा अभिधान।
पर यह बने यथार्थ अब, करलो अनुसंधान॥

२. यात्रा-पथ-निदेशिका

(मेवाड़-यात्रा—क्षेत्र-विवरण)

पाली से आमेट, २४ फरवरी १९८५ से २४ जून १९८५ तक

रावलियावास	प्रातः १३ कि० मी०	प्राइमरी स्कूल	२४ फर०
लाम्बिया	सायं ५ ,, ,,	,, ,,	२४ ,,
चवाड़िया	प्रातः १३ ,, ,,	अनराजजी सकलेचा	२५ ,,
खारची	प्रातः ३ ,, ,,		२६ ,,
मारवाड़जंक्शन	प्रातः २ ,, ,,	प्रेमराजजी मरलेचा	२६ ,,
चिरपटिया	प्रातः ८ ,, ,,	मेघराजजी मूथा	२८ ,,
नीमली	सायं ८.५ ,, ,,	रा० मा० स्कूल	२८ ,,
वापारी	प्रातः ४.५ ,, ,,	स्थानक	१ मार्च
सारण	प्रातः ३.५ ,, ,,	रा० मा० स्कूल	१ ,,
राढ़झालरा	सायं ६ ,, ,,	कोठरी	१ ,,
दूधालेश्वर महादेव	प्रातः १० ,, ,,	मठ	२ ,,
टाडगढ़	प्रातः ६ ,, ,,	सभा-भवन	३ ,,
बरार	प्रातः ८ ,, ,,	पुखराजजी गन्ना	८ ,,
आसण	प्रातः ५ ,, ,,		१० ,,
ठीकरवास	प्रातः ३ ,, ,,	शंकरलालजी बावेल	१० ,,
सांगावास	प्रातः ५ ,, ,,		११ ,,
वगगड़	प्रातः २ ,, ,,	रा० मा० विद्यालय	११ ,,
लाखागुड़ा	प्रातः ३.५ ,, ,,		१२ ,,
रावाड़ी	प्रातः १.५ ,, ,,		१२ ,,
छपली	प्रातः ४.५ ,, ,,	भंवरलालजी भरसालिया	१२ ,,
पीपली	प्रातः ६ ,, ,,	बस्तीमलजी पीतलिया	१३ ,,

देवगढ़	प्रातः	८ कि० मी०	घीसूलालजी डागा	१४ मार्च
लसाणी	प्रातः	१२ ,, ,,	सभा-भवन	१५ ,,
इशरमण्ड	प्रातः	३ ,, ,,		१६ ,,
लसाणी	सायं	३ ,, ,,		१६ ,,
काकरोद	प्रातः	११ ,, ,,		१७ ,,
ताल	प्रातः	४.५ ,, ,,		१७ ,,
कूकरखेड़ा	प्रातः	१० ,, ,,	महावीर-भवन	१८ ,,
भीम	प्रातः	४ ,, ,,	जैन स्थानक	१६ ,,
वड़ाखेड़ा	प्रातः	१० ,, ,,	जैन स्थानक	२० ,,
भीम	प्रातः	१० ,, ,,	कन्या पाठशाला	२१ ,,
थाणा	सायं	६ ,, ,,	रा० मा० विद्यालय	२१ ,,
शिवपुर	प्रातः	३ ,, ,,		२२ ,,
ज्ञानगढ़	प्रातः	६ ,, ,,	रंगलालजी कोठारी	२२ ,,
फाकुलिया	प्रातः	५ ,, ,,		२३ ,,
चितामा	प्रातः	३ ,, ,,	सभा-भवन	२३ ,,
झालरा	प्रातः	१४ ,, ,,	रावला	२५ ,,
धाड़जी का खेड़ा	सायं	३ ,, ,,	रा० प्रा० विद्यालय	२५ ,,
कटार	प्रातः	७ ,, ,,	रा० मा० विद्यालय	२६ ,,
कीड़ीमाल	प्रातः	४ ,, ,,	चांदमल शंकरलाल भटेवड़ा	२८ ,,
सांगड़ी को वाडियो	प्रातः	३ ,, ,,	गूजरों का घर	२६ ,,
वड़ाखेड़ा	सायं	५ ,, ,,	रा० प्रा० विद्यालय	२६ ,,
पंचायत भवन (आसीन्द)	प्रातः	४ ,, ,,		३० ,,
आसीन्द	प्रातः	१ ,, ,,	सभा-भवन	३१ ,,
वराणा	प्रातः	७ ,, ,,	रा० प्रा० वि०	७ अप्रैल
दौलतगढ़	प्रातः	५ ,, ,,	सभा-भवन	८ ,,
लाछुड़ा	प्रातः	६ ,, ,,	सभा-भवन	१० ,
तिलोली	प्रातः	६ ,, ,,	सभा-भवन	१२ ,,
करणगढ़	प्रातः	४ ,, ,,		१३ ,,
वैंमाली	प्रातः	८ ,, ,,	रा० मा० वि०	१३ ,,
चांदरास	प्रातः	८ ,, ,,	रा० मा० वि०	१५ ,,
वावलास	प्रातः	८ ,, ,,	छीतरमलजी सिरोहिया	१६ ,,

अड़सीपुरा	प्रातः २	कि० मी०	उच्च प्रा० विद्यालय	१७	अप्रैल
बोरियापुर	प्रातः ५	,, ,,	,, ,, ,,	१८	,,
आशाहोली	प्रातः ४	,, ,,	राजमलजी सिंघवी	१६	,,
नान्दसा	प्रातः ८	,, ,,	शेषमलजी बाफणा	२०	,,
गंगापुर	प्रातः ४	,, ,,	उ० मा० विद्यालय	२१	,,
आमली	प्रातः १०.५	,, ,,	रा० मा० वि०	६	मई
महेन्द्रगढ़	प्रातः ६.५	,, ,,	रा०बा०उ०प्रा० वि०	८	,,
कारोई	प्रातः ८	,, ,,	रा० मा० वि०	९	,,
सांगवा	प्रातः ८	,, ,,	हरखलालजी दूगड़	१०	,,
बागौर	प्रातः ६	,, ,,	पंचायत-भवन	११	,,
घोड़ास	प्रातः ९	,, ,,	पंचायत-भवन	१२	,,
भादू	सायं ६	,, ,,	रा० मा० वि०	१३	,,
पितास	प्रातः ८	,, ,,	रा० मा० वि०	१४	,,
पुर	प्रातः ११	,, ,,	रा० उ० मा० वि०	१५	,,
बापूनगर (भीलवाड़ा)	प्रातः ८	,, ,,	डालचन्दजी बोर्दिया	१६	,,
भीलवाड़ा	प्रातः ६	,, ,,	रा० उ० मा० वि०	२०	,,
आरज्या	प्रातः ८	,, ,,	उ० मा० वि०	२	जून
माण्डल चौराहा	प्रातः ५	,, ,,	स्थानक	३	,,
माण्डल	प्रातः ४	,, ,,	कन्या पाठशाला	३	,,
लुहारिया	प्रातः १५	,, ,,	रा० प्रा० वि०	४	,,
भगवानपुरा	प्रातः ७	,, ,,		५	,,
लुहारिया	सायं ७	,, ,,	रा० प्रा० वि०	५	,,
चांखेड़	प्रातः ५	,, ,,	रा० उ० मा० वि०	६	,,
बांकली	प्रातः २	,, ,,		७	,,
बाघवास	प्रातः ६	,, ,,	रावला (मंगलनाथजी)	७	,,
गोविन्दपुरा	सायं ४	,, ,,	विद्यालय	७	,,
नाथड़ियास	सायं ७	,, ,,	रा० उ० मा० वि०	८	,,
रायपुर	प्रातः १०	,, ,,	उ० मा० वि०	९	,,
बोराणा	सायं ३	,, ,,	रा०उ०मा० वि०	१०	,,
बागोलिया	सायं ७	,, ,,	मूलचन्दजी गांधी	११	,,
राजाजी का करेड़ा	प्रातः ८	,, ,,	स्कूल	१२	,,
निम्बाहेड़ा	प्रातः ९	,, ,,	दौलतरामजी	१५	,,
चिलेश्वरम्	सायं ४	,, ,,	पंचायत-भवन	१५	,,

मींठा	प्रातः ४.५ कि० मी०	स्थानक	१६ जून
सरेवड़ी	प्रातः ४.५ ,, ,,	स्कूल	१६ ,,
कमेरी	प्रातः ५.५ ,, ,,		१७ ,,
ऊमरी	सायं २.५ ,, ,,	रा०उ०मा०वि०	१७ ,,
कूंदवा	प्रातः ५.५ ,, ,,		१८ ,,
पारडी	प्रातः ५.५ ,, ,,	मोहनलालजी इंटोलिया	१९ ,,
वागड़	प्रातः ८ ,, ,,		२० ,,
माकरड़ा	प्रातः ५ ,, ,,		२१ ,,
साकरड़ा	प्रातः २ ,, ,,		२१ ,,
जिलोला	प्रातः ६ ,, ,,	गेरीलालजी चौधरी	२२ ,,
चारभुजा रोड	प्रातः १२ ,, ,,	देवीलालजी कच्छारा	२३ ,,
आमेट	प्रातः १ ,, ,,	सभा-भवन	२४ ,,
	५९७ किलोटर		१०१ दिन